रासमाला

(गुजरात का इतिहास)

प्रथम भाग – पूर्वार्ध

अलेक्जाण्डर किन्लॉक फार्बस

अनुवादक एवं सम्पादक
श्री गोपाल नारायण बहुरा , एम.ए.

प्रथम संस्करण
फरवरी, सन् 1958 ई.

मंगल प्रकाशन

गोविन्दराजियों का रास्ता,
जयपुर

प्राक्कथन

इतिहास-लेखन की विधिवत् प्रणाली हमारे देश में प्राचीन काल से नहीं मिलती इसलिये मुख्यत धार्मिक और साहित्यिक ग्रन्थों में यत्र तत्र प्राप्त होने वाली ऐतिहासिक सामग्री से ही सन्तोष करना पड़ता है। फाहियान, ह्वॉनचांग, इब्नबतूता आदि कई विदेशियों द्वारा कालान्तर में की गई यात्राओं के विवरण हमारे इतिहास के लिये अवश्य ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। हमारे देश में मुस्लिम शासन काल से विधिवत् इतिहास-लेखन की परम्परा प्राप्त होती है। मुस्लिम शासक स्वय इतिहास के प्रेमी होते थे। अपने समय का इतिहास वे स्वयं आत्म-चरित्र के रूप में लिखते थे और अपने दरबारी इतिहासकारों से विशेष व्यय कर लिखवाते थे। मध्यकालीन भारतीय इतिहास के लिये इन मुस्लिम इतिहासकारों के ग्रन्थ विशेष प्रमाण माने जाते हैं। मुस्लिम इतिहासकारों की भांति युरोपीय इतिहासकारों ने भी हमारे देश का इतिहास विशेष रुचि और श्रम से लिपिबद्ध किया है। जिस प्रकार कर्नल जेम्स टॉड द्वारा लिखित "एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज़ आफ़ राजस्थान" अपर प्रसिद्ध नाम "टॉड राजस्थान" राजस्थान के इतिहास का मूल ग्रन्थ माना जाता है उसी प्रकार अलेक्जेंडर किनलॉक फार्बस का "रासमाला" नामक प्रस्तुत ग्रन्थ गुजराती इतिहास का एक लोकप्रिय मूल ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। "रासमाला" के आधार पर न केवल गुजराती भाषा में वरन् कई अन्य भारतीय भाषाओं में भी विपुल साहित्य का निर्माण समर्थ साहित्यकारों द्वारा किया गया है। रासमाला में गुजरात और संलग्न प्रदेशों से सम्बन्धित विभिन्न सरस घटनाओं का बड़े परिश्रम से संकलन किया गया है। कई घटनाओं का समर्थन अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों से भी हो जाता है और इस प्रकार रासमाला हमारे देश का एक प्रधान इतिहास ग्रन्थ माना गया है।

हिन्दी में इस ग्रन्थ का कोई अनुवाद उपलब्ध नहीं होने से हमारे कई हिन्दी-भाषा-भाषी पाठक इससे अपरिचित रहे हैं। श्री गोपाल-नारायणजी बहुरा ने रास-माला का प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद विशेष श्रम से तैयार किया है और इनके द्वारा कई आवश्यक टिप्पणियां भी यथा-स्थान जोड़ी गई हैं। स्व० पुरोहित हरिनारायणजी के निर्देशन में श्री बहुरा ने यह अनुवाद कार्य किया है। प्रकाशन के पूर्व मैंने अनुवाद को देखा है और टिप्पणियों सम्बन्धी सुझाव भी दिये हैं। मेरे ही सुझावों के अनुसार प्रस्तुत अनुवाद का मिलान गुजराती अनुवाद से किया गया है और उसके अनुसार आवश्यक टिप्पणियां जोड़ी गई हैं। इस प्रकार यह अनुवाद विशेष उपयोगी हो गया है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये श्री बहुराजी हमारी बधाई के पात्र हैं। विश्वास है कि साहित्य-जगत में "रासमाला" का यह अनुवाद विशेष आदरणीय होगा और हिन्दी पाठक इससे पूर्ण रूपेण लाभान्वित होंगे।

मुनि जिनविजय

जयपुर, ता० १५. २. ५८ ई०

अनुवादक की ओर से

भारत में जब मुसलमानों की सत्ता अस्त हो गई और ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने अपना शासन जमाया तो इंग्लैण्ड से कितने ही अफसर यहाँ आए और आते रहे। कम्पनी की सेवाओं के निमित्त ऐसे अफसरों की वहीं पर नियमित शिक्षा-दीक्षा भी होने लगी। ये अफसर फौजी और सिविल दोनों ही प्रकार के होते थे और अपनी शिक्षा एवं शासकों की रीति-नीति के अनुसार भारत में आकर शासन-कार्य चलाते थे। इन्हीं अधिकारियों में से बहुत से ऐसे भी आए जो विद्या और कला के प्रेमी होने के साथ साथ यहा के देशवासियों के प्रति सद्भाव रखते थे और उनके रहन-सहन, रीति-रिवाजों तथा यहा की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सामग्रियों में रस लेते थे। अलॅक्जण्डर किनलॉक फार्बस भी ऐसे ही सज्जन अंग्रेजों में से थे। वे 'रासमाला' नामक ग्रन्थ की रचना करके अपनी अमरकीर्ति इस ससार मे छोड़ गए हैं।

फार्बस साहब का जन्म लन्दन में सन् १८२१ ई० में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् वे स्थापत्य-कलाकारों के एक संस्थान में कुछ समय तक कार्य करते रहे; इसी कारण आगे चलकर भारतीय चित्र-कला में इनकी सुरुचि और सफल रेखा-चित्रांकन में सफलता हमारे सामने आती है। १८४० ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में प्रविष्ट हो कर १८४३ में वे बम्बई आ गए। इसके तीन वर्ष बाद ही वे अहमदाबाद में सहायक कलक्टर नियुक्त हुए और तभी से गुजरात के प्राचीन साहित्य और वीर-काव्यों के अध्ययन में संलग्न हो गए। १८४८ ई० मे वढ़वान के प्रतिभाशाली कवीश्वर दलपतराम डाह्याभाई उनके सम्पर्क में आए। इस मणिकाञ्चन-योग के परिणाम में रासमाला बनकर तैयार हुई। फार्बस साहब ने आवश्यक सुविधाओं का प्रबन्ध किया और

कवीश्वर ने गुजरात में घूम-घूम कर ऐतिहासिक रासों और वार्तादि का संग्रह सम्पन्न किया। महीकांठा में पोलिटिकल एजेण्ट नियुक्त होने के बाद फार्बस साहब राजपूत राजाओं और स्थानीय परिस्थितियों के सीधे सम्पर्क में आए जिनका सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत ग्रन्थ और उनके अन्य लेखों में स्पष्टरूप से व्यक्त हुआ है। सन् १८५४ के मार्च मास में फार्बस महोदय छुट्टी पर इंग्लैंड गए और वहां पर इण्डिया आफिस के आलेखों का अध्ययन करने की अनुमति प्राप्त करके रासमाला की तैयारी में लग गए। इसके फलस्वरूप १८५६ ई० में रिचार्डसन ब्रादर्स, २३, कार्नहिल द्वारा रासमाला ग्रंथ के चार भाग दो जिल्दों में प्रकाशित हुए। उसी वर्ष वे भारत लौट आए और सूरत मे कार्य-वाहक जज एवं गवर्नर के एजेन्ट नियुक्त हुए। इस समय वे स्वतंत्र विचारक के रूप में बॉम्बे-क्वार्टर्ली में लेख लिखने लगे थे। जब भारत में १८५७ के स्वतंत्रता-संग्राम के बादल घिरने लगे तो वे अपने लेखों में ब्रिटिश सरकार की भूलों और गलत नीति का विवेचन करने में भी कभी न हिचकिचाए और प्रजा में जो असन्तोष के कारण उनके ध्यान मे आए उन पर स्पष्ट रूप से अपने विचार प्रकट किए। भूस्वामियों और देशी राजाओं के प्रति सरकार के रुख और नीति की उन्होंने खुलकर आलोचना की थी। साथ ही देशी राजाओं को भी सामयिक चेतावनी देने में वे न चूके।

स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् फार्बस साहब की नियुक्ति खानदेश के कार्य-वाहक जज के पद पर हुई और तदनन्तर १८६१ ई० मे वे गवर्नमेंट के कार्य-वाहक सेक्रेट्री नियुक्त हुए। उसी वर्ष वे सदर अदालत के जज और फिर १८६२ ई० में हाई कोर्ट के जज बनाए गए। सन् १८६४ ई० में उनके सहयोगी जज मित्रों ने बताया कि उनके स्वास्थ्य में बहुत खराबी मालूम होती थी। निदान करने पर उनके मस्तिष्क में रोग का होना पाया गया। यह अनुपयुक्त जलवायु वाले स्थान में रह कर २० वर्ष तक अथक दिमागी परिश्रम करने का परिणाम था। वे वायु परि-वर्त्तन के लिए पूना गए परन्तु कोई लाभप्रद परिणाम न निकला। उनकी

दशा विगड़ती गई और ३१ अगस्त को ४३ वर्ष की अल्पायु में ही वे इस असार ससार को छोड़ कर स्वर्ग सिधार गए।

फार्बस साहब उन अंग्रेजों में से थे जिन्होंने इस देश में रह कर यहां के निवासियों, उनके धर्म, साहित्य, संस्कृति, रीति-रिवाजों, भौगोलिक परिस्थितियां, राजवंशों, उनके उत्थान और पतन तथा पारस्परिक सम्बंधों के इतिहास का परिश्रमपूर्ण अध्ययन करके अपने देशवासियों को उनसे अवगत कराने के साथ साथ अपनी साहित्य साधना करते हुए इस देश के विद्वानों को भी अनुसधान का वह मार्ग दिखाया है जिससे पिछली कुछ शताब्दियों में वे दूर चले गए थे और जिसका अनुसरण करते हुए वे लोग अपने इतिहास और संस्कृति को समझने समझाने में वहुत कुछ कृत-कार्य हुए हैं। अहमदावाद में गुजराती वर्नाक्यूलर सोसायटी और वम्बई में गुजराती सभा फार्बस साहब के ही सत्प्रयत्नो से स्थापित हुई थी। इनके द्वारा जो साहित्य-सेवा होती रही है वह विद्वानों की जानकारी से दूर नहीं है। गुजराती सभा के तो प्रथम अध्यक्ष भी फार्बस महोदय ही थे और उनके जीवन के अंतिम वर्ष में रायल एशियाटिक सोसायटी की बम्बई शाखा की अध्यक्षता ग्रहण करने के लिए भी उनसे प्रार्थना की गई परन्तु क्रूर और कराल काल ने उन्हे उस महत्त्वपूर्ण पद का उपभोग ही नहीं करने दिया।

गुजरात में फार्बस साहब का बहुत मान था। वे अपने साहित्यिक कार्यों एवं कलात्मक अभिरुचि के कारण वहां के समाज में परम लोकप्रिय व्यक्ति थे। उनकी प्रशंसा में कवि की प्रतिभा भी मुखरित हो उठी और उसने कह दिया—

"करेल कीर्ति मेर, दुनियां मां ते देखवा।
फार्बस रूपे फेर, भोज पधार्यो भूमि मां॥"

अपनी कीर्ति को पराकाष्ठा पर पहुँची हुई देखने के लिए राजा भोज पुनः शरीर धारण करके फार्बस के रूप में पृथ्वी-पर अवतरित

हुआ है। उनके पुस्तक प्रेम के विषय में कवि ने कहा है—

"कुध्या पुस्तक कापिने,श्रेनो न करीश अस्त।
फरतो फरतो फार्बस, ग्राहक मल्यो गृहस्थ॥"

पुस्तक को काटने वाले कीड़े! अब तू पुस्तक को काटकर नष्ट मत कर, फार्बस जैसा ग्राहक घर बैठे मिल गया है।

कर्नल जेम्स टॉड ने राजस्थान के क्षत्रियों के सुयश का रक्षण किया, ग्राण्टडफ ने मराठों के इतिहास पर कार्य किया उसी प्रकार अलक्जेंण्डर किन्लॉक फार्बस ने गुजरात के इतिहास को 'रासमाला' रचकर रक्षित किया:—

"करनल टॉड कुलीन विण, क्षत्रिय यश क्षय थान।
फार्बस सम साधन बिना, न उद्धरत गुजरात॥"

रासमाला की रचना चारणों तथा भाटों से प्राप्त सामग्री, गुजरात के ऐतिहासिक काव्यों, रासड़ों, वार्ताओं और शिलालेखों के आधार पर हुई है। अतः इसमें केवल शुष्क ऐतिहासिक तथ्यों का संग्रह ही नहीं हुआ है और न इसे मात्र ऐतिहासिक ग्रंथ ही कहा जा सकता है। ऐतिहासिक आधार इस माला का सूत्र है, काव्य इसका सौरभ और वार्ताएं इसकी शोभा बढ़ाने वाले अन्य उपकरण। जिन आधारों को ले कर इस ग्रंथ को रचा गया है उन्हीं के अनुरूप इसके परिणाम भी निकले हैं। ऐतिहासिक शोध में जहां 'रासमाला' के संदर्भ उद्धृत किये जाते हैं वहां गुजराती, हिन्दी और अन्य प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही उपन्यासों, नाटकों, लघुकथाओं आदि के लिए इसी ग्रंथ से कथा-वस्तुएं ग्रहण की गई हैं और की जा रही हैं।

यों तो गुजरात का इतिहास समस्त भारत के इतिहास से सम्बद्ध है, परन्तु राजस्थान से इसकी नींवसींव मिली होने के कारण यहाँ की ऐतिहासिक घटनाएं आपस में बहुत कुछ अन्योन्याश्रित हैं। गुजरात-

और राजस्थान की भाषा भी बहुत पूर्व एक ही रही है, ऐसा विद्वानों का मत है। आज की राजस्थानी और गुजराती मे भी बहुत साम्य है। इसीलिए रासमाला में सन्दर्भित कथाएं और रास यत्किञ्चित परिवर्त्तित रूप में राजस्थान में भी प्रचलित हैं और वे सर्व साधारण के मनोरञ्जन की सामग्री है।

रासमाला का गुजराती अनुवाद बहुत पहले हो चुका था परन्तु हिन्दीतर भाषाओं को न जानने वाले लोगों को ग्रन्थ के मूल स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता था। इसी बात को ध्यान मे रखते हुए सन् १९३८ मे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के मंत्री श्री रामनारायणजी मिश्र ने स्वर्गीय विद्याभूषण श्री हरिनारायणजी पुरोहित से अनुरोध किया था कि वे रासमाला का हिन्दी अनुवाद अपनी देख रेख में करवा दे। इसके लगभग एक वर्ष बाद स्वर्गीय श्री पुरोहितजी ने मुझे यह कार्य कर देने के लिए कहा। मैंने उनकी आज्ञानुसार यह काम हाथ मे ले लिया परन्तु दूसरे बहुत से कामों, मेरे पिताजी की मृत्यु एव अन्य जमीन जायदाद आदि के झंझटों के कारण, मै इस कार्य को जल्दी पूरा न कर सका। फिर भी सन् १९४४ मे मैंने प्रस्तुत ग्रन्थ की दो जिल्दों मे से पहली जिल्द का अनुवाद पूरा कर लिया था और स्वर्गीय पुरोहितजी को दिखा दिया था। उन्होने सभा को इस विषय में लिखा परन्तु कागज आदि की परिस्थितियॉ अनुकूल न होने के कारण सभा ने उस समय इस ग्रथ के प्रकाशन का कार्य हाथ में नहीं लिया। इसके थोडे ही समय बाद दिसम्बर सन् १९४५ में श्री पुरोहित जी का स्वर्गवास हो गया। मेरे अनुवाद की पाण्डुलिपि मेरे ही पास यथावत् पड़ी रही। इसके पश्चात सन् १९४७–४८ में मैंने सभा को पत्र लिखा परन्तु कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला।

सन् १९५० में राजस्थान सरकार ने राजस्थान संस्कृत मडल की स्थापना की और देश के सुविख्यात शोध विद्वान् पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय जी उक्त मडल के सदस्य रूपेण जयपुर आये। कुछ ही दिनों बाद राजस्थान सस्कृत मंडल के अन्तर्गत राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर

की स्थापना हुई और श्री मुनिजी इसके सम्मान्य संचालक के पद पर प्रतिष्ठित हुए। गुजरात प्रांत से श्री मुनि जी के जो सम्बन्ध हैं वे सर्व विदित हैं। अतः मैंने यह अनुवाद श्री मुनिजी को दिखाया और उन्होंने मूल पुस्तक को अपने हाथ में रखकर मेरे अनुवाद को नियम से कई दिनों तक सुना, जहां नामों और स्थानों आदि की भूल रह गई थी उसे ठीक कराया तथा कितने ही स्थलों पर अपनी व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर टिप्पणियां लिखाई। इसके अनन्तर श्री मुनिजी महाराज ने मुझे दीवान बहादुर रणछोड़ भाई उदयरामकृत इस ग्रन्थ के गुजराती अनुवाद, (फार्बस गुजराती सभा द्वारा सन् १९२२ में प्रकाशित) का पता बताया और उक्त पुस्तक में से आवश्यक टिप्पणियां देने के लिए परामर्श दिया। मैंने उक्त पुस्तक के दोनों भाग मंगवा कर उनमें से आवश्यक स्थलों पर टिप्पणियां भी हिन्दी रूपान्तर करके लगा दीं। गुजरात के इतिहास-विपयक अन्य ग्रन्थों में से भी यथाशक्ति जो सूचनाएँ प्राप्त हो सकी उन्हें पाद टिप्पणियों में समाविष्ट करने का प्रयत्न किया। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रंथ पर जितना कार्य होना चाहिये था वह मैं कर सका हूँ। यह सब कार्य सन् १९५४ तक पूरा हो गया था परन्तु इस पुस्तक के छपने का कोई अवसर नहीं आया।

अभी कोई ५-६ मास पूर्व स्वस्तिक पुस्तक सदन, जयपुर के संचालक श्री उमराव सिहजी 'मङ्गल' मुझ से मिले और रासमाला के हिन्दी अनुवाद को देखा। इन उत्साही, अध्यवसायी, कार्यकुशल और विद्याप्रेमी मित्र ने इस अनुवाद को अपनी प्रकाशन योजनाओं में सम्मिलित कर लिया और बड़े परिश्रम एवं लगन के साथ काम करके यह पूर्वार्द्ध का प्रथम भाग पाठकों को प्रस्तुत कर रहे हैं। यद्यपि सहज सौजन्यवश पुस्तक के सम्पादक की जगह श्री मङ्गल जी ने मेरा नाम दिया है परन्तु वास्तव में इसकी छपाई, गैट अप और आयोजना आदि के कर्ताधर्ता यही हैं। अतः एतन्निमित्त पाठकों के सभी धन्यवाद इन्हीं को प्राप्य हैं; हाँ, जो त्रुटियाँ रह गई हैं, और जो थोड़ी भी नहीं हैं, वे सब मेरी हैं।

अनुवाद के विषय में मुझे केवल इतना ही कहना है कि इतिहास-शास्त्र और भाषा पर अधिकार न होते हुए भी गुरुजनों की आज्ञा पालन करने के लिए ही मैंने यह कार्य करने का साहस किया है। यह कैसा भी हुआ हो परन्तु इससे मूल ग्रन्थ के महत्त्व में कोई कमी आने वाली नहीं है। यदि इसके द्वारा वे लोग जिनकी मूल ग्रथ तक गति नहीं है इसके किसी अश का भी आस्वादन कर सकेंगे तो मैं अपने प्रयास को सफल मानूंगा। फिर, ऐसे ग्रन्थों का अब हिन्दी में अनुवाद हो जाने की आवश्यकता पर भी दो मत नहीं हैं। अन्त में, मुनि श्रीजिन विजयजी के प्रति उनके सत्परामर्शों और मार्गदर्शन के लिए पुनः कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्तव्य मानता हूँ कि जिनके बिना इस पुस्तक को यह रूप प्राप्त न होता। श्री मगलजी एव अन्य जिन मित्रों ने इसके प्रकाशन मे सोत्साह मेरा सहयोग दिया है उनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ। जिन विद्वानों ने अपना अमूल्य समय देकर मुद्रित पृष्ठों को पढ़ा है तथा सम्मतियाँ प्रदान की हैं उनका भी मैं आभारी हूँ।

श्री महाशिवरात्रि, सम्बत् २०१४ वि०

गोपाल नारायण

ग्रन्थकर्त्ता की प्रस्तावना

विद्वानों और इतिहासज्ञों के रुचिकर विषय "प्राचीन भारत" की ओर लोगों का ध्यान अधिक आकर्षित है; इससे किञ्चित् निम्न श्रेणी के कार्य, अर्थात् मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अनुसंधान के प्रति अपेक्षाकृत थोड़ा प्रयत्न हुआ है। यद्यपि अशोक और चन्द्रगुप्त के समय की शोध करना एक ऊँचा विषय है परन्तु यह बात किसी दशा में भी नहीं भुलाई जा सकती कि उपर्युक्त समय से अल्पतर प्राचीन काल वर्तमान हिन्दुस्तान से व्यावहारिक रूप में अधिक सम्बद्ध है। वस्तुत' वर्तमान भारत से आरम्भ करके तत्काल पूर्ववर्ती समय को शोध के लिये ग्रहण करने से हमको एक दृढ़ आधार प्राप्त हो जाता है क्यों कि जब तक इस समय का वृत्तान्त अन्धकाराच्छन्न रहेगा तब तक इसके पृष्ठ में भासमान प्रकाश को प्राप्त कर लेना संशयात्मक ही रहेगा, फिर चाहे वह प्रकाश कितना ही द्युतिमान् और स्पष्ट क्यों न हो कितनी भी अवधि तक इस हिन्दुओं के देश में निवास करने वाले विदेशी का ध्यान यहाँ के निवासियों के रीति रिवाजों और रहन सहन की ओर गए विना नहीं रह सकता जो प्रत्यक्ष ही उस समय की सामाजिक अवस्था के अवशिष्ट प्रतीक हैं जिसको बीते हुये अभी अधिक समय नहीं हुआ है। ये ऐसी झांकियां हैं जो किसी भरे पूरे जलपोत के प्रातिभासिक आकार के समान आवरणयुक्त वातावरण में चमत्कारिक रीति से वक्रता ग्रहण करके विविधाकृतियों में परिलक्षित होती हैं। (जैसे कि इटली और सिसली को पृथक् करने वाले प्रशान्त समुद्रीय जल में वाहनों के प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं और इन दीर्घीकृत उलटे प्रतिबिम्बों से मूल वस्तुओं का आभास ग्रहण किया जाता है।)

जिन लोगों से राज्य छीन कर मुसलमानों ने अपनी सत्ता स्थापित की थी उन्हीं का स्पष्ट और दृढ़ प्रभाव अवशिष्ट मुसलमान-कालीन स्मृति-चिन्हों में परिलक्षित होता है और इन्हीं के आधार पर हम इस तथ्य पर पहुंचते हैं कि आर्यावर्त के मैदानों में अनेक वैभवशाली राजधानियों के नगर पश्चिमी पर्वतों की ओर से हुए मुसलमानी आक्रमणों से पूर्व वर्तमान थे। इस प्रकार उस पूर्वकालीन वैभव के वास्तविक चिन्ह हमें उपलब्ध होते हैं और उनके आधार पर हम प्रतापपूर्ण कन्नौज, रहस्यमय योगिनीपुर और कल्पना के आधारभूत भोज की राजधानी धारा नगरी के रेखाचित्र तो बना ही सकते हैं। ऐसा नहीं है कि जिन नगरों का हमने उल्लेख किया है वे ही उस समय अस्तित्व में थे अपितु इनकी श्रेष्ठता को मान्य करने वाले प्रदेशों की अपेक्षा अधिक विस्तृत प्रदेश पर कल्याण के राजाओं ने अपने राज्यका प्रसार किया था और वह परमार, चौहान व राठोड़ों की पंक्ति में परिगणित अणहिलपुर के सोलंकी के राज्य से कम नहीं था।

इस पुस्तक में हमने वनराज के नगर की कथा लिखी है। इस नगर का नाश होने के पश्चात् वहीं पर कितने ही छोटे-छोटे हिन्दू राज्य और संस्थान स्थापित हो गए थे जिनमें से बहुत से तो आजतक विद्यमान हैं। इन्हीं की ओर इस पुस्तक में पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया गया है। हम इस बात को भलीभांति समझते हैं कि इस पुस्तक का विषय केवल भारतीय ही नहीं है अपितु एक प्रान्त विशेष तक परि-सीमित है इसलिये यह सर्व साधारण के लिये रुचिकर होगा, इसमें संदेह है। फिर, इसका विवरण लिखने में मैं अपनी सीमित परिस्थि-तियों से भी अनजान नहीं हूँ, तथापि मै आठ वर्ष तक गुजरात में रहा हूँ और ताप्ती के तट से बनास नदी के किनारे तक बसे हुये भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों के निजी एवं सार्वजनिक सम्पर्क में आया हूँ। इससे मुझे इस कार्य में किसी अंश तक सफलता मिलने की सम्भावना है।

मैं प्राच्यविद्या का ज्ञाता नहीं हूँ, इस बात को आरम्भ में ही स्वीकार करते हुये, यह प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मुझे हिन्दू विद्वानों

का सहयोग प्राप्त हुआ है; इससे ग्रन्थ-संकलन की कुशलता में तो किसी प्रकार की कमी आ सकती है परन्तु पुस्तक का महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं हो सकता।

व्यापारी लोग प्रायः साहित्यिक विषयों के प्रति निस्पृह होते हैं परन्तु स्वर्गीय श्री वीरचंदजी भंडारी जो मारवाड़ के निवासी तथा जैन धर्म का पालन करने वाले थे, संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं के कुशल जानकार थे। उन्होंने मुझे प्रबन्धचिन्तामणि की पुस्तक देकर ही उपकृत नहीं किया अपितु इसका अनुवाद करने में भी साहाय्य प्रदान किया, जिसके बिना यह कार्य होना संभव नहीं था।

सोरठ की सीमा पर स्थित वढ़वान नगर के निवासी श्री दलपतराम डाह्याभाई ब्राह्मण का तो मैं और भी अधिक आभारी हूँ।

मुझे गुजरात में रहते अधिक समय नहीं हुआ था कि एक बार सरकारी काम के प्रसंग में एक पत्र मेरे सामने रक्खा गया जिस पर दो भाटों की सही के साथ ऐसा —ı ı—> कटार का निशान भी बना हुआ था। इसको देखकर मेरी उत्कण्ठा जागृत हुई और मैंने पूछ-ताछ करके इस जाति के लोगों से यथाशक्य सम्पर्क स्थापित किया। भाट लोगों के ग्रन्थ-भण्डारों की झांकी प्राप्त करके मेरी जिज्ञासा शान्त न होकर अधिक बलवती हो गई। जिन लोगों के पास रासों का भण्डार था और जिनमें सम्मिलित होने की मेरी इच्छा थी उनको समझाने के लिये तथा भण्डार का ताला खुलवाने के लिये भाटों की बातों का ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक था, इस कार्य के लिये मुझे किसी देशीय मनुष्य की सहायता प्राप्त करना परम आवश्यक था। सौभाग्य से तुरंत ही 'कवीश्वर' का नाम मेरे देखने में आया, क्योंकि दलपतराम को उनके देश के लोगों ने यह उपाधि प्रदान की थी। इस प्रकार ई० सन् १८४८ में ये सज्जन उपयोगी सहायक के रूप में मेरे पास आये और तभी से मेरे साथ रहने लगे। हमारे प्रयत्नों में किंचित् सफलता के दर्शन हुए, इससे बहुत पहिले ही मैंने उनको गुजरात के विभिन्न भागों में

घूमकर रास, वार्त्ताएं और लेख एकत्रित करने की सुविधाएं और साधन देने का प्रबन्ध कर दिया था। लोगों के अज्ञान, ईर्ष्या और लोभवृत्ति के कारण जो बहुत से विघ्न हमारे मार्ग में आये उनका यदि मैं यहां पर वर्णन करूं तो पाठकों का मनोरञ्जन तो अवश्य होगा परन्तु वे उससे उकता भी जावेंगे। जो थोड़ी सी बातें आगे लिखी जा रही हैं उन्हीं से पाठक इनका अनुमान लगा सकेंगे। कुछ लोगों की धारणा थी कि मुझे सरकार ने छुपे हुए खजाने ढूँढने के लिये नियुक्त किया था, कुछ लोग सोचते थे कि सरकार उनकी जमीनें खालसा करना चाहती थी और मेरा यह कार्य उनके अधिकारों में त्रुटियाँ ढूंढने की दिशा में हो रहा था; मुझे ऐसी भी सूचनायें दी गईं कि किसी वंश विशेष के भाट की वही में से नकल करवाने का उचित पारिश्रमिक उसको एक गांव का पट्टा कर देना होगा। अन्त में, सरकारी कार्यवश मैं बाघेला झाला और मोहिलवंश के ठाकुरों के सम्पर्क में आया और मुझे तुरन्त ही मालूम हो गया कि भाटों और चारणों की खुशामद करने और उनको लालच देने की अपेक्षा इन परपरागत सम्मान्य ठिकानों के स्वामियों से प्राप्त होने वाली थोड़ी सी भी सूचना अधिक लाभप्रद और उपयोगी सिद्ध होगी। मैं महींकाटा का पोलिटिकल एजेन्ट था इससे उक्त विचार के अनुसार राज्य-कर्मचारियों की सहायता से मैं इसी प्रान्त में अपना काम पूरा करने में समर्थ हुआ, इतना ही नहीं अपितु गायकवाड़ के राज्य से भी मुझे ऐसी ही सुविधायें प्राप्त हो गईं (यद्यपि पहिले तो एक बार वहां के अधिकारियों ने इसको अच्छा नहीं समझा था) और बड़ौदा सरकार की ओर से पाटण के सूबेदार बाबा साहिब की कृपा से मुझे द्वयाश्रय की एक प्रति और अन्य बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई। ये वस्तुये मुझे अणहिलपुर से मिली थीं जो ऐसी आकर्षक वस्तुओं का केन्द्र है।

मेरा शोधकार्य प्रायः बोझिल दफ्तरी कर्त्तव्यों को पूरा करने से बचे हुए समय में चलता था। मेरी शोध जैन ग्रन्थों और भाटों की बहियों तक ही सीमित नहीं थी, अपितु मैंने हिन्दुओं के प्रत्येक प्रचलित रीति रिवाज का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन किया और विशेषतः

उन बातों का, जो मेरे द्वारा संगृहीत शोध-सामग्री और पुस्तकों में उल्लिखित थी। मैंने देवस्थानों, कुओं, बावड़ियों और छतरियों पर लगे हुए शिलालेखों की नकलें करवाईं तथा हिन्दू शिल्पचातुर्य के प्रतीक प्रत्येक खंडहर का भी यथाशक्य निरीक्षण किया। इस अन्तिम प्रकार के प्रयत्नों में अहमदाबाद के नवीन जैन मन्दिर के सूत्रधार प्रेमचन्द सलाट ने मेरी बहुत सहायता की तथा त्रिभुवनदास और भूधर डाह्याराम नामक दो बुद्धिमान सुथारों का भी मुझे पर्याप्त साहाय्य प्राप्त हुआ।

इसी बीच में गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी की स्थापना हुई और हमारे कविश्वर ने जो ऐसे कामों के लिये सदैव तत्पर रहते थे, दो निबन्धों पर पारितोषिक प्राप्त किया। ये निबन्ध "गुजरात में प्रचलित अन्धविश्वास" और "हिन्दू जातियां" विषयों, पर लिखे गये थे। इन दोनों ही निबन्धों का मैंने प्रस्तुत पुस्तक के चौथे भाग में विस्तृत उपयोग किया है।

मुझे थोड़े समय के लिये इंगलैण्ड जाना पड़ा और वहां पर ईस्ट इण्डिया कंपनी की कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स (संचालक मण्डली) ने इण्डिया हाउस के आलेखों को देखने की आज्ञा प्रदान करदी जिससे मैं अपने संग्रह की उपयोगी सामग्री का मिलान करके इस कार्य को पूर्ण करने में समर्थ हुआ। अपने परिश्रम के फलस्वरूप इस ग्रन्थ को अब मैं जनता की सेवा में प्रस्तुत करता हूँ। यह कैसा भी बन पड़ा हो परन्तु इससे स्थानीय अधिकारियों को कुछ सहायता मिलेगी और विलायत में बैठे हुए मेरे कुछ देशवासियों का भी उनके वैसी ही सुप्रजा, "गुजरात के हिन्दुओं" की ओर उनका ध्यान आकर्षित करने में सफल होगा, ऐसी मेरी आशा है।

मेरा यह संग्रह विविध रासों में से संकलित है अतः मैंने इसका नाम रासमाला रखा है।

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

प्रकरण १

प्रकरण २

प्रकरण ३

प्रकरण ४

प्रकरण ५

चामुण्ड, वल्लभ-दुर्लभ-सोमनाथ का नाश

प्रकरण ६

भीमदेव (प्रथम) १०२२ ई० से १०७२ ई० तक ५० वर्ष

प्रकरण ७

राजाकर्ण सोलंकी-मीनलदेवी का कार्य भार, सिद्धराज

रासमाला

प्रकरण १

गुजरात की स्वाभाविक सीमा–शत्रुञ्जय–वलभीपुर

गुजरात प्रान्त पश्चिमी हिन्दुस्तान में है और यह दो भागों मे विभक्त है। इनमें से एक तो खण्डस्थ भाग है और दूसरा द्वीपकल्पस्थ। इस द्वीपकल्पस्थ भाग का बहुत सा हिस्सा ओमन (उम्मॉं दरिया) के किनारे के सामने और सिन्ध तथा मकरान के किनारे के नीचे अरब-समुद्र में निकला हुआ है। साधारणतया हिन्दू लोग गुजरात के खण्डस्थ भाग अथवा गुजरात प्रधान की दक्षिणी सीमा नर्मदा नदी को ही मानते हैं परन्तु फिर भी इस प्रान्त की भाषा नर्मदा से लेकर बम्बई में बहुत दूर तक दमाऊं खास या सेन्ट जान (सिंजान) तक बोली जाती है। विन्ध्याचल और अरावली पर्वत को मिलानेवाली पहाड़ियों की श्रेणी नर्मदा नदी के किनारे से उत्तर की ओर बढकर इस प्रान्त की उत्तर-पूर्वीय सीमा बनाती है और मालवा, मेवाड़ तथा मारवाड़ को गुजरात से पृथक् करती है। इसकी पश्चिमी तथा वायव्यीय सीमा कच्छ की खाड़ी और प्राय: पानी से भरा रहनेवाला खारी रण बनाते हैं, दक्षिणी और नैऋर्त्य कोण वाले किनारे सदा खम्भात की खाडी और अरब समुद्र के जल से प्रक्षालित होते रहते हैं। इस सीमा को देखते हुए इस प्रान्त का वायव्य कोण ही सब से अधिक अरक्षित है

जहाँ कच्छ के रण और आबू पहाड़ की तलहटी के बीच में एक सपाट मैदान आ गया है। गुजरात पर होने वाले सभी हमले प्रायः इधर ही से हुए हैं।

गुजरात के उत्तरपूर्व में आनेवाले पर्वत, जिनकी अनेक शाखाएं प्रान्त के समीपतर भागों मे फैली हुई हैं, सीधे, ऊंचे नीचे और दुरूह हैं। पहाडियों के स्कन्धों और इन पर्वतों के शिखरों के बीच की घाटियाँ जङ्गलों से हरी भरी हैं। इन जङ्गलों की सघन छाया में कितनी ही नदियाँ बहती हैं जिनके ऊँचे ऊँचे किनारे, लम्बे, गहरे और ऊबड़ खाबड़ खड्डों से कटे हुए हैं तथा इन (किनारों) पर झाडों और वनस्पति की अधिकता के कारण घने और दुर्गम्य जङ्गल खड़े हो गए हैं। जैसे जैसे इस मैदान की ओर आगे बढ़ते हैं, हमें जङ्गल कम नजर आने लगते हैं, नदियों के पाट अधिक चौड़े होते जाते हैं और उनकी गति मन्द होती जाती है। चलते चलते ये नदियाँ साबरमती, माही, अथवा नर्मदा मे से किसी एक से सगम करके अन्त में खम्भात की खाड़ी में जा मिलती हैं। गुजरात का बहुत सा दक्षिण-पश्चिमी प्रदेश, जिसका विस्तार लगभग साठ मील है, कच्छ के रण से नर्मदा के किनारे तक तथा द्वीप के सीमाभाग पर खम्भात की खाड़ी के उत्तर-पूर्वीय किनारे तक फैला हुआ है। यह प्रदेश खुला हुआ और उपजाऊ मैदान है। इस भूभाग का अधिकांश और मुख्यतया साबरमती और माही के बीच का भाग सघन पेड़ों की झुरमुटों से ढका हुआ है। इनमें अधिकतर आमों के तथा दूसरे वृक्ष हैं जो सदा फलों मे लदे रहते हैं और जिनके रंग बिरंगे चमकदार पत्ते एक अद्भुत छटा दिखाते रहते हैं। एक महाराष्ट्र लेखक लिखता है कि सैकड़ों मीलों तक फैला हुआ यह प्रदेश इंगलिस्तान के उमरावों के अच्छे से अच्छे बगीचों

से भी बढ़कर होने का दावा कर सकता है। पहाड़ी के अधिकांश भाग में खेती-बाड़ी नहीं होती परन्तु जहाँ जहाँ पर थोड़ी बहुत खेती होती है वह भाग उपजाऊ जान पड़ता है। फसलों से भरे हुए खेत सरस और सुरक्षित दिखाई पड़ते है, आमों और अन्य फलदार वृक्षों की बहुतायत असाधारण जान पड़ती है। इस भाग की ऊँची नीची सतह और पहाड़ी तथा जगली दृश्यों की अधिकता के कारण ही मिस्टर एलफिन्स्टन ने लिखा है कि हिन्दुस्थान का और कोई प्रदेश इतना फलों फूलों से भरा पूरा और रमणीय नही है।

कच्छ के छोटे रण के किनारे से लगभग २० मील की दूरी पर खारी पानी की झील शुरू होती है जो ठेठ खम्भात की खाड़ी के किनारे तक जा पहुंची है। यह झील मुख्य गुजरात और सोरठ तथा काठियावाड़ के बीच की सीमा बनाती है। सम्भव है पुराने जमाने में ये दोनो विभाग एक दूसरे से और भी अधिक भिन्न हों और सोरठ वास्तव में एक पृथक् द्वीप ही रहा हो। [१]

खम्भात की खाडी के पश्चिमी किनारे पर भावनगर से उत्तर की ओर कुछ मील दूर, साँमी रग के कडे पत्थरों की एक पर्वत श्रेणी है जो शान्त सरोवर की सतह जैसे सपाट मैदान मे स्थित होने के कारण समुद्र की लहरों में झूलते हुए द्वीपगुच्छ के समान दिखाई पडती है। चमारडी ग्राम पर झुकी-सी हुई इन पहाडियों पर से ऐसा आनन्ददायक दृश्य दिखाई देता है कि जिसकी समानता भारत के थोडे ही ऐतिहासिक एव दतकथाओं में आए हुए प्राकृतिक वर्णनों मे उपलब्ध होती है।

(१) इस विषय की अधिक जानकारी के लिए 'बाम्बे ब्रान्च ऑफ दी रॉयल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल के विभाग ५ वें के पृष्ठ १०६ मे मेजर फूलर जेम्स का लेख और 'एल्फिन्सटन्स इंडिया' के सन् १८४१ ई० के सस्करण के प्रथम भाग के पृष्ठ ५५८ को देखिए।

ऐसी किम्वदन्ती प्रचलित है कि किसी समय चमारड़ी ग्राम की चट्टानें समुद्र के जल से प्रक्षालित होती थीं, इसकी पुष्टि इस बात से हो जाती है कि बहुत सी चट्टानें अब भी समुद्र की लहरों के टकराने से पोली हुई नजर आती हैं। इन चट्टानों के बीच मे खड़े होकर देखनेवाले को पूर्व की ओर सुदूर क्षितिज तक फैला हुआ एक काली मिट्टी का मैदान दिखाई पड़ता है जो प्रतिवर्ष गेहूँ और कपास की फसलों से हरा भरा रहता है। यह मैदान, खाड़ी के गहरे भाग के निकटतम तथा ऊजड़ और खारी हिस्से को छोड़ कर इसके समतल भाग पर पूर्व की ओर रास्ता बनाने का व्यर्थ सा प्रयत्न करने वाले जलप्रवाहों के द्वारा जगह जगह पर कटा हुआ दिखाईपड़ता है। गरमी के दिनों में मन्द गति से अपने टेढ़ेमेढ़े एवं पतले मार्ग पर आगे बढ़ती हुई तथा वर्षा ऋतु में प्रबलवेग से इधर उधर मार्ग निकाल कर समुद्र की ओर दौड़ती हुई, परम शोभनीय और प्रतापशाली वलभी दुर्ग के प्राकारों को प्रक्षालित करती हुई नदी भी यहाँ से स्पष्ट दृष्टिगत होती है। यहाँ भावनगर की उस खारी पानी की खाड़ी अथवा प्राचीन छोटी नदी का भी पता चलता है जिसमें कभी रहस्यभरे कनकसेनवंश के व्यापारी जहाजों द्वारा समुद्र की ओर जाया करते थे। आज भी इस नदी में यद्यपि छोटे मोटे जहाज चलते हैं परन्तु यह अपनी प्राचीन विशालता के कुछ चिन्हों को प्रकट करती हुई, भावनगर (जिससे इसने अपना नाम पाया है)—के पास होकर बहती हुई गोधा बन्दर को पार करके वेग से पीरम की द्वीपकला मे लीन हो जाती है जो सोरठ (प्रधान) को पीरम के चमत्कारी एवं मनोरंजक टापू से पृथक् करती है। इसी मैदान में चमारड़ी से कुछ मील उत्तर की ओर आधुनिक 'वला' नामक ग्राम (जो आज कल गोहिल राजपूतों

के अधिकार मे है) तथा प्राचीन नगर वलभीपुर के खडहर विद्यमान है। कुछ आगे चल कर मानों दृश्य की ऐतिहासिकता का प्रतिपालन करती हुई एक मीनार खड़ी है जिससे लोलिआना नगर का पता चलता है। इसी स्थान से कितने ही वर्षों तक मुसलमान बादशाहों के सूबेदार प्रान्त का कर वसूल किया करते थे। एक टूटी हुई मसजिद के पास ही मरहठों ने एक अच्छा-सा मन्दिर बनवाया है जिसके सामने एक अशुद्ध और अस्पष्ट लेख खुदा हुआ है। "यहाँ दामाजी गायकवाड तन्मय होकर श्री शिवजी के चरणचिन्हों का पूजन करते हैं। सम्वत १७६४" (सन् १७३८ ई०)।

चमारड़ी की पहाड़ियों पर खड़े होकर यदि दर्शक दक्षिण की ओर दृष्टि डाले तो उसे पर्वतश्रेणियों की एक चित्र-विचित्र रेखा-सी दिखाई पड़ेगी। प्रायद्वीप के भूभाग पर तथा पीरम के दक्षिण की ओर कुछ मीलों तक खोखरा की पहाड़ियाँ खड़ी हुई है। पास ही, पश्चिम की ओर 'सिहनगर' (सीहोर) को चट्टानों की श्रेणियों ने घेर रक्खा है। आगे चल कर सुदूर पश्चिम में पथरीली चोटियों पर बने हुए राज-प्रासादों के मुकुट को धारण करता हुआ, पालीताना की बुरजों और मीनारों से भी ऊँचा, पवित्र, शत्रुञ्जय पर्वत निद्रित-सी अवस्था में खड़ा दिखाई देता है।

जैनियों के २४ तीर्थङ्करों में से प्रथम आदिनाथ [१] ने शत्रुञ्जय पर्वत पर तपस्या की इसीलिए यह पवित्र माना जाता है—यह पर्वत समुद्र की

---

[१] इनके माता पिता के नाम और लक्षण आदि प्रतिमा के नीचे बनी हुई एक पट्टी पर लिखे रहते हैं जिससे यह मालूम हो जाता है कि यह किस तीर्थङ्कर की प्रतिमा है।

जिस प्रकार हिन्दू लोग चार युग (सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग) मानते

सतह से २००० फीट ऊँचा है। यहाँ पर आनेवाले यात्री को पर्वत की तलहटी में होकर पालीताना नगर को पार करते हुये उस मार्ग से जाना पड़ता है जिसके दोनों ओर बड़ के घने वृक्षों की कतार उसको धूप की तेजी से बचाने के लिए खडी हुई है। पर्वत के स्कंध पर दो तीन मील की कठिन चढ़ाई का एक रास्ता है जिसके दोनों ओर थोडी थोड़ी दूर पर बहुत से विश्रामस्थान, कुए और तालाब बने हुये हैं। इस मार्ग में छोटे छोटे मन्दिर भी हैं। इन चैत्यों में तीर्थङ्करों के पवित्र पद-चिन्ह अंकित हैं। इसी मार्ग से होता हुआ यात्री अन्त में रंग बिरंगी चट्टानों से बनी हुई उस द्वीप-कल्प सुन्दर पहाड़ी पर पहुँचता है जहाँ जैन धर्म के प्रधान मन्दिर बने हुये है। इस पहाड़ी के दो शिखर हैं जिनको एक घाटी पृथक् करती हैं। इस घाटी का बहुत सा भाग देवालयों और लम्बी छतों तथा बगीचों से युक्त है। चारों ओर परकोटे पर तोपें रखने के स्थान बने हुए हैं। यह परकोटा कितने ही छोटे २ किलों मे विभक्त है और बहुत से मन्दिर तो स्वत. ही किले जैसे बने हुये हैं। दक्षिण शिखर पर कुमारपाल और विमलशाह द्वारा बनवाये हुये मध्यकालीन मन्दिर हैं जहां खोडियार देवी की महिमा से पवित्र तालाब के पास ही जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की विशाल मूर्ति प्रतिष्ठित है जिसके चरणों में एक पवित्र बैल चट्टानमे खुदा हुआ है। उत्तर शिखरपर एक अत्यन्त विशाल और प्राचीन देवालय है जिसके विषय में कहा जाता है कि दन्तकथाओं में प्रसिद्ध सम्प्रतिराज ने इसे बनवाया था। शत्रुञ्जय पर प्राचीन देवालय बहुत

हैं उसी प्रकार जैन लोग छः आरा मानते हैं। तीसरे आरा में कश्यप ऋषि के वंशज इक्ष्वाकु राजा के कुल में नाभी नामक राजा हुआ जिसके मरुदेवी नाम की रानी थी। इन्हीं के पुत्र ऋषभदेव जैनो के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ हुए। ऋषभदेव से पहले पृथ्वी पर वर्षा नहीं होती थी, अग्नि की उत्पत्ति नहीं हुई थी, कोई काँटोंवाला

कम हैं और समय समय पर जीर्णोद्धार होते रहने के कारण उनके आस पास खडे हुए नये मन्दिरों मे से उन्हे पहचान लेना कठिन है— परन्तु आधुनिक मन्दिर अपने अपने 'वृन्द' के नाम से पहचाने जा सकते हैं। भारतवर्ष भर में सिन्धु नदी से पवित्र गगा तक, हिमालय के वर्फीले मुकुटधारी शिखरों से रुद्र की सहज-अर्द्धाङ्गिनी कन्याकुमारी तक शायद ही कोई ऐसा नगर हो जहां से एक व अधिक बार पालीताना पर्वत पर विराजमान देवालयों के लिए बहुल्मूय भेट न आई हो। कितने ही रास्तो और प्रांगणोवाले, भव्य परकोटों से घिरे हुए आधे महलों जैसे, आधे किलों जैसे सगमर्मर के बने हुये ये जैन मन्दिर, साधारण मनुष्य की पहुँच के बाहर ऐसे एकान्त में विशाल पर्वत पर स्वर्गीय प्रासादों के समान खडे हुए हैं। प्रत्येक मन्दिर के स्वल्पप्र काश युक्त गम्भीर कक्षों में आदिनाथ, अजीतनाथ तथा अन्य तीर्थङ्करों की एक अथवा अधिक मूर्तियाँ विराजमान है। शान्त और उदासीन वृत्ति धारण किये हुये अलबस्तर की बनी हुई इन मूर्तियों के अङ्ग प्रत्यङ्ग चांदी के दीपकों के मंद प्रकाश मे दिखाई पड़ते हैं—अगरबत्तियों से वायु सुगन्धित होती रहती है—और सुनहरी गहनों तथा रग-विरगी

वृक्ष नहीं था और ससार में विद्या और चतुराई के व्यवसायों का नाम भी न था। यह सब ऋषभदेव ने प्रकट किए, उन्होंने मनुष्यों को तीन प्रकार के कर्म सिखाए— (१) असि कर्म अथवा युद्ध और राजविद्या, (२) मसीकर्म अथवा शास्त्रविद्या और (३) कशीकर्म (कृषिकर्म) अथवा खेतीबाडी का काम। इसके बाद से ही लोग नियमित व्यवसाय करने लगे। अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामी ने विक्रमीय सवत् से ४७० वर्ष पूर्व और ईसा से ५२६ वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया। इसके तीन वर्ष आठ मास और दो सप्ताह बाद से पाचवें आरे का आरम्भ हुआ है। यह २१ हजार वर्ष तक चलेगा।

ऋषभदेव की स्थापना लाट देशातर्गत भृगुकच्छ (भडौंच) के पास नर्मदा के

पोशाकों से सुसज्जित श्रद्धालु स्त्रियाँ समवेत मधुर स्वर से भजन गाती हुई—चिकनी फर्श पर नंगे पैरों धीरे धीरे प्रदक्षिणा करती हैं। वास्तव मे, शत्रुञ्जय को किसी पूर्वीय अद्भुतकथा (Romance) के उस कल्पित पर्वत से उपमा दी जा सकती है जहां के निवासी अकस्मात संगमर्मर की मूर्तियों मे बदल गये हों और उनको अपने हाथों से स्वच्छ एवं दिव्य रखने के लिए अप्सरायें नियुक्त की गई हों जिनकी भावनापूर्ण देवस्तुतियों की मधुर ध्वनि पवन में गूँजती रहती है।

पालीताना पर्वत के शिखर से पश्चिम की ओर देखने पर दिन के स्वच्छ प्रकाश में तीर्थङ्कर नेमीनाथ की तपस्या से पवित्र गिरनार पर्वत दिखाई देता है। उत्तर की ओर सीहोर के आस पास की पहाड़ियों से वलभीपुर के खंडहरों के दृश्य को देखने मे कोई अड़चन नहीं पड़ती। आदिनाथ के पर्वत (शत्रुञ्जय) की तलहटी में सघन वृक्षों की पंक्तियों मे से धूप में चमकती हुई पालीताना की मीनारें सामने ही दिखाई पड़ती है। रजत नदी के शत्रुञ्जयी टेढ़े मेढ़े पूर्वीय प्रवाह के साथ साथ चलती हुई दर्शक की दृष्टि सहज ही में क्षण भर देवालयों का मुकुट धारण करनेवाले तलाजा की सुन्दर चट्टानों पर ठहर जाती है और आगे चल कर दूसरी ओर उस स्थान पर भ्रमण करने लगती है जहां प्राचीन गोपनाथ और मधुमावती (महुआ) को समुद्र अपनी लहरों से प्रक्षालित करता है।

शत्रुंजय जैन धर्म का अति प्राचीन और पवित्र स्थान है। यह सब तीर्थों में अग्रणी समझा जाता है और अनन्त निवृत्ति (निर्वाण) के साथ सम्बन्ध जोड़नेवालों के लिए विवाह मंडप के समान है।

तट पर वज्रसेन मुनि ने शकावतीर तीर्थ पर की। यह स्थान बाद में शकुनिका-विहार कहलाने लगा था।

ऐसा कहा जाता है कि अंग्रेजों के पवित्र स्थान 'आयोना' [१] की तरह प्रलयकाल में भी इसका नाश नहीं होगा। प्रायः हिन्दुस्थान के सभी भागों से इस पवित्र स्थान पर आकर तपश्चर्या व धर्मकार्य करनेवाले, तथा इस भूमि पर सम्पन्न होने के कारण अधिक फलप्रद अनुष्ठानों द्वारा मुक्ति एव निर्वाण प्राप्त करनेवाले पापमुक्त राजाओं की कितनी ही बडी बड़ी अद्भुत कथाएँ प्रचलित हैं। इस चमत्कारिक स्थान का यथार्थ वर्णन करना तीर्थङ्करों के परम श्रद्धालु भक्त के लिए भी कठिन है इसलिए हम पाठकों को न तो कपर्दी यक्ष, कुडराज, उस पर प्रसन्न होनेवाली अम्बिका तथा समुद्रविजय यादव के विषय में ही कुछ कह सकेंगे और न उन मन्दिरों के विषय में जिनको 'कल्याण' [२] के सुन्दर राजा 'सुन्दरराज' तथा उसकी अनुपम रानी ने इस पवित्र पहाड़ी पर बनवाये थे।

सौराष्ट्र के राजा शिलादित्य की आज्ञा से प्रसिद्ध वलभीपुर नगर के धनेश्वर सूरि ने "शत्रुञ्जय माहात्म्य" नाम का ग्रन्थ रचा था, उसी माहात्म्य नामक पुस्तक क आधार पर कुछ मनोरजक बाते यहाँ पर उद्धृत की जाती है।

---

[१] भिन्न भिन्न लोकों के बहुत से राजाओं ने 'आयोना' को अपना समाधि-स्थान क्यों बनाया, इसका कारण निम्नलिखित भविष्य वाणी को बतलाया जाता है:-

"जगत् का प्रलय होने से सात वर्ष पहले ही लोग जलप्रलय में डूब जायेंगे-आयर्लैंड पर भी समुद्र एक ही सपाटे में फैल जायगा-हरे भरे 'इसेल' का भी यही हाल होगा, परन्तु, 'कोलम्बो' का टापू फिर भी पानी पर तैरता रहेगा"

["ग्राहम्स एण्टीक्विटी ऑफ 'आयोना' नामक पुस्तक के आधार पर"]

[२] शत्रुञ्जय माहात्म्य मे राजा महीपाल, उसके ससुर कान्यकुब्ज देश के राजा कल्याणसुन्दर और उसकी रानी कल्याणसुन्दरी के विषय मे लेख अवश्य मिलता है परन्तु उसने सिद्धाचल पर्वत पर कोई देवालय बनवाया था ऐसा लेख कहीं नहीं मिलता।

ऋषभदेव का पुत्र भरतराज अयोध्या में राज्य करता था। वह शत्रुञ्जय से उत्तर की ओर सेना लेकर गया और एक महाशक्तिमान म्लेच्छ राजा से युद्ध करने लगा। पहली लड़ाई में तो भरत हार गया परन्तु दूसरी में विजयी हुआ। वह म्लेच्छराज हार कर सिन्धु नदी में उसी प्रकार भाग गया जैसे घबड़ाकर दुख में कोई बालक अपनी माता के अङ्क मे शरण लेता है। [१]

वर्षा ऋतु के कारण भरत को एक ही स्थान पर ठहरना पड़ा परन्तु इसके समाप्त होते ही उसके प्रधान मन्त्री सुषेन [२] ने सिन्धु नदी के उत्तर में समुद्र और पर्वतश्रेणियों के बीच एक दुर्ग पर अधिकार कर लिया। भरत के छोटे भाई बाहुबली के पुत्र सोमयशा ने शत्रुञ्जय पर ऋषभदेव का मन्दिर बनवाया और स्वयं भरत-राजने "सौराष्ट्र" (देश) की उपज इस पवित्र स्थान के लिए अर्पण कर दी। तभी से यह (सौराष्ट्र) देश देवदेश कहलाने लगा। भरत का सम्बन्धी शक्तिसिंह उस समय सोरठ का अधिकारी था। सुषेन की अध्यक्षता में इसी राजा की सेना की सहायता से गिरनार पर्वत पर से राक्षस निकाल दिये गये और उस पर ऊँचाई में मेरु पर्वत की समानता करनेवाले 'आदिनाथ' और 'अरिष्टनेमि' के मन्दिरों की स्थापना की गई। आगे चल कर म्लेच्छों ने शत्रुञ्जय पर्वत पर बने हुये मन्दिरों को विध्वस्त कर दिया और बहुत समय तक वहाँ निर्जनता का राज्य रहा। [३]

---

[१] इसका सविस्तार वर्णन रासमाला पूर्णिका अङ्क में छपेगा।

[२] 'प्रधान' का नाम 'सुषेन' नहीं 'सुबुद्ध' था—'सेनापति' का नाम 'सुषेन' था और 'दुर्ग' का नाम 'सिन्धु निष्ठुर' था।

[३] विस्तृत विवरण रासमाला पूर्णिका अङ्क में दिया जावेगा।

जब विक्रम पृथ्वी को ऋणमुक्त करने के लिए उत्पन्न हुआ था तो उन्हीं दिनों 'भावड' नाम का एक गरीब जैन श्रावक और उसकी स्त्री भावुला काम्पिल्य नगर मे रहते थे। अपने घर आये हुये यतियों की सेवा के फलस्वरूप उन्हे चमत्कारी गुणोंवाली एक घोड़ी की प्राप्ति हुई। कुछ ही दिनों पश्चात् भावड़ प्रसिद्ध घोड़ों का व्यापारी हो गया और 'विक्रमादित्य' की घुड़साल को अपने बहुमूल्य घोड़ों से सुशोभित करके उस राजा से सोरठ प्रान्त में मधुमावती (नगरी) जागीर में प्राप्त करली। वहीं उसके जावड़ नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो उसके मरने पर उसका उत्तराधिकारी हुआ। वह बुद्धि के देवता बृहस्पति के समान अपने नगर का प्रबन्ध करने लगा। एक बार बुरे समय मे—समुद्र में ज्वार के वेग के समान मुद्गलों [१] की सेना का इस देश पर आक्रमण हुआ। वे सोरठ, 'लाट' [२] और कच्छ [३] आदि अन्य स्थानों से अन्न आदि सभी प्रकार का सामान और सभी वर्गो में से स्त्री बच्चों और मनुष्यों को लेकर अपने देश को लौट गये। भिन्न भिन्न जाति के अन्य बन्दियों के साथ जावड़ को भी पकड ले गये परन्तु इस व्यापारी ने वहाँ भी धन पैदा करके अपने धर्म का यथावत पालन किया। वह वहाँ भी उसी प्रकार धर्मकार्य करता रहा जिस प्रकार इस धर्मक्षेत्र में किया करता था। उसने वहाँ एक जैन-

---

[१] मूल पुस्तक मे ऐसा ही लिखा है। गुजराती अनुवाद मे 'मुगल' अथवा 'मोगल' लिखा है।

[२] माही और नर्मदा के बीच का प्रदेश।

[३] कच्छ का नाम प्राचीन ग्रन्थों में अनूपदेश, गर्तदेश मोजकट, उद्भट देश और सागरद्वीप देखने मे आता है। कच्छ के एक परगने वागड़ का नाम कच्छदेश भी मिलता है।

मन्दिर भी बनवाया। धार्मिक पुरुष वहाँ जाते थे। जावड़ उनका खूब सत्कार करता था। वे लोग वहाँ शत्रुञ्जय का बखान करते और भविष्यवाणी किया करते थे कि "उसका (शत्रुञ्जय का) पुनरुद्धार जावड़ के हाथों होना लिखा है।"

वे उसको कहा करते थे कि "पवित्र शत्रुञ्जय के रक्षक देवत प्राणघातक, मासाहारी और शराबी हो गये हे। स्वधर्मत्यागी 'कवड' यक्ष (कपर्दीयक्ष) जैनधर्म के उन सभी मनुष्यों का नाश कर देता है जो उधर जाने का साहस करते हैं। शत्रुञ्जय के चारों ओर कोसों दूर तक भूमि उजाड़ पड़ी है और ऋषभदेव का पूजन करनेवाला कोई नहीं रह गया है।" उनकी ऐसी बात सुन सुन कर जावड ने चक्रेश्वरी देवी की आराधना की और (नीच) देवों के बलिदान चढ़ाया।

उन देवों ने उसे बताया कि, "ऋषभदेव की मूर्ति तक्षशिला नगरी मे, जहाँ राजा जगमल राज्य करता है, छुपा कर रक्खी हुई है। अपने पूर्णप्रयत्न से जावड ने उस राजा से मूर्ति प्राप्त करली और उसी के आश्रय से एक सघ-बना कर, अपने कितने ही जाति-बन्धुओं के साथ उन मूर्तियों को लेकर शत्रुञ्जय की ओर प्रस्थान किया। कितनी ही कठिनाइयों का सामना करने के बाद जावड और उसके साथी सोरठ में 'मधुमावती' पहुँचे। वहाँ उनके भाग्य ने ऐसा साथ दिया कि बदर पर उन्हे उसी समय आए हुए सोने और अन्यान्य बहुमूल्य वस्तुओं से लदे हुए वे जहाज भी मिल गये जिनको पहले जावड ने चीन और भोट को भेजे थे। उसी समय वज्रस्वामी ने भी मधुमावती मे प्रवेश किया। कवडयक्ष भी, जिसको उन्होंने जैनधर्म मे परिवर्तित कर लिया था, बहुत से देवों और यक्षों को साथ लिए उनके साथ था। महामुनि वज्रस्वामी और जावड अपने सहायक कवडयक्ष को साथ

लेकर दलबल सहित शत्रुञ्जय पर जा पहुँचे। वहाँ मृत शरीरों, रक्त-रञ्जित पर्वत खण्डों और इधर उधर बिखरी हुई सफेद अस्थियों को देख कर वे भयभीत हो गये। इसके बाद पर्वत को अपने हृदयों के समान विशुद्ध करके वे यात्री वज्रस्वामी के बताये हुये शुभ मुहूर्त मे मूर्तियो को लेकर गाजे बाजे सहित पर्वत पर चढ़े। उन्होंने यात्रा के निश्चित स्थान को प्राप्त करने के लिए कितनी ही बार प्रयत्न किये, परन्तु पापबुद्धि राक्षसों के विरोध के कारण असफल हुए। अन्त मे जावड का हृदय टूट गया और सवत् १०८ विक्रमीय [५२ ई.] मे वह मर गया। बार बार असफल होने के कारण जब कोई कार्य समाप्त ही नहीं होता है तब "यह तो जावड भावड़ का काम है" ऐसा कहने की प्रथा पड गई और यह कहावत अब भी देश मे प्रचलित है। [१]

जावड़ की मृत्यु के कुछ वर्षो बाद ही बौद्ध लोगों ने सौराष्ट्र के राजाओं को अपने धर्म मे परिवर्तित कर लिया। अन्त में "धनेश्वर सूरि" खडे हुए जिन्होंने वलभीपुर के शासक शिलादित्य को अपना (जैन) धर्मानुयायी बनाया और बौद्धो को देश से निकाल कर धार्मिक स्थानो को पुनः अधिकार में लेकर अनेक मन्दिर बनवाये। [२] "माहात्म्य" के अनुसार यह परिवर्तन का कार्य ४७७ वि० (४२१ ई०) मे सम्पन्न

---

(१) स्काटलैण्ड मे भी एक ऐसी ही कहावत प्रचलित है — "सेन्ट मगोना के कार्य की तरह यह कार्य भी कभी पूरा न होगा"

(२) यहा शीलादित्य प्रथम से तात्पर्य है जिसको जैनों ने अपने धर्म की रक्षा करने के कारण "धर्मादित्य" की उपाधि देदी थी—वास्तव में इसका समय ५९५ ई० से ६१० अथवा ६१५ ई० तक का है, ४२१ ई० नहीं।

हुआ। शिलादित्य [१] का ठीक ठीक समय क्या था, इस विचार को यहीं छोड़ कर हम जैनग्रन्थों के आधार पर यह वर्णन करते हैं कि वह बौद्धधर्म को छोड कर इस धर्म में किस प्रकार आया [२] और म्लेच्छों के आक्रमण से उसका तथा उसके राज्य का विनाश किस प्रकार हुआ। ऐसी कथा है कि गुर्जरदेश के 'खेड़ा' नामक ग्राम में देवादित्य नाम का एक ब्राह्मण रहता था जो वेदों में पारगत था। उसके सुभगा नाम की एक पुत्री थी जो बचपन ही में विधवा हो गई

(१) इस समय तक वलभी वश की स्थापना नहीं हुई थी। इस गणना के अनुसार गुप्त सवत्सर २३७ होता हे और ई० सन् ५५६ आता है। माहात्म्य ग्रन्थ संवत् ४७७ में पूर्ण होगया था।

(२) सौगत अथवा बौद्ध और जैन अथवा अर्हन्त ये दोनों ही निरीश्वरवादी मतो में मे हैं। यहा उन पर कुछ प्रकाश डालना उचित प्रतीत होता है। ये दोनो ही वेद और ब्राह्मणों के प्रतिकूल मत थे। कट्टर हिन्दू धर्मावलम्बियों और बौद्धो मे खूब जोशीली लडाइया हुई हैं जिनमे हिन्दुस्तान के बौद्धो का नाश हुआ। जैनलोग यद्यपि इस तूफान में जीवित रह गये परन्तु इसमें उनको बहुत सी कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा था। डा विल्सन ने "एशियाटिक रीसर्चेज"के पृष्ठ १६ मे "हिन्दुओं के पथ" नामक लेख मे लिखा है कि "मध्वाचार्य बौद्ध और सौगत में कोई विशेष भेद नहीं मानते, तथापि इनमें कुछ भेद है अवश्य। आनन्दगिरि के अभिप्राय से सौगत लोग "सुगतमुनि" के मत को मानते थे। इसका सिद्धात यह था कि प्राणीमात्र पर दया करो। इसी में वे समस्त नीति और धर्म का समावेश करते हैं। इस मत का यह सिद्धान्त बौद्ध और जैन मतों के सिद्धान्तों से बहुत कुछ मिलता है।" ऐसा प्रतीत होता है कि वलभी में बौद्ध और सौगत एक ही थे और प्रतिपक्षिता भी इनमें और जैनों में ही थी और इनके निरीश्वरवादी धर्म और धर्मानुग्रही हिन्दुओं में सम्मिलित नहीं थे।

सौर पथ को मानने वाले सूर्य को जगत का उत्पन्न करने वाला मानते हैं। इस मत को मानने वाले थोडे हैं, परन्तु ब्राह्मण हैं। इन लोगों का पथ अब तक प्रचलित है। ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय सौराष्ट्र के द्वीपकल्प में ये लोग

थी। वह नित्य प्रातःकाल माध्याह्न और सायकाल में सूर्यदेव को दूब पुष्प और जल का अर्घ्य चढ़ाती थी। इस बालविधवा के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर सूर्यदेव मानव शरीर धर कर उसका आलिङ्गन करने के लिए पृथ्वी पर उतरे और वह गर्भवती हुई।

सुभगा के इस कार्य से उनके कुल पर कलंक लगेगा, यह सोचकर उसके माता पिता ने उसे घर से निकाल दिया और उनके दिये हुए नौकर के साथ वह वलभीपुर चली गई जहाँ पर उसने दो बालकों (एक पुत्र और एक पुत्री) को जन्म दिया। इन दिव्य बालकों के आठ वर्षों को बीतते

बहुत बड़ी सख्या में मौजूद थे। आनन्दगिरि ने इनके अनेक भेद गिनाए हैं परन्तु ये भेद अब प्रसिद्ध नहीं हैं।

प्रोफेसर विल्सन ने आनन्दगिरि द्वारा बताए हुए छः भेदों के विषय मे यों लिखा है :—

(१) जो उगते हुए सूर्य को पूजते है और उसको ब्रह्म अथवा उत्पन्न करने-वाली शक्ति का प्रतिरूप मानते हैं

(२) जो मध्यान्ह के सूर्य को रुद्र (नाश करने वाला) मानते हैं।

(३) जो अस्त होते हुए सूर्य को विष्णुरूप अथवा पालनकर्त्ता मानते हैं।

(४) जो त्रिमूर्ति का पक्ष मानते हैं। ये लोग सूर्य को उपरि-लिखित तीनों गुणों (सर्ग-स्थिति-सहार) का वाहक अथवा ग्रहण करनेवाला प्रतिरक्षक मानते हैं।

(५) इस भेदवालों का आशय यद्यपि स्पष्टतया नहीं लिखा है तथापि इतना ज्ञात होता है कि ये लोग सूर्य के सच्चे और वास्तविक रूप की आराधना करते हैं। सूर्य की सतह पर जो चिन्ह दिखाई देते हैं उनके लिये इन लोगों का कहना है कि वे सूर्य भगवान् की दाढी और मूछ के बाल हैं। इनमें और आजकल के सौर पथियों में इतनी समानता अवश्य पाई जाती है कि वे भी सूर्य का दर्शन किए बिना भोजन नहीं करते।

(६) इस भेद को माननेवाले ऊपर लिखे पक्षों के विरुद्ध हैं। ये लोग प्रत्यक्ष दीखते हुए सच्चे सूर्य की उपासना को आवश्यक नहीं समझते वरन् मानसिक तेज-

देर न लगी। लड़के को गुरु के पास पढ़ने बिठाया गया परन्तु दूसरे बालकों के साथ रहते रहते सबसे पहला प्रभाव उसके कोमल मन पर यह पड़ा कि "मै बिना बाप का हूँ।"

एक बार अपने साथियों के चिढ़ाने से तग आकर वह अपनी माता के पास गया और पूछा कि माता ! क्या मेरे पिता नहीं हैं ? लोग मुझे बिना बाप का कहते हैं। उसने उत्तर दिया, "ऐसा पूछ कर तू मुझे क्यो दुखित करता है ?" बालक दुखी होकर लौट गया परन्तु उसी दिन से उसने विष खाकर अथवा किसी अन्य उपाय से अपने आपको नष्ट करके इस कलङ्क से मुक्त होने का निचश्य कर लिया।

एक दिन जब वह इस प्रकार दुखी हो रहा था तो भगवान् सूर्य-नारायण ने उसे दर्शन दिये और "वत्स" कह कर सबोधन किया। उन्होंने उसकी रक्षा करने का वचन दिया और कुछ प्रस्तरखण्ड देकर कहा:— "ये तुम्हारे शत्रुओं का विनाश करने में सहायता देंगे।" इन्हीं सूर्यदेव के दिये हुये शस्त्रों के कारण वह "शिलादित्य" के नाम से प्रसिद्ध हुआ[१]

पुञ्ज की कल्पना करके उसीका ध्यान और आराधना करते हैं। ये लोग अपने ललाट, भुजदण्ड और हृदय पर गोल आकार की तप्त मुद्राओं के अक भी धारण करते हैं। शकराचार्य ने इस प्रथा का बहुत तिरस्कार किया है क्योंकि यह वैदिक नियमों के विरुद्ध है और ब्राह्मण का शरीर पूज्य होने के कारण भी यह (प्रथा) निषिद्ध है।

ऐसा प्रतीत होता है कि गुजरात मे अशोक ने २७३—२३२ ई. पू. बौद्धधर्म का सूत्रपात किया था। जैन ग्रन्थकारों का मत है कि उसके पौत्र सम्प्रतिराय ने २१६ ई. पू. अनार्य देश मे (जिसमे सौराष्ट्र भी शामिल था) जैन मन्दिर बनवाये थे।

[१] शील=सद्गुण+आदित्य=सूर्य, यही इस नाम का सच्चा अर्थ है, परन्तु बहुत से विरोधी लोग इसको बुरा बताने के लिए यों अर्थ करते हैं —शिला=पत्थर आदित्य=सूर्य।

एक बार शिलादित्य ने किसी वलभी के निवासी का बध कर दिया। इस पर वलभी का राजा क्रोधित हुआ परन्तु सूर्य भगवान् के दिये हुये अस्त्रों से वह मार दिया गया और सुभगा का पुत्र शिलादित्य, जो अब प्रसिद्ध हो गया था, सौराष्ट्र का राजा हो गया। वह सूर्य भगवान् के दिये हुए घोड़े पर सवार होकर आकाशचारी देवताओं के समान स्वच्छन्द विचरने लगा और अपने पराक्रम से कितने ही देशों को जीत कर बहुत समय तक राज्य करता रहा।

एक बार अपनी विद्या का अभिमान लिए हुए कुछ बौद्ध उपदेशक शिलादित्य के पास आये और कहा 'ये श्वेताम्बर (जैन) यदि हमें शास्त्रार्थ (विवाद) में हरा दे तो यहाँ रहे अन्यथा आप उन्हे देश से निकाल दे।'

राजा ने इस बात को स्वीकार किया और चार प्रकार [१] की सभा की। वह स्वय उसका प्रधान हुआ और आज्ञा दी कि जो पक्ष इस विवाद मे हार जाय वह वलभी की सीमा पार चला जावे। भाग्य से बौद्ध विजयी हुए और श्वेताम्बरों को भविष्य मे विजय पाने की आशा हृदय मे लेकर देश छोड़ना पड़ा। तब से राजा शिलादित्य बौद्ध धर्म का पालन करने लगा परन्तु वह शत्रुञ्जय के महान् देवता ऋषभदेव का पूजन भी पूर्ववत् उत्साहपूर्वक करता रहा।

शिलादित्य ने अपनी जोड़ली बहन का विवाह भृगुपुर (भड़ौच) के राजा से कर दिया और उसने वहाँ कांति और गुणों में देवता के समान एक पुत्र को जन्म दिया। थोडे दिनों बाद ही उसका पति

(१) साधु व साध्वी अथवा जैन धर्मावलम्बी त्यागी पुरुष (साधु) और स्त्री (साध्वी) तथा श्रावक व श्राविकाए जिन्होंने किसी आश्रम को ग्रहण नहीं किया हो, इस प्रकार चार प्रकार के मनुष्यों का सभा।

मर गया और उसने किसी तीर्थस्थान पर सद्‌गुरु से धर्म-दीक्षा ली। उसके आठ वर्षीय पुत्र ने भी उसके साथ ही दीक्षा ग्रहण की। जब जब प्रसंग आता तो बुद्धिमान् और सदाचारी मनुष्यों के सामने वे अपने धर्म के सिद्धान्तों की व्याख्या करते।

एक दिन मल्ल ने अपनी साध्वी माता से आतुर होकर पूछा 'मां! क्या अपने सहधर्मियों की अवस्था सदा से ऐसी ही दीन हीन रही है, जैसी हम देख रहे हैं?' उसने आँखों में आँसू भर कर उत्तर दिया—"पुत्र! मैं पापिनी इस प्रश्न का उत्तर कैसे दूँ? पहले गाँव गाँव में इन दिव्य श्वेताम्बरों की संख्या बहुत अधिक थी, परन्तु प्रसिद्ध धर्मोपदेशक-वीर सुरेन्द्र की मृत्यु के पश्चात् विधर्मियों ने तुम्हारे मामा राजा शिलादित्य पर अपना प्रभाव जमा लिया। शत्रुञ्जय जैसा पवित्र तीर्थ, जहाँ पर जाने से मोक्ष प्राप्त होती है, आज श्वेताम्बरों के हाथ से निकल कर भूतों जैसे बौद्धों का घर बना हुआ है। श्वेताम्बर विदेशों में पड़े हुये हैं और उनका स्वाभिमान और तेज नष्ट हो गया है।"

वीर क्षत्रियकुलोत्पन्न मल्ल अपने धर्म का अपमान न सह सका और विजय प्राप्त करने का अवसर ढूँढ़ने लगा। कठिन तपश्चर्या एव एकनिष्ठ आराधना से प्रसन्न होकर (वाग्देवी) सरस्वती ने उसे दर्शन दिये। जिस प्रकार विष्णुवाहन गरुड़ सर्पों को वश में कर लेता है उसी प्रकार बौद्धों को वश में करने के लिये उसे "नय चक्र" [१] नामक पुस्तक भी प्रदान की।

(१) जैन साहित्य में मल्लसूरि कृत न्याय विषयक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इन सूरि के विषय में 'प्रबन्धचिन्तामणि,' 'प्रभावक चरित', और 'प्रबन्धकोष' आदि ग्रन्थों में अनेक कथाएं मिलती हैं।

इस शास्त्र को प्राप्त करके, शिवजी से दिव्यास्त्र प्राप्त किये हुये पाण्डव अर्जुन के समान शोभित होता हुआ, वीर मल्ल सौराष्ट्र की शोभा वलभी में पहुँच कर शिलादित्य के दरबार में उपस्थित हुआ और कहने लगा—"हे राजन्, इन बौद्धो ने समस्त संसार को भ्रम में डालकर वश में कर रखा है। मै तुम्हारा भानजा मल्ल इनके विपक्ष में खडा हुआ हूँ।"

इस पर राजा ने पहले की भाति सभा बुलाई और स्वयं विवाद सुनने के लिये बैठा। मल्ल पर देवी का हाथ था इसलिये अपनी प्रतिभा से उसने बौद्धों में खलबली मचा दी। बुझते हुये श्वेताम्बर धर्म की इस चिनगारी को फिर से भभकते हुए देखकर वे कॉपने लगे। प्रत्यक्ष हार मानने के डर से उन्होंने अपना क्षेत्र प्रतिपक्षी के हाथ सौप कर जाने का निश्चय किया। उन्होंने कहा 'वह धन्य है जो अपने देश कुल तथा स्त्री के धर्म को नाश होनेसे बचाता है और जो मित्रों के दुख में दुखी होता है, वह भाग्यशाली है"। इस प्रकार बौद्ध हार गये और राजा की आज्ञा से देश के बाहर चले गये।

जैन उपदेशक फिर बुला लिये गये। उन्होंने राजा की आज्ञा से मल्ल को "सूरि" की पदवी दी। (१) सभी तीर्थस्थानों मे श्रेष्ठ शत्रुञ्जय की असीम महिमा को जानकर उसने अपने मामा शिलादित्य की सहायता से उसकी फिर प्रतिष्ठा की।

---

(१) इस विषय में मुनि श्रीधर्मविजय का विवेचन, जो इस प्रकार है, ध्यान देने योग्य है :—

"फार्बस साहब ने लिखा है कि विद्वानों ने राजा की आज्ञा से उनको "सूरि-पद" प्रदान किया यह बात उस समय के जैनों के मन्तव्य से विरुद्ध था क्योंकि "सूरिपद" के विषय मे उनके मतानुसार यह प्राचीन प्रथा है कि, गुरु अथवा आचार्य के अतिरिक्त और कोई किसी को सूरिपद प्रदान नहीं कर सकता, इसलिये राजा

जब श्री मल्ल सूरि की कीर्ति चारों ओर फैल गई, तो पण्डितों के समाज ने उन्हें श्री अभयदेव द्वारा स्थापित खम्भात अथवा स्तम्भ तीर्थ का अधिकार सौंप दिया। (१) (२) वहाँ पर श्रेणिक तथा अन्य-श्रावकों के साथ उन्होंने अपना आत्मोद्धार किया (३)

को सूरिपद प्रदान करने का कोई अधिकार नहीं था। यदि किसी विद्वान और सुशील साधु पर राजा प्रसन्न होता तो वह आचार्य के पास विनीत होकर उस पद दिलवाने के लिये प्रार्थना करता था और गुरु उस शिष्य की योग्यतानुसार प्रसन्न होकर उसको पदवी प्रदान करते थे।

(२) श्रीयुत फार्बस लिखते हैं कि कीर्ति प्राप्त कर लेने के पश्चात् पुरोहित-सभा ने श्री मल्ल सूरि को स्तम्भ तीर्थ पर नियुक्त करके भेज दिया, यह 'असत्य' है क्योंकि आचार्य, उपाध्याय अथवा अन्य किसी त्यागी साधु को एक स्थान पर ठहरने का अधिकार नहीं है। वह स्वयं एक गाव से दूसरे गाँव में घूमता रहता है। हाँ, किसी आवश्यक कार्यवश गुरु उसे कहीं एक जगह ठहरने की आज्ञा दे सकता है, परन्तु श्रीमल्लसूरि के विषय में किसी ऐसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता है। फिर पुरोहितसभा का तो उनके विषय में ऐसा आदेश हो ही नहीं सकता।

(३) अभयदेव सूरि के द्वारा स्थापित स्तम्भतीर्थ मे तो उनका जाना नितान्त असम्भव है क्योंकि श्री मल्ल सूरि और अभयदेव सूरि के समयो में ७०० वर्ष का अन्तर है। सात सौ वर्ष पश्चात् स्थापित स्तम्भ तीर्थ में उनका जाना आकाशपुष्प के समान असम्भव है। हाँ, कोई ग्राम बहुत पुराना हो और उसका प्राचीन नाम त्रम्बावति हो, उसमें यदि वे गये हों तो यह सम्भव हो सकता है। परन्तु प्रबन्ध चिन्तामणिकार ने ७०० वर्ष पीछे बने हुए स्तम्भतीर्थ का नाम लिखा है, इससे उसका अभिप्राय यह ज्ञात होता है कि उसने उस स्थान का वर्तमान नाम लिखकर समझाने का प्रयत्न किया है।

(३) श्रेणिक तथा अन्य श्रावकों के साथ आत्मोद्धार किया, इस वाक्य का कुछ तात्पर्य समझ में नहीं आता। ऐसा प्रतीत होता है कि "चतुर्विंशति प्रबन्ध" में जिस शिलादित्य राजा के लिये यह लिखा है कि उसने श्रावकों के व्रतों में से कितने ही व्रतों को अङ्गीकार किया और जैनधर्म का प्रसार करने का बहुत प्रयास किया, उसी

उन्हीं दिनों मारवाड के पाली नामक नगर मे काकू [१] नाम का एक धन्धार्थी (व्यापारी) रहता था। वह अपना देश छोड़ कर और अपना असबाब सिर पर धर कर वलभी चला गया था। नगर के दरवाजे के पास ही ग्वालों की झोपड़ियों मे वह रहने लगा और बहुत ही गरीब होने के कारण लोग उसे 'रक' नाम से पुकारने लगे। परन्तु कुछ दिनों बाद उसने 'कृष्ण चित्रक' [२] तथा अन्य चमत्कारिक वस्तुएँ कहीं से प्राप्त करलीं।

के २४०० वर्ष पहले मगध देश का प्रख्यात जैन राजा श्रेणिक हुआ था, इसलिये शायद ग्रन्थकार ने यहा पर इसी श्रेणिक तथा अन्य श्रावकों की उपमा देते हुए यह वाक्य लिख डाला है।" [मुनि श्री धर्म विजय]

(१) काकू के छोटे भाई का नाम पाताल था। वह धनवान् था इसलिए काकू उसके यहां घर कामकाज किया करता था। एक दिन खेतों मे पानी देते समय काकू सोता पड़ा था इसलिये उसके भाई ने उसके एक ठपका (थप्पड़) जमा दिया। इससे खिन्न होकर वह घर से निकल पडा और वलभीपुर के पास आकर अहीरों की बस्ती में रहने लगा।

एक बार कोई कार्पटिक (कापडी) "कल्प-पुस्तक" मे लिखे अनुसार रैवतक (गिरनार) पर्वत पर जाकर "सिद्धरस" प्राप्त करके एक "तुम्बी" मे भर कर लाया। वलभीपुर के पास आते आते उसने "काकूय तूम्डी" ऐसी आकाशवाणी सुनी। अपना चोरी का भेद खुल जाने के डर से उसने वह तुम्बा काकू के पास रख दी। किसी पर्व के दिन काकू रसोई बना रहा था। चूल्हे के ऊपर ही खूंटी पर तुम्बी टंगी हुई था। दैवयोग से उसमें से सिद्धरस की एक बूंद चूल्हे पर रक्खी हुई तपेली पर पड गई और वह सोने की हो गई। अब तो काकू को धनवान् होने का साधन प्राप्त हो गया इसलिये अपनी तुम्बडी और अन्य सामान लेकर नगर के दूसरे किनारे आकर रहने लगा और व्यापार करने लगा। पुरानी झोपडी मे आग लगा दी।

(२) एक वार एक घी बेचनेवाली स्त्री उसके पास आई। उसके बर्तन मे से जब वह घी लेकर तोलने लगा तो घी समाप्त ही न हुआ। इससे उसने जान लिया

एक दिन काकू रंक अपनी घास की झोंपड़ी में आग लगा कर नगर के दूसरे भाग मे चला गया और वहीं एक विशाल भवन बनवा कर रहने लगा। उसकी सम्पत्ति दिनों दिन बढ़ती चली गई और वह कोट्यधिपति कहलाने लगा। परन्तु वह इतना लोभी था कि कभी किसी काम मे पैसा खर्च नहीं करता था, न पवित्र मनुष्यों के लाभार्थ, न यात्रा में, और न गरीबों के खिलाने पिलाने में ही, वरन् कहा करता था कि जगत् में जिसके भाग्य मे होता है उसी को धन मिलता है। ऐसा कह कर वह अपने गरीब पड़ौसियों का धन भी हड़प लेता था।

एक दिन राजा की लड़की ने काकू रंक की लड़की को एक भव्य सोने की कंघी पहने हुए देख लिया और उसको लेने की इच्छा की, परन्तु उसके पिता काकू ने देने से इनकार कर दिया। इस पर शिलादित्य ने उस कंघी को बलात् छिनवा लिया। ऐसा झगड़ा होने पर काकू रंक म्लेच्छ देश में चला गया और वहाँ के राजा से कहा "यदि आप

कि जिस हारी (ईंडी) पर उसकी हाँडी रक्खी हुई थी उसमे कोई चमत्कार था इसलिये उसने उसको खरीद लिया। वह हारी (ईंडी) चित्रक वेल से गुंथी हुई थी। इस प्रकार उसको चित्रक सिद्धि प्राप्त हो गई और फिर पूर्वजन्म के किसी पुण्य प्रताप से उसको सुवर्ण-पुरुष सिद्धि भी प्राप्त हो गई।

केटली (Keightley) कृत 'फेयरी माइथोलाजी' नामक पुस्तक मे भी इससे मिलती हुई एक कथा लिखी है कि बहुत वर्षों पहले नेथर विहन के पास (नार्थम्बरलैण्ड मे) एक लड़की रहती थी। एक दिन अपने सिर पर दूध से भरी बटलोई लिये वह खेतों में आ रही थी कि उसने परियों को खेलते हुए देखा और अपने साथियों को भी बताया, परन्तु उनको कुछ न दिखाई दिया। केवल उस लड़की को ही वह परियों का समुदाय दीख पड़ा। इसका कारण यह था कि अपने सिर पर जो ईंडी थी वह चतुष्पत्री नाम की वनस्पति की गुंथी हुई थी। इस वनस्पति से परियो को देखने की शक्ति प्राप्त होती है।

वलभी का नाश करे तो मैं एक करोड़ मोहरें आपको भेंट करूँ ।" इस बातको स्वीकार करके राजा ने सेना सहित कूच कर दिया । [१]

रंक ने छत्र धारण करने वाले सेवक को कोई इनाम नहीं दिया था, अतः एक दिन मार्ग में रात को जब राजा अपने तम्बू में अर्द्धनिद्रित अवस्था में पड़ा था तो कोई मनुष्य यों बोलने लगा 'अपने दरबार में कोई समझदार व्यक्ति नहीं है अन्यथा यह अश्वपति, पृथ्वी का इन्द्र, एक अनजान वंश के मनुष्य, जिसकी रीति भाँति व चाल चलन तक का पता नहीं है कि अच्छा है या बुरा, ऐसे रंक नामी व्यापारी के कहने से सूर्य के पुत्र शिलादित्य पर चढ़ाई न करता ।" राजा सुखदायक औषधि के समान इन वचनों को सुन कर दूसरे दिन आगे न बढ़ा । तब रंक की समझ में भी मूल कारण आ गया और मोहरें देकर उसने सेवक को प्रसन्न किया ।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजसभा में आकर वह सेवक यों कहने लगा, विचार कर अथवा बिना विचारे पैर आगे बढ़ादिया सो बढ़ा दिया, जब सिंह के समान राजा ने पैर आगे बढा दिया तो अब आगे बढ़ने में ही इसकी शोभा है । जब सिंह खेल ही खेल में हाथियों का नाश कर देता

(१) रा० टक्कुर नारायण ने अपने 'गुजराती' पत्र की वार्षिक भेट के रूप में एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें उन्होंने इस कथा को ऐसी रसीली बनाकर लिखा है कि पढते पढते मन नहीं भरता । इसका नाम उन्होंने 'अनंगमद्रा अथवा वलभीपुर का नाश' रक्खा है । यह म्लेच्छ राजा, जिसके पास काकू गया था, सिन्धु देश का (अलमन्सूर का अधिकारी) अरब अमर बिन जमाल था । वलभी का नाश ७७० ई० में हुआ, उस समय सिन्ध का अधिकारी अमर बिन हफसर बिन उसमान हजारमर्द था । वह हिजरी सन् १५१ [सन् ७६७ ई०] में वहां का १२वाँ हाकिम था । इसके बाद हिजरी सन [१५४ सन् ७७० ई०] में १३ वाँ हाकिम रूहबिन हुआ था (देखो Reinaud पृ० 213)

है तो उसे मृगपति अथवा मृगों का मारने वाला कहला कर क्यों अपनी अप्रतिष्ठा करवानी चाहिए ? हमारे महाराज का पराक्रम अपार है। इनकी बराबरी कौन कर सकता है ? इस भाषण से प्रसन्न होकर रण-दुंदुभि से आकाश और पृथ्वी को निनादित करता हुआ वह आगे बढ़ा।

वलभी पर आने वाली विपत्ति को जान कर श्री चन्द्रप्रभ, श्री वर्द्धमान देव और अन्य मूर्तियाँ शिवपट्टन (प्रभास), श्रीमालपुर तथा अन्य नगरों को चली गई और महामुनि श्रीमल्लवादी ने भी अपने भक्तों सहित पंचासर का मार्ग ग्रहण किया। [१]

म्लेच्छों की सेना नगर के समीप आ गई और स्वदेश-शत्रु नीच रंक के कहने से उन्होंने सूर्यकुंडा को गौओं के रक्त से भर दिया इससे शिलादित्य की बढ़ती का मूल कारण सूर्य भगवान् का दिया हुआ घोड़ा उसे छोड़ गया और विष्णु के गरुड़ के समान वह आकाश में उड़ गया [२] इस प्रकार शिलादित्य निरुपाय हो कर मारा गया और

(१) जब राज्य में कोई विपत्ति आनेवाली होती है तो वहाँ की देवमूर्तियाँ चली जाती हैं इसी विश्वास को लेकर पुरानी जातियों के लोग मूर्तियों को साकलों से बंधी रखते थे। फिनीशियन लोग भी मेकल्लार्थ की मूर्ति को निरन्तर साकलों से बंधी रखते थे [Anthony s classical dictionary, page 601]

(२) जब भ्रष्ट बुद्धि वाले यहूदियों को उनके कृत्यों का फल मिलनेवाला था तब उनके देवालयों के अदृश्य रक्षक कहने लगे, अब अपने को यहां से बिदा होना चाहिये [Heber's sermons in Eangland p.60]

२. प्रबन्धचिन्तामणिकार ने लिखा है कि उसने पंचशब्दवादकों (बैन्ड बजाने वालों) को कुछ घूस देकर फोड़ लिया था, इसलिये जब शिलादित्य सूर्य के दिये हुये घोडे पर चढकर युद्ध करने के लिये चला तो उन्होंने जोर जोर से बाजे बजाये। बाजों की ध्वनि को सुनकर घोडा चमक गया और सूर्यलोक की ओर उडने लगा। राजा नीचे गिर पडा और घोडा जहां से आया था वहीं चला गया।

म्लेच्छों ने खेल ही खेल में वलभीपुर का नाश कर दिया।

वलभीपुर के नाश के विषय में हिन्दुओं में एक दन्तकथा भी प्रचलित है किन्तु, वह उपरिलिखित जैन वृत्तान्त से बहुत भिन्न है और इतिहासविषयक आधार तो उसमें बिलकुल ही नहीं है। इस दन्तकथा में मैदान के नगरों की बात लाट की स्त्री के मरण की बात के साथ ऐसी मिल गई है कि इसको इस अद्भुत कथा की बदली बदलाई धुंधली छाया के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। हम जानते हैं कि एशिया के प्राचीन व अर्वाचीन लोग भी किसी बात का पता न लगने पर उसे भाग्य पर छोड़ देते हैं। ऐसी चमत्कारिक बातों का इस प्रकार पता लगाने में हिन्दू लोगों को बहुत आनन्द आता है। वे कहते हैं कि पृथ्वी पर बसनेवालों के पापकर्मों के फल से ही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हरी भरी भूमि को उजाड़ देता है और अपनी सम्पत्ति का गर्व करनेवाली वलभी के सैकड़ों वर्षों तक उजाड़ पड़ी रहने का कारण भी यही मान लेना उनके लिए स्वाभाविक कहा जा सकता है।

यह दन्तकथा (१) इस प्रकार है कि धुंडीमल नाम का साधु अपने एक शिष्य के साथ वलभीपुर आया। इस पवित्र पुरुष ने वलभी के पास ही चमारडी नामक स्थान पर ईशावला की पहाड़ियों की तलहटी मे अपना निवासस्थान बनाया। उसका शिष्य नगर में भिक्षा

---

(१) कच्छ माडवी के पास ही रायण ग्राम है और वहीं पास ही मे पाटण है। उसके तथा भद्रावती के नाश के विषय में भी ऐसी ही दन्तकथा प्रचलित है। उसमें साधु का नाम धुधणीमल्ल कहा है।

इस दन्त कथा से मिलती जुलती अवधूत के शाप की बात अनङ्गप्रभा में पृ. १४१ से १४७ तक The Indian Antiquary से उद्धृत करके लिखी है।

लेने गया परन्तु किसी ने कुछ नहीं दिया, तब वह जगल मे गया और लकड़ियाँ काट कर शहर में बेच आया। जो पैसे मिले उनका आटा खरीद लाया, परन्तु उसे रोटी बनाकर कौन दे ? अन्त में, एक कुम्हार की स्त्री ने उसका कार्य कर दिया। इस प्रकार कितने ही दिन बीत गये और प्रतिदिन बोझा उठाने के कारण उसके शिर के बाल उड़ने लग गये। साधु ने इसका कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया "महाराज, इस नगर में कोई भी भिक्षा नहीं देता, इसलिये मुझे नित्य जगल मे जाकर लकड़ियाँ काटनी पड़ती हैं और उनके बेचने से जो कुछ मिलता है उसका आटा लाता हूँ। एक कुम्हार की स्त्री मुझे इसकी रोटियाँ बना देती है। इस परिश्रम के कारण मेरे शिर के बाल उड़ने लग गये।"

इस पर साधु ने कहा 'आज मै स्वय भिक्षा मांगने जाऊँगा।' वह भिक्षा मांगने गया परन्तु कुम्हार की स्त्री के अतिरिक्त किसी ने भी उसे भिक्षा नहीं दी। इस पर साधु बहुत क्रोधित हुआ और अपने शिष्य द्वारा कुम्हार को कहला भेजा "तुम अपने परिवार सहित नगर छोड़ कर चले जाओ। यह नगर आज ही नष्ट हो जायगा।" कुम्हार और उसकी स्त्री अपने लड़के को साथ लेकर वलभी से बाहर चले गये। साधु ने कुम्हार की स्त्री को चेतावनी दे दी थी कि अपने नगर की ओर मुड़कर मत देखना, परन्तु समुद्र के किनारे के पास उस स्थान पर पहुँचते पहुँचते जहाँ आजकल भावनगर बसा हुआ है उसने उस आज्ञा का उल्लंघन करके वलभी की ओर देख लिया। उसी क्षण वह पाषाण की मूर्ति में बदल गई और आज तक रूवापुरी माता के नाम से पूजी जाती है।

उधर उस साधु ने अपने कमण्डलु को उलट कर कहा 'नगर ! तू नष्ट हो जा और तेरी धन सम्पत्ति धूल मे मिल जाय।" इतना कहते ही वलभी नष्ट हो गई।

आधुनिक वला नगर के पश्चिम तथा उत्तर की ओर पीलू के वृक्षों का एक विशाल जगल है। इसके आर पार सभी ओर कितने ही रास्ते हैं। यहाँ से वलभीपुर के खडहरों का मुख्यभाग साफ दिखाई देता है। इमारते बनवाने के लिये जो लोग मिट्टी, पत्थर आदि ढूंढने के लिये वहाँ जाते है उन्होंने कुछ खड्डे बना दिये हे जिनमें बहुत सी दीवारों के अवशेप साफ दिखाई देते है जो लगभग साढ़े चार फीट चौडे है और पकी हुई ईटों तथा चूने के बने हुये हैं। कितने ही खड्डों ने गहरी खानों का रूप ले लिया है और उनमे से खारी पानी निकलता है। कहते है कि वलभी के चारों ओर तीन चार मील तक इसी तरह की ईटों की बनी हुई दीवारे पाई जाती हैं। ये ईटे १६ इंच लम्बी, १० इन्च चौडी और ३ इन्च मोटी है।

इस पीलू के जङ्गल के पास ही गैलो नाम की एक नदी बहती है जिसका पानी वर्षा ऋतु में बाढ़ आने के कारण सारे जङ्गल में फैल जाता है और जैसे जैसे यह अपना मार्ग बदलती है वैसे ही नष्ट हुई वलभी के खंडहर प्रगट होते जाते हैं। वर्षा ऋतु मे इकट्ठे हुये पानी के पोखरों से इस मैदान में इधर उधर बहनेवाले छोटे छोटे स्त्रोत भी इसके इस कार्य में सहायक बन जाते हैं।

नष्ट वलभीपुर के उत्तर की ओर एक विशाल कुंड है जो "घोरार दमन" कहलाता है। नैऋत्य कोण में एक विस्तीर्ण सपाट मैदान है जो जाड़े के दिनों में गेहूँ की हरी हरी फसलों से आच्छन्न रहता है।

यह स्थान 'रतन तालाब' के नाम से प्रसिद्ध है और कहीं कहीं पर इसकी पाल (किनारा) अब भी दिखाई दे जाती है।

पीलू के पेड़ों से ढके हुए भागों मे वलभी के चारों ओर काले पत्थरों की बनी हुई शिवजी तथा उनके नन्दी बैलों की कितनी ही मूर्तियाँ पाई जाती हैं। ये मूर्तियाँ आकार में बहुत बड़ी बड़ी है और जमीन की सतह से ऊपर बने हुए चबूतरों पर स्थापित हैं। ये चबूतरे प्रायः देवालय के आँगनों में ही बने मालूम होते है। इससे यह विदित होता है कि यह नगर पृथ्वी मे धँसका नही था। प्राय· शिवलिगों को तो कोई हानि नहीं पहुँची है परन्तु उनके साथ के नन्दी बैल खंडित हुये बिना नहीं रह सके हैं। एक ग्यानिट पाषाण की बनी हुई नन्दी की विशाल मूर्ति है जिसके शिर नहीं है और शरीर में चीरा है। यह नन्दी भूतेश्वर.महादेव [१] के लिग के पास रक्खा हुआ है। जितने भी शिवलिगों का पता चला है उन सब का ब्राह्मणों ने कुछ न कुछ नाम रख दिया है, जैसे बैजनाथ, रत्नेश्वर ईश्वरिया महादेव इत्यादि। नन्दी की मूर्तियों की बनावट सुन्दर है और आधुनिक मूर्तियों से भिन्न है। वे बैठे हुए बैलों की सुन्दर मूर्तियाँ हैं।

कर्नल टॉड के मतानुसार सन् १४४ अथवा १४५ ई० में सूर्यवंशी राजा कनकसेन कोसलराज्य की राजधानी अयोध्या को, जहाँ राजा श्रीरामचन्द्रजी ने राज्य किया, छोड़ कर प्रसिद्ध बैराट में जा बसा था जहाँ वनवास के समय पाण्डवों ने निवास किया था। कुछ लोगों

---

(१) वला के पास वाले शिवलिङ्ग की बनावट लगभग आधुनिक देवालयों में प्रतिष्ठित शिवलिङ्गों जैसी ही है परन्तु वे आकार मे कुछ बडी और ग्यानिट के एक ही पत्थर में खोद कर बनाई हुई है। मूर्ति २फीट ऊँची तथा जलहरी ३फीट ऊँची एवं ८फीट परिधिवाली होती है। इनमें से बहुत सी चतुष्कोण, अष्टकोण और फिर गोलाकार होती हैं।

की ऐसी धारणा है कि इस स्थान पर आजकल धोलका [१] नामक नगर बसा हुआ है। कनकसेन ने परमारवंशीय राजा से राज्य छीन कर नगर की स्थापना की थी। चार सौ वर्ष पश्चात् इसी के वंशज विजय [२] ने बीजापुर और विदर्भ नाम के नगर बसाये। इनमें से विदर्भ आगे चल कर "सीहोर" कहलाने लगा। इसी वंश के लोगों ने प्रख्यात वलभी नगर को बसाया तथा आधुनिक खंभात के पास गजनी शहर की स्थापना की परन्तु वलभी [३] के नाश के साथ ही वह भी नष्ट हो गया।

यही ग्रन्थकार अन्यत्र इस प्रकार लिखता है कि कनकसेन ने सौराष्ट्र मे जाकर "ढॉक" को, जो प्राचीन काल मे मूँगीपट्टन के नाम से प्रसिद्ध था, अपना निवासस्थान बनाया और वालखेतर प्रान्त (जो आजकल भी भाल नाम से प्रसिद्ध है) जीत लिया, इसीलिए उसके वंशज वाल राजपूत कहलाने लगे।

वलभी का नाश होने पर यहाँ के कुछ निवासी तो "बाली" नामक जैन शहर मे, जो मेवाड और मारवाड़ की सीमा पर है, जा बसे और दूसरे मारवाड प्रान्त के सॉडेरा और नॉडोल नगरों में चले गये। [४] जिन जैन ग्रन्थकारों के लेखों को हमने उद्धृत किया है

(१) कच्छ में वागड नामक स्थान है जहाँ पर गेडी (घृतपदी) ग्राम है, तथा विहार प्रान्त में दीनाजपुर और रंगपुर गाँव है, जयपुर के पास में बैराठ और धारवाड मे हनगल ये सब विराट नगर कहलाते हैं।

(२) देखो "वलभीपुर का इतिहास"

(३) Annals of Rajasthan (Book I) के पृष्ठ ८३ तथा २१५ से २१८ तक

(४) Western India नामक पुस्तक के पृ० ५१, १४८, २६८, ३५२, तथा Rajasthan, Book I पृ० २१७, (टाडकृत Western India का हिन्दी अनुवाद शीघ्र प्रकाशित होगा,) (प्रकाशक)

वे वलभी के नाश का समय विक्रमीय सवत् ३७५ (३१९ ई०) मानते हैं। इस सवत् से "वलभी सवत्सर" [१] चला था और इन ग्रन्थकारो ने वलभी-नाश के समय को और इस नगर के नाम से प्रचलित सवत् के आरम्भ के समय को एक कर दिया हो ऐसा सभव प्रतीत होता है। "शत्रुञ्जय माहात्म्य" से पता चलता है कि पालीताना के मन्दिरों का जीर्णोद्धार करानेवाला शिलादित्य नामक राजा विक्रमीय सवत् ४७७ (४२१ ई०) में गद्दी पर बैठा था। वलभी में जितने राजा हुए है उनकी भिन्न भिन्न सूचियाँ ताम्रपत्रों [२] के आधार पर तैयार की गई है। इन सूचियों से पता चलता है कि वलभी में शिलादित्य नाम के चार राजा हुए थे। यहाँ के सब राजाओं में से अठारह राजाओं के नाम दिये हुए हैं जिनमे से पहले दो के नाम के साथ "सेनापति" की पदवी लिखी हुई है। इससे यह कल्पना की जाती है कि वे उज्जैन [३] के परमार राजाओं के आश्रित थे। बाकी सोलह राजाओं के नाम के साथ "महाराज" लिखा हुआ है। वे "श्री भट्टारक" भी कहलाते थे और यह भी ज्ञात होता है कि उनमें से अधिकतर महेश्वर (शिव) के भक्त थे क्योंकि उनकी राजमुद्रा और झण्डे पर शिवजी के बैल नन्दी का चित्र बना हुआ है और नष्ट हुई वलभी के खंडहरों में पाए गए शिवलिंग भी इस ओर ध्यान आकृष्ट किए बिना नहीं

---

(१) टॉड कृत Western India (Text) पृ० ५०६ में विलावल का लेख (इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद शीघ्र प्रकाशित होगा)

(२) देखिये बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल ४ का पृ० ४७७ तथा इसी की पुस्तक ७वीं का पृ० ९६६ बंबई एशियाटिक सोसायटी जर्नल ३ का पृ० २१३ इत्यादि।

(३) इस स्थान पर कल्याण के सोलकियों का होना अधिक संभव प्रतीत होता है।

रहते। इन लेखों द्वारा अनुमान से प्राप्त हुआ समय सन् ५४४ ई० से ५५६ ई० तक का है। इनमे सब से अंतिम तिथि को ही वलभी के नाश का ठीक ठीक समय मान लेने से यह घटना बहुत ही पीछे चली जायगी। चीन के भारतीय वृत्तान्तों से पता चलता है कि टॉक वशीय राजाओं के राज्य मे सन् ६१८ से ६२७ ई० तक भारतवर्ष मे बहुत लड़ाई झगड़े रहे। राजा (शिलादित्य ?) ने बहुत सी लडाइयॉ लडी। व्हयुआन सॉग नामक चीनी बौद्ध साधु, जिसने अपनी यात्रा का वृत्तान्त लिखा है, इसी समय भारतवर्ष पहुँचा था और शिलादित्य से मिला था [१]

मॉशिये जैक्विट ने फ्रैंच भाषा मे इस वृत्तान्त [२] के विषय मे लिखा है कि वलभी देश लारिस (लाट) के उत्तर मे है और उसका विस्तार ६००० लीग (१३००मील) है। इस देश की राजधानी का विस्तार ३० लीग (५ मील) से भी अधिक है। इस देश का जलवायु उपज और यहां के निवासियों की रीति भॉति तथा शरीर की प्रकृति मालवा [३] देश के समान ही है। यहाँ की जनसख्या घनी है और कुटुंब द्रव्यवान् हैं। अत्यन्त दूरदेशों से विशाल सम्पत्ति आकर इस

(१) रायल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल की पुस्तक छठी का पृ० ३५१

(२) चीन के एक बौद्ध साधु ने ६३२ई० तथा इसके बाद के वर्षों मे ट्रान्सोक्सियाना बैक्ट्रिया तथा इन्डिया की यात्रा की थी, उसी के लिखे हुए वृतान्त में से बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने वलभी विषयक वर्णन लेकर अपने जर्नल की पॉचवी पुस्तक के पृ० ६५८ मे छपाया है। यह उसी के आधार पर यहॉ लिखा गया है केवल सूचनार्थ नामो में हेर फेर किया गया है।

(३) (I) वलभी के आस पास का प्रदेश भादोद और गोहिलवाडा, यह सब भाग प्राचीन वालार्क क्षेत्र में सम्मिलित थे।

(II) मालवा का प्राचीन नाम अवंति देश है।

राज्य में इकट्ठी होती है। यहाँ सौ से भी अधिक संघाराम (बौद्धमठ) दिखाई पड़ते हैं और बौद्ध साधुओं की सख्या छः हजार से भी अधिक है। इनमें से अधिक "हीनयान" सम्बन्धी सम्मतीय सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। यहाँ सैंकड़ों देव मंदिर हैं और साधुओं की संख्या भी बहुत अधिक है। भगवान् बुद्ध जब मृत्युलोक में थे (ईसा से पूर्व ५६० से ४८०) तब प्रायः इस देश मे आया करते थे और सम्राट् अशोक ने (ईसा से २८० पूर्व) उन वृक्षों की छाया में, जहाँ उन्होंने विश्राम किया था, पहचान के लिये स्तूप खड़े करवा दिये हैं। यह राज्य क्षत्रियों के अधिकार में है।

भूतपूर्व राजा मालवा देश के शासक शिलादित्य का भतीजा था और वर्त्तमान राजा कन्नौज (कान्यकुब्ज) देश के शासक शिलादित्य का जामाता है। इसका नाम द्रौवभट (ध्रुवपटु अथवा ध्रुवभद्र) है।

मा० जैक्विट के मत से यह द्रौवभट वलभी के राजवंश का ग्यारहवाँ राजा ध्रुवसेन द्वितीय था। इस प्रकार शिलादित्य चतुर्थ [३] का राज्यकाल, जिसके समय में वलभी का नाश हुआ था (यदि प्रत्येक राजा का समय २० वर्ष गिना जाय तो), अधिक से अधिक ७७०ई० सन् ठहरता है, परन्तु मिस्टर थाथन के अनुमान से यह समय दो शताब्दी पहले था।

"राजस्थान" के लेखक का मत है कि जिन म्लेच्छों ने वलभी पर चढ़ाई की थी वे सीथियन लोग थे। मिस्टर थाथन का कथन है कि वे "बैक्ट्रो–इण्डियन" जाति के लोग थे, जिनके बहुत से सिक्के सोरठ में मिले हैं। मिस्टर एलफिन्स्टन के विचार से वे लोग नौशेरवाँ महान्

---

(३) छठा शिलादित्य ध्रुवभट कहलाता था। गुप्त स० ४४१ (ई० स० ७६०)

की अभ्यर्थना में आये हुये पारसी थे। यदि यह न लिखा होता कि वलभी पर आक्रमण करने वाले म्लेच्छ अथवा अहिन्दू थे तो हम यह अनुमान कर लेते कि सोरठ में अपनी सत्ता फिर से स्थापित करने का प्रयत्न करने वाले दक्षिण में "कल्याण" के सोलकियों ने ही वलभी का नाश किया था। वलभी के नाश के समय का ठीक ठीक पता लगाने में इतनी बात अनिश्चित रह जाती है कि इसको नष्ट करने वाले लोग किस जाति के थे? इस विषय में जो कल्पनाएं की जाती हैं उनके लिये कोई दृढ आधार नहीं मिलता। हिन्दुस्तान के इस भागमें राज करने वाला अनहिलपुर के चावड़ा राजपूतों का एक और भी वश था। कहते हैं कि अनहिलपुर राजधानी की स्थापना ईस्वीय सन् ७४६ मे हुई थी।

अब जो वृत्तांत लिखा जायगा उससे विदित होगा कि चावड़ों की राजधानी की नींव वलभी के नाश के बहुत पीछे नहीं पड़ी थी।

प्रकरण २

जयशेखर चावड़ा—पञ्चासर का राजा

कच्छ के रण के पास पंचासर है। हम पढ़ चुके हैं कि वलभी से श्रीमल्ल सूरि और दूसरे लोग भाग कर यहाँ आये थे। अब हम "रत्नमाला" [१] नाम की पुस्तक के आधार पर वहीं से अपनी कथा आरम्भ करते हैं। यह ग्रन्थ कृष्णाजी नामक ब्राह्मण ने गुजरात के महान् सिंह राजा [२] की प्रशसा में लिखा है। कवि लिखता है :—

"सोलंकी वंश की कीर्ति बहुत है। यह देवताओं का वंश है, सिद्धराज इसमें एक कुलदीपक हो गया है।"

वह कहता है:—"मै जिस मार्ग पर चल रहा हूँ वह मेरे पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं से सरल हो गया है और जिन मोतियों को पिरोने के लिए मैं उद्यत हुआ हूँ वे उनकी हीरे जैसे बुद्धि से पहले ही विध चुके हैं। यह केवल वाग्देवता (सरस्वती) का ही प्रताप है कि मै इस वीर राजा की प्रशंसा करने में समर्थ हुआ हूँ।"

उसने जिन शब्दों में आत्मप्रशंसा की है उनसे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि अन्य कवियों की प्रशंसा करने में वह जितना ही उदार था उतना ही अपने गुणों से भी सुपरिचित था।

---

(१) "रत्न माला" मेरुतुंग रचित "प्रबन्धचिन्तामणि" के आधार पर लिखा हुआ एक पद्यात्मक ऐतिहासिक ग्रन्थ है यह सन् १२३० ई० मे रचा गया था।

(२) सिद्धराज जयसिंह।

"जिस मनुष्य ने समुद्र में स्नान कर लिया उसने सभी तीर्थों में मज्जन कर लिया। जिसने अमृतपान कर लिया उसे और भोजन की आवश्यकता नहीं; जिसके पास पारस मणि है, उसे सभी धन प्राप्त हैं; इसी प्रकार जिसने रत्नमाला का अध्ययन कर लिया उसने सभी ग्रन्थ पढ़ लिए।"

"जिस प्रकार संगमर्मर का बना हुआ सुन्दर जलाशय जल के बिना सुशोभित नहीं होता, विशाल देदीप्यमान मंदिर शिखर के बिना सुन्दर नहीं लगता उसी प्रकार किसी मनुष्य का अगाध पाण्डित्य 'रत्नमाला' के अध्ययन बिना अपूर्ण है।"

हमें खेद है कि इस अमूल्य रत्नमाला के १०८ रत्नों में से केवल आठ रत्न ही प्राप्त हैं।

विक्रमीय संवत् ७५२ अथवा ६९६ ई० में कल्याण [१] नगर में सोलंकी वंश का भूवड़ राजा राज्य करता था। उसके सोलह सामन्त थे जिनको वह निरन्तर अपने पास रखता था। वे राजभक्त, राजा की बढ़ती के प्रेमी, युद्ध में पीठ न दिखाने वाले और आकाश के स्तम्भों के समान अडिग थे। उनके नाम निम्न लिखित पद्य में दिये हुये हैं।

'चंद, द्रद, भट, वेद, वीर, सिंह, सिन्धु, गिरि, धीर,
सामत, धीमत, धन्वि, पट, भीम, महारथी, मिहिर।'

इनमें मिहिर मुख्य था। वह कभी किसी भी काम पर बाहर नहीं भेजा जाता था। बाकी सब सामन्त विजययात्रा के लिये उत्तर, दक्षिण,

(१) प्रबन्धचिन्तामणि" कार मेरुतुंग ने लिखा है कि "कल्याण" कटक नगर में राजा भूदेव (भूय, भूवड, अथवा भूयड) राज्य करता था और "कुमारपाल चरित" में भी इसी का अनुसरण किया गया है। अन्य इतिहास ग्रन्थों में भी यह नगर दक्षिण में ही माना गया है।

पूर्व, पश्चिम सभी दिशाओं में जाया करते थे। आस पास के सभी राजाओं में भूवड़ की धाक जमी हुई थी, केवल एक गुजरात का राजा ही बच रहा था कि जिस पर उसने विजय प्राप्त नहीं की थी।

यह गुजरात का राजा चावड़ा वंश का था और उसका नाम जयशेखर तथा उसकी स्त्री का नाम रूपसुन्दरी था। पंचासर उसकी राजधानी थी और वह स्वयं बलवान्, तेजस्वी और बुद्धिमान् राजा था। उसका भण्डार अटूट और सेना असंख्य थी। इस राजा की सत्ता के विषय में भूवड़ को उसके सामन्तों ने अन्धकार में रखा और वह अपने को समस्त पृथ्वी का स्वामी मानने लगा।

विजित शत्रुओं की लूटी हुई सम्पत्ति, ऊँटों घोड़ों, रथों और हाथियों से राजधानी "कल्याण" भर गई थी। वहाँ जौहरी, जुलाहे, रथ बननेवाले और सुनार आदि सभी लोग बसते थे और भवनों की भित्तियाँ चित्र विचित्र रंगों से चित्रित थी। वैद्यों, कारीगरों तथा गवैयों की संख्या बहुत थी। सार्वजनिक शिक्षा के लिये पाठशालाय खुली हुई थीं। भगवान् सूर्य छः मास उत्तर में रहते हैं और छः मास दक्षिण में, इसका कारण केवल यही जान पड़ता है कि वे इतने समय तक लंका की राजधानी की तुलना "कल्याण" से करते रहते हैं। [१]

अन्य सभी सद्‌गुणों के साथ भूवड़ में सभी अच्छी बातों की चाह थी, विशेष कर विद्या की। मुख्यतया, एक आदर्श हिन्दू राजा के समान व्याकरण और काव्यशास्त्र का तो वह महान् पोषक था। उसके आश्रय में विद्वान् लोग इतने उत्साहित होते थे कि सभी कलाऐं उसके दरबार की ओर इस प्रकार दौड़ी आती थी जैसे वर्षा ऋतु में नदियाँ समुद्र की ओर प्रधावित होती हैं।

(१) इससे विदित होता है कि कल्याण पुरी (कन्नौज देश में) उत्तर में थी।

एक दिन राजा अपने बाग में बैठा था और नृत्य गीत आदि का आनन्द ले रहा था। यह बाग शिवजी के कैलाश के समान सुन्दर था और बहुत से सुगन्धित फूलों तथा फलोंवाले वृक्षों से सुशोभित था। युवराज कर्ण उसके पास ही दरबारी पोशाक पहने हुये विराजमान था और चन्द आदि सामन्तों से सभा सुशोभित थी। विद्या और बुद्धि में एक से एक बढ़े चढ़े विद्वानों की मण्डली भी उस समय उपस्थित थी। इन विद्वानों में सबसे श्रेष्ठ कवीश्वर कामराज था जो राजा का मित्र था और कवियों मे उसी प्रकार शोभा पाता था जिस प्रकार राजा भवड योद्धाओं में।

उसी समय दरबार में उपस्थित होकर एक विदेशी कवि ने राजा भूवड़ की प्रशसा में लिखे हुये कवित्तों की एक माला भेंट की। उसकी प्रतिभा से राजा बहुत प्रभावित हुआ और अपनी सभा के कवियों को बुला कर उसकी कविता के उत्तर में कविता पढ़ने की आज्ञा दी परन्तु उनमें से किसी ने भी साहस न किया। राजा ने उस कवि का सम्मान करके शिरोपाव दिया और पूछा कि आपका नाम क्या है और जिस देश मे आप अब तक गुप्त रहे, उसका नाम क्या है ?

कवि ने उत्तर दिया "मेरा नाम शंकर है और मै गुजरात देश से आया हूँ। गुजरात पृथ्वी का सर्वोत्कृष्ट भाग है। वहाँ की भूमि उपजाऊ है और पानी, घास तथा वृक्षों से शोभायमान है। वहाँ धन अटूट है और मनुष्य उदार हैं।

"पचासर में समुद्र की पुत्री लक्ष्मी निरन्तर निवास करती है और वह नगरी इन्द्रपुरी से किसी बात मे कम नहीं है इसीलिये वहाँ के निवासी कभी स्वर्ग में जाने की इच्छा नहीं करते।

"अग्रगण्य चावड़ा वंशीय राजा वहाँ पर राज करता है। उसने

अपने पराक्रम से यश का इतना विशाल पर्वत खड़ा कर दिया है कि कवि लोग उसको "जयशेखर" कहने लगे हैं। अनुपम सुन्दरी रूपसुन्दरी उसकी पटरानी है जिसका भाई शूरपाल महान् पंडित और शूरवीर है। जयशेखर और शूरपाल यदि चाहें तो इन्द्र को भी इन्द्रासन से उतार दें परन्तु उन्हे इसकी इच्छा नही है क्योंकि उनका राज्य गुजरात ही समस्त पृथ्वी का तत्व है।

"वहाँ साक्षात सरस्वती निवास करती है और वहीं मैंने यह विद्या प्राप्त की है। अब, वहीं से मै दिग्विजय करने को निकला हूँ।"

गुजरात का वर्णन सुन कर राजा भूवड़ ने अपनी मूछों पर हाथ फेरा। कामराज राजा के मन की बात जान गया और शंकर से काव्य विवाद करने लगा परन्तु बुरी तरह हारा। शंकर ने उसे स्मरण कराया कि शंकर (शिवजी) तो काम (कामदेव) के सदा से विजेता हैं ही।"

राजा उस दिन के विनोद से कुछ खिन्न सा होकर महलों में चला गया। सध्या समय उसने अपने सामन्तों को बुलाया और गुजरात के विषय मे और भी अधिक वृत्तान्त जानने की इच्छा प्रकट की। उपस्थित सामन्तों ने झूठ मूठ ही राजा को बहकाने के लिए कह दिया कि "उन लोगों ने जयशेखर को परास्त करके पंचासर ले लिया था परन्तु राजा के आत्म समर्पण कर देने पर उसको नष्ट नहीं किया।"

यह बात राजा के गले न उतरी और उसने चद को सच्चा सच्चा वृत्तान्त कहने के लिए बाध्य किया। उसके द्वारा विदित हुआ कि अर्बुद गिरि अथवा आबू पहाड़ से दक्षिण की ओर जाते समय "कल्याण" के योद्धाओं की शूरपाल के साथ उसके बहनोई की फौज थी। कल्याण के सामन्तों ने उसके साथ भिड़ना टेढ़ी खीर समझ कर

आड़े मार्ग से सोरठ का रास्ता लिया। यह बात सुन कर राजा भूवड़ ने तुरन्त सेना सजाने की आज्ञा दी। उसकी आज्ञानुसार सेना तैयार हो गई और जयशेखर पर चढ़ाई करने के लिये प्रयाण हुआ। चलते समय अपशकुन हुये परन्तु राजा की आज्ञा का उल्लङ्घन करने का किसी को साहस न हुआ।

इसी बीच में शङ्कर कवि अपने घर पहुँच गया था और उसने अपने राजा को सारा वृत्तान्त कह सुनाया था। जयशेखर युद्धप्रिय राजा था, इसलिए युद्ध का अवसर जानकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने सामन्तों को कुंडल, कवच और अन्यान्य अलङ्कारों से विभूषित करने लगा।

उधर राजा भूवड़ की सेना बढ़ती चली आ रही थी। उसमें असख्य हाथी, घोड़े तथा चार हजार रथ थे। शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित घुड़सवार और पैदलों का कोई पार न था। जिन गावों मे होकर सेना आई वे ऊजड़ होते चले गये और जिन्होंने सामना किया उन पर छापा मार कर वे लूट लिये गये। जिधर से यह आक्रमणकारी सेना निकल गई उधर ही यह दशा हुई कि जहाँ पानी था वहाँ पानी न रहा और जो स्थान सूखे थे वे नमदार हो गये। जहाँ भी पड़ाव पड़ता वहीं फौजें मल्ल विद्या तथा शस्त्रास्त्रों का अभ्यास करतीं। अन्त में, वे शत्रु के देश के समीप जा पहुँचे और सीमा पर एक शहर को लूट कर पचासर से छः मील की दूरी पर पडाव डाल दिया। वहीं से वे आस पास के गांवों को लूटने लगे और स्त्री पुरुषों को वन्दी बना कर ले जाने लगे।

जयशेखर ने जब यह बात सुनी तो उसके क्रोध का पार न रहा और उसने आक्रमणकारी सेना के अधिपति मिहिर को एक पत्र लिखा जिसमें गरीब लोगों पर जोर जुल्म करने के विषय में बहुत सी डाँट डपट बताई। उसने लिखा "इस तरह निन्दनीय कार्य करना शूरवीरों

को शोभा नहीं देता। तू उस कुत्ते के समान है जिसकी ओर पत्थर फैंकने पर वह पत्थर फैंकने वाले को तो कुछ न कहे और पत्थर ही को काटने लगे।" मिहिर ने उत्तर लिखा "मुँह में घास लेकर राजा भूवड़ की शरण में आ जाओ वरना लड़ाई की तैयारी करो।" जयशेखर ने यह उत्तर पाते ही अपने भाई बन्धुओं को बुलाया और दूसरे ही दिन लड़ाई के लिये तैयार हो गया।

जिस समय मिहिर का उत्तर आया था उस समय शूरपाल उपस्थित नहीं था। उसने राजा को बिना कुछ कहे सुने ही रात को शत्रु पर अचानक टूट पड़ने का निश्चय कर लिया। परिस्थिति उसके अनुकूल पड़ी और उसने शत्रु को बिलकुल असज्ज पाया। उनमे से कुछ तो आस पास के गाँवों को लूटने चले गये थे कुछ खाने पीने में लगे हुये थे, कुछ सो रहे थे और कुछ नाच गान में मस्त थे। शूरपाल के साथी हाथों में तलवारें लिए उन पर टूट पड़े और जिस प्रकार घास काटने वाले को घास काटने में विशेष मेहनत नहीं पड़ती उसी प्रकार शत्रुओं को काट डालने में उन्हें अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता न पडी। चंद स्वय शूरपाल के हाथों मारा गया और द्वंद बुरी तरह घायल हुआ। जिस प्रकार मृगों के झुण्ड पर जब सिह टूट पड़ता है तो वे तितर बितर होकर भाग जाते हैं उसी प्रकार मिहिर की सेना में भगदड मच गई और बड़ी घबराहट के साथ लोग इधर उधर भाग गये।

द्वंद के घाव भयानक थे अतः वह वापस लौटते हुए रास्ते में ही चल बसा। वेद, जो परमार राजा (भूवड़) का सम्बन्धी था, इस अपमान से क्षुभित होकर अपने सैनिक वेष को छोड कर काशी चला गया सेनापति मिहिर ने अपने मुख में कालिख लगी जान कर लौटती हुई सेना को राजधानी से आठ दिन के मार्ग की दूरी पर ही

रोक कर पड़ाव डाल दिया। राजा भूवड ने जब इस पराजय का हाल सुना तो वह स्वय मिहिर की छावनी में गया और लौट कर आई हुई सेना की इस प्रकार हिम्मत बढ़ाने लगा "एक बार हार होना दूसरी बार जीत की निशानी है। तुम जानते हो कि हाथ में लिये हुए शस्त्र को जब तक एक बार पीछे न ले जाया जाय तब तक वार ठीक ठीक नहीं बैठता।" राजा भूवड अपने सिपाहियों को उत्साहित करने में सफल हुआ और उसने युद्ध के विषय में परामर्श करने के लिए अपने सामन्तों की एक सभा बुलाई। सभा में निश्चय हुआ कि स्वय राजा की अध्यक्षता में गुजरात पर तत्काल आक्रमण करने के लिए फौजे प्रस्थान करें। प्रस्थान करते ही उन्हें शुभ शकुन हुये और बाजों, रणसींगों और दुन्दुभि के घोर नाद से आकाश गूंज उठा।

सेना के पहुँचने पर जयशेखर पंचासर के दरवाजों को बंद करके अन्दर बैठ गया और राजा भूवड ने नगर के चारों ओर घेरा डाल लिया। पहले आक्रमण में शूरपाल ने मिहिर को पीछे हटा दिया। पंचासर के राजा ने अपने योद्धाओं को इकट्ठा करके कहा "जिनको अपने प्राण प्यारे हैं वे सुख से वापस घर चले जाँय।" परन्तु सबने एक स्वर से उत्तर दिया "हम उच्चकुल के शुद्ध राजपूत हैं और तुम्हारे साथ मरने को तैयार हैं। इस विपत्ति में जो कोई पीठ दिखायगा उसका मांस कौवे खावेंगे अथवा वह एक कल्प तक नरक में निवास करेगा।" बावन दिन तक लगातार हमले करने पर भी जब कोई फल न निकला, तो राजा भूवड़ ने मिहिर को दरबार में बुलाया। उसने सलाह दी कि इस अवसर पर शूरपाल को फोड़ना चाहिए। आकडे के दूध से एक पत्र लिख कर शूरपाल के पास भेजा गया, जिसको कुंकुम लगा कर उसने पढ़ा। उसने राजा भूवड़ की बात को स्वीकार नहीं किया और लिख दिया

"एक वार दूध से मिला हुआ पानी उससे अलग नहीं हो सकता इसी प्रकार मैं भी जयशेखर से दूर नहीं हो सकता। मूर्खराज! मै ऊँचे कुल में उत्पन्न हुआ हूँ मुझसे ऐसी आशा ही तुमने क्यों की? यदि त्रिलोकी का राज्य भी मिलता हो तो वर्णसंकर के अतिरिक्त और कोई ऐसा काम करने को उद्यत न होगा।"

रात के समय दोनों ही राजा अपनी अपनी सेना के शूरवीरों को उत्तेजित करने तथा स्वय युद्ध की रीतियों के जानने के लिए महाभारत के पद्य गवाया करते थे। भीम के अद्‌भुत पराक्रम की कथा सुन सुन कर गुजरात के वीर वहुत उत्तेजित हो जाते थे और कहते थे कि रात्रि का अन्त कब होगा और कब प्रातःकाल आवेगा जब कि हम लडेंगे।

"जिस प्रकार कोई वियोगिनी अपने पति की बाट देखती है उसी प्रकार वे सुभट अधीर होकर प्रातःकाल की प्रतीक्षा किया करते थे। उन्होंने महाभारत में पढ़ा था "जो रणस्थल में प्राण त्याग करते हैं उन्हे स्वर्ग में अप्सराये वरण करती हैं।" इसलिए वे इस मिट्टी धूल के घर को छोड़ कर स्वर्ग को प्राप्त करने की इच्छा करते थे। सूर्योदय होते ही जयशेखर की आज्ञा से वे युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते थे। युद्ध से विजयी होकर लौटने की उन्हे आशा नहीं थी वरन् लड़ने, मरने और अप्सराओं को वरण करने के लिए उनकी इच्छा अधिक प्रवल थी। उन वीरों के इस निश्चय को देख कर अप्सरायें उन्हें वरने को तैयार हो रही थीं। "ज्योंही वे वीर कवच धारण करते थे, त्योंही अप्सरायें शृङ्गार करके तैयार हो जाती थीं, ज्योंही वे योद्धा अपने शस्त्र ग्रहण करते थे, त्योंही वे (अप्सराये) अपने हाथों में वरमाला लेकर इधर उधर हिलाती थीं, जैसे जैसे योद्धा लोग अपने घोड़ों की वागडोर खींचते थे, वैसे ही अप्सराये अपने रथों को आगे बढाती थीं।"

रूपसुन्दरी ने अन्तः पुर मे युद्ध का भयङ्कर शब्द सुना और अपने स्वामी को बुला कर विनती की "हे स्वामी ! जब तक शकुन अनुकूल न हो तब तक आप रणक्षेत्र पर न पधारें"। परन्तु जयशेखर ने उत्तर दिया "कन्या के विवाह के समय तथा जब शत्रु द्वार पर आ पहुँचा हो तब शकुन का विचार नहीं करना चाहिए वरन् श्री कृष्ण का नाम ही लेना चाहिए।" यह कह कर उसने रानी का समाधान किया। वर्षा ऋतु मे जब घटाये घिर आती है और बिजलियाँ चमकती हैं उस समय जिस प्रकार एक बादल दूसरे बादल से टकराता है उसी प्रकार दोनों सेनाये एक दूसरी से भिड़ने लगीं। उनके शस्त्र बिजली की तरह चमकते थे, उनके पैरों से पृथ्वी बादल की गर्जना के समान थर्राती थी। रण-वाद्यों को सुन कर कायरों मे भी शूरता जाग उठती थी। वर्षा ऋतु मे जिस प्रकार पानी की बौछारे पड़ती हैं उसी प्रकार यहाँ शस्त्रास्त्रों की वर्षा हो रही थी। वे हल, मुशल और फरसियों से लड़ने लगे, हाथी हाथियों से, घोड़े घोड़ों से और रथी रथियों से भिडने लगे। रक्त की नदी में योद्धाओं के मृत शरीर बहने लगे और जैसे जैसे युद्ध का शब्द घोर होता जाता था, वैसे ही लोग अधिकाधिक अट्टहास करते थे। जो लोग हिम्मत हार जाते थे उनको भाट लोग इस प्रकार उत्साहित करते थे "वीर-पुत्रो ! तुम धन्य हो, इस सग्राम रूपी तीर्थ में, जो तुम्हे बार बार न मिल सकेगा, विश्वव्यापिनी ख्याति, स्वर्ग और देवताओं के मुख से प्रशसा प्राप्त करो और अमर हो जाओ।"

युद्ध का घोर रव आकाश में पहुँचा और देवताओं का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ। वे आपस में कहने लगे "क्या कुरुक्षेत्र में फिर युद्ध छिड़ गया है ?" अप्सरायें नृत्य करने लगीं। गंधर्व अपने वाद्य-यन्त्र बजाने लगे और पाताल लोक के नाग तथा देवता काँपने लगे। रण-

भूमि मे आकर शिवजी घूमने लगे और कभी पूरी न होने वाली अपनी मुण्डमाला में शूरवीरों के मुण्ड ले ले कर पिरोने लगे, योगिनियाँ और अन्यान्य माँसभक्षी, हाथ में खप्पर लेकर उनको रक्त से भरने लगे तथा गिद्धों की भाँति रणस्थल पर एकत्रित होने लगे।

शूरपाल ने अपनी चिरपरिचित शूरता से भट की सेना को पीछे हटा दिया। परन्तु पीछे हटे हुये लोगों को धिक्कारते हुये स्वय राजा भूवड़ ने कहा "जो लोग रण से पीठ दिखा कर आये हैं वे मेरे हाथ से मारे जावेंगे। प्राणों पर खेल कर भट शत्रुसेना पर टूट पड़ा और बहुत से योद्धाओं को मार गिराया परन्तु उसके ऊपर बाणों की निरन्तर वर्षा होने लगी और अन्त में वह शूरपाल के हाथों बुरी तरह घायल हुआ। भट के इस जी तोड़ पराक्रम का फल अन्त में मिल ही गया क्योंकि उसकी सेना जयशेखर की सेना को हटाने में सफल हुई और उसने पश्चिम की ओर डटकर किले को तोड़ दिया।

जब जयशेखर ने देखा कि इस घमासान युद्ध में उसके बहुत से योद्धा मारे गये और विजय की कोई आशा नहीं है तो उसने शूरपाल को बुला कर कहा "तुम अपनी गर्भवती बहन रूपसुन्दरी को किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाओ जिससे मेरे वंश के बीज की रक्षा हो।" शूरपाल ने पहले तो ना कर दी परन्तु राजा ने अपनी शपथ दिलाकर उससे कहा "तुम मेरे लिये इतना सा काम करो, मेरे वश में कोई भी श्राद्ध करने वाला नहीं है इसलिए मैं और मेरे पूर्वज मोक्ष न पा सकेंगे क्योंकि पुत्रहीन की मोक्ष नहीं होती। मेरे भाई! शत्रु अब निष्कण्टक राज्य करेंगे क्योंकि मेरे वंश का बीज नष्ट हो जाएगा।" इस प्रकार आग्रह करने पर शूरपाल अपनी बहन को लेकर किले से निकल पड़ा परन्तु जब रूपसुन्दरी को अपने भागने का कारण ज्ञात हुआ तो उसने

आगे जाने से इनकार कर दिया और अपने पति के शव को लेकर जल मरने का दृढ निश्चय प्रकट किया । वश के नाशवाली बात शूरपाल पर असर कर चुकी थी। उसने यही बात अपनी बहन को समझा बुझा कर शान्त किया और उसे जंगल मे छोड़ कर राजा जयशेखर के साथ मरने का निश्चय करके वह लौट आया। [१]

इसी बीच में, राजा भूवड ने देखा कि उसके शत्रु अब किले की रक्षा अधिक नही कर सकते हैं तो उसने जयशेखर के पास एक दूत भेज कर कहलाया "यदि तुम हाथ पीछे बांध कर और मुँह में तिनका लेकर मेरे पास आओ और मेरे चरण छुओ तो गुजरात का राज्य पूर्ववत् तुम्हारे अधिकार मे छोड़ा जा सकता है।" जयशेखर ने उत्तर दिया "इस प्रकार आत्मसमर्पण करने के पीछे मेरे जीवन में कोई आनन्द न रह जायगा, गुजरात के बदले स्वर्ग पाना उत्तम रहेगा। इस प्रकार चावडा वंश का अतिम राजा होकर अपने पीछे कीर्ति तो छोड़ जाऊँगा।"

इस उत्तर से क्रोधित होकर राजा भूवड अपनी विजय को पूर्ण करने के लिए तत्काल तैयार हो गया। जयशेखर के पास जो थोड़ी सी

---

(१) शेक्सपियरकृत Henry VI नाटक के अङ्क-४ दृश्य ४ में भी ऐसा ही एक प्रसग है—"मेरे गर्भ में राजा एडवर्ड का वशज है, उसीके प्रेम के वश में होकर मैं अपनी निराशा का त्याग करती हूँ, और इसी कारण, अपने मनके आवेश को रोककर और विनम्र होकर मुझपर आई हुई विपत्ति को सहन करती हूँ। ओह! इसीलिये तो मैं अपने निरन्तर टपकने वाले आँसुओं तथा रक्त को सुखा देने वाले निश्वासों को रोके रखती हूँ कि कहीं इगलैण्ड की गद्दी का सच्चा उत्तराधिकारी और एडवर्ड राजा का वश, मेरे इन आँसुओं की बाढ में न डूब जाये वा इन निश्वासों से न उड़ जावे।"

सेना बची थी उसका भूवड़ की विशाल सेना के आगे कुछ भी वस न चला। स्वय राजा ने प्राणों पर खेलकर पराक्रम दिखाया और घास की तरह शत्रुओं की सेना को काटता चला गया। परन्तु, अन्त में वह मारा गया और उसके शरीर को रौदते हुये शत्रुओं ने पचासर मे प्रवेश किया। [१]

किले के रक्षकों और द्वारपालों ने मृत्युपर्यन्त सामना किया परन्तु घोर मारकाट के पश्चात् भूवड़ ने महल में प्रवेश किया। वहाँ दासियों ने उसका सामना किया, दरवाज़ों की आगलें इत्यादि जो भी शस्त्र हाथ लगा उसको लेकर उन्होंने प्रहार किया और शत्रुओं को नगर के दरवाजे से बाहर निकाल दिया। अब उनकी मनोकामना पूरी हुई क्योंकि वे जयशेखर के मृतशरीर को प्राप्त करना चाहती थीं और वह उन्हें मिल गया। इसके पश्चात् उन्होंने चन्दन और नारियल की चिता तैयार की और जयशेखर के शरीर को लेकर वे सब जलकर राख हो गई। उनमें दास दासियों सहित चार रानियाँ भी भस्म हुईं। नगर-निवासियों में से जिन लोगों का राजा से घनिष्ठ स्नेह था वे भी अपने स्वामी के साथ

(१) रत्नमालाकार कृष्णदासने लिखा है "जयशेखर ने तीन दिन तक युद्ध किया। युद्ध में उसके दोनों हाथ कट् गये फिर भी उसने भूवड की छाती पर लातों के खूब प्रहार किये जिनसे भूवड मूर्च्छित हो गया और लोगों ने यह समझ लिया कि उसकी मृत्यु हो गई। इतने ही में जयशेखर के पीछे आ कर दो योद्धाओं ने उसका शिर काट लिया परन्तु फिर भी उसका रुण्ड़ तीन दिन तक बराबर जूझता रहा। तब तक भूवड की भी मूर्छा टूट चुकी थी और उसने होश में आकर कहा "हे क्षत्रियपुत्र ! तुम्हारे माता पिता धन्य हैं, तुम किसी अत्यन्त पराक्रमी देवता के अंश हो। हे बुद्धिशाली ! तुम्हारे शरीरत्याग के स्थान पर तुम्हारी स्मृति में गुर्जरेश महादेव का एक विशाल प्रासाद बनवाऊंगा।" ऐसा कहकर उस वीर को बार बार प्रणाम करके निःशङ्क होकर उसने नगर में प्रवेश किया।"

स्वर्गद्वार तक गये। अन्त में, अपनी सेना सहित राजा भूवड़ फिर नगर मे घुसा और चिता को बन्द करवा दी। उसने स्वय चावडा वंश के राजा की उत्तरक्रिया की और जिसने उस सच्चे वीर को जन्म दिया था उसकी प्रशंसा करने लगा। चिता के स्थान पर उसने एक शिवजी का मन्दिर बनवाया जिसका नाम "गुर्जरेश्वर" पड़ा। जिस दिन जयशेखर की मृत्यु हुई उस दिन सूर्य धुंधला पड गया. चारों दिशाये भयकर हो गई, पृथ्वी कॉपने लगी, नदियों का पानी गॅदला हो गया, पवन में गर्मी आ गई, होम की अग्नि मे से गहरी धुऑ निकलने लगी और आकाश में से तारे टूट टूट कर गिरने लगे। इन उत्पातों को देखकर लोगों ने जान लिया कि आज कोई वीर इस ससार से चल बसा है।

राजा भूवड़ ने कच्छ और सोरठ [१] पर अधिकार प्राप्त किया और गुजरात की शोभा देखकर वहीं रहने का विचार करने लगा, परन्तु उसके मन्त्रियों ने कहा "अभी आपके मार्ग का कॉटा शूरपाल जीवित है।" इसलिये वह आस पास के राजाओं पर कर नियुक्त करके अपने प्रतिनिधि मन्त्री को वहीं रख कर स्वदेश लौट गया।

शूरपाल जब अपनी बहन को सुरक्षित स्थान पर छोड़कर वापस आया तब तक जयशेखर मर चुका था। उसके मन में पहले तो यह विचार आया कि वह भी लड़ाई मे जाकर जयशेखर का अनुसरण करे परन्तु फिर उसको ध्यान आया कि यदि मै युद्ध में मारा जाऊँगा तो

---

(१) कच्छ और सौराष्ट्र के राजा भी जयशेखर की सहायता को आये थे। इस युद्ध में उनकी भी हार हुई इसलिए भूवड ने कच्छ के वागड भाग मे गेडी (घृतपदी) तथा गरडामा के आधुनिक नखत्राणा के आधीन गुंतरी नामक स्थान पर सोलंकी राजपूतों के थाने नियुक्त किए। वनराज चावडा ने बडे होकर जब तक अपना राज्य पुन प्राप्त न कर लिया तब तक यह स्थान सोलकियों के ही अधिकार मे रहे।

भूवड का राज्य निष्कण्टक हो जायगा। जो कुछ होना था सो तो हो चुका। अब आगे सोच विचार कर काम करना चाहिए। यदि भाग्य से मेरी बहन के पुत्र उत्पन्न हो जाय तो वह फिर गुजरात पर अधिकार प्राप्त करेगा और मेरी सहायता के बिना यह कार्य होना दुष्कर है। यह विचार कर वह अपनी वहन को ढूढने के लिए रवाना हुआ परन्तु उसका पता न लगा। कितने ही लोगों का कहना है कि उसे अपनी बहन को मुँह बताने में शर्म लगी इसलिए वहाँ गया ही नहीं। अस्तु, वह गिरनार पर्वत के आस पास जङ्गलों में शुभ वेला की प्रतीक्षा में दिन काटने लगा।

इधर, शूरपाल के चले जाने के बाद रूपसुन्दरी को एक भीलनी ने देखा और उसे किसी भले घर की स्त्री जान कर कहने लगी "बहन! मेरे साथ इस वन में रहो। फल, फूल शाक; पात, इस पर्वत में खब मिलेंगे। तुम्हे किसी प्रकार का कष्ट तथा भय न होगा।" रानी ने उसकी बात मान कर प्रसवकाल तक ठहरना स्वीकार कर लिया।

समय पर उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। संवत् ७५२ की वसत ऋतु में इस पृथ्वी के सूर्य का उदय हुआ। इस महापराक्रमी वीर का जन्म गो-ब्राह्मण-प्रतिपालन के लिए हुआ था। उस दिन निर्मल आकाश में सूर्य का उदय हुआ, नदियों का पानी निर्मल होकर बहने लगा, ब्राह्मणों के यज्ञकुंडों में से धूआँ न निकलता था। इन सब शुभ शकुनों से लोगों ने जान लिया कि आज किसी वीर पुरुष ने जन्म लिया है।

जब यह बालक छः महीने [१] का था तब उस जङ्गल में होकर जाते हुए एक जैन यति ने एक वृक्ष की डाल पर लटकते हुए पालने में

(१) मूल पुस्तक में ६ वर्ष लिखा है जो गलत है।

एक शिशु को देखा जो स्वर्ग के राजा (इन्द्र) के दरबार में रहने वाले किसी देवता के समान दिखाई देता था। [१] इसे देख कर जैन साधु को आश्चर्य हुआ और पूछ ताछ करने पर उसे ज्ञात हुआ कि उसकी माता एक रानी है। वह उसे आदर सहित नगर में ले गया। इसके पश्चात्

(१) शास्त्री वृजलाल कालिदास ने प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर खोज करके इस प्रकार लिखा है:—

"विक्रमाय आठवीं शताब्दी में कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा ने खेटकपुर (खेडा जो उस समय गुजरात की राजधानी था) से गुर्जरवंशीय राजा को निकाल कर अपना राज्य स्थापित किया। उस समय वलभीपुर मे सूर्यवंशी ध्रुवपट्ट नामक राजा राज्य करता था। कन्नौज के राजा आम ने रत्नगङ्गा नाम की पुत्री का विवाह उसके साथ और दूसरी पुत्री का विवाह लाट देश (भृगुकच्छ) के राजा के साथ किया था। कन्नौज का राजा राष्ट्रकूट वंश का क्षत्रिय था। वह गोपगिरि नामक दुर्ग में रहता था और सार्वभौम राज्य का उपभोग करता था। किसी बौद्धधर्म के आचार्य से प्रभावित होकर उसने वेदधर्म छोड कर बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया था। वलभीपुर के राजा ध्रुवपट्ट और भृगुकच्छ के चालुक्य राजा के साथ अपनी पुत्रियों का विवाह करके उसने उन दोनों को भी बौद्धधर्म में परिवर्तित कर लिया था और अपना गुर्जरदेश का राज्य अपनी बडी पुत्री रत्नगगा को काँचली (दहेज) में दे दिया था। इस प्रकार गुर्जरदेश का सयोग वलभीपुर के राज्य के साथ हो गया। गुर्जरवंशी राजा ने जो भूमि ब्राह्मणों को दान मे दे दी थी, उस पर भी बौद्ध-धर्मानुयायी राजा ने कर लेना आरम्भ कर दिया। ब्राह्मणों ने कर माफ कर देने के लिए बहुत प्रार्थना की परन्तु वह माफ नहीं हुआ। इससे असन्तुष्ट होकर वे लोग गुर्जरदेश के वढियार प्रान्त मे पचासरपुर को चले गये जहाँ चापोत्कट (चावडा) वंशीय वेदधर्मानुयायी जयशेखर राजा राज्य करता था। यद्यपि जयशेखर का राज्य छोटा था परन्तु बलवान् होने के कारण उसने ब्राह्मणों को आश्रय दिया और वलभी के राजा से गुर्जरदेश का राज्य छीनकर वहा अपना राज्य स्थापित करके ब्राह्मणों को करमुक्त कर दिया। ध्रुवपट्ट राजा ने अपने श्वसुर, कन्नौज के राजा सुधन्वा को यह समाचार कहलाया। इस पर राष्ट्रकूट का राजा बडी भारी सेना लेकर गुर्जरदेश के

उसने रानी को जयशेखर की मृत्यु का समाचार सुनाया और धीरज बँधा कर कहा "मैं इस बालक की रक्षा करूँगा।" वन में जन्म लेने के कारण यति ने इस बालक का नाम "वनराज" (वन का राजा) रखा। बालक के जन्म का भेद शीघ्र ही शूरपाल को भी विदित हो गया। वह अब तक जङ्गल

राजा जयशेखर को जीतने के लिये आया और पंचासर को घेर लिया। जयशेखर ने अपना पराजय और मरणकाल निश्चित देखकर अपने साले शूरपाल को बुलाकर कहा "जो कुछ होना था सो तो हुआ, तुम्हारी बहन (रानी) गर्भिणी है उसको यहां से थोड़ी दूर पर धर्मारण्य क्षेत्र में इस तरह ले जावो कि किसी के कानों कान खबर न हो। वहा मोढेरा ब्राह्मण ऋषि तप करते हैं और पीलुओं के वन में रहते हैं। तुम मेरा नाम लेकर इसको वहां सौंप देना जिससे इसका रक्षण हो सकेगा।" शूरपाल अपनी बहिन अक्षता रानी को ब्राह्मणों के आश्रम में छोड आया। ब्राह्मणों ने उसका भली प्रकार रक्षण किया। शूरपाल के लौट आने के बाद रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ। वन में पैदा होने के कारण ब्राह्मणों ने उसका नाम वनराज रक्खा और जातकर्मादिक सभी संस्कार पूरे किये। इस आश्रम के पास ही इन्द्र नामक सरोवर था, वहीं पर बालक वनराज ब्राह्मण बालकों के साथ खेला करता और ब्राह्मणों के पास विद्याभ्यास किया करता। यज्ञोपवीत हो जाने के बाद उसने वेद पढना आरम्भ किया और विष्णुगुप्तादिरचित नीतिग्रन्थ भी पढे। वह प्राचीन इतिहास की बातों को बड़े ध्यान से सुनता और उन पर विचार करता। इसके बाद वह अपने गुर्जरदेश का राज्य पुनः हस्तगत करने का विचार करने लगा। एक दिन ग्रीष्म ऋतु में वनराज इन्द्रसरोवर के किनारे बड के पेड के नीचे सो रहा था। सूरज की तेज धूप उसके मुँह पर पडने लगी तो एक सर्प ने आकर अपना फण फैला कर उसके मुह पर छाया कर दी। जब ब्राह्मणों ने यह देखा तो कहा "यह बालक विदेशी शत्रुओं को बाहर निकाल कर गुर्जरदेश का राजा होगा और साथ ही सौराष्ट्र तथा लाट देश भी इसके अधिकार में आ जाएंगे। इसके जन्मलग्न में राजपद के साथ साथ पराक्रमशील होने के भी ग्रह पडे हैं।" इसके बाद वनराज अपने मामा को साथ लेकर बाहर निकला। पहले दस योद्धा उसके साथ हुए, फिर धीरे धीरे सेना बढती गई।

में रह कर भूवड के सूवेदार को निरन्तर हैरान करता रहता था। फिर अपने भानजे को चुपके से ले आया, वह (वनराज) उसके पास रह कर चौदह वर्ष की अवस्था तक तेज, पराक्रम और बुद्धि में सिंह के बच्चे के समान निरन्तर बढ़ता रहा, साथ ही अपने पिता के राज्य को पुनः प्राप्त करने के विचार उसमें पनपते रहे।

एक वार कन्नौज के राजा भूभट की सेना गुर्जरदेश से कर वसूल करने के लिए आई थी। चौवीस लाख सोने की मोहरें व चार सौ सुसज्जित घोडे साथ लेकर ये लोग लौट रहे थे कि बीच ही में वनराज ने उन पर हमला कर दिया और सब मालमता लूट लिया। इसके बाद वह एक वर्ष तक कालुम्भर के वन में छुपा रहा और आगे चलकर इसी धन के वल पर गुर्जरदेश का राजा वन गया।

मोढेरा ब्राह्मणों के ग्रन्थों मे वनराज की माता छता (अछता) के वन में जाने, उनका आश्रय लेने तथा वनराज के बडे होने का वर्णन विस्तार सहित लिखा है। जैन ग्रन्थो मे लिखा है कि उसने जैन साधु शीलगुण सूरि का आश्रय लिया था। यह वात सही ज्ञात नहीं होती क्योंकि जैन साधु अपने धार्मिक नियमानुसार वन में रानी का आश्रय नही दे सकते थे अपितु उन्होंने लिखा है कि "तद्द्वेषी नैव मन्यते" हमने रानी को आश्रय दिया परन्तु द्वेषी ब्राह्मण मानते नहीं हैं इसलिये रानी द्वारा ब्राह्मणों का आश्रय ग्रहण करने की वात ही सच्ची ठहरती है।

वनराज चावडा अपना नया नगर वसाने के लिये कोई वीरभूमि तलाश कर रहा था इतने ही मे अणहिल रैवारी ने उसे ऐसी भूमि दिखाई जहां "शशकेन श्वा त्रासित." शशक से डर कर कुत्ता भग गया। इसके वाद उसने उसी जगह अणहिल रैवारी के नाम पर अणहिलपुर नगर वसाया। उस समय वनराज की अवस्था ५० वर्ष की थी। विक्रम संवत् ८०२ आषाढ सुदि ३ के दिन वनराज का राज्याभिषेक हुआ था।

प्रकरण ३

वनराज और उसके क्रमानुयायी--अणहिलपुर का चावड़ा वंश (१

वनराज की उत्पत्तिके विषय में जैन ग्रन्थकारों के लेख तथा जो दन्त-कथाएँ अब तक गुजरात में प्रचलित हैं उनमें रत्नमाला के वर्णन से

---

(१) रासमाला के अनुसार राजावली :—

क्रमाङ्क	नाम	संवत्	सन्	से	संवत्	सन्	तक	वर्ष	राज्य किया
१	वनराज	८०२	७४६	,,	८६२	८०६	,,	६०	,,
२	योगराज	८६२	८०६	,,	८९७	८४१	,,	३५	,,
३	क्षेमराज	८९७	८४१	,,	९२२	८६६	,,	२५	,,
४	मूवड (पिथु)	९२२	८६६	,,	९५१	८९५	,,	२९	,,
५	वैरीसिंह (विजयसिंह)	९५१	८९५	,,	९७६	९२०	,,	२५	,,
६	रत्नादित्य(रावतसिंह)	९७६	९२०	,,	९९१	९३५	,,	१५	,,
७	सामतसिंह(भूयडदेव)	९९१	९३५	,,	९९८	९४२	,,	७	,,

योग १९६ वर्ष

बहुत साम्य है। पचासर पर राज्य करने वाले चापोत्कट अथवा चावड़ा वंश की उत्पत्ति सिन्धु नदी के पश्चिमी भाग में बताई जाती है।

[राव० ब० गोविन्ददास भाई कृत "प्राचीन गुजरात" (Early Gujrat) नामक ग्रन्थ के पृ० १४१ में नवीन शोध व कल्पना के अनुसार इस प्रकार हैं]

वनराज— [जन्म सन् ७२० ई०; राज्याभिषेक सन् ७६५ ई० मृत्यु ७८० ई०
| इस प्रकार १५ वर्ष राज्य किया। फिर २६ वर्ष का अन्तर]
योगराज [८०६ ई० से ८४१ ई० तक

रत्नादित्य (८४२ ई०—८४५ ई०)
|
घाघड अथवा राहड (६०८ से ६३७ ई०)
|
भूभट (६३७—६६१ ई०)

वैरीसिंह (८४५—८५६ ई०)
(भूयड ?) ८८० ई०

क्षेमराज
|
चामुण्ड (८५६—८८० ई०)

इस प्रकार उनका वंश क्रम लिखा है। इन राजाओं ने निम्न तालिकानुसार राज्य किया :—

क्रमाङ्क	नाम	संवत्	सन्	से	संवत्	सन्	तक	वर्ष	राज्य किया
१	वनराज	८२१	७६५	"	८३६	७८०	"	१५	"
२	चामुंड युवराज	८३६	७८०	"	८६२	८०७	"	२६	" ❀
३	योगराज	८६२	८०७	"	८६१	८३६	"	२६	"
४	रत्नादित्य	८६१	८३६	"	८६४	८३६	"	३	"
५	वैरीसिंह	८६४	८३६	"	६०५	८४६	"	११	"
६	क्षेमराज	६०५	८४६	"	६३७	८८१	"	३४	"
७	चामुण्डराज	६३७	८८१	"	६६४	६०८	"	२७	"
८	घाघड़	६६५	६०८	"	६६२	६३६	"	२७	"
६	उसका कुंवर भूभट	६६३	६३७	"	१०१७	६६१	"	२४	"

योग १६६ वर्ष

❀ अमर चन्द मुनि ने हिन्दी में राजमण्डल ग्रन्थ रचा है जिसमें लिखा है कि

इस वंश का सम्बन्ध न सूर्य वंश से है न चन्द्रवंश से, क्योंकि यह केवल पश्चिमी हिन्दुस्तान में ही पाया जाता था। कहते हैं कि सोरठ के 'देव' और 'पट्टण सोमनाथ' नामक दो बन्दरगाहों पर जयशेखर अथवा यशराज चावड़ा के पूर्वजों का राज्य था। वे कभी वलभी के राजा के अधिकार में रहे होंगे और इस नगर का नाश होने पर सुरक्षित स्थान समझ कर पञ्चासर चले आये होंगे। इनके साथ ही वलभी के जैन आदि अन्य प्रजागण भी अपनी रक्षार्थ यहीं चले आये।

पंचासर नाम का एक छोटासा कस्बा अब भी कच्छ के छोटे रण के किनारे पर स्थित है और राधनपुर के नवाब के अधिकार में है। पंचासर से कुछ मील उत्तर की ओर चदूर नामक ग्राम को वनराज की जन्मभूमि बताया जाता है और एक दूसरा छोटासा कस्बा उसीके नाम पर वनोड़

युवराज चामुण्ड का जन्म स. ८२५ में हुआ। उसने २६ वर्ष राज्य किया। इस प्रकार २६ वर्ष का अन्तर पूरा हो जाता है।

"सुकृत संकीर्तन" नामक काव्य मे चापोत्कट वंश के राजाओं की तालिका इस प्रकार लिखी है :—

(१) वनराज (२) योगराज (३) रत्नादित्य (४) वैरीसिंह (५) क्षेमराज (६) चामुण्डराज (७) राहुराड अथवा राहड़ (८) भूभर अथवा भूभड, इसको सवत् १०२२ (ई० स० ९६६) में चालुक्य वंश के मूलराज ने मार डाला और राज्य ले लिया।

मेरुतुंगाचार्य रचित 'प्रवन्धचिन्तामणि' नामक संस्कृत ग्रन्थ की टीका शास्त्री रामचन्द्र दीनानाथ ने लिख कर सन् १८८८ में छपाई जिसमें चावडा वंश को इस प्रकार लिखा है:—

वनराज:—वैशाख सुदी २ सोमवार संवत् ८०२ वि० मे अणहिलवाड़ा की गद्दी पर बैठा और सं० ८६२ में उसकी मृत्यु हुई। इस प्रकार १०९ वर्ष २ महीने और २१ दिन की आयु भोग कर ५९ वर्ष २ महीने २१ दिन राज्य किया।

कहलाता है। कहते हैं कि वनराज ने अपना बाल्यकाल यहीं व्यतीत किया था। वहाँ उसकी कुल देवी वनावी माता का मन्दिर और वेन नाम का एक कुँआ है जो उसी की आज्ञा से बना हुआ बताया जाता है। गुजरात प्रान्त का यह भाग आज भी जैन ग्रन्थकारों के दिये हुये वढियार नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ की धरती सपाट है परन्तु कृपि

योगराज—सवत् ८६२ के आषाढ की शुक्ला ३ गुरुवार को आश्विन नक्षत्र सिंह लग्न में राज्याभिषिक्त हुआ। स० ८७८ (८७६) श्रावण शुक्ला ४ तक वर्ष १७ मास १ दिन १ राज्य किया। क्षेमराज आदि तीन पुत्र हुए।

रत्नादित्य -सवत् ८७६ श्रावण शुक्ला ५ उत्तराषाढ नक्षत्र धुनुर्लग्न में गद्दी पर बैठा स. ८८१(स० ८८२) कार्तिक शुक्ला ६ तक ३ वर्ष ३ महीने राज्य किया। (स ८८२ कार्तिक सुदी १० से स. ८८७ तक ५ वर्ष ३ महीने १६ दिन का अन्तर)

क्षेमराज देव —सवत् ८६८ (स० ८८७) ज्येष्ठ शुक्ला १३ शनिवार को हस्त नक्षत्र सिंह लग्न में गद्दी पर बैठा सवत् ६२२ (स० ६२५) भाद्रपद शुक्ला १५ रविवार तक ३८ वर्ष ३ मास १० दिन राज्य किया।

चामुण्डराजदेव—सवत् ६२५ (स० ६३५) आश्विन् सुदि १ सोमवार रोहिणी नक्षत्र, कुम्भ लग्न में पट्टाभिषेक हुआ। तब से सवत् ६३८ (स० ६३६) माघ वुदी ३ सोमवार तक वर्ष १३ मास ४ और १६ दिन राज्य किया।

श्रीआकड देव:-स० ६३८ (६३६) माघ वुदि १४ मगलवार, स्वाति नक्षत्र सिंह लग्न मे राज्याभिषेक हुआ तब से संवत् ६६५ पौष शुकला ६ बुधवार तक २६ वर्ष १ मास और २० दिन राज्य किया।

श्री भूयगडदेव—सवत् ६६० (६६५) पौष शुक्ला १० गुरुवार आर्द्रा नक्षत्र कुम्भ लग्न में पट्टाभिषेक हुआ। इसने "भूयगडेश्वर" प्रासाद नामक देवालय बनवाया। स ६६१ (६६३) आषाढ सुदी १५ तक २७ वर्ष ६ मास और १० दिन राज्य किया। इसको मार कर इसका भानजा मूलराज सोलंकी स. ६६३ मे आषाढ शुक्ला १५ गुरुवार

बहुत कम होती है क्योंकि बिलकुल पास ही में कच्छ का रण आ गया है अत· जमीन प्रायः वैसी ही हो गई है। इसी भूभाग में छोटे छोटे ग्राम बसे हुये हैं जो आसपास में उगे हुये वृक्षों की झुरमुटों के कारण दूर ही से स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। पंचासर के पास ही रांतज और शखेश्वर नामक ग्रामों में अब भी जैन मंदिरो के खंडहर वर्तमान

को अश्विनी नक्षत्र सिंह लग्न में दो पहर रात्रि गए इक्कीस वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा।

इस प्रकार चापोत्कट वश के सात राजाओं ने १९० वर्ष २ मास ७ दिन राज्य किया।

ऊपर के कोष्ठकों मे दिये हुए सवतों को गिनने से ही राज्यकाल के वर्ष ठीक ठीक आते हैं।

शास्त्री व्रजलाल कालिदास के अनुसार चापोत्कट वंश के राजाओं की तालिका इस प्रकार है.—

(१) वनराज (२) योगराज (३) वैरसिंह (इसने अपनी पुत्री का विवाह बिल्हण पंडित के साथ किया था) (४) क्षेमराज (५) चामुण्डराज (६) आहूड और (७) भूभट (इसके पुत्र नहीं था इसलिये इसके बाद इसका भानजा चालुक्य मूलराज (सोलंकी) गद्दी पर बैठा।

मेरुतुंग के "प्रबन्धचिन्तामणि", जिनमण्डन उपाध्याय के "कुमारपालप्रबन्ध और "पट्टावलि" में चावडा वंश के राजाओं का क्रम तथा उनके राज्यकाल के वर्ष "रासमाला" के अनुसार दिये हुए हैं, केवल "पट्टावलि" में लिखा है कि योगराज ने ३२ वर्ष राज्य किया और दूसरे ग्रन्थों में लिखा है कि उसने ३५ वर्ष राज्य किया।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित मुँहणोत नैणसी की ख्यात, द्वितीय खण्ड में पृ० ४७७—७८ पर पाटण में चावडों का राज रहा, जिसकी तफसील इस प्रकार दी है—"वनराज ने राज किया ६० वर्ष ६ मास, राजादित्य ने ३ वर्ष, क्षेमराज ३९ वर्ष, गुडराज १९ वर्ष, जोगराज १० वर्ष, वीरसिंह ११ वर्ष, चूडाव

है। इन देवालयों का यद्यपि कई बार जीर्णोद्धार हो चुका है परन्तु यह निश्चित है कि ये उस स्थान पर अत्यन्त प्राचीन काल से स्थित हैं। 'वला' के आसपास में जैसे खंडहर आजकल दिखाई पडते हैं वैसे ही प्राचीन नगरों के ध्वंसावशेष विश्रोडा तथा अन्य निकटवर्ती स्थानों में भी पाये जाते हैं।

जिस जैन साधु ने वनराज की रक्षा की थी उसका नाम शीलगुण सूरि [शीलांग सूरि] था। कहते हैं कि इसी साधु के उपासरे में इस

(चामुंड) २७ वर्ष, और मोयडराय (मूवड) ने २९ वर्ष राज किया, साक्षी का छप्पय इस प्रकार है:—

"साठ वरस वनराज, वरस दस जोगराज भण।
राजादित त्रण वरस, वरस ग्यारह सिंह सण॥
खेमराज चालीस, वरस एक उण गुणजे।
चुंडराव सत वीस, बरस भोगवी भणीजे॥
उगणीस वरस गुडराज कहि, गुण तीस मोवंड भुव।
चामुंडराज अणहलनयर, कीध वरस सौ छिनवहन॥
"आठ छत्र चामुंड, कीन्ह पाटण घर रज्जत।
वरस एक सो छिन्तु, गया भोग वैस कव्जह॥
हुय सोलंकिया वरस वरस सौ सत्तह।
हुआ पाँच वाघेल वरस सूची सौ सत्तह॥
पाच सो वरस चालीस सू, बसूह भार साचौ वहयौ।
पचवीस छत्र गूजर धरा, अणहलवाडौ आगस्यौ॥"

जब तक और कोई प्रमाणिक आधार न मिलें तब तक चावड़ा वंश की यह गड़बड़ी ठीक नहीं हो सकती।

राजकुमार ने अपना बाल्यकाल व्यतीत किया था। प्राचीन कालमें साइरस (१) तथा आधुनिक साहित्य में गाइडेरियस (२) आरवीरेगस (३) व नारवल (४) के विषय मे जिस प्रकार कथाऐं प्रचलित हैं उसी प्रकार इस राजकुमार के असाधारण बल और पराक्रम के विषय म भी

---

(१) सायरस ईरान का राजा था। उसने पूर्वीय एशिया विजय करने के बाद सिथिया के मोसेजिटी की रानी टामेरिस को हरा कर उसका माथा काट लिया और उसको मनुष्यों के रक्त से भरे हुए कडाह में डाल कर कहा "तुम से जितना लहू पिया जा सके तृप्त होकर पीलो।"

(२-३) ये दोनों ब्रिटेन के राजा सिम्बलाईन के पुत्र थे। इन्हीं के राज्य का बिलेरियस नामक सरदार इनको चुराकर ले गया था। इसका कारण यह था कि एक बार राजा ने इस सरदार को अकारण ही देश निकाले का दण्ड दे दिया था। इसने इन दोनों कुंअरों को लेजा कर एक गुफा में छुपा दिया। जब वे बडे हुए तो एक बार ऐसा हुआ कि राजा को रोमन लोग पकड कर ले गये और इसी सरदार ने उसको उनसे मुक्त कराया। इसी कारण राजा उसपर बहुत प्रसन्न हुआ, तब उसने भी दोनों कुवरों को वापस राजा को सौंप दिये।

(४) नारवल नामक गड़रिया सर मालकम की जागीर में रहता था। वहाँ पर उसको सन्दूक में छुपाया हुआ एक बालक मिला जिसको उसने अपने पुत्र की भाति पाला। बाद में मालूम हुआ कि वह बालक सर मालकम का दौहित्र था और उसकी पुत्री लेडी रेंडाल्फ के पहले पति लार्ड डगलस से उत्पन्न हुआ था। यह बात उसकी माता को विदित हो गई।

इस बालक ने बडे होने पर एक समय लार्ड रेंडाल्फ के प्राण बचाये थे इसलिए उसने उसको अपने लश्कर में नौकर रख लिया। रेंडाल्फ का उत्तराधिकारी ग्लेनलेव इस बालक को हमेशा धिक्कारा करता था। उसने अपने पिता को उसके विरुद्ध ऐसा समझा दिया कि उसका लेडी रेंडाल्फ से अनुचित सम्बन्ध है। इसी भ्रम वश एक दिन जब वह लड़का अपनी असली मा लेडी रेंडाल्फ के पास गया हुआ था तब लार्ड ने उस पर अचानक हमला कर दिया। इस झगडे में इस बालक के हाथ से

कितनी ही कथायें कही जाती हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि मनुष्य देहधारी राजा रानियों से तो उसके शरीर मात्र की उत्पत्ति हुई थी और वह असाधारण तेज तो उसे दैव से ही प्राप्त हुआ था। जीवन की कठिनाइयों को सहने योग्य होने पर वह अपने मामा शूरपाल के साथ कितने ही आक्रमणों में सम्मिलित हुआ और प्रबल पराक्रम दिखा कर प्रसिद्ध हुआ। अपनी शूरवीरता दिखाते हुये उसने अपने राज-चिन्हों को धारण किया, जिससे उसके साथियों का साहस द्विगुणित हो गया। मानों उसको प्राप्त होने वाला राज्य उसके अधिकार में आ ही गया हो इस प्रकार उसने उनको सम्मान एवं अधिकार प्रदान किये। श्रीदेवी (१) एक व्यापारी की स्त्री थी। उसने उसके साथ बहुत ही मान सम्मान का व्यवहार किया था इसलिये उसने वचन दिया था "जब मेरा राज-तिलक होगा तो मैं तेरे ही हाथ से तिलक कराऊँगा"।

ग्लेनलेव मारा गया और वह स्वयं लार्ड रेडाल्फ के हाथों मारा गया इसके बाद सच्ची बात प्रकट हो गई और इसी दुख से दुखी होकर लेडी रेडाल्फ एक ऊँची जगह से गिर कर मर गई तथा लार्ड रेडाल्फ डेनमार्क और स्काटलैण्ड की लडाई में मारे गये।

(१) कुमारपालचरित के रचयिता मेरुतुंग ने लिखा है कि वनराज अपने मामा के साथ काकर ग्राम में एक व्यापारी के घर में चोरी करने गया था। वहाँ पर घर में से मालमता (सामान) निकालते समय उसका पंजा दही में पड गया इसलिए सब वस्तुएं वहीं छोड़ कर भाग निकला। दूसरे दिन व्यापारी की बहिन ने गोरस में पंजे की रेखाओं को देख कर विचार किया कि यह तो किसी भाग्यवान् महापुरुष के पंजे की रेखाएं हैं और यह मेरे भाई के समान है इसलिए उसको देखे बिना भोजन नहीं करूंगी। खोज करने पर वनराज का पता चला और उसको घर बुलाकर उसने भोजन कराया और अपना भाई बना लिया। उसने वनराज को सहायतार्थ रुपये भी दिये। वनराज ने भी राज्याभिषेक के समय उस बहन के हाथ से तिलक कराने का वचन दिया।

जाम्ब अथवा चम्पा [१] नाम का एक व्यापारी था। वह अपने पराक्रम एवं युद्धकला के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गया था और आगे चलकर चम्पानेर नगर का बसाने वाला भी वही हुआ, उसको पहले ही प्रधान की पदवी दे दी गई थी। अणहिल भी उसके साथियों में था। उस स्थान के गुप्त मार्गों का ज्ञान उसने ही वनराज को कराया था इसलिए उसका आभार मानते हुए अपनी राजधानी का नाम उसीके नाम पर रखने का निश्चय किया। इस प्रकार भटकते भटकते कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये। वन में ही उसके सच्चे और वीर मामा शूरपाल की मृत्यु हो गई परन्तु उसके नये मित्रों ने इस कमी को पूरी कर दी थी। अब तक वनराज केवल वनराज ही था और निकट भविष्य में वन के राज्य से अधिक कुछ भी प्राप्त होने के कोई चिन्ह प्रकट नहीं हुए थे। परन्तु अन्त में, उसकी सच्ची लगन का फल मिल ही गया। राजा भूवड़ ने गुजरात की उपज अपनी पुत्री मिलण देवी [२] के नाम करदी थी, जिसकी प्रबन्धकारिणी सभा ने चावड़ा सरदार को "सेलभृत्" (बरछी सरदार) के अधिकार पर नियुक्त किया था और उसको

---

(१) कुमारपालचरित के कर्ता मेरुतुंग के लेखानुसार एक दिन वनराज अपने दो साथियो सहित वन में घूम रहा था। तब उन्होंने जाम्ब को रास्ते में लूटने के लिए रोका। उस समय जाम्ब के पास पाँच बाण थे जिनमें से दो को व्यर्थ समझ कर उसने तोड डाले। कारण पूछने पर उसने कहा कि एक एक के लिए एक-एक बाण ही बहुत है जो अधिक थे उनको उसने तोड़ दिये। इस प्रकार जाम्ब बनिये के बल की परीक्षा करके वनराज उससे प्रसन्न हुआ और अपने राज्याभिषेक के समय उसे महामात्य बनाने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद अपना मालमता (धन दौलत) उनको सौंप कर वह बनिया अपने घर चला गया।

(२) मेरुतुंग ने इसका नाम महणिका और कुमारपालचरित्रकार ने महणल देवी लिखा है।

आजकल के अधिकारियों के समान, बहुत बड़ा वेतन इसलिए मिलता था कि वे रक्षण करने की अपेक्षा अपना सर न उठा सके। परन्तु उसके किए एक भी बात पार न पड़ी। "कल्याण" के प्रतिनिधि इस (गुजरात) प्रान्त में छः महीने तक रह कर पुष्कलद्रव्य तथा सोरठ को प्रसिद्धि देने वाले श्रेष्ठ घोड़ों को लेकर अपने देश को लौट रहे थे। उन पर वनराज ने आक्रमण करके लूट लिया और उनको मार डाला। [१] इस घटना के बाद ही उसमें और कल्याण के राजा मे वैर-भाव उत्पन्न हो गया इसलिए कुछ समय तक उसको देश के विभिन्न पहाड़ों और जङ्गलों में, जहाँ भी स्थान मिला, शरण लेनी पड़ी परन्तु लूट खसोट के धन से उसने शीघ्र ही अपनी राजधानी के नये नगर अणहिलपुर अथवा अणहिलवाड़ा के निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया और इस प्रकार उसका चिरचिन्तित मनोरथ पूर्ण हुआ।

एक कवित्त में लिखा है कि सम्वत् ८०२ (ई० स० ७४६) में एक चिरस्थायी नगर की स्थापना हुई। माह बुदि ७ वलिष्ठ शनिवार के दिन तीसरे पहर तीन बजे वनराज की दोहाई फिरी। ज्योतिष-शास्त्र में कुशल एक जैन साधु को नगर की (जन्म) कुण्डली दिखा कर पूछा गया तो उसने कहा कि संवत् १२६७ में अणहिलपुर ऊजड हो जायगा। अलाउद्दीन खूनी के समय में यह भविष्यवाणी किस प्रकार सत्य प्रमाणित हुई, इसका वर्णन आगे लिखा जायगा।)

वनराज ने अपने वचनों के अनुसार श्रीदेवी से राज्याभिषेक [१]

---

(१) "प्रवन्ध चिन्तामणि" मे लिखा है कि वनराज ने उनसे एक लाख रुपये और अच्छे अच्छे चार हजार अश्व लिए। कुमारपालचरित मे चौबीस लाख स्वर्ण मुद्रा और चार सौ घोड़ों का लेख है। एक दूसरी पुस्तक मे केवल एक लाख रुपये ही लिखे हैं।

(१) मेरुतु ग के लेखानुसार संवत् ८०२ वैशाख शुक्ला २ सोमवार, पाटण के

कराया और जाम्ब को अपना मन्त्री नियुक्त किया। इसके पश्चात् उसका ध्यान अपने पूर्व रक्षक शीलगुण सूरि की ओर गया। अभी तक उसकी माता रूपसुन्दरी उसी की शरण में रह रही थी। जैनधर्म के सच्चे उपासक को अपने धार्मिक नियमों का पालन करने में शान्ति प्राप्त होती है, इसी नियम के अनुसार रूपसुन्दरी ने अपनी वैधव्य अवस्था और दुर्दैव के दिनों मे शान्ति प्राप्त की थी। वनराज, वृद्धा रानी और उसके धर्म गुरु को, तथा जिस मूर्ति को वे पूजते थे उसके सहित, अणहिलपुर मे लाया। एक मन्दिर बनवाकर उस मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई गई और उसका नाम "पचासर पारसनाथ" रखा गया। प्रदक्षिणा के स्थान पर लाल राजच्छत्र सहित वनराज की मूर्ति भी उपासक की दशा मे स्थापित की गई (जो अब तक विद्यमान है)।

इस प्रकार जैनधर्म ने वनराज का आश्रय प्राप्त किया और इसीलिए यदि "जैन ग्रन्थकार" यह कहते हैं कि ईर्ष्यावश भले ही कोई न माने परन्तु वनराज के समय में गुजरात का राज्य श्रावकों ने स्थापित किया था, तो उनके इस जात्यभिमान में सत्य का अंश अवश्य है। स्वयं वनराज किस धर्म का अनुयायी था, यह निश्चित नहीं है, परन्तु वह देवभक्त कहलाता था और जिस कामदेव ने महादेव (शिवजी) को भी थोड़े समय के लिए वश मे कर लिया था उसको (कामदेव को) भी उसने जीत लिया था, इस प्रकार उसकी प्रशंसा की जाती है। उमामहेश्वर और गणपति की मूर्तियां आजकल पट्टण में विद्यमान् है और उन पर लिखे हुए लेख से विदित होता है कि अणहिलवाड़ा की स्थापना के

गणेश के लेख मे सवत् ८०२ चैत्र शुक्ला २ और पाटण की राजवंशावली में संवत् ८०२ श्रावण शुक्ला २ सोमवार वृष लग्न लिखा है। शास्त्री व्रजलाल के मत से यह तिथि आषाढ शुक्ला ३ सवत् ८०२ है।

समय (सं० ८०३) वनराज ने उनकी प्रतिष्ठा की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम चावड़ा (जैसा कि उसके वंशजों की नीति से पता चलता है) ने धार्मिक विषयों में उदार नीति को ही अपनाया था क्योंकि उसके शैव होते हुए भी कृतज्ञता, मातृभक्ति अथवा राजनीति के कारण तीर्थ-करों के धर्माचार्यों को उससे पर्याप्त सहायता मिली थी।

वनराज (१) सन् ६९६ मे जन्मा और अणहिलवाडा में ६० वर्ष तक राज्य करके ८०६ ई० में मर गया। उसके पश्चात् उसका पुत्र योगराज सिंहासन पर बैठा।

वनराज के पुत्र के विषय में बहुत कम वृत्तान्त मिलता है किन्तु जो कुछ प्राप्त हुआ है उससे ज्ञात होता है कि वह भी भाग्यशाली

(१) मेरुतुंग के लेखानुसार १०९ वर्ष २ मास २१ दिन जीवित रहा जिसमें से उसने ५९ वर्ष २ मास २१ दिन राज्य किया। संवत् ७५२ वि० वैशाख शुक्ला १५ को उसका जन्म हुआ। ८६२ वि० आषाढ शुक्ला ३ गुरुवार को योगराज का राज्याभिषेक हुआ, इसी के आस पास वनराज की मृत्युतिथि है।

रत्नमाला ग्रन्थ में लिखा है कि वनराज का जन्म संवत् ६९६ ई० में हुआ था। आईन-ए-अकबरी के आधार पर विलफोर्ड साहब ने लिखा है कि सन् ७४६ ई० मे उसने नहरवाला बाधा उस समय उसकी अवस्था ५० षर्ष की थी। इसके अनुसार उसका जन्म ६९६ ई० मे होना सिद्ध होता है। प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि वनराज ने ७४६ ई० से ८०६ ई० तक ६० वर्ष राज्य किया। इस गणना के अनुसार भी उसकी आयु ११० वर्ष ठहरती है। कर्नल टॉड ने लिखा हैं कि वनराज ने ७४६ ई० से पचास वर्ष तक राज्य किया और ६० वर्ष की अवस्था में मर गया। इस गणना के अनुसार उसने १० वर्ष की अवस्था मे ही अणहिलपुर का राज्य स्थापित किया, यह संभव प्रतीत नहीं होता और न दूसरे लेखों से ही वनराज की जन्मतिथि इससे मिलती है। इसलिए टॉड साहब ने उसकी जन्मतिथि निश्चित करने में भूल की हैं। बाल्हार राजाओं के लम्बे राज्यकाल के विषय मे टॉड कृत वेस्टर्न इन्डिया नामक पुस्तक के "अरबिस्तान के प्रवासी" शीर्षक लेख में विस्तृत वर्णन पढिये।

और अपने समय का योग्य राजा था। उसने निरन्तर अपने राज्य और धन की वृद्धि की। वह युद्धकला मे प्रवीण एव धनुर्विद्या में इन्द्र के समान था, इन गुणों के साथ ही उसमें एक असाधारण बात यह थी कि वह साहित्य मे भी निपुण था। कहते हैं कि योगराज द्वारा रचित पुस्तक उसके इतिहास लेखकों के समय तक मिलती थी परन्तु वह किस विषय पर लिखी गई थी इसका ठीक पता नहीं है। कदाचित यह चापोत्कट (चावड़ा) वंश के इतिहास के विषय में लिखी गई हो अथवा अधिक संभव है कि वह उमापति (शिव) की प्रार्थना अथवा राधा के अवतारी प्रियतम श्रीकृष्ण की प्रशस्ति में कवितावद्ध रचित हुई हो।

जिस समय योगराज अणहिलवाड़ा में राज्य करता था उस समय की एक मात्र घटना का उल्लेख गुजरात के इतिहासकारों ने किया है। सोरठ के पट्टण वंदर पर व्यापार के लिए बहुमूल्य सामान से लदे हुए कुछ विदेशी जहाज आकर ठहरे। वे किस बन्दर से आये थे और कहाँ जाने वाले थे, इसका कोई पता नहीं है। उन जहाजों पर राजा की आज्ञा का उल्लङ्घन करके युवराज क्षेमराज ने आक्रमण किया और उन्हें लूट लिया।[१] नियमभंग करके विदेशियों के साथ किये हुये इस दुर्व्यवहार से राजा को वहुत खेद हुआ और उसने क्षेमराज तथा हमले में भाग लेने वाले उसके दोनों भाइयों को वुला कर कहा "मैंने जीवन भर में जो कुछ किया था उस पर तुमने पानी फेर दिया। दूर दूर देशों के वुद्धिमान् मनुष्यों ने जव राजाओं की परस्पर तुलना की तो उन्होंने कहा था कि गुजरात के राजा तो चोरों पर राज्य करते हैं। अपने

(१) मेरुतुंग के लेखानुसार सोमेश्वर पट्टण पर आए हुए इन जहाजों में तीन हजार घोडे, १५० हाथी और करोडों रुपये का माल था।

पूर्वजों के इस कलंक को धो डालने के लिए और राजाओं की श्रेणी मे गिना जाने के लिए मैंने प्रयत्न किया था, परन्तु तुम्हारे इस लोभमय कृत्य ने उस कलंक को फिर से हरा कर दिया है। नीतिशास्त्र में लिखा है कि :—

"आज्ञाभङ्गो नरेन्द्राणां वृत्तिच्छेदोऽनुजीविनाम्
पृथक्शय्या च नारीणामशस्त्रो वध उच्यते ॥"

"राजाज्ञा का भंग, सेवक की वृत्ति (आजीविका) का छेद और स्त्री से पृथक् शय्या पर शयन तो बिना शस्त्र के किये हुए वध कहलाते हैं।"

योगराज [१] बहुत वर्षों तक जीवित रहा और पैंतीस वर्ष राज्य करके [२] उसने चिता प्रवेश किया।

---

(१) योगराज के समय में चितौड़ का शासक खुमाणसी था जिसने ८१२ ई० से ८३६ ई० तक राज्य किया था। उसके समय में मुसलमानों ने चित्तौड़गढ पर चढाई की। इस अवसर पर गुजरात मे बाद मे प्रसिद्धि पाने वाले गेहलोत राजाओं के अतिरिक्त निम्नलिखित राजाओं ने खुमाण की सहायता की थी। मागरोल से मकवाहन, तारागढ (तारिंगा ?) से रेहवर, पट्टण से राजवंशी चावडा, सिरोही से देवड़ा, जूनागढ से जादव, पाटडी से झाला, चोटियाला (चोटयला) से बल्ल और पीरमगढ से गोहिल। जो प्रमाण हमें प्राप्त हुए हैं उनसे यह सिद्ध नहीं होता कि योगराज को मुसलमानों के विरुद्ध बुलाया गया हो। उस समय गुजरात में अत्यन्त प्राचीन काल से चले आये सौराष्ट्र के यदु और बल वंश के अतिरिक्त उपर्युक्त जातियों का अस्तित्व था भी या नहीं यह हम नहीं कह सकते। (ग्रन्थकर्ता)

ऊपर की टिप्पणी में तारागढ के नाम के आगे कोष्ठक में तरिंगा लिखा है यह भूल है क्योंकि "पृथ्वीराजरासो" में अजमेर का नाम तारागढ लिखा है इसलिए कोष्ठक में अजमेर पढिये।

(२) ऊपर लिखे अनुसार अपने पुत्र को अयोग्य समझकर उसने "प्रायोपवेशन" व्रत धारण करके १२० वर्ष की अवस्था में संवत् ८९७ वि० में चिता प्रवेश किया।

योगराज के क्रमानुयायियों के विषय में और भी थोड़ा वृत्तान्त प्राप्त है। उसका पुत्र क्षेमराज क्रोधी स्वभाव का था इसलिए उसकी किसी के साथ बनती न थी और इसी कारण वह अपने संबन्धियों से भी विलग हो गया था। इतना होते हुये भी उसने अपने राज्य और कोष की वृद्धि की और २५ वर्ष राज्य करके ८६६ ई० में दिवंगत हुआ।

क्षेमराज के पुत्र श्री भूवड़ [१] ने ८६५ ई० तक राज्य किया। इसका राज्यकाल पूर्ण सुखशान्तिमय रहा, किसी शत्रु से उसका सामना नहीं हुआ।

उसके बाद वैरीसिंह [२] सिंहासन पर बैठा। इसका राज्यकाल इसके पिता भूवड़ के समय की अपेक्षा बहुत अधिक आपत्तियों और झगड़ों से भरा हुआ बीता। उसने जंगली जातियों से सामना किया और विजयी हुआ। "वह युद्ध में कभी पराजित नहीं हुआ।" उसको अपने बुद्धिमान् मन्त्री का भरोसा प्राप्त था। विदेशिओं के साथ हुये युद्धों के विषय में कोई वृत्तान्त नहीं मिलता।

वैरीसिंह का पुत्र रत्नादित्य, जिसका नाम मुसलमान इतिहास लेखकों ने रेशादत्त [३] लिखा है, ६२० ई० में सिंहासन पर बैठा।

---

(१) इसका दूसरा नाम राजा पिथु था।

(२) मुसलमान इतिहासकारों ने वेहीरसिंह अथवा वीरसिंह नाम लिखा है और कहीं कहीं पर विजयसिंह भी लिखा हुआ मिलता है।

(३) आईन–ए–अकबरी में चावडा वश के वृत्तान्त में रावतसिंह का नाम लिखा है :—

रामराज (वनराज) ने	६० वर्ष राज्य किया
योगराज ,,	३५ ,,
क्षेमराज (भीमराज) ,,	२५ ,,

"वह पृथ्वी का सूर्य था, उसकी शोभा अतुल थी, उसने संसार का दुख दूर कर दिया था। वह बलवान्, साहसी और दृढ़प्रतिज्ञ विख्यात था। अपने राज्य मे चोर, ठग और व्यभिचारियों को वह नहीं बसने देता था। रत्नादित्य ६३५ ई० में परलोकवासी हुआ। उसका पुत्र सामंतसिंह [१] गद्दी पर बैठा। यह (सामतसिंह) वनराज के वंश का अन्तिम राजा था और इसी के साथ चावड़ा वंश की इति श्री हो गई।"

एम' रेनॉड़ो M Renaudot के लेखानुसार अरब के यात्री [२] क्षेमराज और भूवड़ के राज्यकाल में ही भारतवर्ष आये थे। इनके राज्यों का यद्यपि बहुत थोडा वृत्तान्त मिलता है परन्तु उन यात्रियों द्वारा लिखित वनराज के वंश से सम्बन्धित विवरण एक विशेष महत्व रखता है।

पहले यात्री ने लिखा है :—

"दोनों ही, हिन्दू और चीनी स्वीकार करते हैं, कि पृथ्वी पर चार ही बड़े राजा हैं। उनमें अरबिस्तान का राजा प्रधान (प्रथम) है। वह निःसंदेह सब राजाओं से अधिक शक्तिशाली, धनवान् और उत्तम है

राजा पिथु (भूवड़) ने	२९	वर्ष राज्य किया
राजा विजयसिंह ,,	२५	,,
राजा रावतसिंह (रत्नादित्य) ,,	१५	,,
राजा सावतसिंह (सामंतसिंह) ,,	७	,,
	योग १९६	वर्ष

(१) मेरुतुंग ने इसका नाम भूयगड देव लिखा है।

(२) यहाँ "सिलसिलात उल् तवारीख" के कर्ता सुलेमान से तात्पर्य है। इस अरबी यात्री ने गुजरात की यात्रा की थी। यह पुस्तक "इब्न जैद अल् हसन" ने ९१० ई० में पूरी की। हसन पारस की खाडी पर स्थित सिराफ नामक स्थान पर रहता था और यात्रियों द्वारा प्राप्त विवरण के आधार पर अपनी पुस्तक लिखता था।
(देखिये इलियट एण्ड डासन कृत Hist. of India Vol. I p. 188)

क्योंकि वह एक महान् धर्म का अध्यक्ष है और महानता व शक्ति मे उससे बढ़ कर कोई नहीं है।

"चीन का सम्राट् अपने को अरबिस्तान के राजा से दूसरे स्थान पर मानता है और उसके बाद ग्रीकों के राजा की गणना है। सबसे अन्त में "मोहर्रमी अल अदन्" अर्थात् जो अपने कान बिंधवाते हैं उन लोगों के राजा बल्हार का स्थान है। यह बल्हार राजा सारे भारतवर्ष मे प्रसिद्ध है और दूसरे राजा लोग यद्यपि अपने अपने राज्यों में स्वतन्त्र हैं परन्तु इसकी असाधारण शक्ति और श्रेष्ठता को मानते हैं। जब वह अपने प्रतिनिधि उनके पास भेजता है तो वे उसकी मान्यता से उनका खूब सत्कार करते हैं। अरबों की रीति के अनुसार यह भी बहुमूल्य तुष्टि-दान (इनामें) देता है और इसके पास बहुत से हाथी, घोड़े और धन से भरे पूरे खजाने हैं। इसके राज्य मे "थारतेरियन" द्रम नाम का चाँदी का सिक्का चलता है। यह सिक्का तोल में अरबी द्रम से आधा ड्राम अधिक है। इसमें राजा की मोहर का सिक्का पड़ता है और इसके पूर्ववर्ती राजा के अन्तिम वर्ष से आगे इस राजा के राज्यकाल के आरम्भ का वर्ष छपा रहता है। अरबों के समान ये लोग मुसलमानी सन् के अनुसार वर्षगणना न करके अपने राजाओं के राज्यकाल से करते हैं। इनमें से बहुत से राजा दीर्घकाल तक जीवित रहे हैं और बहुतों ने तो पचास वर्ष से भी अधिक समय तक राज्य किया है। यहाँ के लोग सोचते हैं कि इनकी दीर्घ आयु व लम्बा राज्यकाल अरब लोगों की कृपा का फल है। वास्तव में, अरब लोगों पर इन राजाओं से अधिक प्रीतिभाव रखने वाले और राजा नहीं हैं और उनकी प्रजा का भी हमारी ओर वही मित्रभाव है।"

"खुसरू आदि दूसरे सामान्य नामों के समान 'वल्हार' भी एक सामान्य नाम है। जो सभी राजाओं के नाम के साथ लगता है। यह कोई विशेष नाम नहीं है। इस (वल्हार) राजा का राज्य 'कमकम' नाम के प्रान्त से लेकर भूमि मार्ग से चीन की सीमा तक जा पहुँचा है। इसके आस पास मे इससे लड़ने वाले बहुत से राजाओं के राज्य हैं परन्तु यह किसी पर चढाई नहीं करता। इन राजाओं में से एक हरज (Haraz) का राजा है जिसकी सेना बहुत बड़ी है और जिसके पास हिन्दुस्थान के अन्य राजाओ की अपेक्षा बहुत अधिक घोड़े हैं। परन्तु यह अरबों का शत्रु है और साथ ही यह भी स्वीकार करता है कि अरबों का राजा सब राजाओं का शिरोमणि है। मुसलमानों से इस राजा की अपेक्षा, अधिक घृणा करने वाला और कोई राजा भारतवर्ष में नहीं है। इसका राज्य एक भूशलाका [१] पर है, जहाँ बहुत सा द्रव्य, ऊँट और अन्य जानवर हैं। यहाँ के लोग चाँदी को धोकर उसका व्यापार करते हैं और कहते हैं कि इस खण्डस्थ भाग में चाँदी की खाने हैं। इस देश में चोरों के विषय की तो बात ही नहीं चलती। यहीं क्या, हिन्दुस्थान भर मे चोर नहीं है।"

"इस राज्य के एक ओर तफेक (Tafek) का राज्य है जो अधिक बड़ा नहीं है। यहां के राजा के पास भारतवर्ष भर मे सबसे अधिक सुन्दर और गोरी स्त्रियां हैं, परन्तु सेना कम होने के कारण वह आस-पास के राज्यों के अधीनस्थ राज्य है। बल्हार तथा अरब दोनों ही से इसका मित्र भाव है।"

"इन राज्यों की सीमा राह्मी (Rahmi) राज्य की सीमा से मिलती

---

(१) किनारे पर समुद्र में निकला हुआ भूभाग

है जहाँ का राजा हरज और वल्हार दोनों ही राजाओं से युद्ध करता है। वंश-परम्परा एवं राज्य की प्राचीनता के विषय में यह राजा प्रसिद्ध नहीं है परन्तु इसकी सेना वल्हार, हरज और तफेक के राजाओं से भी अधिक है। यह प्रसिद्धि है कि जब वह रणभूमि के लिए प्रस्थान करता है तो उसके साथ पचास हजार हाथी चलते हैं और वह प्रायः सरदी के दिनों में ही चढ़ाई करता है क्योंकि हाथी अधिक प्यास सहन नहीं कर सकते। लोगों का यह भी कहना है कि इसकी फौज में प्रायः दश अथवा पन्द्रह हजार तंबू हैं इसी देश में सूती कपड़ों की पोशाक ऐसी विचित्र रीति से बनाते हैं कि और कहीं देखने में नहीं आई। ये पोशाके अधिकतर गोलाई लिए हुए होती हैं और इतनी बारीक बुनी हुई होती हैं कि एक साधारण अगूँठी में होकर निकाली जा सकती हैं।"

"इस देश में छोटे-सिक्के के रूप में कौड़ियां प्रचलित हैं, साथ ही, सोना चाँदी के सिक्के भी चलते हैं। घोड़ों के सामान बनाने व घरों की छत बनाने में यहाँ काले रोओं वाला चमड़ा व अलोय की लकड़ियां काम में आती है। इसी देश में प्रख्यात करकन्दन (Karkandan) व गैंड़े भी होते हैं।" इत्यादि।

"इस राज्य के पीछे एक और राज्य है जो समुद्र तट से दूर स्थित है और काशबीन राज्य के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ के निवासी गोरे रंग के होते हैं और कान बिंधवाते हैं। ये लोग ऊँट पालते हैं और इनका देश ऊजड़ व पहाड़ी है।

"आगे चल कर किनारे पर हित्रंज (Hitrange) नामका एक छोटा राज्य है। यह राज्य बहुत गरीब है परन्तु इसमें एक खाड़ी है जिसमें होकर समुद्र अम्बर के ढेर के ढेर फेंकता रहता है। यहाँ हाथी-

दाँत बहुत होता है और काली मिर्च भी, परन्तु यहाँ के लोग काली मिर्च को कच्ची ही खा जाते हैं क्योंकि उनके यह थोड़ी ही मात्रा में हाथ लगती है।"

"बल्हार" [१] इस नाम का अणहिलवाड़ा में राज्य करने वाले प्राचीन चावड़ा राजाओं के साथ कोई सम्बन्ध ठीक ठीक नहीं बैठता और न कम कम के किनारे से चीन की सीमा तक विस्तृत बल्हार राज्य की ही बात समझ में आती है। बल्हार हिन्दुस्थान के अन्य सभी राज्यों से बढ़कर है, यह लिखने में भी यात्रियों ने सीमा का अतिक्रमण ही किया है। एक जगह लिखा है "यहाँ के राजा यद्यपि बल्हार की श्रेष्ठता को मानते हैं परन्तु वे अपने अपने राज्यों में स्वतन्त्र हैं" फिर आगे चलकर दूसरी जगह लिखते हैं 'हिन्दुस्थान की कुछ रियासतें यद्यपि एक ही राजा के आधीन नहीं हैं और प्रत्येक प्रान्त में अलग अलग राजा हैं तो भी बल्हार इन्डीज (भारत) में राजाधिराज है।" हरज (Haraz) के राजा के विपय में लिखा है कि उसका राज्य एक भूशलाका पर स्थित था और आसपास के राज्यों की अपेक्षा उसके पास घोड़े अधिक थे। यह वृत्तान्त यादव कुल के 'राह' राजा से मिलता हुआ ज्ञात होता है क्योंकि उसकी राजधानी गिरनार के पास की पहाड़ी पर एक प्राचीन किले में थी। तफेक, काशवीन और राहमी के राजाओं के विषय में हमें कोई सूत्र नहीं मिलता। कर्नल टॉड का कथन है कि काशवीन से कच्छभुज का अर्थ है परन्तु कच्छभुज

(१) ऐसा प्रतीत होता है कि वाल्हार, यह शब्द बालार्कराय (सूर्यराय) का अपभ्रंश है। बलीराय (वलभीराय अथवा वलभी के राजा) के अर्थ में अथवा भृतार्क (भृत अर्क) पोषक सूर्य तथा माल प्रान्त के नाम से भी इसका उद्भव संभव प्रतीत होता है। (रायल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल १२ वें के पृ० १०७ के आधार पर।)

के विषय में 'किनारे से दूर भूभाग में स्थित' वाली बात ठीक नहीं बैठती। इसी ग्रन्थकर्ता (टॉड) का अनुमान है कि हित्रंज से शत्रुञ्जय समझना चाहिए। स्वयं रेनोड़ो (Renaudot) ने इस विषय में जो अपना मत प्रकट किया है वह फिर भी कुछ संगत प्रतीत होता है। उनका कहना है:—

"इन देशों के जो नाम मिले हैं उनका रूप अधिकतर अपभ्रष्ट हो गया है और अरबी अक्षरों में उनका लिखा जाना भी कठिन है इसलिए ऐसी कल्पनाये करना व्यर्थ है जिनसे कोई अर्थ निकलता प्रतीत नहीं होता।"

इस प्रवासी ने यहाँ के रीति रिवाजों के विषय में जो कुछ लिखा है वह गुजरात के तत्कालीन हिन्दू समाज पर लागू हो सकता है। अग्नि और जल-परीक्षा के विषय में जो कुछ इसने लिखा है वह तो हम आगे चल कर उद्धृत करेंगे। इसके अतिरिक्त मुर्दों को जलाना, स्त्रियों का पति के साथ चिता पर जलना, तपस्वियों का नग्न अथवा मृगचर्म मात्र से ढके हुये फिरना, बहुत समय तक सूर्य के प्रकाश में एक ही आसन से खड़े रहना इत्यादि प्रचलित रिवाज हैं जिनके विषय में इसने प्रकाश डाला है। यात्री ने लिखा है:—

"इन राज्यों में राजसत्ता राजवंश में ही स्थित रहती है और इससे बाहर नहीं जाती। एक ही कुटुम्ब के लोग क्रमशः गद्दी पर बैठते हैं। इसी प्रकार विद्वानों, वैद्यों और शिल्पशास्त्र सम्बन्धी कलाविदों के भी घराने बंधे हुए हैं और एक वंश दूसरे वंश के व्यवसाय में पैर नहीं रखता।" एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करना चावल खाने का प्रयोग, मूर्तियों से प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करना, भोजन करने से पहले स्नान करना इत्यादि अन्य रिवाजों के विषय में भी इसने लिखा है।

इसने यह भी लिखा है "हिन्दुस्तानी राज्यों मे लड़ाई के समय सिपाहियों की बहुत बड़ी सख्या इकट्ठी होती है। इन सिपाहियों को राजा कुछ नहीं देता। जो लडाई के समय इकट्ठे होते हैं वे अपने खर्चे से ही लड़ाई के मैदान मे जाते हैं, राजा के शिर पर उनका कोई बोझा नहीं पड़ता।"

इसके आगे अबू जैद अल हसन दूसरा यात्री कहता है :—

"हिन्दुओं में यह एक साधारण रिवाज़ है कि प्रत्येक स्त्री अथवा पुरुष की यह प्रबल इच्छा होती है कि अधिक वृद्ध होने पर वह अपने कुटुम्बियों द्वारा अग्नि में जला दिया जाय अथवा पानी में बहा दिया जाय क्योंकि यह उसका कट्टर विश्वास रहता है कि उसके लिए दूसरे रूप (शरीर) में ससार में आना आवश्यक है।"

वह कहता है "हिन्दुओं में योगी और वैद्य होते हैं जो राजा की प्रशसा में कविताएँ लिखते हैं। यहाँ ज्योतिषी, दार्शनिक, भविष्यवक्ता, पक्षियों की उड़ान को जानने वाले तथा जन्माक्षरों के पढ़ने वाले भी होते हैं। ये लोग विशेषत: गोराज [१] की राजधानी मे कन्नौज नाम के एक प्रसिद्ध शहर में अधिक हैं।"

---

(१) एशिया खण्ड के अधिकांश लोगों का ज्योतिष विद्या पर अधिक विश्वास है। वे मानते हैं कि जो कुछ लेख उनके भाग्य में पहले से लिख दिये गये हैं वे ही आगे आते हैं। प्रत्येक कार्य करने के पूर्व वे ज्योतिषी से अवश्य पूछते हैं। लडाई के लिए दोनों सेनाएँ सज कर तैयार खड़ी हो जाएँगी परन्तु जब तक ज्योतिषी अनुकूल मुहूर्त न बतलायेगा तब तक युद्ध आरम्भ नहीं होगा। ज्योतिषी के पूछे बिना कोई सेनापति ही नियुक्त नहीं किया जाता। जब तक लग्न ठीक न हो तब तक कोई यात्रा करने के लिए नहीं निकलता। दास को मोल लेने, नए वस्त्र धारण करने आदि छोटे छोटे कामों के लिए भी ज्योतिषियों से पूछा जाता है और उनके बिना कोई काम नहीं चलता। ऐसे मूर्खतापूर्ण भ्रमों के बड़े बड़े दुखदायक और अशुभ परिणाम

वर्षाऋतु के विषय में उसने लिखा है "वर्षा हिन्दुओं का जीवन है, जब वर्षा नहीं होती तो इन पर घोर विपत्ति पड़ जाती है।"

अबू जैद ने योगियों के विषय में जो वृत्तान्त लिखा है वह नीचे दिया जाता है। उसने इन्हें 'भिखार' लिखा है। कर्नल टॉड कल्पना करते हैं कि यह शब्द फकीर शब्द का अपभ्रंश है परन्तु इन लोगों के लिए साधारणतया प्रयुक्त "भिखारी" शब्द का रूपान्तर होना अधिक संगत प्रतीत होता है।

"हिन्दुस्तान में एक जाति के लोग 'भिखार' कहलाते हैं। ये लोग जीवन पर्यन्त नंगे रहते हैं। वे अपने नाखून भी बढाते हैं जो तलवार की तरह नुकीले हो जाते हैं। वे नाखूनों को कभी काटते नहीं और जब वे अपने आप झड़ कर गिर जाते हैं तो गिर जाने देते हैं। इस कार्य को वे लोग धर्म मानते हैं। ये लोग अपने गले मे एक डोरी रखते हैं जिसमें पिरोया हुआ एक मिट्टी का बर्तन लटका रहता है। जब उनको बहुत ज्यादा भूख लगती है तो वे किसी हिन्दू के द्वार पर जाकर खड़े हो जाते हैं और उस घर के लोग जल्दी से और प्रसन्नता से उबले हुए चावल लाकर देते हैं और इसको बड़ा पुण्य-कार्य समझते हैं। वे (भिखार) अपने मिट्टी के पात्र में खाते हुए चले जाते हैं और अत्यधिक आवश्यकता पड़े बिना माँगने के लिए नहीं लौटते। यहाँ हिन्दुस्तान में, आम रास्तों मे यात्रियों के आराम के लिए धर्मशाला बनवाना बड़ा भारी पुण्यकार्य समझा जाता है। इन्हीं

निकलते हैं परन्तु मुझे आश्चर्य है कि ये बातें अब तक प्रचलित ही हैं। गुप्त अथवा खुले सभी भेद ज्योतिषियों से कहने पडते हैं और उनके लिए जो उपाय करने पडते हैं वे भी सब उनके सामने प्रकट करने पडते हैं।

(बर्नियर—इरविंग ब्रॉक कृत अंग्रेजी भाषान्तर का अनुवाद)

धर्मशालाओं के आस पास दुकानदार भी बसाये जाते हैं जिनसे यात्री लोगों को अपनी आवश्यकतानुसार चीजें खरीदने मे सुविधा रहे।"

दूसरी जगह लिखते हैं "कितने ही हिन्दू ऐसे हैं जो एक पात्र में दो व्यक्ति बैठ कर भोजन नही करते, ऐसा करना उनकी समझ मे बड़ा भारी पाप है। यदि सौ मनुष्यों को भोजन कराना हो तो उनके लिए पृथक् २ सौ पात्र आवश्यक होते हैं और एक पात्र दूसरे पात्र से इतनी दूर रखते हैं कि छू न सके। उनके राजा व बड़े बड़े धार्मिक लोगों के लिए नित्य ताजा भोजन तैयार होता है जिसको वे नारियल के पत्तों से बनी हुई पत्तलों और दोनों[१]मे रख कर खाते है। भोजन करने के पश्चात् बचा हुआ झूंठा सामान व पत्तल दोने पानी मे डाल दिये जाते हैं। इस प्रकार उनके लिए नित्य नई सामग्री तैयार होती है।

'हिन्दू राजा हीरों से जड़ी हुई सोने की बालियां कानों में पहनते है। वे भिन्न भिन्न रगों के बहुमूल्य हार भी पहनते हैं। उनमें विशेप कर नीलम और लाल जड़े रहते है परन्तु वे मोतियों को अधिक पसन्द करते हैं जिनका मूल्य दूसरे जवाहरात से अधिक होता है। आजकल वे लोग दूसरी बहुमूल्य वस्तुओं के साथ अपने खजानों में मोतियों का संग्रह कर रहे है। बड़े बड़े दरबारी रईस अधिकारी व व्यूहपति भी इसी प्रकार के जवा-हरात से जड़े हार पहनते हैं। आधी अॅगरखी उनकी पोशाक होती है और जब वे अपने अनुचरों के साथ बाहर निकलते हैं तो सूर्य की तेजी से बचने के लिए मोर की पंखों का बना हुआ छत्र लगाते है।"

---

[१] पत्तों से बनाई हुई कटोरी।

प्रकरण ४

मूलराज सोलंकी (९४२ ई०—९९७ ई०)

सोलंकी वंश [१]

इतिहासकारों ने सामन्तसिह के विषय में कुछ अच्छा नहीं लिखा

---

[१] रासमाला के अनुसार राजावली इस प्रकार है :—

क्रमाङ्क	नाम	संवत्	सन्	से	संवत्	सन्	तक	वर्ष	राज्य किया
१	मूलराज	९९८	९४२	,,	१०५३	९९७	,,	५५	,,
२	चामुंडराज	१०५३	९९७	,,	१०६६	१०१०	,,	१३	,,
३	वल्लभसेन	१०६६	१०१०	,,	१०६६	१०१०	,,	०।।	,,
४	दुर्लभसेन	१०६६	१०१०	,,	१०७८	१०२२	,,	१२	,,
५	भीमदेव (प्रथम)	१०७८	१०२२	,,	११२८	१०७२	,,	५०	,,
६	कर्ण	११२८	१०७२	,,	११५०	१०९४	,,	२२	,,
७	सिद्धराज जयसिंह	११५०	१०९४	,,	११९९	११४३	,,	४९	,,
८	कुमारपाल	११९९	११४३	,,	१२३०	११७४	,,	३१	,,
९	अजयपाल	१२३०	११७४	,,	१२३३	११७७	,,	३	,,
१०	मूलराज (दूसरा)	१२३३	११७७	,,	१२३५	११७९	,,	२	,,
११	भीमदेव (दूसरा) (भोला भीम)	१२३५	११७९	,,	१२९८	१२४२	,,	६३	,,
१२	त्रिभुवनपाल	१२९८	१२४२	,,	१३००	१२४४	,,	२	,,

योग ३०२ वर्ष

है क्योंकि उनकी दृष्टि में वह योग्य राजा न था। उसके विषय मे

"प्राचीन गुजरात" के कर्त्ता ने चालुक्य (सोलंकी) वश की वशावली इस प्रकार दी है :—

क्रमाक	नाम	सवत्	सन्	से	संवत्	सन्	तक वर्ष	राज्यकिया
१	मूलराज	१०१७	६६१	,,	१०५२	६६६	,, ३५	,,
२	चामुंडराज	१०५२	६६७	,,	१०६६	१०१०	,, १३	,,
३	वल्लभसेन	१०६६	१०१०	,,	१०६६	१०१०	,, ०	,,
४	दुर्लभसेन	१०६६	१०१०	,,	१०७८	१०२२	,, १२	,,
५	भीमदेव (प्रथम)	१०७८	१०२२	,,	११२०	१०६४	,, ४२	,,
६	कर्णदेव	११२०	१०६४	,,	११५०	१०९४	,, ३०	,,
७	सिद्धराज जयसिंह	११५०	१०९४	,,	११९९	११४३	,, ४९	,,
८	कुमारपाल	११९९	११४३	,,	१२३०	११७४	,, ३१	,,
९	अजयपाल	१२३०	११७४	,,	१२३३	११७७	,, ३	,,
१०	मूलराज (दूसरा)	१२३३	११७७	,,	१२३५	११७९	,, २	,,
११	भीमदेव (दूसरा)	१२३५	११७९	,,	१२९८	१२४२	,, ६३	,,

द्व्याश्रय की टीका में पाद-टिप्पणी में और सुरथोत्सव में लिखा है —"मूलराज स० ९९३ मे गद्दी पर वैठा।"

प्रबन्धचिन्तामणि (मेरुतु गाचार्य कृत) कुमारपाल-प्रबन्ध (जिनमडन उपाध्याय कृत) और पट्टावलि में लिखा है कि मूलराज ने ५५ वर्ष, चामुण्डराज ने १३ वर्ष, वल्लभराज ने ६ मास, दुर्लभराज ने ११ वर्ष ६ महिने, और भीमराज ने ४२ वर्ष राज्य किया। (प्रबन्धचिन्तामणि की एक प्रति में ५२ वर्ष लिखा है) "कुमारपाल प्रबन्ध" और 'पट्टावलि' में लिखा है कि कर्णदेव ने२९ वर्ष राज्य किया।

प्रबन्धचिन्तामणि में सिद्धराज का राज्यकाल ४९ वर्ष और पट्टावली में ४८ वर्ष ८ मास और १० दिन लिखा है।

लिखा है "वह कीर्तिमान् राजा नहीं था। उसके वचन में दृढ़ता नहीं थी, उसे दिन को रात कहते भी कोई विचार न होता था। विवेक और दृढ़ता ने उसका स्पर्श भी नहीं किया था। भले और बुरे, मित्र और शत्रु के भेद का ज्ञान उसे न था और उसका मस्तिष्क प्रतिक्षण बदलता

प्र० चि० और कु० प्र० में लिखा है कि कुमारपाल ने २७ वर्ष राज्य किया, पट्टावलि के अनुसार उसने ३० वर्ष ८ मास और १० दिन राज्य किया।

अजयदेव के राज्य-काल के विषय में प्र० चि० में ३ वर्ष और पट्टावलि में ३ वर्ष ११ मास और २८ दिन लिखे हैं।

मूलराज द्वितीय ने प्र० चि० में लिखे अनुसार २ वर्ष और पट्टावलि के अनुसार २ वर्ष १ महीना २४ दिन राज्य किया।

भीमदेव (द्वितीय) ने प्र० चि० में लिखे अनुसार ६३ वर्ष और पट्टावली के अनुसार ६५ वर्ष २ महीने ८ दिन राज्य किया।

पट्टावली में लिखा है कि भीमदेव (द्वितीय) के बाद ६ दिन तक पादुका का राज्य रहा। फिर त्रिभुवनपाल ने २ महीने १२ दिन राज्य किया। इसके बाद गुजरात की गद्दी चालुक्यों की दूसरी शाखा बाघेलों के हाथ में चली गई।

मुँहणोत नैणसी के अनुसार सोलंकी राज समय की साक्षी का कवित्तः—

"मूलू पैंतालीस वरस, दस कियो चंद गिर,
वलभ अढाई वरस, साढ बारह द्रोणा गिर।
भीम वरस चालीस, वरस चालीस करणाह,
एक घाट पंचास, राज जैसिंह वरणाह।
कँवरपाल तिस किहु आगल, वरस तीन मूलराज लह।
विलमीज भीम सतरस हरस, वरस सात अगलीक चह॥

मूलराज ४५ वर्ष, चन्दगिर १० वर्ष, वल्लराज २॥ वर्ष, द्रोणगिर १२॥ वर्ष भीमदेव नागसुत ४० वर्ष कर्ण ४० वर्ष, सिद्धराज जयसिंह ४६ वर्ष कुंवर पाल ३३ वर्ष, दूसरा मूलदेव ३ वर्ष और मूलराज के छोटे भाई भीमदेव (दूसरे) ने ६४ वर्ष राज किया।

रहता था। उसके सात वर्ष के स्वल्प राज्यकाल के विषय में इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा है कि उसके कोई सन्तान [१] नहीं थी, अतः अणहिलवाड़ा के राज्य पर सोलंकी वंश का अधिकार हुआ।

(१) चावड़ों के भाटों का कथन है कि सामन्तसिंह के कोई सन्तान नहीं थी। ऐसी दशा में जब कि मूलराज की उसके बाद में गद्दी ले लेने की संभावना थी तो उसने मूलराज को मरवा क्यों न डाला? परन्तु सामन्तसिंह के एक कुंवर था जिसका नाम अहिपति था। जब मूलराज ने सामन्तसिंह का वध किया उस समय अहिपति को लेकर उसकी मां, जो भाटी राजपूतों की कन्या थी, अपने पीहर, तणोत ग्राम में (जो मारवाड़ की सीमा पर है) चली गई। जिस स्थान पर जैसल ने जैसलमेर बसाया वहां पर पहले भाटी राजपूत राज्य करते थे। उस समय अहिपति की अवस्था एक वर्ष की थी। कुछ वर्ष बाद वह कच्छ में आकर लाखा फूलाणी की शरण में रहा जहां पर उसे मोरगढ ग्राम तथा उसके आसपास की जमीन निर्वाह करने के लिये मिल गई। मूलराज और लाखा फूलाणी की शत्रुता के कारणों में से यह भी एक कारण संभव प्रतीत होता है। लाखा फूलाणी आटकोट की लड़ाई में सन् ९७९ ई० में मारा गया तब मूलराज ने कच्छ पर अधिकार कर लिया। उसी समय अहिपति ने भी बहुत से ग्रामों पर अपना कब्जा कर लिया। कुछ लोगों का कहना है कि उसने ९०० गांवों पर कब्जा किया था। अहिपति की १५ वीं पीढ़ी में पूंजोजी चावडा हुआ, उसने अपने समय में मोरगढ खो दिया। उसके समय में जाम धावजी और फिर वेणजी कच्छ के राजा हुए। इनके समय में जाम अबडा ने बहुतसी लड़ाइयां लड़ीं थी इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि उसी ने चावड़ों को भगा दिया था। पूंजोजी मोरगढ से धारपुर (पालनपुर के अन्तर्गत) चले गये और वहां पर ८४ गांवों का एक ताल्लुका जमाया किन्तु अलाउद्दीन खिलजी ने जब गुजरात को जीत लिया, तब पूंजोजी का ताल्लुका भी उनके हाथ से निकल गया और उन्होंने बादशाह की नौकरी करली। इनकी सेवा से प्रसन्न होकर बादशाह ने अम्बासर के नीचे के ७५२ ग्राम इनको दिये। अम्बासर में पूंजोजी के बाद पांचवीं पीढी में जयसिंह चावडा हुआ जिसके तीन कुंवर थे। इन तीनों ने गांवों को आपस में बांट लिए। सबसे बड़ा ईश्वरदास अम्बोड़ में, सूरजमल बरसोडा में और सामन्तसिंह अम्बासर में रहे। सामन्तसिंह की पांचवीं पीढी में सूरसिंह हुआ जिसने महीकांटा के माणसा

कल्याण के राजा भूवड़ [१] की चौथी पीढ़ी में भुवनादित्य नाम का राजा हुआ। उसके तीन पुत्र थे जिनके नाम राज, बीज और दण्डक थे। ये तीनों सोमनाथ महादेव की यात्रा करके लौटते समय सामन्तसिंह के दरबार में गये। सम्भवतः केवल यात्रा ही उनका उद्देश्य नहीं था अपितु ऐसा प्रतीत होता है कि वे उस सौभाग्य की तलाश में घर से निकल पड़े थे जो प्रायः राजवंशीय राजपूतों में छोटे भाइयों को राजगद्दी के बहुत निकट सम्बन्धी होने पर भी घर पर प्राप्त नहीं होता और जिसको प्राप्त करने के लिए बहुधा बाहर निकल पड़ने की उनमें चाल ही पड़ गई है। रत्नमाला में लिखा है कि इन तीनों में सबसे बड़ा मध्यम कद का व गोरे रंग का सुन्दर राजकुमार था। आगे लिखा है "वह अपने धर्म को पालता था, नित्य शिवजी की पूजा करता था परन्तु अपनी स्त्रियों की ओर से उसे बड़ा दुख था और इसीलिये भाग्य से मिली हुई दूसरी सुविधाओं से भी उसे कोई सुख प्राप्त नहीं था। राजकुमार 'राज' के उच्चकुल और उसकी शूरवीरता के कारण अणहिलवाड़ा के राजा [२] ने अपनी बहन लीलावती का विवाह उसके साथ कर दिया।

ग्राम में अपनी गद्दी कायम की। माणसा के वर्तमान् (गुजराती अनुवाद के समय सवत्१९२५ वि० में) ठाकुर राजसिंह हैं जो सूरसिंहजी की १२ वीं पीढी मे हैं।

(१) प्रबन्धचिन्तामणि में भूदेव, भूयड़देव लिखा है और इसके वश को भूयड राजवश (भूदेवक) लिखा है। भूयड के कर्णादित्य, उसके चन्द्रादित्य, उसके सोमादित्य और सोमादित्य के भुवनादित्य हुआ, ऐसा रत्नमाला में लिखा है।

(२) रत्नादित्य ने सन् ९२० ई० से ९३५ ई० तक १५ वर्ष राज्य किया। उसके बाद सामन्तसिंह ने ९३५ से ९४२ ई० तक सात वर्ष राज्य किया, फिर ९४२ में उसका वध करके मूलराज ने राज्य ले लिया। उस समय मूलराज की अवस्था २१ वर्ष की थी इसलिये उसका जन्म ९२१ में होना सिद्ध होता है। ऐसा मालूम होता है कि उस समय रत्नादित्य तो गद्दी पर था और सामन्तसिंह युवराज पद से उसके राज्य

यह राजकुमारी गर्भवती हुई और प्रसववेदना के कारण चल बसी, परन्तु उसकी कोख से जीवित बच्चा निकाल लिया गया, जिसका नाम मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण मूलराज [१] रखा गया। सामन्तसिंह ने उसे दत्तक ले लिया और उसने बाल सूर्य के समान अपने प्रताप का प्रसार करते हुये अपने मामा के राज्य की वृद्धि करके सर्वप्रिय होकर

कार्य में हाथ बँटाता था। अपनी बहन के विवाह में वह प्रधान रहा होगा इसीलिए शायद उसको राजा लिख दिया है परन्तु वास्तव में, जब रत्नादित्य गद्दी पर बैठा था तो तुरन्त ही राज और बीज आए होगें। यदि लीलादेवी का विवाह सन् ९२० में हुआ होगा तो ९२१ ई० में मूलराज का जन्म होना सम्भव है। सामन्तसिंह गद्दी पर बैठा उस समय मूलराज की अवस्था १४ वर्ष की थी, उस समय से ७ वर्ष तक अपने मामा के साथ राज काज में हाथ बटाने के कारण उसे अच्छा आश्रय मिल गया होगा। यदि गद्दी पर बैठने के बाद सामन्तसिंह ने अपनी बहिन का विवाह किया होता तो उस समय मूलराज की उमर अधिक से अधिक ६ वर्ष की होती। इतनी छोटी सी अवस्था में वह मामा को मार कर गद्दी पर बैठ गया हो, ऐसा सम्भव प्रतीत नहीं होता।

(१) सोलंकी वंश के विषय में भाटों की कथा इस प्रकार है—अन्तर्वेद अथवा गंगा यमुना के बीच के प्रदेश (दोआवे) में टूकटोडा-मदावती नगरी में सोलंकियों का राज्य था। उस वंश में राज और बीज हुए। जागीर के कारण भाई बन्धुओं से उनका झगडा हुआ और कितनों ही को उन्होंने मार भी डाला। बाद में गोत्रहत्या के पाप का पश्चात्ताप हुआ इसलिए वे द्वारका और काशी की यात्रा करने के लिये निकले। पहले काशी में जाकर एक वर्ष तक रहे और पुण्य दान किया, फिर गंगा-जल की कावडें भर भर कर द्वारका के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में वे पाटण में ठहरे। उसी समय वहा के राजा का चरवादार (साईस) राजा की घोडी को पानी पिलाने के लिए उधर से निकला। राज और बीज के भँगवा रंग के वस्त्र देखकर घोडी चमक गई, तब साईस ने उसके एक चाबुक मारा। यह देख कर बीज, जो घोडों की परीक्षा में कुशल था और जिसने "शालिहोत्र" नामक ग्रन्थ का अध्ययन किया था, खिन्न हुआ और बोला, "अरे! मूर्ख! तूने चाबुक मार कर इस घोडी के पेट

बचपन में ही बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली। रत्नमालाकार ने लिखा है "वह विश्वासघाती, दयाहीन और निरन्तर अपनी उन्नति में तत्पर रहने वाला था।" ये सब बातें उसके बाद के कृत्यों से सिद्ध हो जाती हैं। 'वह रंग का काला परन्तु सुडौल और स्वरुपवान् था, कामदेव का दास था,

---

में जो पँचकल्याण बछेरा है उसकी दाहिनी आँख फोड दी।" साईस को यह सुनकर बडा आश्चर्य हुआ और उसने जाकर सब समाचार राजा को कह सुनाया। यह सुन कर उसे महापुरुष समझ कर राजा उसके पास गया और उसकी आकृति देख कर जान गया कि वह अवश्य ही कोई प्रतापी मनुष्य है और उसमें कोई चमत्कार है। फिर उसने कहा "यदि तुम्हारे कहने के अनुसार मेरी घोडी के पँचकल्याण बछेरा होगा तो मैं तुम्हें पाटण का आधा राज्य दूंगा व मेरी बहिन सेनाजी (कुमारपालरासो में लीलावती लिखा है) का विवाह तुम्हारे साथ कर दूंगा और यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हारे पास जो कुछ है वह सब छीन लूँगा।' यह बात तय हो गई और वे दोनों भाई दरबार में रहने लगे। पन्द्रह दिन बाद घोडी के एक बछेरा हुआ जिसके चारों पैर व मुँह सफेद थे और दाहिनी आँख फूटी हुई थी। यह देख कर सामन्तसिंह चावडा ने अपने वचन के अनुसार आधा राज्य देना तो स्वीकार कर लिया परन्तु जाति और कुल जाने बिना अपनी बहन का विवाह उनके साथ करने में आना कानी की। इस पर राज और बीज ने अपने वंश और जाति आदि का परिचय दिया और राजा ने प्रसन्न होकर अपनी बहन का विवाह बीज के साथ करना स्वीकार कर लिया। परन्तु बीज एक आँख से काना था और उसने अपने बडे भाई के साथ ही उस कन्या का विवाह करने की इच्छा प्रकट की इसलिए सेनाजी का विवाह राज के साथ हुआ। कुछ समय दोनों भाई वहीं पर रहे और इसी अवसर में सेनाजी के पेट से मूलराज ने जन्म लिया।

मेरुतुंग ने लिखा है कि सामन्तसिंह स्वयं ही घोड़ा फेर रहा था तब उसने घोडी के चाबुक मारा। इस पर उक्त भाईयों में से एक ने 'हूँ हूँ' कह कर इस प्रकार सिर धुना मानों उसको बडी भारी पीडा हुई हो। उसने राजा से कहा 'अच्छी गति से चलने वाली घोडी के तुमने चाबुक मारा इससे मुझे ऐसी पीडा हुई कि जैसे मेरे ही चाबुक लगा हो' इस पर सामन्तसिंह ने उसे घोडी फेरने के लिए कहा। उसने इतनी सरलता से घोड़ी फेरी कि राजा ने प्रसन्न होकर अपनी बहन लीलावती देवी का विवाह उसके साथ कर दिया।

महाकंजूस और धन को पृथ्वी मे गाड़ कर रखने वाला था, युद्ध मे तो इतना कुशल नहीं था परन्तु शत्रु का सामना होने पर उसमें विश्वास उत्पन्न करके चालाकी से उसे नष्ट कर देता था।" जब मूलराज जवान हुआ तो एक दिन सामन्तसिह ने अपने नशे की धुन में उसका राज्याभिषेक करवा दिया परन्तु, होश आते ही उसने अपना राज्य वापस ले लिया। जैन ग्रन्थकारों का कहना है कि उसी दिन से "चावड़ों के दान का कोई मूल्य नहीं है" यह कहावत प्रचलित होगई। एक बार राज्य का स्वाद लेकर उसे छोड़ देना मूलराज को अच्छा न लगा। उसने सेना इकट्ठी करके अपने मामा पर आक्रमण किया और उसे मार कर उसी गद्दी पर बैठ गया जिस पर वह पहले एक प्रकार की भयङ्कर मस्ती मे बैठाया गया था [१]

---

(१) इस विषय में भाट की कथा इस प्रकार है:—"जब मूलराज बडा हो गया तो उसको लेकर राज और बीज द्वारका चले गये। रास्ते में उसके पिता राज को लाखा फूलाणी ने मार डाला। उस समय मूलराज की अवस्था ग्यारह वर्ष की थी। जब उसका पिता मारा गया तब उसके काका (चाचा) बीज ने उससे कहा, "तुम्हारे मामा ने आधा राज्य देने का वचन दिया था इसलिए अब जाकर उससे आधा राज्य माग लो।" इसके अनुसार उसने जाकर अपने मामा से कहा। उसने उत्तर दिया 'मैंने तेरे पिता को नीबू उछाल कर वह वापिस आकर भूमि पर गिरे इतनी देर राज्य देने का वचन दिया था वही अब तुझे दे सकता हूँ।" मूलराज ने यह सब बात अपने काका (चाचा) से आ कर कही। उसने सलाह दी "जितनी देर तुझे राज्य मिले उस अवसर में सामन्तों को शिरोपाव और जमीनें देना, जिससे वे तेरे पक्ष में हो जावेंगे।" मूलराज नित्य ऐसा ही करने लगा। इससे सभी लोग यह चाहने लगे कि मूलराज राजा हो जाय तो बडा अच्छा हो। इसी तरह एक वर्ष बीत गया, तब सामन्तसिंह ने सोचा कि इस प्रकार तो राजकोष बहुत शीघ्र खाली हो जायगा। इधर मूलराज को उसके काका ने एक सलाह दी "मास के टुकडो को फेंक फेंक कर गिद्धों को साध लो जिससे वे सदैव तुम्हारे सिर पर मँडराया

कुमारपालचरित के कर्ता ने कहा है "सात वस्तुएं कृतघ्न हैं [१] जामाता (जँवाई) (२) बिच्छू (३) बाघ (४) मद्य (५) मूर्ख (६) भानजा और (७) राजा। इनमें से किसी को भी गुण की पहचान नहीं होती।" निष्कण्टक राज्य भोगने के लिए उसने एक ब्राह्मण के कहने से अपनी माता के वंश वालों का मरवा डाला। इस पापकर्म के लिए आगे चल कर उसने स्वयं पश्चात्ताप किया, परन्तु उसके इतिहासलेखकों ने मरने वालों का मूल्य कम करने का प्रयत्न करते हुए लिखा है कि वे सभी पापी, गर्विष्ठ, मद्यपान करने वाले, प्रजा को दुख देने वाले और देव ब्राह्मणों का तिरस्कार करने वाले थे। [१]

चावड़ा वंश का नाश होते ही आस पास के सभी राजा गुजरात का राज्य प्राप्त करने के लिए लोलुप हो गये थे। अतः मूलराज को अब अपने सद्यः प्राप्त राज्य की रक्षा करने के लिए राजनैतिक चालों में व्यस्त

करेंगे, फिर एक दिन नीबू खून में भिगो कर फेंको जिसको माँस का टुकडा समझ कर गिद्ध ले जावेंगे और वह नीबू न कभी जमीन पर आकर गिरेगा और न तुम गद्दी से हटोगे।" मूलराज ने ऐसा ही किया और एक दिन खून से रंगा हुआ नीबू फेंका जिसको लेकर गिद्ध उड गया। सामन्तसिंह ने उसे गद्दी से उतरने के लिए कहा परन्तु उसने कहा कि नीबू तो भूमि पर आकर गिरा ही नही। इस पर उनमें झगड़ा हो गया और दरबारियों की सहायता से मूलराज ने सामन्तसिंह को मार डाला। मेरुतुंग के लेखानुसार संवत् ९९८ में २१ वर्ष की अवस्था में मूलराज स्वतन्त्र रीति से गद्दी पर बैठा।

(१) शेक्सपीयर ने किंग जॉन नामक नाटक के तीसरे अंक के दृश्य ४ में इस प्रकार लिखा है "जो 'राजदण्ड' (राज्य) अन्यायपूर्वक अपहरण करके लिया जाता है उसको निभाने के लिए कलहपूर्ण उपाय ही काम में लाने पडते हैं। जो मनुष्य फिसलनी जगह पर खड़ा होता है उसको निर्बल आधार गिरने से नहीं बचा सकते।"

होना पड़ा। उत्तर में नागोर [१] अथवा साम्भर का राज्य था जो बाद में अजमेर राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ का राजा एक लाख गाँवों का स्वामी था। इसी राजा ने पहले पहल मूलराज पर हमला किया।

इसके साथ ही लगभग उसी समय तिलगाना [२] के राजा, तैलिप के अधिकारी (सेनापति) बारप ने भी गुजरात पर आक्रमण कर दिया। [३] मूलराज के इतिहास लेखक लिखते हैं कि उसके मन्त्रियों ने उसे

(१) मेरुतुंग ने सपादलक्ष देश लिखा है।—चौहानराज विग्रहराज।

(२) मि० वाल्टर इलियट ने रायल एशियाटिक सोसायटी की पुस्तक के भाग ४ के पृ० १ में कल्याण के चालुक्य अथवा सोलंकी वंश का वर्णन करते हुए तैलप देव नामक राजा के विषय में लिखा है कि उसने शक संवत् ८९५ से ९१९ तक (९७४ ई० से ९९८ ई०) तक राज्य किया। इससे विदित होता है कि वह मूलराज का समकालीन था। निस्सन्देह यह वही तैलप था जिसने मालवा के वीर राजा मुंज को मारा था। मिस्टर इलियट ने कल्याण राज्य की उत्तर दिशा की सीमा नर्मदा नदी लिखी है। 'प्राचीन गुजरात' के कर्त्ता ने लाट देश का बारप लिखा है।

(३) कीर्ति कौमुदी में लिखा है कि लाटेश्वर का सेनापति बारप ऐसा असाधारण पराक्रमशाली था कि कोई भी उसके सामने ठहर नहीं सकता था। मूलराज ने उसका वध करके उसके हाथियों का समूह ले लिया।

"अथ चौलुक्यभूपालः पालयामास तत् पुरम्।
जितराजसमाज श्री मूलराज इति श्रुत ॥१॥
आवर्जिता जितारातेर्गुणैर्बाणरिपोरिव।
गुर्जरेश्वरराज्यश्रीर्यस्य जज्ञे स्वयंवरा ॥२॥
लाटेश्वरस्य सेनान्यमसामान्यपराक्रमः।
दुर्वारं बारपं हत्वा हास्तिकं यः समग्रहीत् ॥३॥

समझाया कि जिस प्रकार मैंढा पीछे हट कर जोर से टक्कर मारता है तथा बाघ क्रोधित होकर अपने अंगों को समेट लेता है जिससे कि वह अधिक भयानक हमला कर सके उसी प्रकार आप भी एक बार हट कर अपने पराक्रम को रक्षित रखें। इनके कहने से अथवा अपनी नित्य की प्रपचभरी नीति से मूलराज अणहिलवाडा से दूर जहाँ कोई हमला न कर सके ऐसे कंथकोट [१] किले में, जो कच्छ के नाके पर स्थित है,

---

सपत्नाकृतशत्रूणां सम्पराये स्वपतत्त्रिणाम् ।
महेच्छ: कच्छभूपाल लक्षं लक्ष चकार य: ॥४॥
दानोपद्रुतदारिद्र्यं शौर्यनिर्जितदुर्जनम् ।
कीर्तिस्थगितकाकुत्स्थं, यो राज्यमकरोच्चिरम् ॥५॥
(कीर्ति कौमुदी सर्ग २)

भाषान्तर में आचार्य वल्लभ की कविता दूसरे सर्ग में इस प्रकार है :—

हवे चौलुक्य भूपाल, पुरने पालतो हतो ।
जीती राज–समाज ने, मूलराज करी छतो ॥१॥
जित–शत्रु थी छुटेली, कृष्णानीवत् गुणे करी ।
गुर्जरेश्वर–राज–श्री, जेने पोता थकी वरी ॥२॥
सेनानी लाटेश्वरनो, असामान्य पराक्रमी ।
ते बार्पने हणी जेणे, हाथी सेना ग्रही दमी ॥३॥
पीडेला छे शत्रु जेणे, ते स्वबणों तणु रणे ।
निशान कच्छ भूपाल, लाखानु करयु जे हणे ॥४॥
हण्यों दारिद्र्य दानो दई, जित्या शौर्य थी दुर्जनो ।
कीर्तिए रामने ढाँकी, कर्यू राज्य घणा दिनो ॥५॥

(१) कच्छ के मचाऊ तालुके में यह किला है जो कंथा दुर्ग अथवा कंथा गढ कहलाता था। ९४३ ई० में जाम साडजी ने इसको पूरा किया। उसके पिता जाम मोडजी ने इसको बनवाना शुरू किया था।

जा बैठा। उसको यह भी आशा थी कि वर्षा ऋतु में दुख पाकर अजमेर का राजा अपने आप वापस लौट जायगा परन्तु, वह राजा वर्षा ऋतु मे भी जैसे तैसे रणक्षेत्र में डटा रहा और नवरात्र आते ही हमले की तैयारियाँ करने लगा। मूलराज ने कैसा क्या प्रलोभन [१] देकर अजमेर

---

[१] मेरुतुंग के लेखानुसार प्रलोभन देने की बात इस प्रकार है —

"नागोर के राजा ने जहाँ पडाव डाला था वहीं पर शाकंभरी नामकी नगरी बसाई। अपनी गोत्र देवी की स्थापना करके वहीं नवरात्र पूजन करने के बाद मूलराज ने देवी-पूजन (लहृखिका) के मिष से अपने सामन्तों को कुंकुमपत्रिका भेजी। जब वे लोग आए तो उनकी अगवानी के लिए सामन्त भेजे और मुहूर्त के समय स्वयं भी ऊंटनी पर सवार होकर आ पहुँचा। सपादलक्ष की छावनी में घुस कर उसने कहा "इस भूमण्डल में मुझसे मुकाबला करने वाला कोई नहीं है परन्तु आप युद्धार्थ पधारे हो इसलिए मुझे हर्ष है क्योंकि मुझे युद्ध करने का प्रसंग तो प्राप्त हुआ, परन्तु तैलिप के सेनापति बारप ने भी अभी चढाई की है इसलिए मैं उसे शिक्षा देकर आता हूँ, तब तक आप यहीं आराम करें, फिर हम लोग परस्पर युद्ध का रस लेंगे। बस, मैं यहीं निवेदन करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ।" सपादलक्ष के राजा ने कहा, "एक कटार मात्र के बल पर आप मेरे जैसे शत्रु की अनगिनती सेना के बीच मे घुस आये इसलिए आपका साहस धन्य है। आपके साथ तो मुझे मित्रता करना उचित है।" मूलराज तुरन्त ही उठ खडा हुआ और अपने साथियों सहित ऊँटों पर सवार होकर चल दिया। वहाँ से चल कर वह सीधा बारप की सेना पर "हर! हर! महादेव!" कहता हुआ टूट पडा और उसका विध्वंस कर दिया। विजय करके मूलराज शाकम्भरी की ओर आया, तब तक उसके पराक्रम की बात सुनकर सपाद-लक्षेश्वर भी चलता बना। मूलराज भी इस घटना से बहुत प्रसन्न हुआ। इस वृत्तान्त को अमर करने के लिए उसने 'मूलराज वसहिका' और मुंजाल देव स्वामी का प्रासाद बनवाया। कहते हैं कि उसके भक्तिभाव से प्रसन्न होकर सोमेश्वर महादेव ने उसे मण्डलिक नगर में दर्शन दिये और कहा, "मैं तेरे अणहिलवाडा पट्टण में निवास करता हूँ इसका परिचय तुझे शीघ्र ही मिल जायगा" वहाँ जाकर उसने देखा कि नगर के सभी कुओं का जल खारा हो गया है वह जान गया कि सोमेश्वर भगवान्

की सेना को वापस कर दिया, इसके विषय में कोई सहज ही ध्यान में आने वाला लेख नहीं मिलता परन्तु इस सेना के लौट जाने के पश्चात

अपने सेवक समुद्र सहित पधारे हैं इसलिए उसने त्रिमूर्ति प्रासाद बनवाया, तब तुरन्त ही सब कुओं का जल मीठा हो गया।

त्रिपुरुषप्रासाद के लिए पुजारी ढूँढता हुआ मूलराज सरस्वती नदी के किनारे कथडी नामक पवित्र तपस्वी के पास पहुँचा और उसे पुजारी बनने के लिए कहा। परन्तु उसने कहा :—

"अधिकारात्त्रिभिर्मासैर्मठपत्यात्त्रिभिर्दिनैः।
शीघ्रं नरकवाञ्छा चेत् दिनमेकं पुरोहितः ॥"

"अधिकारी को तीन महीने में और मठाधीश को तीन दिन में नरक की प्राप्ति होती है, यदि और भी शीघ्र नरक में जाने की इच्छा हो तो एक दिन के लिए पुरोहित बन जावे।" इसलिए हे राजन्! मैं इस संसार समुद्र से पार हो जाने के लिए ऐसे लोभ से दूर ही रहता हूँ।" राजा ने सोचा कि आदमी तो सत्पात्र ही है परन्तु स्वीकार नहीं करता है, अब क्या करना चाहिए? ऐसा सोच कर उसने एक युक्ति की कि कंथड़ी की झोली में भिक्षा की रोटियों के साथ उसके नाम का एक ताम्रपट्ट डाल दिया। कंथड़ी ने वह ताम्रपट्ट अपने एक राजवंशीय शिष्य वयजल्ल देव को दे दिया और उसे राजा के पास जाने की आज्ञा दी। ताम्रपट्ट के अनुसार उसको ३२ वारांगना, ८ पल केसर, ४ पल कस्तूरी, स्नान के लिए १ पल कपूर, आच्छादन के लिए श्वेत छत्र और ग्राम आदि मिले। सम्यक् प्रकार से त्रिपुरुषप्रासाद के अधिकारी के धर्म-स्थान पर उसका अभिषेक कर दिया गया। यह स्थान ककरौल अथवा आजकल कॉकरोल" कहलाता है।

यह पुजारी राजवंशी था इस लिए मन्दिर में राजसी ठाठ बाट बहुत रखता था। मूलराज की रानी को उसके चरित्र पर सन्देह हुआ इसलिए वह एक दिन रात्रि के समय पुजापा (पूजा सामग्री) लेकर गई। वयजल्ल देव उसकी बुद्धि को समझ गया था इसलिए उसने रानी पर पान के पीक की पिचकारी मार दी। जिस जिस स्थान पर पीक लगा रानी के कोढ निकल आया। फिर बहुत कुछ अनुनय विनय करने पर उस ब्रह्मचारी ने अपने स्नान किए हुए जल से उसको स्नान कराया तब वह कोढ़ मिट गया।

उसने अपने सामन्तों को (१) इकट्ठा करके वारप पर आक्रमण किया, उसके सेनापति को मार डाला और खूब मार काट करके सेना को भगा दिया।

इस प्रकार शत्रुओं से छुटकारा पाकर मूलराज ने अणहिलपुर में कितने ही धार्मिक स्थान बनवाना आरम्भ किया। इनमें से एक प्रख्यात सिद्धपुर का रुद्रमाला नामक महादेव का मन्दिर था जिसके पूरा होने के पूर्व ही वह चल बसा। कहते हैं कि, उसने शिवजी की बहुत आराधना की थी इसलिए शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे मन्दिरों मे सबसे अधिक स्मरणीय सोमनाथ के मन्दिर सहित सोरठ का राज्य दे दिया था। सोरठ की प्राप्ति के विषय में सुप्रसिद्ध हेमाचार्य ने अपने "द्व्याश्रय' काव्य मे जो वृत्तान्त लिखा है उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं.--

जैन आचार्य का कथन है कि "मूलराज संसार का उपकार करने वाला, उदार और सद्गुणों का भडार था। सब राजा लोग सूर्य के समान उसकी पूजा करते थे, जो लोग अपना देश छोड़ कर उसके देश में बसते थे उन्हें सुख मिलता था, इसी कारण उसने चक्रवर्ती पद प्राप्त किया था। उसके शत्रुओं में से आधे तो उसके हाथों मारे गये और

---

(१) सामन्तों में नॉदोल के चौहानों के विषय में प्राय ऐसी दन्त-कथा प्रचलित है :—

संवत् १०३९ (९८३ ई०) में पट्टण शहर के आदि दरवाजे पर लाखनराय चौहान कर वसूल करता था। उसने मेवाड के राजा से मनमाना कर वसूल किया था।

मेरुतुंग ने प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि सपादलक्षीय (चौहानराज विग्रहराज द्वितीय) ने मूलराज पर चढाई की परन्तु उसकी हार हुई और वह इसी लडाई में मारा गया। मूलराज ने उसके हाथी घोडे ले लिए।

आधों को उसने अन्त्यजों के समान शहर के बाहर भिखमंगा करके छोड़ दिया। उनकी स्त्रियों को, जिन्होंने कूपमण्डूक के समान कभी घर के आँगन के बाहर कुछ न देखा था, जंगल में घूमते हुए भीलों ने पकड़ लिया और नगरों में दासियों के समान बेच दिया।"

एक समय सोमनाथ महादेव ने मूलराज को स्वप्न में दर्शन दिये और आज्ञा दी "ग्राहरिपु [१] तथा दूसरे दैत्यों को, जिन्होंने प्रभास

---

(१) चंद्रवंश में आदिनारायण से चौथा पुरुष चन्द्रमा हुआ, जिसके वंशज चन्द्रवंशी कहलाये, दशवा पुरुष यदु हुआ जिसके वंशज यादव अथवा जादव कहलाये। इसी वंश के ५४ वें पुरुष श्रीकृष्ण हुए। इनके पुत्र साम्ब का विवाह मिश्र (ईजिप्त) देश में शोणितपुर के राजा बाणासुर के बाद में होने वाले कौमाण्ड की पुत्री रामा से हुआ था। इनसे ५६ वा पुरुष उष्णीक उत्पन्न हुआ जो यादवस्थली के समय अपने ननसाल शोणितपुर में था। कौमाण्ड के कोई पुत्र नहीं था, इसलिए वह उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके वंश का १३५ वा पुरुष देवेन्द्र ईसा की छठी शताब्दी के अन्त में शोणितपुर का राजा हुआ। उसके चार पुत्र हुए (१) असपत (अश्वपति) उपनाम उग्रसेन (२) गजपत (गजपति) (३) नरपत (नरपति) और भूपत (भूपति)। उसी (देवेन्द्र) के समय में हजरत मुहम्मद साहब ने मुसलमान धर्म चलाया। मिश्रदेश के बहुत से लोग मुसलमान हो गये। इन चारों भाइयों पर भी यह आपत्ति आई तो ये राज्य छोड कर भाग निकले। बड़ा भाई असपत तो मुसलमान हो गया और बाकी तीनों भाई भाग कर अफगानिस्तान चले आए। यहां पर इन तीनों में से बडे गजपति ने अपने नाम पर विक्रम सवत् ७०८ (६५२ ई०) के वैशाख की शुक्ला ३ शनिवार रोहणी नक्षत्र में गजनी नामक शहर बसाया और नरपति को वहां का जाम नियुक्त किया। गजनी और खुरासान के बीच के प्रदेश में भूपति ने अपना राज्य स्थापित किया। उसके वंशज भट्टी अथवा भाटी कहलाए। कुछ पीढियों बाद खुरासान के राजा ने उसको वहां से निकाल दिया, तब उन्होंने पंजाब में आकर (लाहौर के आस-पास) सलभाणा शहर बसाया और वहीं पर अपना राज्य स्थापित किया। परन्तु, यहां भी शत्रुओं ने उनका पीछा न छोडा इसलिए वे सिंध और मारवाड के बीच के

तीर्थ का नाश किया है, नष्ट करो। मेरे प्रताप से तुम उन पर विजय प्राप्त करोगे।"

दूसरे दिन ही प्रातःकाल जब दरबार में बहुत से मुकुटधारी राजा

हिस्से में आकर बस गये। यहा पर उमरकोट के परमार राजा व जालोर के सोनिंगरा के साथ इनका बेटी व्यवहार हुआ। सवत् ७८७ मे उन्होंने "तणोत" का किला बंधवा कर राजधानी कायम की। इसके बाद देवराज रावल ने तणोत के अतिरिक्त "देवराजगढ" नामक दूसरा किला बनवाया। देवराज की छठी पीढी में जेसल हुआ जिसने सन् ११५६ ई० में नगर से दस मील की दूरी पर अपने नाम पर जैसलमेर का किला बनवाया। तब से इस वश की राजधानी वहीं है।

गजपत के १५ कुंअर थे जिनके नाम ये हैं—(१) सालवाहन (२) बलद (३) रसलू (४) धर्मगध (५) वाचा (६) रूप (७) सुन्दर (८) लेख (६) जसकर्ण (१०) नेमा (११) मात (१२) निमक (१३) गगेव (१४) जगेव और (१५) जयपाल। अपने इन १५ कुंवरों के साथ वह हिन्दुस्तान में आया। कुछ पीढियों बाद ठट्ठा नगर में चूडचन्द (चूडाचन्द्र) यादव हुआ हुआ जो सौराष्ट्र में वामनस्थली (वनथली) के राजा वालाराम चावड़ा का भानजा था। बालाराम अपने पुत्र से असतुष्ट था, इसलिए उसने चूडचन्द्र को अपना उत्तराधिकारी बनाया। इसके वशज चूडासमा राजपूत कहलाए।

"श्री चन्द्रचूडे चूडाचन्द्रे चूडासमानमधृत यतः।
जयति नृपहसवशोत्तस संसत्प्रशंसितो वंश.॥"

यह सस्कृत पद्य अशुद्ध है।

वामनस्थली की गद्दी पर चूडचन्द्र ने ८७५ ई० से ९०७ ई० तक राज्य किया। उसका पुत्र हमीर उसके जीवनकाल में ही मर गया था इसलिए हमीर का पुत्र मूलराज चन्द्रचूड की गद्दी पर बैठा, जिसने ९०७ से ९१५ ई० तक राज्य किया। उसके पुत्र विश्ववराह ने ९१५ ई० से ९४० ई० तक राज्य किया। इसने राह पदवी धारण की, इसके बाद ग्रहअरिसिंह (राहगरियो १ ला अथवा ग्रहारिसिंह) उपनाम ग्राहरिपु हुआ। उसने ९४० ई० से ९८२ ई० तक राज्य किया। यह महा बलवान् था, इससे दिल्ली,

नित्य की रीति के अनुसार एकत्रित हुए तो सोलंकी राजा (मूलराज) ने अपने प्रधान जम्बुक और खेरालू के राजा जेहल से पूछा 'महादेव की आज्ञा का पालन किस प्रकार किया जाय?' जेहल से उसने पुनः पूछा "ग्राहरिपु [१]

देवगढ़, लंका आदि के राजा डरते थे। अणहिलवाड़ा के राजा मूलराज सोलंकी से ९७८ ई० में लड़ाई हुई जिसमें उसकी हार हुई। जूनागढ का ऊपरकोट इसी का बँधवाया हुआ है।

गजनी शहर की गद्दी पर जाम नरपत के बाद उसका पुत्र, उसके वंश में १३ वा पुरुष, सम्पत अथवा साम हुआ। उसके वंशज समा कहलाये जो बाद मे जाडेचों के नाम से प्रसिद्ध हुए। जाम समा को मुसलमानों के साथ लड़ाई में गजनी का राज्य खोना पड़ा, इसलिए अफगानिस्तान व सिंध की सरहद पर उसने राज्य जमाया। उसकी दसवीं पीढी में (१४६ वां पुरुष) लाखियार भड हुआ जिसने समै नगर (बाद में नगर ठठ्ठा) बसा कर अपनी राजधानी कायम की। उसका पुत्र (१४७ वा पुरुष) लाखोजी (अथवा लाखा धुरारा) हुआ। उसके बाद उसका छोटा पुत्र उन्नडर्जी गद्दी पर बैठा, बड़ा पुत्र (१४८) मोडजी कच्छ में आ गया और पाटगढ के राजा, अपने मामा वाघम चावडा का राज्य लेकर ८१९ ई० में गद्दी पर बैठा। उसके पश्चात् उसका कुंवर (१४९) साडजी हुआ जिसने कच्छ के बागड में कथकोट के किले को, जिसको उसके पिता ने बनवाना शुरू किया था, पूर्ण किया। उसका पुत्र फूलजी हुआ जिसने ८५५ ई० से ८८० ई० तक राज्य किया। फूलजी का पुत्र लक्षराज (लापाक) अथवा लाखोजी वा लाखो फूलाणी हुआ। उसने ८८० ई० से ९७९ ई० तक राज्य किया।

इस प्रकार विदित होता है कि लाखा फूलाणी और ग्राहरिपु चचेरे भाई थे। इससे यह भी विदित होता है कि ग्राहरिपु यादव कुल का ही था इसीलिए उसको यहाँ गायें चराने वाला (ग्वालिया) लिखा है।

(१) ग्राहरिपु कोई नाम नहीं है वरन् उपनाम है। द्व्याश्रय के टीकाकार ने इसका अर्थ यों किया है:— ग्राह=मगर, रिपु=शत्रु अर्थात् शत्रु को पकड़ने वाला।' अजमेर के किसी राजा ने किसी मुसलमान सुलतान को हराकर पकड़ लिया था इसलिए वह "सुल्तान ग्राह" कहलाता था।

को मैने ही राजा बनाया है परन्तु बुरे नक्षत्रों में जन्म लेने के कारण वह निर्लज्ज और यात्रियों को दुख देने वाला हो गया है। उसने मुझसे ही अधिकार प्राप्त किये हैं, यह बात ठीक है, परन्तु जब वह ऐसे कुकृत्य करता है तो मै उसका वध क्यों न कर दूँ ?।"

जेहल ने ग्राहरिपु के अवगुणों का वर्णन करते हुये कहा :—❀

"यह ग्वालिया बहुत ही अन्यायी है। श्रीकृष्ण क राज्यकाल से इसके पूर्व तक जो गद्दी प्रताप से प्रकाशमान थी उसी सौराष्ट्र की गद्दी पर बैठ कर यह राज्य करता है और प्रभास को ओर जाने वाले यात्रियों को मार कर उनके हाड मांस मार्ग में बिखेर देता है। जिस वामनस्थली नगरी मे कभी हनुमान् व गरुड की ध्वजाएं फहराती थी वहीं आज वह रावण के समान निर्भीक होकर राज्य करता है [१] और अन्यान्य पवित्र स्थानों मे चोरों को बसाता है। वह ब्राह्मणों का तिरस्कार करता है और यात्रियों को बीच ही में लूट लेता है, इसलिए धार्मिक मनुष्यो क हृदय मे काँटे की तरह खटकता है। वह युवा है, कामी है, और मोह का पुतला है, इसलिए अपने शत्रुओं का नाश करके उनकी स्त्रियो को बलात् अपने

---

(१) यहाँ ठीक नही लिखा है—पद्य का भावार्थ इस प्रकार है —

"जो सुराष्ट्र भूमि श्री विष्णु (श्रीकृष्ण) जैसे उत्तम राजा से राजवन्ती थी और जो गरुडध्वज (श्रीकृष्ण) तथा कपिध्वज (अर्जुन) जैसे नर नारायण के बसने योग्य थी वहीं आज ग्राहेरिपु जैसा खराब राजा राज्य करता है।"

(❀) द्व्याश्रय काव्य के द्वितीय सर्ग मे श्लोक स. ५९ से ९५ तक मूलराज, जम्बुक और जेहल का सम्वाद बहुत ही रोचक शब्दों मे निगुम्फित है। प्रो मणिलाल नभु भाई द्विवेदी ने इसका गुजराती में अनुवाद किया है, उसी का हिन्दी भाषान्तर यहाँ दिया दिया जाता है।

"मैने ही ग्राहरिपु को गद्दी पर बिठाया है, परन्तु कुलग्न में जन्म लेने के

अन्तःपुर में खींच ले जाता है। यह बर्बर मनुष्य गिरनार के पर्वत पर भटकता रहता है और प्रभास के हरिणों की शिकार करता है। वह गोमांस का भक्षण करता है, मद्य पीता है और युद्ध में भूतों, पिशाचों और उनके गणों को शत्रु का रुधिर पिलाता है। पश्चिम देश के राजा

कारण वह निर्लज्ज, परिव्राजकों का हिंसक हो गया है। इसीलिए पूछता हूँ कि मैं उसका नाश किस रीति से करूँ ? क्योंकि मैंने स्वयं जिसको स्थापित किया है उसी का उच्छेद करके विनाशक कैसे बनूं ? कोई भी सात्त्विकपुरुष ऐसा कैसे कर सकेगा ? (ग्राहरिपु के) वध्यत्व और अवध्यत्व का प्रश्न उपस्थित होने पर (मेरा) क्या कर्त्तव्य है ? यही मैं तुम से पूछता हूँ, सो विचार कर मुझसे कहो।"

"भीति के अस्थान और बुद्धि के परम धाम, शत्रुओं के संहारकर्त्ता, हे महाशय जम्बुक ! तुम बृहस्पति के समान हो, और हे जेहल ! तुम शुक्र के समान बुद्धिमान् हो, अतः एक क्षण का भी विलम्ब मत करो और जो योग्य (उचित) बात हो वह कह दो।"

तब जेहल बोला "चर्मण्वती नदी का सृजन करने वाले (बहुत से यज्ञों के विधायक रन्तिदेव) सदृश. तथा रुमण्वान् (पर्वत) के समान अति उन्नत, और कृत्तिवान के समान परम धार्मिक ! हे समस्तभूपतियों द्वारा (घुटने टेक कर) नमस्कृत राजा ! इस आभीर (अहीर) चक्रीवान् (गधे) को उद्देश्य करके जो आपको (शम्भु ने) आदेश दिया है वह युक्त ही है।

"उदन्वान् (जिनमें पानी है ऐसे) ऋषि के अपत्यों औदन्वतों और (जो पानी में स्थित हैं ऐसे) औदन्वत नामक आश्रमों में रहने वाले ऋषियों से द्रोह करने वाले इस (आभीर) ने सुराष्ट्र देश के राजाओं को मार डाला है और तीर्थपान्थों (यात्रियों) के अस्थिचर्मादिक से समुद्र के किनारे आई हुई प्रभास भूमि को पाट दिया है जो प्रयत्नवान् लोगों के लिये भी अगम्य हो गई है।

"जो सुराष्ट्र भूमि श्रीविष्णु के कारण राजन्वती (अच्छे राजा से युक्त) थी उसीको, दम्मि नामक अस्त्रवाला होने से ऊर्मि सहित के समुद्र समान भयङ्कर दिखाई देने वाले और कृमिरोग वाले के शरीर की गरमी के समान जिसके शौर्य का ताप दुख देने वाला

इस ग्राहरिपु ने बहुत से उत्तर व दक्षिण के राजाओं को रथ छुडा कर भगा दिया है और अब ऊँचा मुह करके चलता है मानों स्वर्ग को ही जीतने की इच्छा करता हो। ग्राहरिपु यमपुरी के स्वामी यमराज के समान विकराल शरीर वाला है। उसका स्वभाव भी वैसा ही उग्र है और ऐसा प्रतीत होता है मानो वह समस्त पृथ्वी को ही निगल जायगा अथवा स्वर्ग को झपट लेगा। इसके राज्य में जो कारीगर लोग हैं वे उम

हैं ऐसे, इस राजा ने निकृष्ट राजा से युक्त बना दिया है।

"हाथ मे यव लिए हुए मुनियों से उनकी गौओं को, माहिष्मतीपुरी के ईश (कार्तवीर्य-सहस्त्रार्जुन) के समान, हरने वाला, वृषभ जैसे कन्धों वाला, भानुमति के पति (दुर्योधन) जैसा यह ग्राहरिपु रूपी दुष्ट राजा गरुडध्वज (कृष्ण) और कपिध्वज (अर्जुन) के बसने योग्य वामनस्थली मे रह रहा है।

"रात्रि में आक्रमण करने वाले, रात्रि में जो सोना (निद्रा) नहीं जानता, जो उग्र-बाहु है और जो आसन डाल कर बैठना नहीं जानता ऐसे ग्राहरिपु के होते हुए भी, बीस भुजाओं वाले रावण का भाई विभीषण चिरायु होने के कारण तीर्थों मे भ्रमण ता करता है, परन्तु मुझे लगता है कि (इस दुष्ट राजा के कारण) प्रभासतीर्थ में महीना डेढ महीना रहने की इच्छा होने पर भी वह यहाँ ठहर नहीं सकता।

"जो हृदय से ही दुष्ट है, जो लोगो के हृदय में सालता रहता है, जो रावण से भी चौगुणा अथवा अठगुणा ओछा (क्षुद्र) है और जो समुद्र के जल से भी नहीं अटकता (रुकता) ऐसा यह (राजा) खून पीने वाले (राक्षसों) को शत्रुओं का लहू पिला कर प्रसन्न रखता है।

"और (डर के मारे) निकल पडते हुए लींडों तथा आँतों वाले शत्रु के हाथियो के समूह को यमके दाँत के समान अस्त्रों से मारता हुआ, मद्यपानादि के समान रक्तपान से, तथा जिनमें से विष्टा निकल पडी है ऐसी अन्त्रावलियों से पिशाचियों को यह राजा तृप्त करता रहता है।

"तीर्थयात्रियों के शत्रु इस ग्राहरिपु ने व्याघ्रपादि ऋषि का, जिनकी दृष्टि निरन्तर नासाग्र पर स्थित रहती है, जिनका मन सदैव द्विपधादि छन्दों की रचना में

दुष्ट के संग के कारण कला को ऐसे ऐसे शस्त्र बनाने मे काम में लेते हैं कि उनकी चपेट से कोई बच नहीं सकता। उसको अपने धर्म अधर्म का विचार नहीं है। उसके पास सेना बहुत है और इसलिए सभी राजा उसको नमस्कार करते हैं। वह बहुत धनी है—उसने सिन्ध के राजा को पकड़ लिया और दण्ड में उससे हाथी घोड़े छीन लिए। इसी प्रकार उसने और भी वहुत से राजाओं को दबा लिया है। मेरा विश्वास

रत रहता है और जो मनुष्य मात्र के हितचिन्तन में निरत रहते हैं उनका नाक हिलाकर और अनुचित वचन कह कर, तिरस्कार किया है।

"मनुष्यमात्र के प्रति दुष्टता करने वाले, बुद्धिहीन तथा कुटिल कर्म करने वाले, चतुर्थांश लेने की प्रतिज्ञा करके लोगों से सम्पूर्ण भाग छीन लेने वाले इस दुष्ट के कारण क्या धर्म विपत्ति में नहीं पड़ गया है ?

"पश्चिम दिशा का स्वामी यह ग्राहरिपु, दक्षिण तथा उत्तर दिशा के राजाओं को पशुओं के समान अपने आगे आगे पैदल चलाता हुआ अहकार में भरकर हृदय और चक्षुओं को ऊंचे से ऊचे रखता हुआ मानो स्वर्ग के ही मार्ग पर जा रहा हो इस तरह, अधर चलता है।

"बहुत से विद्वानों के होते हुए भी केवल पापियों की संगति में रहने वाले, मनुष्यों के विषय में धर्मज्ञों के होते हुए भी पाप-ही में रत रहने वाले. अति रौद्र अस्त्रादि के प्रयोग में नैपुण्यप्राप्त इस राजा के चरित्रों को इसके डर से नीचे धसकती हुई पृथ्वी ही जानती है (और कोई नहीं जान सकता है)।

"अति क्रूरता के कारण वरु (वरुण) के समान तथा इन्द्र के वैभव की इच्छा रखने वाले इस युवान् की कुत्ते की पूंछ के समान वक्र बुद्धि, इन्द्राणी का भोग करने वाले इन्द्र के हृदय मे कॉटे के समान सालती रहती है।

"यौवन के मद में श्वान के समान उन्मत्त, स्त्रीलम्पट तथा इन्द्र से अन्यून इस राजा ने अन्य भूपतियों को रुधिराक्त बाणो से मार मार कर उनकी रोती हुई रानियों को अपने अन्त-पुर में रख लिया है।

"सामवेद मे (रथन्तर और वृहद्रथन्तर) साम के समान वृत्र तथा अर्जुन के

है कि यदि यमलोक का राजा यम भी उसके साथ युद्ध करे तो उसके (यम के) लिए दण्ड देकर छुटकारा पाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। पहाड़ों पर बने हुये किलों और सुरक्षित स्थानों को वह नष्ट कर देता है और समुद्र में भी आ जा सकता है इसलिए उससे बच

समान बली, राजाओं को बन्दी बनाकर रखने वाले, सुन्दर अश्वों वाले, दुष्ट कर्म करने वाले, ऐसे इस पापध्वस रूप राजा के सामने देख कर कौन नहीं झुकता है ?

"शतघ्नी नामक आयुध से हजारों ब्राह्मणों को मार डालने के कारण यज्ञमात्र को बन्द कर देने से पृथ्वी के लिये प्लीहा रोग के समान इस राजा से (डर कर) अपना यज्ञभाग न मिलने से क्षुधातुर हुआ इन्द्र प्रतिदिन इस दुष्ट को पृथिवीपति बनाने वाले विधाता को कोसता रहता है।

"विशालता के कारण दीप्तिमान, मद से घूर्णित, चलायमान और यम से स्पर्द्धा करते हुए, पृथ्वी और आकाश को निगल जाने के लिये तत्पर इसके नेत्र इसी के शरीर के अनुरूप हैं।

"जिस प्रकार इसके भाथे के चपल बाण शत्रुओं के प्रति दौडते हैं, उनको दलते (रौंदते) हैं और दूर फेंक देते हैं उसी प्रकार देवता भी जिसको छोडकर भाग गये हैं ऐसा, स्वर्ग भी देवताओं के पुनरागमन की कामना करते हुए स्वर्ग कहलाने का अधिकारी कैसे हो सकता है ?

"जिस प्रकार कारक अनेक क्रियाओं का कर्त्ता होता है उसी प्रकार वह भी महा महा पापों का हेतु है, स्वतन्त्र है, कुकर्मों का कर्त्ता है, विश्व को अतिशय ताप देता है, दिशामात्र में घूमता है, समुद्र को भी तैर जाता है, दुर्गों में लिप्त हो जाता है और तनिक भी भय नहीं खाता है।

"खेल में भी अन्य भूपतियों को भडकाता है, पृथ्वी में से सब द्रव्य खींच लेता है, उस द्रव्य से अधर्म का प्रवर्तन करता है, मुनियों के पास अध्ययन नहीं करता है (इतना ही नहीं) उनकी वृत्ति का भी रोध करता है उनसे सन्मार्ग पूछना तो दूर रहा अपितु उनसे कर ग्रहण करता है।

"रत्नाकर में से रत्नों को निकाल लेता है फिर भी कुबेर के भडार की इच्छा

निकलने के लिए लोगों के पास एक भी उपाय नहीं है। इस समय ऐसी दशा हो रही है कि जैसे दैव के कुपित हो जाने पर बचने का कोई उपाय नहीं रहता और नष्ट होना ही पड़ता है। पृथ्वी उसके पापों के भार से दबी जा रही है। जिस राजा में पापी के नाश करने की शक्ति हो और यदि वह

करता है, युद्ध में प्रतिपक्षी इससे अपने प्राणों की याचना करते हैं और इसको अपने स्वामी के रूप में स्वीकार करते हैं।

"रावण परस्त्री को हर कर अपने पुर में ले गया था, कार्त्तवीर्य मुनि की गाय चुराकर ले गया था, कंस ने अपनी बहिन के बालकों का वध किया था। क्या इन्हीं तीनों से इस दुष्ट ने सारी अनीति सीख ली है ?

"सिन्धुपति को मथ कर गज, अश्व, गाय आदि दण्ड में ले लिए हैं और इस युक्ति से महीधर परस्पर विपक्षी (विरोधी) हो गए हैं क्योंकि इसने सिन्धुपति अर्थात् समुद्र का मन्थन करके ऐरावत, उच्चैः श्रवा और कामधेनु को प्राप्त करने वाले तथा महीधर अर्थात् पर्वतों के पक्षों का छेद करने वाले इन्द्र के गुण दण्ड के रूप में ग्रहण किए हैं। यह यम को घात करने के लिए प्रेरित करता है परन्तु स्वयं उससे प्रेरित नहीं होता है।

"इसने सैन्य के समूह से पृथ्वी को खेद का, शेषनाग को भार से पीडा का और शत्रुओं को यमपुरी का अनुभव कराया है। उन (शत्रुओं) का मांस पिशाचों को खिलाया है।

"बन्दी हुए राजाओं को इसने कठोर वचन सुनाए हैं और उन्होंने इसे दण्ड स्वरूप बड़ी बड़ी रकमें भेट की हैं। शत्रुओं के शिर पर पैर रखने वाले इस (राजा) के उग्र तेज ने किसको नहीं रौंध डाला (संतप्त किया) है ?

"यह उज्जयन्त पर मृगया खेलते समय कुत्तों के झुंड द्वारा चमरी गायों को फड़वाकर उनका मांस (कुत्तों को) खिलाता है और प्रभास के आश्रमों की चीत्कार करती हुई हरिणियों को इसने रंग बिरंगे कुत्तों को खिला दिया है।"

"संसार भर में जो अभक्ष्य वस्तुएं मानी जाती हैं उनका भक्षण करने वाले, अखिल जगत् को कुकर्म में प्रेरित करने वाले इस (आहरिपु) के पास दूत के द्वारा

उसका नाश न करे तो उसको भी पापी ही समझना चाहिए। इसलिए, हे राजन् यदि आप उसको नष्ट नहीं करते हैं तो यह आपका ही पाप है। शिवजी ने आपको इसी लिए आज्ञा दी है कि आप उसे मार सकते हैं। अतः अपनी सेना इकट्ठ करो और शीघ्र ही उसको नष्ट करो अन्यथा वह दिन प्रति

सन्देश भेजने अथवा यहाँ बुलाने का काम नहीं है। पलाण सहित हाथियों की सेना तैयार कराओ और उसको आधीन करने के लिए सेनापति को आज्ञा प्रदान करो।

"जो प्रजामात्र को कुमार्ग पर चलाता है, उसको मृत्यु के मार्ग पर चला देना युक्त है। जो ऐसे कुमार्गगामी को दण्ड नहीं देता है वह उसके पाप से अपने धर्म को भी खो देता है।

"यदि आप इसको दण्ड नहीं दोगे तो यह अपने बल से यम को भी कुछ नहीं गिनेगा (आप जैसों की फिर क्या दशा होगी?) क्योंकि सत्पुरुषों द्वारा उपेक्षित होने पर दुष्ट लोग किस किस को कष्ट नहीं देते?

"इस दुष्टनीतिवाले ने (बाह्यचार में जो अनुकूल दिखाई देता है) क्या कभी आज तक आपको प्रसन्नता से देखा है? इस कपटी का तनिक भी सत्कार मत कीजिये जो न्यायप्रिय हैं वे न्याय के ही सामने झुकते हैं।

"हे नाथ! रात्रि को आपने जिससे प्रार्थना की है उस नाथ अर्थात् शिव को यदि आप प्रसन्न करना चाहते हो, यदि आप उत्तम यश प्राप्त करने की इच्छा रखते हो, यदि अपने वंशपरंपरागत धर्म एवं स्मृतिप्रेरक धर्म को समझते हो तो आप इस सम्बन्ध में क्रोध पर ही दया करो, क्षमा पर नहीं।

"आपके स्वामी श्री शंभु आपसे कह गये हैं कि आप ही इस पर शासन करने में समर्थ हैं अत इसका वध करने के लिये सैन्य और बुद्धि दोनों को शुद्ध करके तैयारी करो क्योंकि शत्रु की उपेक्षारूपी व्याधि से, उपेक्षा करने वाले राजा को ही नहीं अपितु समस्त राज्य को पीडा होती है।

"पृथ्वी को सन्ताप देने वाले और (प्रजा को) चूसकर खाने वाले इस व्याधिस्वरूप (राजा) का हनन करने के लिए आपको उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। पृथ्वी

दिन बलवान् होता जाता है और अन्त में इतना शक्तिशाली हो जायगा कि आपके किये नष्ट न हो सकेगा।"

इस प्रकार मूलराज ने जेहुल की बात सुनी[१] और फिर देवताओं के मन्त्री के समान बुद्धिमान् अपने प्रधान मन्त्री जम्बुक की ओर इशारा किया। जम्बुक ने कहा :—[२]

को पीडित करने वाले पर्वतगण का पक्षच्छेद करने के लिए इन्द्र को किसने प्रेरणा की थी ?"

"लोकों को पेल (रौंद) डालने वाले को दण्ड न देने वाला राजा समस्त पृथ्वी को पेल डालता है। यदि ऐसा नहीं करना है तो प्रजा को रगड डालने वाले इस दुष्ट को भी रगड डालो।

"जिस प्रकार इन्द्र ने जम्भ का हनन किया, जिस प्रकार जलशायी विष्णु ने मधु को मारा और शम्भु ने पुर नामक दैत्य का नाश किया उसी प्रकार हे राजा ! पृथ्वी को पीडा देने वाले इस पापी को आप मारो।"

(१) कितने ही वारहठों का कहना है कि ग्रहारिसिंह आग्रही शिवभक्त था इसलिए जैन लोगों से पूर्ण वैर रखता था। जैन यात्रियों को मार पीट कर लूट लेता था इसीलिए जैन ग्रन्थकारों ने उसके विषय मे इतना बुरा लिखा है।

(२) द्व्याश्रय में जम्बुक का वक्तव्य इस प्रकार है:—"वामनस्थली मे निवास करने वाले इस (ग्राहरिपु) का एक गाव के घेरे में उज्जयन्तादि दुर्ग है और एक योजन के अन्तर पर समुद्र रूपी दुर्ग है। इस प्रकार के इसके रक्षणस्थान हैं। यह सदा उद्यत रहता हैं। भात रॉधने में जितना समय लगता है उतनी सी देर भी यह नहीं सोता है। इसको साधना सहज कार्य नहीं है।

"गाय दुहने में जितना समय लगता है उतने से समय के विराम बिना राजा लोग इसकी सेवा करते हैं। सौ कोस के अन्तर पर बैठे हुए सेनापति को आज्ञा देने की रीति से इसके संहार के लिए आप एक हॅसिया से वृक्ष को काटने जैसा (असंभव) प्रयास कर रहे हैं।

"यदि आपको विजय और यश की स्पृहा है तो लोकों पर कोप करते हुए, उस

"वामनस्थली, [१] जहाँ ग्राहरिपु रहता , महा गिरनार की [ग्राहरिपु] से ईर्ष्या करते हुए और द्रोह करते हुए उस दुष्ट का संहार करने के लिए आप स्वयं ही कुपित होकर खड़े हों।

"वन की गुफा में से निकलकर जैसे सिंह वनपशुओं के यूथ में से ढूँढ कर उद्दाम हाथी का ही वध करता है उसी प्रकार जगत् का रक्षण करने हेतु आप भी इसके सामने जाने के विचार से पीछे न हटें। इसमें आपकी हलकाई [न्यूनता] होने जैसी कोई बात नहीं है।

"युद्ध में अपराजित, शत्रु से निर्भय, कच्छ का अधिपति, जो जगत् के लिए भयंकर है, म्लेच्छ करद राजाओं का संरक्षक तथा किसी से भी न टलने वाला ऐसा प्रसिद्ध लक्षराज (लाखोजी) उसके साथ सहोदर भाई के समान व्यवहार करता है।

"जिस प्रकार आश्विन की पूर्णिमा से दीपोत्सव एक पक्ष मात्र दूर है उसी प्रकार कच्छ से सौराष्ट्र की दूरी केवल आठ योजन है, इस प्रकार फूल महाराज का कुमार लक्षराज, जो पृथ्वी के समस्त बलशाली राजाओं से बढ कर है, इससे अधिक दूर नहीं है।

"पर्वत के ऊपर, और समुद्र के किनारे रहने वाले जो राजा क्षत्रियत्व धारण करते हैं और जो इसकी आँखों के आगे रहते हैं वे सब इस युद्ध में सम्मिलित होंगे। आप यह न समझें कि एक या दो ही आपके प्रतिपक्षी हैं वरन् बहुत से हैं।

"एक ही मित्र के सामीप्य में एक मात्र दुर्ग में रहने वाले एक राजा को ही जीत लेना कठिन पड़ता है अत उभय रीति (मित्र और दुर्ग) से सम्पन्न इस (ग्राहरिपु) को मारने में समर्थ, आकाश और पृथ्वी के बीच में इस समय तो, आपके अतिरिक्त और कोई दिखाई नहीं पड़ता है।

सुराष्ट्र में जो आभीर लोग ग्राहरिपु आदि क्षत्रिय बसते हैं उनके प्रति पराक्रम में अर्जुन को भी अतिक्रांत करने वाले आप जब युद्ध के लिए चढाई करेंगे तो उस समय उनकी स्त्रियां 'हे प्राणनाथ! धिग् विधि" इस प्रकार प्रलाप करेंगी। हे प्रभु! ऐसी मेरी कल्पना है।

(सर्ग २ श्लोक १०१ से १०८ का प्रो० मणिलाल नभुभाई कृत गुजराती भाषान्तर का हिन्दी रूपान्तर)

(१) वामनस्थली वही है जो आजकल जूनागढ के पास वनस्थली है। कर्नल

तलहटी में स्थित है जहाँ पर समुद्र का गर्जन भी सुनाई देता है। इस पर भी एक ओर दुर्ग बना कर दृढ़ता करली गई है। यह दुर्ग एक ओर समुद्र से और दूसरी ओर पर्वतों से सुरक्षित है। ग्राहरिपु ऐसा राजा है कि वह रात को भी आँख मींच कर नहीं सोता है। बहुत बड़ी फौज के बिना उसे जीतना उसी प्रकार असाध्य है, जिस प्रकार घास काटने के हँसिया से बड़े वृक्ष को काटना। उसके नगर के आस-पास कई मीलों तक सेना के लिए छावनी डालना कठिन है, और यदि ऐसा हो भी जावे तो वह उसे घेर कर दूसरी सहायता प्राप्त न होने देगा। कच्छ भी सोरठ के पास ही है, वहाँ का महाराजा लाखा जो फूल [१]

वाकर ने अपने सोरठ के परगना विषयक विज्ञापन में लिखा है कि सोरठ के असली राजाओं का प्रथम गृहठाण (राजस्थान) वनस्थली में ही था।

(१) कच्छ के जाडेचों के भाटने इस प्रकार लिखा है :—"कच्छ वागड़ के कथकोट में समा (जाडेचा) राजा जाम साड राज्य करता था। उसको गेडी (घृतपदी) के सोलंकी धरण ने अपना बहनोई जानकर पास रखने के लिए एक पहाड़ी बता दी जिस पर कण्ठड योगी तपस्या करते थे। परन्तु साड ने वहाँ पर कोट खिंचवा कर अपनी सत्ता बढाना शुरू कर दिया इसलिए धरण ने उसको जीमन में बुलाकर मार डाला (ई० स० ८४३)। उस समय धरण की बहन के फूल नाम का एक कुंअर था। सोलंकी राणी ने यह समझ कर कि धरण फूल को भी मार डालेगा इसलिए उसे अपनी फरक नाम की दासी (खवासिन) को सौंप कर वहाँ से भगा दिया। धरण ने भी उसका पीछा करने के लिए आदमी भेजे। उन आदमियों को पास आते देखकर फरक ने तुरन्त अपने लड़के के कपडे तो फूल को पहना दिये और कुंवर के कपडे अपने पुत्र को पहना दिये और पास आते ही उसे (अपने लड़के को) सौंप दिया। उन मनुष्यों ने उसे फूल समझ कर तत्काल मार डाला। उनके चले जाने के बाद फरक, सिंध के रण के पास बामणसर के राजा परमार सोढा घलूरा के गांव में जाकर कराड़ जाति के बनिए के घर दासी बन कर रही। बनिऐ के अज और अणगोर नाम के दो भाई थे और इनके बोलाटी नाम की एक बहन थी। फरक

का पुत्र है, किसी से जीता नहीं जा सकता और ग्राहरिपु से उसका ऐसा मेल है मानों वे दोनों एक ही माता के पुत्र हों। ससार को भयभीत करने वाले और भी बहुत से जगली राजा उसके सहायक हैं। हे महा-राज! यह बात प्रसिद्ध है कि जो शत्रु पर्वतों, वने जगलों और समुद्र से रक्षित है उसे जीतना कठिन है। इस ग्राहरिपु के ये तीनों ही

इनके यहां दासी का काम करती थी और फूल उनके ढोर (पशु) चराया करता था। बनियों के ढोरो (पशुओं) के साथ साथ वह एक लोहार की गाय भी चराता था, जिसकी मजदूरी में उसने लोहार से एक भाग (बरछी) बनवाली थी। इसके बाद स्वभावत: वह शिकार का शौकीन हो गया। एक बार सोढा घलूरा सिंह का शिकार करने निकला, उसके साथ फूल भी गया था। उस समय ऐसी घटना हुई कि घलूरा ने जिस सिंह पर वार किया था उसने छलाग मार कर सोढा का हाथ पकड लिया परन्तु फूल ने उसी समय उछल कर सिंह के भाग मार दी और उसको मार डाला। उसके इस पराक्रम को देखकर घलूरा बहुत प्रसन्न हुआ और पूछताछ करने पर जब उसके जन्म की सच्ची कथा मालूम हुई तो उसके साथ अपनी पुत्री धाण सोढी का विवाह कर दिया।"

प्रबन्धचिन्तामणि मे मेरुतु ग ने फूल के 'लग्न' सम्बन्ध मे इस प्रकार लिखा है :—"प्राचीन काल मे कीर्तिराज नाम का कोई परमार राजा था जिसके कामलता नाम की एक सुन्दर लडकी थी। एक दिन सायंकाल, वह अपनी सखियों सहित किसी प्रासाद मे खेल रही थी। खेल में सखिया खम्भों को पकड पकड कर 'यह मेरा वर' 'यह मेरा वर' इस तरह कह रही थीं। उसी समय फूल नाम का एक ग्वाला किसी तरह वहां जा पहुँचा और एक खम्भे का सहारा लेकर बैठ गया। संयोगवश अँधेरे मे उसके हाथ लगा कर कामलता ने कह दिया "यह मेरा वर।" फूल तो शरमा कर वहा से चल दिया परन्तु राजकुमारी ने उसे पहिचान लिया और मन मे सकल्प कर लिया कि यही मेरा पति हो सकता है।

एक वर्ष बाद कामलता के विवाह की बात चलने लगी तब, उसने अपने माता पिता से सब वृत्तान्त कह सुनाया और यह भी कह दिया कि "फूलडा ग्वालिया के सिवाय

सहायक मौजूद हैं, इसलिए इस बार और किसी पर भरोसा न करके आप स्वयं ही उस पर चढ़ाई करके विजय प्राप्त करें। यद्यपि ये ग्वाल जाति के वीर और किसी के द्वारा नहीं दबाये जा सकते परन्तु वे आपकी चढ़ाई होते ही थर थर कॉपने लग जावेंगे और उनकी स्त्रियां विधवाओं के समान शोक भरे गीत गाने लग जावेंगी।"

सब पुरुष मेरे पिता व भाई के समान हैं।" लड़की का आग्रह देखकर उसके माता पिता ने फूल के साथ ही उसका विवाह कर दिया। फूल से कामलता के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम लाखा था जो अब भी "लाखा फूलाणी" के नाम से प्रसिद्ध है। कालान्तर में वह कच्छ देश का अधिपति हुआ। मालवे का राजा यशोराज, भैरव के प्रसाद से महा समर्थ और अजेय राजा हुआ। उसने ११ बार मूलराज की सेना को हरा दिया था। एक बार वह कपिलकोट (केरा के कोट) के दुर्ग में था (जो आजकल भुज परगने में केरा नामक गाव में है)। मूलराज ने भेद पाकर उसको घेर लिया। उस समय लाखा भी वहीं था और उसने अपने शूरवीर भृत्य माहेच का स्मरण किया। उस समय माहेच अन्य देशों को विजय करने गया हुआ था। मूलराज ने उसको आने से रोकने का प्रयत्न किया परन्तु वह शस्त्र छोड़ कर खाली हाथ अपने राजा से जा मिला। उस समय दोनों (लाखा व मूलराज) में द्वन्द्व युद्ध चल रहा था। इस प्रसंग पर उसने लाखा को ललकारा :—

"उग्या तावउ जहिं न किउ, लक्खउ मगर निघट्ठ।
गणिया लब्भद डीहडा के दहक अहवा अट्ठ॥"

(रवि का प्रकाश प्रकट होते ही यदि अरितम (अन्धाकार रूपी शत्रु) का नाश नहीं हुआ तो "लाखा" नाम के साथ अधमता का अतिशय दोष लग जावेगा।)

अपने नगर को लौटने के लिए निश्चित दिन से आठ दश दिन पहले से ही माहेच ने बहुत से शौर्यगर्भित वचन कह कर लाखा को उत्तेजित किया था, परन्तु मूलराज के शरीर में रुद्रकला का प्रवेश हो चुका था इसलिए उसने लाखा को मार डाला।
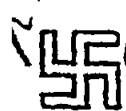
इन युद्ध-विपयक मन्त्रणाओं से उत्तेजित हुए मूलराज के हृदय में युद्ध के लिए जलती हुई उत्साह रूपी अग्नि को ईन्धन मिल गया और सूर्य की किरणों की गर्मी से पूर्व विकसित पुष्प के समान देदीप्यमान वह सिंहासन से उठ खड़ा हुआ। अपनी भुजाओं को इस प्रकार ठोकता हुआ, मानों युद्ध में ही संलग्न हो, वह अपने प्रमुख योद्धाओं के साथ मंत्रशाला से बाहर निकला।

शरद् ऋतु आ पहुँची, पृथ्वी घनी फसलों से ढक गई, नदियों और तालावों का जल निर्मल हो गया, बादलों से रहित आकाश स्वच्छ दिखाई पड़ने लगा, पूर्ण विकसित कमलों का रंग कवि को प्रिया के सुन्दर अधरों की याद दिलाने लगा। सोरठ के किनारे पिछड़ी वर्षा की बूंदें मोतियों के रूप में पड रही थीं। [१] जिन हंसों ने वर्षा ऋतु में हिमालय की झील (मानसरोवर) पर जाकर निवास किया था, वे अब फिर गंगा तथा अन्य नदियों पर लौटने लगे थे। पके हुए धान के खेतों की रखवाली करती हुई किसान स्त्रियों ने अपने गीतों से वन को मुखरित कर दिया था। इन्हीं दिनों, देव मन्दिरों में वेद-पाठ और चण्डी-पाठ करते हुये, कुम्भ स्थापित करके व्रत और ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, ब्राह्मणों ने नवरात्र व्यतीत किये और दशहरे के दिन पारण करके मन्त्रित कुम्भ के जल से राजा के शिर पर अभिषेक किया। वैकुण्ठपति के उत्सव होने लगे और मन्दिरों पर ध्वजाये फहराने लगी। बलिराजा और वामन की कथा के स्मरण से भूतल पर आनन्द छा गया और महाविष्णु अपनी क्षीरसमुद्र की लम्बी समाधि से जाग उठे।

(१) कुछ लोगों का कहना है कि जब पिछली वर्षा बरसती है तब कालू मछलियाँ (Oystes) दौड कर किनारे पर आ जाती हैं और मुँह फाड देती हैं। जो बूंदे उनके मुँह में पड जाती हैं वे मोती बन जाती हैं।

मूलराज के द्वार पर नगारे बजने लगे और नौबतें गड़ गड़ाने लगीं, शुभ शकुनों के सूचक शंखनाद होने लगे और विविध वाद्यों के घोर नाद ने स्वर्ग तक पहुँच कर सूचना दी कि वह राजा अपने योद्धाओं का अग्रेसर बनने को उद्यत है। सोरठ पर चढ़ाई करने के लिए आतुर, अणहिलवाड़ा के झंड़े के नीचे चलने वाले राजा लोग अपनी अपनी सेनायें लेकर उमड़ पड़े। राजा सिंहासन पर विराजमान हुआ, गायक गान करने लगे और उसके दोनों ओर खड़े होकर सेवक पंखा झलने लगे—सामने ही विजय और आनन्द के चिन्ह स्वरूप मोतियों से स्वस्तिक [१] पुराये गये। जन्म से ही ज्योतिष का अभ्यास करने वाले ज्योतिषियों ने शुभ मुहूर्त निकाला। कुलगुरु ने हाथी और घोड़ों का

卐 (१) यह चिह्न हिन्दुओ में आनन्द का प्रतीक माना जाता है इसलिए "स्वस्तिक" (मंगलकारी) कहलाता है। स्त्रियों की "सही" का तो यह साधारण चिह्न है। जैनों के सातवें तीर्थंकर सुपार्श्व का भी यही चिन्ह था। असल में यह हिन्दुस्तान और चीन के धार्मिक साधुओं का मुख्य चिह्न था। संभवतः वहीं से इसने छठीं शताब्दी में यूरोप मे प्रवेश किया। देखो (Asiatic Research, Book IX p. p 306) चीन की पन्द्रहवीं शताब्दी की एक हस्त लिखित लिपि में इस चिन्ह का नाम फैलट (Fyloft) लिखा है, मिस्टर वैलर (Waller) ने लिखा है कि प्राचीन ईसाई पादरियों की कब्रों पर यह चिन्ह बनाया जाता था। १०७७ ई० में बनी हुई एक पादरी की कब्र पर ऐसा चिन्ह पाया भी गया है। रिचार्ड द्वितीय के गद्दी पर बैठने से पहले पीतल पर बनाये जाने वाले शृंगारिक काम में साधारणतया यह चिन्ह बनाया जाता था। देखें (Monumental Brasses and Slabs by Rev. Charles Boutell, M. A., Oxford Parker 1847, Foot Note to page 28)

पूजन करवाया और राजा ने उनको प्रणाम किया। अन्त मे, छड़ीधारी चोबदार आगे बढ़ा, अपने अपने शस्त्र लेकर सैनिक, द्वार के आगे कतारों में खड़े हो गये और फिर वाद्य बजने लगे। ज्यों ही राजा सिंहासन से उठा कुलगुरु ने आगे बढ़ कर 'जय जय' शब्द का उच्चारण करते हुये तिलक किया। प्रस्थान के समय मूलराज और उसके सुभटों ने ब्राह्मणों और यशोगान करने वाले भाटों को दान दिया। पर्वत के समान विशाल और उच्च काले हाथी पर सवार होते हुये राजा ने अपने कुलदेवता को नमस्कार किया। सिर पर मेघाडम्बर छाया हुआ था, प्रस्थान करते ही घोड़े हिनहिनाने लगे, सभी ओर से शुभ शकुन होने लगे, महलों से नगरद्वार तक का मार्ग केसर कुंकुम के जल से छिड़क दिया गया था। 'तुम्हारी जय हो ! तुम्हारे शत्रु दक्षिण दिशा में यमलोक को जावे' इस प्रकार ज्योतिषियों ने आशीर्वाद दिया। ज्यों ज्यों सवारी आगे बढ़ने लगी त्यों त्यों नगर में भीड़ भी अधिकाधिक होने लगी। लाल (कसूमल) वस्त्र पहने हुये और आभूषणों से जगमगाती हुई स्त्रियाँ मार्ग में एकत्रित होने लगीं, भीड़ भाड़ में पुष्पों और मोतियों के कितने ही हार टूटने से सड़कें पुष्पों और मोतियों से भर गई थीं। जब सवारी बाजार से निकली तो लोगों ने राजा के सामने फल फूल वितरित किये। नगर की स्त्रियाँ घर का काम काज व बच्चों को रोता छोड़ कर सवारी देखने दौड़ पड़ीं। मार्ग में बहुत दूर तक दूर दूर के ग्रामवासी अपने राजा को देखने के लिए इकट्ठे होते रहे क्योंकि मनुष्यों में मूलराज रूप, गुण और सत्ता मे देवराज इन्द्र के समान शोभायमान था।

अणहिलवाड़ा का राजा बड़ी भारी सेना लेकर आ पहुँचा है, [१] यह

---

(१) द्व्याश्रय में इसका वर्णन इस भांति लिखा है:—

ग्राहरिपु ने मूलराज के शिविर में द्रुयास नामक दूत को भेजा। उसने वहाँ

सुन कर ग्राहरिपु ने अपनी सेना इकट्ठी की। उसके पक्ष के राजा लोग,

---

पहुँच कर विवेकपूर्वक कहा :—

"शौर्य में अर्जुन के समान ! हे न्याय विरुद्ध आचरण करने वालों पर शासन करने वाले ! आपके यहाँ पधारने का कारण जानने की प्रबल इच्छा रखने वाले सूर्य समान ग्राहरिपु ने आपकी सेवा में मुझ दूत को भेजा है।

"ऋगयन का पाठ करने वाले, दुष्ट नासिका वाले, अन्त (प्रान्त) के वनों में बसने वाले और हमारे आम्रवन तथा इक्षुवन को उखाडने वाले ब्राह्मणों ने झूंठी बातें बना कर क्या आपको चलित कर दिया है ?

"खदिरवन, आम्रवन, द्राक्षावन, शालवन, प्लक्षवन, शरवन और शिग्रुवन आदि इन सभी वनों में रहने वाले हमारे राजाओं ने क्या आपका कोई अपराध किया है ?

"हमारे शिग्रुवन मे, अथवा बदरी आदि वनो मे, जैसे बोरडी के होते हैं वैसे कण्टक तो आपके लगे नहीं हैं ? उडद के वन को ढूंढता हुआ मनुष्य कदाचित् नीवार के वन में उड़द के वन को नहीं पाता है।

"नीवारवन, तथा पुष्पित विदारी वन, सुरदारुवन, इरिकावन आदि में मृगया के लिए अथवा गिरि नदी के वेग से (जम्बुमाली का) सुन्दर जल पीने के लिए आप पधारे हैं ?

"अथवा, जल के स्थान पर मधु पीने वाले, हाथ में मद्य के प्याले लिए हुए यदुओं ने आपको भर (बहका) दिया है ? परन्तु हाथ में मद्यपान के प्याले लिए रहने वाले दारूड़िया (शराबी) सोरठियों का इसमे क्या दोष है ?

"अथवा, धनुर्धारियों के वाहन, उसके वीरों को ले जाने वाले वाहन आदि से अति प्रशस्त समुद्र जैसे, तथा हाथियों के वाहन वाले जलाधिप (कच्छपति) तो, जो हमारा आश्रित है, आपको शरद ऋतु के अपरान्ह के समान पीड़ा नही देता है ?

"तीन तीन अथवा चार चार वर्षों से चले आ रहे शत्रु-विग्रह को शान्त करने के लिए आप पधारे हैं ? परन्तु चार व तीन वर्ष के जवान घोड़ों वाला यह (ग्राहरिपु) शत्रु से अपराजित है। क्या किसी अतिगर्विष्ठ समुद्रतटाधिपति को जीतने के लिए आप पधारे हैं ? रिपु के सघ को संहारता हुआ आर्यों के समूह सहित पृथ्वीभार

जो उसके मित्र अथवा आधीन थे, वे सब उससे आ मिले । बहुत से

पर घूमता हुआ यह उसको कैसे नहीं जीत लेगा ?

"अथवा, समस्त पृथ्वी में भ्रमण करने वाले इस क्षत्रियकुमार से इस शरद् ऋतु के दीर्घ दिवसों में (मिलने की) उत्कण्ठा लेकर आप पधारे हो ? (यदि ऐसा है तो) बहुत उत्तम है, आज हमारे पुण्य परिपक्व हुए और हमारे सभी शुभ कार्य सफल हुए ।

"यदि वृषभवाहन (श्री सोमनाथ) के दर्शन करने हेतु अति उग्र इच्छा वाले समस्त नृपतियों सहित आप पधारे हो तो सुराष्ट्र के इन्द्र को किसी चतुर प्रधान द्वारा शुभ सूचना क्यों नहीं भिजवाई ?

"क्या आप शङ्खोद्धार से, परिपक्व शेजडी (मेव) के रस के समान मिष्ट, तीर्थजल ले जाने की इच्छा करते हैं ? यदि ऐसा है तो आपको नमस्कार करके मैं भी वहाँ लौट जाऊँ और जल भिजवा दूं । आप वनों का नाश न करें ।

"अन्याय से दूर रहने वाले आप, उत्तम घोड़ों और नायकों वाली सेना लेकर, व्यर्थ ही नहीं चले आए हैं । परन्तु, अन्तस्तल में रहने वाली मैत्री एक बार उत्पन्न हो जाने पर प्राण जाते भी मिटती नहीं है ।

"यह (ग्राहरिपु) चारों दिशाओं में अपनी सेना को घुमाता है, जिसके पास से यह लेता है उसके पास इसके द्वारा लिए हुए से अधिक कुछ नहीं रहता है, भयभीतों का रक्षण करता है, शत्रुओं का नाश करता है—ऐसी दूत की वाणी सुन कर आप ईर्ष्या क्यों करते हैं ?

"शत्रु का संहार करते हुए (वह) उसके यशमात्र को पी जाता है और अपने सामने नमन करने वाले को लक्ष्मी प्रदान करता है, न्याय व्यवहार को पूर्ण रीति से समझता है । ऐसे, गरजते हुए हाथियों से युक्त सेना वाले ग्राहरिपु की मैत्री का आप नाश न करेंगे ।

"जिसने अपने शत्रुओं को निरन्तर जागृत रहने वाले और शान्त कर दिया है ऐसे, ग्राहरिपु की धन धान्य से पूर्ण पृथ्वी चिरकाल से वृद्धि को प्राप्त हो रही है । मैत्री और विपुल रेणुसमूह को उड़ाते हुए आप अपने सैन्य को क्यों नुक्सान पहुँचाते हैं ?

जंगली भील भी उसके साथ थे। उसकी नीली तथा अन्य रानियों के

"अथवा जिसको स्पष्ट न कह सकते हों ऐसा आपके मन में कोई छल है तो मेरे कहने सुनने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपको उत्तर देने की भी कोई जरूरत नहीं है। अब तो केवल यमराज ही इसका बदला चुकाने के लिए आपका शत्रु बन गया है।

"हमारी कीर्ति को आच्छन्न करने की इच्छा करके हमारे कोप को उबाल (उद्दीप्त-कर) देने का कृत्य आपने किया है। इसीलिए आपको उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपकी हकीकत मैं अपने मन में अच्छी तरह जान गया हूँ, वही अपने स्वामी को कहने के लिए मैं यह चला।"

ऐसा कह कर दाहिनी ओर से मानों प्राण जा रहे हों इस तरह वह दूत बोलता हुआ अटक गया। मानों उसको जीवित रखता हुआ ही राजा मूलराज इस प्रकार बोलाः—

"इन सब जीवित मनुष्यों में जीवित ! इस प्रकार कहने वाले ! तू सब जीवितों में खरा जीवनधारी है।

"तूने अपने स्वामी का पक्ष सम्यक् रीति से प्रतिपादित किया है और ऐसा करके तूने अपना धर्म पूरी तरह निभाया है क्योंकि यदि पृथ्वी फट भी जाय तो भी ऐसा बोलने पर तुम्हारा वध नहीं किया जायगा यद्यपि वध हो जाने का भय मेरे हृदय में है।

"इसको तुरन्त ही मार डालूं, भीतर ही मार डालूं, भीतर ही मार डालना चाहिये, बहुत से मिल कर मार डालें, हम दो ही इसको मार डालें, इस प्रकार तुझे मार डालने की इच्छा रखने वाली नृपमण्डली के होते हुए भी तू इस सभा में इस तरह बोल सका है इसलिए निश्चय ही बड़ा वीर है।

"अपने स्वामी के कार्य का पक्षपातपूर्वक स्थापन करते हुए लेश मात्र भी भय न खाकर तेरे समान, मद्यपान के कारण अतिनिन्द्य (तुम्हारे) देशवासियों में से, अनिन्द्य और आगे की बात जो नहीं कही गई है उसे, कौन कह सकेगा ?

"तेरा स्वामी बुद्धिहीन होकर अपनी जाति को ही, हीन करने वाला है, हमने आक्रमण किया है इसमें वह अपनी जाति को चढ़ाई करने योग्य क्यों नहीं समझता है ? अथवा हमारी चढ़ाई के कारण उलटा उन्हीं को भय क्यों दिखाता है ?

पुत्र, जो सोरठ की प्रसिद्ध नदी "भादर" के किनारे बसते थे, कवच

"कुटिल धनुष वाले इस पापी ने तीर्थयात्रियों के गमन का रोध किया है इसलिए इसको शिक्षा देने के निमित्त इस पर आक्रमण करना योग्य है।

"कोप करने वाले दुराचारी को यदि अकोप रह कर मैं देखता रहूँ तो मेरे द्वारा अवश्य ही रक्षणीय इस पृथ्वी का रक्षण किस प्रकार हो सकता है?

'ब्राह्मणों की हिंसा करने वाले इस राजा पर मुझे अवश्य ही शासन करना योग्य है क्योंकि इसके जैसे हिंसक राजा के आगे तो हिंसक पशु भी दूर भागते हैं (लज्जित होते हैं)।

"धर्म कर्म से परिवर्जित, अत्यन्त पीडा से थर थर कापते हुए अपने गोत्राभिधानादि को भी जो भूल गये है तथा निस्तेज हो गये हैं ऐसे ब्राह्मणों के स्थानों को नष्ट करके इसने उनको क्या क्या पीडाए नहीं पहुँचाई हैं?

"दुष्ट कर्म की इच्छा रखने वाले इस राजा के परदारगमनादि अपवित्र और जो कहीं भी प्रकाश न करने योग्य कुकर्म हैं वे अति प्रबल हो जाने से हमारे मन में अतिचिन्ता के कारण बन गये हैं। अत: यह हमारी मैत्री के लिए नितान्त अयोग्य है।

"परमपावन और लक्ष्म्यादि से सम्पन्न प्रभास तीर्थ को अनेक प्रकार से त्रास पहुँचाकर तथा वहा पर गये हुये लोगों को मार डालने की प्रणाली द्वारा अपनी दुष्टता के कारण इसने कीर्ति की इच्छा रखने वाले लोगों को नष्ट कर दिया है।

"इसने सुराष्ट्र के अन्तर्भाग में यात्रा का मार्ग बन्द कर दिया है इसलिए इस मार्ग को खोलने के निमित्त घी पी पीकर मस्त हुए इसको इसी देश में मार देने का दण्ड क्यों न दिया जाय?

"यज्ञकर्ता ब्राह्मणों को उन्हीं के द्वारा इकट्ठे किए हुए सूखे छाणों (कण्डों) से मार मार कर हर्षित होकर यह नाचता है, ऐसे निर्भय होकर तलवार नचाने वाले राजा के किसी दूसरे दुष्कर्म को कैसे देखा जा सकता है?

"गर्भ के भार से झुके हुए पेट के कारण भागने में अशक्त हरिणियों पर शस्त्र चला कर इसने प्रसिद्ध उज्जयन्त तीर्थ को उनके रुधिर से प्लावित और दुर्गन्धयुक्त

पहन कर आ पहुँचे। कच्छ का राजा जाम लाखा भी जो उसका मित्र था

कर दिया है। किसी म्लेच्छी के पेट से जन्म ग्रहण करने वाले जैसा, यह हमारा मित्र कैसे हो सकता है ?

"डर कर भागती हुई एक मछली को दूसरी मार डालती है और उसको तीसरी खा जाती है, यही मात्स्य न्याय चलता रहता है, इसलिए हमारी अर्गलातुल्य भुज के सुदृढ परिघ की और क्या कामना हो सकती है ?

"लूफिड ऋषि, जो सब योगिविदों के गुरु थे, जो पृथ्वी मात्र को अपना पलंग बना कर रहते थे और जिनको अष्टांग योग सिद्ध थे उनको इसने पीड़ित किया है तथा उनके स्त्री पुत्रादि को भी पीड़ा पहुँचाई है, ऐसे, रात दिन क्रोध से जपापुष्प के समान लाल आखे रखने वाले इस पाप के पलंग (आधार), को मैं कैसे सहन कर सकता हूँ ?

"यह, उछलती हुई, शत्रु के रुधिर रूपी जपापुष्प से पूजित, विजयवती और आठों दिशाओं में प्रकाश फैलाती हुई, यमराज की सगी बहिन, मेरी बलिष्ठ और पूर्ण रूपेण हनन करने वाली तलवार आज इसको खा जाने के लिए भूखी हो गई है।

"जिस प्रकार सूर्य को धारण करती हुई, रात्रि को पार करके पूर्व दिशा तमोरूप दुःख से पूर्णतः मुक्त हो जाती है उसी प्रकार इसके द्वारा अनेक रूपों में पीड़ित प्रजा आज मेरे दर्शन से सब प्रकार की पीड़ाओं से मुक्त हो !

"थोड़े ही समय में इस सुराष्ट्र भूमि का स्वामी बन्दी हो जाय अथवा मरण प्राप्त करे ! और इसमें द्विपदी तथा चतुष्पदी गाते हुए चारणों के समूह घड़े के समान गादी वाली गायों के समान सुख से विचरण करें।

"घड़ों के समान गादी (ओधम्) वाली सौ गायें देकर खरीदी हुई तीन तीन वर्ष की जो घोड़ियां हैं उन बच्चियों को तगड़ी करके रथों में जोतो तथा तीन वर्ष की पुरानी शराब को कोरी छोड़ कर, गले में माला बांधे हुए अश्वों को सग्राम में तैयार करो।

" जा, बड़े बड़े राजाओं सहित उन बहुसाम नाम की पुरी के अधीश्वर सहित, सौ राजाओं वाली अथवा हजार राजाओं वाली, सदा साम उपायों से विरहित ऐसी,

सहायता को आ गया। यद्यपि जोतिषियों ने लाखा के भविष्य के विषय में कह दिया था [१] कि उसकी मृत्यु युद्धस्थल में होगी, फिर भी वह

और सदा युद्ध के लिए तैयार अपनी सेना को सज्ज करके सीमा पर युद्ध के लिए आवे, ऐसा तेरे स्वामी से कह दे।

इस प्रकार आज्ञा प्राप्त करके दूत अपने स्वामी के पास चला गया और सम्पूर्ण वृत्तान्त कह कर उसने युद्ध की तैयारी कराई।

(प्रो० म० न० द्विवेदी कृत गुजराती भाषान्तर का हिन्दी रूपान्तर)

(१) द्वयाश्रय में जाम लाखाजी के आगमन का वर्णन इस प्रकार है :—

"दो पुरुषों (१) जितने ऊँचे भाले से प्रकाशमान, नीली घोडी पर आरूढ और नीलेवस्त्र धारण करने के कारण नीलाद्रिसदृश प्रतीत होता हुआ, रोहिणीपति (चन्द्रमा) के शत्रु (राहु) को दूर छोडता हुआ, लक्षराज रेवती (नक्षत्र) में आया।" (श्लोक० ४७ सर्ग ४)

इस पर टीकाकार ने लिखा है कि रेवती मे अर्थात् चन्द्रमा जब इस नक्षत्र में था तब आया। लक्षराज की राशि मेष है क्योंकि उसका जन्म अश्विनी में हुआ था और रेवती मे चन्द्रमा मीन राशि का होता है, इस कारण वह (रेवतीस्थ) लक्षराज को बारहवाँ (१२ वें स्थान पर) हुआ। इससे अशुभ काल में आने के कारण इसका मरण होगा, यह सूचन किया गया है।

फिर जाम लाखाजी युद्ध में जाने के लिए तैयार हुए, तब कहते हैं —

"अहो! आज का दिवस, चन्द्रयुक्त पुष्य नक्षत्रवाला न होने से ऐसा है, क्योंकि पौष और तैष सब मनुष्यों को सिद्धिदाता है, इस प्रकार गर्गाचार्य की इच्छा करते हुए यादवों के लिए, गर्ग की गरज पूरी करता हुआ लक्षराज तैयार हुआ।" (श्लोक ६० सर्ग ४।)

टीकाकार लिखता है कि "पौष तैष,इससे पुष्य (रेवती) और तिष्य में जन्मा हुआ। ऐसा सम्प्रदायमान्य कथन है कि बारहवाँ चन्द्रमा यदि (पुष्य) नक्षत्र में हो तो सर्वार्थ साधक है।"

---

(१) एक आदमी दोनों हाथ फैला कर पूरी लम्बाई नापे उसको एक पुरुष कहते हैं।

रण में मरण प्राप्त कर वैकुण्ठगमन की ही इच्छा करता था। लाखा कहता था "जिसके युवावस्था के पराक्रम को किसी ने नहीं देखा उसको धिक्कार है। मेरे जीवन का अन्त आ पहुँचा है, मुझे उसका मूल्य किस प्रकार मिल सकता है?" समुद्रतट का अधिपति सिन्धुराज भी अपने दल बल सहित आया और दक्षिण के मोर्चे पर डट गया।

शीलप्रस्थ का राजा मूलराज की ओर से लड़ने आया। वह बड़ा चतुर धनुर्धारी था। मारवाड़ का राजा अपने लम्बी लम्बी दाढ़ी वाले सिपाहियों के साथ आया। काशी देश का राजा, श्रीमाल का [१] सर्वोत्तम राजा, आबू पर्वत और उत्तर का परमार राजा तथा अणहिलवाड़ा के राजा का भाई राजा गंगामह, ये सभी इस युद्ध मे सम्मिलित हुये परन्तु सोलंकी के पितृव्य [२] बीज और दण्डक ने युद्ध में भाग लेना अस्वीकार कर दिया।

इधर मूलराज की सेना तो चक्र और गरुड़ व्यूह की रचना कर रही थी उधर परम पराक्रमी आबू के योद्धा मुख्य सेना से अलग होकर जम्बु माली[३] नदी के किनारे पंक्ति बाँध कर युद्ध करने लगे और उनके राजा ने बहुत से विपक्षी योद्धाओं को मार कर, विजय के चिन्ह-स्वरूप उनके झण्डे छीन लिए। गुजरात के योद्धाओं ने बहुत साहस दिखलाया। शस्त्रविद्या

---

(१) श्रीमाल को भिन्नमाल भी कहते हैं। वहीं के राजा को अमयतिलक ने अर्बुदेश्वर कहा है, इसलिए श्रीमाल और आबू का राजा अलग अलग नहीं है।

(२) मूलराज का पिता, राज और बीज तथा दण्डक तीनों सगे भाई थे इसलिए बीज और दण्डक उसके सगे काका (चाचा) हुये।

(३) काठियावाड़ में आटकोट के पास युद्ध हुआ, वहीं पर लाखा फूलाणी और उसके साथियों के पालिए (स्मारक) बने हुये हैं।

में उनकी कुशलता प्रशंसनीय थी। उनके शत्रु असुर, अपनी रक्षा के लिए कवच पहने हुए थे, बड़ी बड़ी ढाले उनके पास थीं[१] और मेघ के

---

(१) द्व्याश्रय में इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार हुआ है —

"मूलराज और ग्राहरिपु का युद्ध आरम्भ हुआ तब पहले मूलराज की सेना ने पराक्रम दिखाया। यह देख कर ग्राहरिपु ने अपनी सेना को उत्तेजित किया और वह क्रोध में भर कर लडने लगा। मूलराज ने अपनी हार होती देख कर शखनाद किया और ग्राहरिपु की तरह स्वय भी हाथी पर सवार हुआ।

"हाथी पर बैठे बैठे ही उस श्रेष्ठ राजा ने पहले क्लेश न पाई हुई शत्रु-सेना को अपने उत्तम अस्त्रों से क्लेशित तथा विह्वल कर दिया।

"इतने ही मे उत्कृष्ट अस्त्रों की वर्षा करता हुआ दैत्यराज (ग्राहरिपु) क्रोध करके उत्तम योद्धा राजकुवर (मूलराज) की ओर आगे बढा।

"हे नुद्रन्नृप ! अब हम में से कौन कठ और कौन उत्स है" इस प्रकार परस्पर आक्षेप करते हुए ये दोनों राजा युद्ध करने लगे। (कठ और उत्स ये शस्त्रभीरु ब्राह्मणों के नाम हैं।)

"जवान हथिनियों की तरह कितने ही घोडों और कितने ही हाथियों के भिडने पर ये दोनों राजा दूर खडे रहे।

"यदि युद्ध में न भिडे होते तो, एक बार ब्याई हुई गाय, गृद्धवत्स से दुहानेवाली गाय, बछडों को खाने वाली गाय और वन्ध्या गाय की तरह, पृथ्वीरूपी धेनु का पालन करने वाले ये दोनों (आपस में) प्रहार न करते।

"श्रोत्रिय कठ, कालाप पाठक और कौत्सोपाध्याय, इनकी जिस प्रकार धूर्त कठ वंचना करता है उसी प्रकार सौराष्ट्र (ग्राहरिपु) चौलुक्य (मूलराज) के अस्त्रों के प्रहार से बच निकलता था।

"इस दैत्यश्रेष्ठ ने गूर्जरभूपति पर इस प्रकार गदा फेंकी जैसे गर्भिणी घोडी का गर्भ ही छूट पडा हो।

"युवा होते हुए भी मस्तिष्क को ठडा रखने वाले, बुद्धि में वृद्ध जैसे, पानी-

समान गर्जना करते हुये वे बाणों की वर्षा कर रहे थे, परन्तु अन्त में, जब उनके स्वामी को हाथी पर से मूलराज ने मार गिराया तो वे उसे वहीं छोड़ कर डर के मारे भाग गये ।

दार (वली) राजपुत्र (मूलराज) ने हँस कर शक्ति से उस (गदा) को भंग कर दिया।

"तीखा भोजन करने से जिस प्रकार आंखों में पानी आ जाता है उसी प्रकार की अश्रुयुक्त आंखों वाला ग्राहरिपु क्रोध से कपाल पर चढी हुई सलवटों के कारण युवा होते हुए भी झुर्रियाँ पडे हुए मुख वाले वृद्ध जैसा दिखाई दिया।

"बराबर बराबर जुडे हुऐ दोनों हाथों से मानों खाने का अन्न हो ऐसी लीला मात्र से, उसने लोहे के सर्प जैसे दो शंकु पकड कर (मूलराज के ऊपर) फेंके।

"कुमारी परिव्राजिकाओं के शाप के समान दुःसह तथा कुमारी श्रमणाओं के शील के समान तीक्ष्ण तीर से उन शङ्कुओं को चौलुक्य ने तोड़ डाला।

"एक दूसरे को छेदने की बुद्धि से फेंके हुए तीरों से ये दोनों, पत्तियों सहित प्लक्ष और न्यग्रोध के वृक्षों जैसे शोभित होते हैं।

"उन स्निग्ध वाणी और अगों वालों तथा पीठछत्रोपानहादि धारण करने वालों को, नारद मुनि ने धवखदिरपलाशादि में मे देखा।

"फिर, भौंहें तान कर, रोष से बाकी दाढी करके, भयानक और घायल गर्दन सहित, अति भयानक भुजाओं वाला वह दैत्य वानर की भांति कूद कर, कीर्ति और युद्ध की माता स्वरूप छडी और तलवार लेकर, जिस हाथी पर चौलुक्य बैठा था उस पर चढ गया।

"अति दर्प वाले ये दोनों ही, यमपुत्र के समान, हाथ में छड़ी और तलवार लेकर मानों पित्राई (भाई भाई) हों इस प्रकार एक हीं हाथी पर लडने लगे।

"स्कन्द कुमार के माता पिता (गौरीशङ्कर) और प्रद्युम्न के माता पिता (लक्ष्मी-नारायण) आज तुझ पर कुपित हुए हैं, ऐसा कह कर चौलुक्य ने उस दैत्य (ग्राहरिपु) को भूमि पर पटक दिया।

उस समय कच्छ के राजा लाखा ने मूलराज को यह कहलाया कि यदि वह उसके मित्र को वापस दे-दे तो वह उसका मूल्य चुका देगा

"शिव के सास ससुर के पुत्र (मैनाक) के समान दुर्धर्ष तथा जिसके सास ससुर रोते रह गए थे ऐसे उस दैत्य (ग्राहरिपु) को, कूद कर उसने हाथी के वरत (चमडे के रस्से)से बाँध दिया ।

"इन्द्र और इन्द्राणी के शत्रु बलि को बाँधने वाले विष्णु का जिस प्रकार इन्द्र और इन्द्राणी ने स्तवन किया उसी प्रकार इस (चौलुक्य) की गर्ग और वत्स कुटुम्ब वाले ब्राह्मण स्तुति करने लगे ।

"ग्राहरिपु के पकडे जाने के पश्चात् 'ये गाए, ये बछडे, ये घोडे, ये रुरु (मृग) सब जल्दी से चले जाओ' इस प्रकार कहता हुआ क्रोध मे भर कर लक्षराज (लाखा फूलाणी) दौडा ।

"वस्त्र, अंगराग और माला आदि, इन सबको श्वेत करता हुआ वह बोला—

"हे मूल नक्षत्र में जन्म लेने वाले (मूलराज!) आज मैं युद्ध पर चढा हूँ जब कि तेरा चन्द्रमा पुष्य और पुनर्वसु में है (अर्थात् आठवा चन्द्रमा है इसलिए तेरा मरण होगा), ऐसा समझ ले क्योंकि मुझ में और ग्राहरिपु मे, तिष्य और पुनर्वसु के समान, कोई अन्तर नहीं है ।

"तू अपने लाभालाभ का विचार कर और अपने मान और कीर्ति के साथ इसको छोड दे, क्योंकि अपने लाभालाभ का विचार करके ही सुखकर अथवा दुखकर वस्तुओं का ग्रहण किया जाता है ।

"घोडे घोडी की तरह इसको बांध कर तू यदि घोडे घोडियों की इच्छा करता है तो तेरे पूर्वजों अथवा अनुवर्तियों ने कभी ऐसा किया हो तो बता, अस्तु यह मैं (अपने, मित्र को छुडाने रूपी) कार्य के हेतु इस युद्ध के द्वारा ही बताऊ गा ।

"तू ऊपर नीचे क्या देखता है, वहाँ तेरा कौन है ? जिस प्रकार पाडा (जवान भैंसा) पाडे से भिड़ता है उसी प्रकार अब मुझसे युद्ध कर ।

परन्तु अणहिलवाड़ा के राजा ने इसको स्वीकार नहीं किया। इस पर क्रोधित होकर लाखा मूलराज पर टूट पड़ा, परन्तु मूलराज में तो देव-

---

"फिर, चौलुक्य ने कोप मे भर कर परन्तु वाणी मे दधि और घृत बिखेरते हुए कहा कि जो दधि और घृत के स्थान पर गायों को ही खा जाता है ऐसे दुष्ट को किस प्रकार छोडा जा सक्ता है ?

"यह पापी कुशकाश के समान है और इसके सहायक राजा भी ऐसे ही हैं, इसको छुडाने की इच्छा रखने वाले एक तुम ही धवाश्वकर्ण (वृक्ष) के समान सारवान् दिखाई देते हो।

"यदि तुम युद्ध करोगे तो यह मेरा हाथ तुमको तिल और उर्द के छिलके की तरह पीस डालेगा, धवाश्वकर्ण (वृक्ष) का भजन करने वाला महावायु तिल और उर्द के कर्षण से कैसे पीछे हटेगा ?

"हरिण के जैसे घोडे सहित यदि हरिण की तरह भाग जाने की इच्छा हो तो अभी भाग जाओ (देर क्यों करते हो ?) यों तित्तिर और कपिञ्जल की तरह टक टक मत करो।

"ऐसा सुन कर लक्षराज ने अश्वरथादि पर बैठे हुए शत्रुओं को भिक्षुकों अथवा तित्तिर कपिञ्जल से भी हीन समझते हुए अपने हाथ में धनुष लिया।

"बेर अथवा इमली की तरह, अथवा धानी या जलेबी की तरह शत्रु को खा जाने के लिए उसने तीर बरसाना शुरू किया। उस समय वहाँ के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी त्रास से भर गए।

"ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रक्षक मूलराज ने भी धनुष को टंकारा और भेरी तथा शङ्ख बजाने वालों ने जयनाद करते हुए अपने अपने वाद्य फूंके।

"माथा और डोक (गर्दन) को बिना हिलाए इसके धनुष की प्रत्यञ्चा ऊँचे स्वर में मानों ऐसा कहने लगी कि अब कठ और कालाप (ब्राह्मण) प्रतिष्ठा एवं उन्नति को प्राप्त हो गए हैं।

"उन दोनों ने अपने वज्रसदृश बाणों से रण में ऐसे मण्डल बना डाले जैसे वाजपेय और अर्काश्वमेध यज्ञों में बनाए जाते हैं।

शक्ति प्रकट हो चुकी थी इसलिए लाखा इस विषम लड़ाई मे सोलकी के भाले से छिद कर मारा गया। जाड़ेचा राजा को पैरों से कुचलते

"पारस्परिक विरोध को लेकर सर्प और नेवले की तरह भिडते हुए, अनुक्रम से देवता और दैत्यों द्वारा संस्तूयमान वे दोनों युद्ध रूपी संहिता का विस्तार करने के लिए पदक्रम करने लगे।

(सहिता और पदक्रम ये दोनों शब्द द्वयर्थक हैं। सधिपूर्वक लिखे हुए वेदमंत्रों के समूह को सहिता कहते हैं, उनका विग्रह करके जो अ श बोले जाते हैं वे पद कहे जाते हैं तथा उनके बीच बीच मे अमुक अमुक प्रकार से जो आवृत्ति होती है वह क्रम कहलाता है। इस प्रकार वेदपाठ के घन, जटा आदि कितने ही भेद हैं। जिस प्रकार वेद संहिता का पद और क्रम से विस्तार होता है उसी प्रकार युद्धकार्य का भी पदक्रम अर्थात् स्थानादि सम्वन्धित तत् तत् प्रक्रियाओं से विस्तार होता है।)

"गूर्जरत्रा और कच्छ के स्वामी, इन दोनों ने द्वारकानाथ और कुण्डिनपुर के अधीश (रुक्मिया) के समान शर रूपी मोजों की परम्परा से मानो गगाशोण बहा दिया है।

"वाराणसी और कुरुक्षेत्र रूपी सग्राम भूमि प्राप्त होने पर जिस प्रकार शौर्यपुर और केतवत के नाथ प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार ये दोनों प्रसन्नता प्राप्त करने लगे।

"दृढ़ता मे गौरी (शङ्कर) और कैलास पर्वत के समान और अ गों में अक्षत ये दोनों सुथार और लुहार का अनुकरण करते हुए परस्पर शस्त्रों का भजन कर रहे थे।

"दही और दूध के समान उज्ज्वल कीर्ति की आकाक्षा करने वाले उन्होंने, बैलों, घोड़ों, ऊंटों और गधों आदि पर लाद कर बाण आदि ला ला कर सुभटों के पास पहुँचाए।

"जो दश के समीप हैं (अर्थात् नौ अथवा ग्यारह) इतनी सख्यावाले हाथियों जितने बलवान् तथा दधि और सर्पिष् (घी) जैसी आखों वाले लक्ष (लाखा फूलाणी) ने एक भाला उठाया जिसको छ बैल और पाडे लाद कर लाए थे।

"इस (लाखाजी) ने दस हाथी तथा घोड़ों को कुचलते हुए और दसेक रथों को

(रौंदते) हुये मूलराज ने उसके कण्ठ पर पैर रखा। लाखा की माता ने अपने पुत्र का शव देखा तो हवा में फहराती हुई उसकी मूछ देख कर मूलराज को शाप दिया "तूने मेरे पुत्र को मारा है, तेरे कुल का कोढ़ से नाश हो।" [१]

तोडते हुए अपने चमकते दांतों से ओठ को काटते हुये भाले को ऊंचा करके फेंका।

"जिसके षडङ्ग उन्नत हैं (शिर, हृदय, कंधे और पैर, इनका उन्नत होना महापुरुष का शुभ लक्षण माना जाता है) ऐसे चालुक्यराज (मूलराज) ने चारों दिशाओं को कीर्ति से सुवासित और परिपूर्ण करते हुये सर्वसारमय लोहे के भाले से लक्षराज (लाखा फूलाणी) को मारा।

"उग्ररिपु के निग्रह से अपना प्रिय करने वाले इस (मूलराज) पर दो-दो तीन-तीन देवांगनाओं सहित देवताओं ने फूलों की वर्षा की।"

"बालकों को आगे करके ग्राहरिपु की परिणीता स्त्रियों ने पति को भिक्षा के रूप में मांगा था इसलिये मूलराज ने उसकी (ग्राहरिपु की) उंगलियाँ काट कर उसको छोड़ दिया"

"सौराष्ट्र के वृद्ध और बालक उसी समय में धारण किये हुये स्त्रीवेश (आडिया काछडी और घघरा रूपी) के द्वारा राजपुत्र मूलराज के यश का प्रकाश करते हैं।

"इस भूपति मूलराज ने यतियों और ब्राह्मणों को यथार्थ व्यवस्था पूर्वक दुखहीन करके सुसम्पन्न कर दिया।"

"फिर, प्रजा को पुत्र के समान मानने वाला और तेजरूपी अग्नि से सब का हितकारी वह राजा पुत्रजन्म के समान संतोष का अनुभव करता हुआ प्रभास तीर्थ की यात्रा करने गया और फिर अणहिलपुर लौटा।"

(द्व्याश्रय, सर्ग ५ श्लोक ८६ से १३२ के गुजराती भाषान्तर का हिन्दी रूपान्तर)

(१) लूता अथवा कोढ नाम की बीमारी के विषय में हिन्दुओं का विश्वास है कि जिस मनुष्य से सूर्य भगवान् का कोई अपराध बन जाता है उसके यह रोग हो जाता है। प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि मालवा के राजा भोजराज के दरबार में माण

सोरठ के राजा से मित्रता होने के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसी बातें थीं कि जिनके कारण लाखा और मूलराज में शत्रुता हुई। कहते हैं कि रानी लीलादेवी की मृत्यु के बाद सोलकी राज द्वारका में विष्णु मन्दिर की यात्रा करने गया। [२] वहाँ से लौटते समय वे लाखाफूलाणी के दरबार मे गये और वहाँ उसकी बहन रायाँजी के साथ विवाह किया जिसके पेट से उनके राखाइच (उपनाम गगामह) नामका पुत्र हुआ। इतिहासकारों ने जिस दुर्भाग्य की बात लिखी है वह इस दूसरे लग्न के बाद ही हुई। एक बार किसी अन्य वीर की बड़ाई करने के कारण 'राज सोलंकी' को उसके अन्य राजपूत साथियों सहित लाखा ने मार डाला और जाडेचा रानी रायाँजी उसके साथ सती हो गई। मूलराज के काका बीज सोलंकी ने इस झगड़े का बदला लेने के लिए अपने भतीजे को उकसाया। इधर लाखा ने मूलराज से सामना करने के लिए राज के छोटे लड़के राखाइच (गंगामह) को अपने दरबार में रख लिया था। इस

(मयूर) नामक कवि था, उसके यह रोग हो गया था, फिर सूर्य की प्रार्थना करने पर वह मिट गया। सोरठ में बहुत प्राचीन काल से इस देवता का पूजन होता था। हेरा डोटस (क्लिओं) ने पारसियों में भी एक ऐसी ही जाति का वर्णन किया है। "जिस किसी के कोढ अथवा कण्ठमाल रोग हो जाता है उसको न नगर में रहने देते हैं और न किसी ईरानी से बात करने देते हैं। वे समझते हैं कि सूर्य को अप्रसन्न करके इस मनुष्य ने यह रोग अपने ऊपर ले लिया है। ज्यू (यहूदी) लोग भी ऐसा ही विचार करते हैं कि अमुक पाप करने से कोढ हो जाता है।)

(२) जो लोग द्वारका की यात्रा को जाते हैं वे यदि आदि, धाम नारायण सरोवर पर न जावें तो उनकी यात्रा सफल नहीं समझी जाती इसलिए राज स्वय शेरगढ (आधुनिक नारायण सरोवर) गया और वहा से लौटते समय कपिलकोट (केरा कोट) भी गया था।

प्रकार इन राजनैतिक कारणों ने भी मूलराज को लाखा के विरुद्ध खड़ा होने को उत्तेजित किया था।

मूलराज ने ही लाखा को द्वन्द्व युद्ध में मारा, [१] इस बात पर बहुत

---

(१) राठोडों के भाटों का कहना है कि कच्छ का लाखा फूलाणी सीहाजी राठोड के हाथ से मारा गया था। यह ठीक नहीं जंचता क्योंकि, कन्नौज के राठोड जयचन्द्र का राज्य शाहबुद्दीन गोरी ने ११९४ ई० में ले लिया था। उसने गंगा नदी में डूब कर प्राण दे दिए। उसका कुंवर शेख राठोड हुआ जिसके सीहाजी और साइतराम (श्योजी और सेतराम) नामक दोनों कुंवर बादशाह के सामने ही बाहरबाट निकल गये। परन्तु अन्त में थक कर सन् १२१२ में अपने दो सौ साथियों सहित आधुनिक बीकानेर से २० मील पश्चिम में वे कालूमद नामक स्थान पर आ गए। उस समय वहां पर सोलंकी वंश का राजपूत राज्य करता था जिसकी पुत्री से सीहाजी का विवाह हो गया। इसके बाद मोहेवा के डाभी शासक को किसी बहाने से लूणी नदी के किनारे बुलाकर उसका नाश किया और फिर साचोर के देवडा, जालोर के सोनिंगरा, आहित के मोहिल, सिंघल के सांकला और पुराने खेरगढ के गोहिलों को नष्ट करके मारवाड़ का राज्य स्थापित किया। पालीवाल ब्राह्मणों की जागीर में पाली नामक ग्राम था। वहा पर मीणा व मेर जाति के लोग उपद्रव मचा कर उनको तग किया करते थे इसलिए ब्राह्मणों ने सीहाजी को अपने गाव में उपद्रवियों का नाश करने के लिए बसा लिया, परन्तु उसने ब्राह्मणों को ही नष्ट करके पाली में अपना राज्य जमा लिया और स्वय वहां का राव बन बैठा। सीहाजी के असोधाम (अश्वधाम) सोनिंग और अजमाल नामक तीन पुत्र थे। असोधाम सीहाजी के बाद पाली की गद्दी पर बैठा और सोनिंग ने ईडर का राज्य लिया। उसके वशज आजकल महीकांटा पोल में मौजूद हैं। अजमाल के बाबाजी और बादेर नामक दो कुंअर हुए जिनके नाम पर बाजी और बाढेर नाम की दो राजपूत शाखाएं स्थापित हुईं। असोधाम के वंशज राव चांदाजी ने मण्डूर के पडिहार राजा को मार कर अपनी राजधानी पाली से उठा कर वहां पर कायम की। चांदाजी की मृत्यु सन् १४०२ ई० में हुई, उनके पुत्र रणमल जी हुए और रणमलजी के पुत्र जोधाजी ने १४५९ ई० (संवत् १५१६ जेठ सुदी ११) में जोधपुर बसा कर वहां अपनी राजधानी स्थापित की।

मतभेद है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार वेग के स्थान पर क्लारैन्स के ड्यूक को बॅकन व उसके सामन्तों ने मिल कर मारा था

इस प्रकार 'सीहाजी' राठौड जोधपुर और ईडर के राजवंशियो का पूर्वज था, यह बात तो सच है, परन्तु वह मूलराज सोलकी के समय मे नहीं था। वह तो उससे २३३ वर्ष बाद में हुआ था। (देखे रासमाला का प्रकरण ४—राजावली की टिप्पणी) मूलराज सोलंकी की मृत्यु सन् ९९६, ई० में हुई और जयचन्द का राज्य शहाबुद्दीन ने ११९४ ई० में लिया यही अन्तर कम से कम १९८ वर्ष का पड़ता है।

मूलराज सोलकी था इसी आधार पर भाटों ने कालूमद के सोलकी की पुत्री के साथ सीहाजी के विवाह की घटना को यहाँ मिला दिया है। वास्तव में मूलराज सीहाजी से बहुत पहले हुआ था क्योंकि लाखा फलाणी का जन्म ८५५ ई० में हुआ था और वह १२५ वर्ष की अवस्था में ९७९ ई० में मूलराज के हाथ से मारा गया था।

लाखा के जन्म के विषय में एक प्राचीन दोहा इस प्रकार है —

शाके सात सतोतरे, (शुद) सातम श्रावण मास।
सोनल लाखो जन्मियो, सूरज जोत प्रकाश ॥

इससे विदित होता है कि वह शाके ७७७ में पैदा हुआ था और उसकी माता का नाम सोनल था। यह सोनल कुडधर रैबारी की पुत्री रूप में उत्पन्न हुई कोई अप्सरा थी।

(देखिये, मुंहता नैणसी की ख्यात, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, द्वितीय खण्ड पृ० २२९—२३३)

जैसलमेर में प्रचलित एक लोकगीत के अनुसार लाखा का जन्म शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को पूर्णिमा की घड़ियों में हुआ था।

"चादणी रे चवदसरीज रात, राय पूनम री रे घडियाँ रे लखपत जलमियों" देखिये मरु भारती का वर्ष ३ का अङ्क १ पृ० ५८।

लाखा की मृत्यु के विषय में निम्नलिखित प्राचीन छप्पय प्रसिद्ध है:—

उसी प्रकार इस जाड़ेचा राजा (लाखा) को मारने में भी कितनों ही का हाथ था। मारवाड़ का राजा सीहाजी राठौड़ उस समय मूलराज की पुत्री

छप्पय:—शाके नव एक में, मास कार्तिक निरंतर।
पिता वेर छल ग्रहे, साहड़ दावे अतसधर ॥
पड़े समा सो पनर (१५००) पड़े सोलंकी सोखट (६००)
सो ओगणिस (१९००) चावडा, मूलराज रणवट
पातले गाववा मंगल लई, हाथमल सेल सिंहना आशरे,
आठमें पक्ष शुक्ल चाँदणे, मूलराज हाथ लाखो मरे ॥

इससे विदित होता है कि लाखा सीहाजी के हाथ से नहीं मरा था वरन् मूलराज के हाथ से ही मरा था :—पढ़िये—

"अचो फूलाणी फरोरमो, रारो मँ दाणु', मूलराज सांग उखती लाखों मराणु',
(लाखा) फूलाणी आकर फूला (पौरुष मे आया) राड मंडी (युद्ध हुआ) मूलराज ने सांग (बरछी) मारी और लाखा मारा गया।"

प्रबन्धचिन्तामणि में मेरुतुंग ने लिखा है :—

अनुष्टुप् :—स्वप्रतापानले येन लक्षहोमं वितन्वता।
सूत्रितस्तत्कलत्राणां वाष्पावग्रहनिग्रहः ॥

आर्या :—कच्छपलक्षं हत्वा सहसाविकलम्बजालमायातम्।
संगरसागरमध्ये धीवरता दर्शिता येन ॥

जिस प्रकार एक लाख होम (हवन) करके अनावृष्टि का निग्रह करते हैं उसी तरह अपनी प्रताप रूपी अग्नि में लक्ष (लाखाफूलाणी) का होम करने वाले (मूलराज ने) (लाखा की) स्त्रियों के आंसुओं द्वारा अनावृष्टि का निग्रह किया (अतिवृष्टि की)।

जिस प्रकार मांझी समुद्र में जाल बिछाकर लक्ष कच्छप (कछुवे) आदि जलचरों को मारता है उसी प्रकार (मूलराज ने) कच्छपति लक्ष (लाखा) को अपने विस्तृत जाल में पकड़ कर संग्राम सागर में मार कर धीवरता प्रकट की।

से विवाह लग्न करने के लिये अणहिलवाड़ा आया हुआ था और युद्ध के समय वहीं उपस्थित था। राठौड़ वंश के भाटों का कथन है कि लाखा फूलाणी उसी के हाथ से मारा गया था। हेमाचार्य के मतानुसार सीहाजी राठौड़ जोधपुर और ईडर के राजवंश का पूर्वज था।

कीर्तिकौमुदी के कर्ता सोमेश्वर ने लिखा है कि :—

सपत्नाकृतशत्रूणां संपराये स्वपत्रिणाम्।
महेच्छकच्छभूपाल लक्षं लक्षीचकार यः॥

मूलराज ने युद्ध मे महान् कच्छ के अधिपति लक्ष भूपाल (लाखाराजा) को शत्रुओं के अंग मे ठेठ तक पार चले जाने वाले अपने बाणो का निशाना बनाया।

राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर जयपुर से प्रकाशित हो रही 'राठोड वंश री विगत' नामक पुस्तिका मे ऊपर उद्धृत 'शाके नव एक'' ''मे' छप्पय इस रूप मे छपा है :—

तेरे मे एकम बरस, मास काती निरन्तर।
पिता बेर छल मंड, साम राखायच समहर॥
पडे सामां से पांच, कमध सोलकी सोखंत।
चावडां गुण तालीस, रहे ि ण व ध रिणवट॥
पतरे धमल मंगल लहे. सेल सिंहा नामो सिरे।
भदरेसर चिड़ीपाट को, छपय चांदणे हाल राव लाखो मरे॥

इसमें लाखा की मृत्यु सीहा के हाथ होना लिखा है। सभव है यह मूल पद्य का रूपान्तर हो, जो बाद में राठौडों के किसी भाट ने कर दिया हो। लाखा की मृत्यु किसके हाथ से हुई, इस विषय में राजस्थान के सुप्रसिद्ध पुरातत्वविद स्वर्गीय गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा ने अपने जोधपुर के इतिहास मे प्रमाण-सम्पुष्ट विवरण दिया है और यही सिद्ध किया है कि लाखाफूलाणी विक्रम संवत् १०३६ (९८० ई० सन्) के लगभग मूलराज सोलकी के हाथ से ही मारा गया था।

''सेख (१) (सलखोजी राठौड़) के प्रतापवान् पुत्र (सीहाजी) ने सेना सहित यात्रा करने का नियम लिया। मूलराज ने उनके पास नारियल भेजा और कहलाया "हे कन्नौजपति! आज मेरी सहायता करो।" राठौड ने जवाब भेजा "इस समय तो मैं गोमती (द्वारका) की यात्रा करने जा रहा हूँ जब यात्रा के अनन्तर घर के लिये प्रस्थान करूँगा उसी समय आपका विवाहसम्बन्धी प्रस्ताव सुनूंगा।" वापस लौटते समय मूलराज के यहाँ मण्डप में सीहाजी राठौड़ का विवाह हुआ। जाड़ेचों का किला राठौड़ ने नष्ट कर दिया। वह शत्रु के हृदय में बाण के समान कसकने लगा। यह कोई कमधजों (राठौड़) और यादवों की लड़ाई नहीं थी। उसने (राठौड़ ने) तो सोलकी राज को आश्रय दिया था। युद्ध में सीहाजी ने लाखा को मार डाला। समय निकलता चला जायगा परन्तु यह बात ज्यों की त्यों बनी रहेगी।''

इसके पश्चात् मूलराज ने अपने लश्कर सहित प्रभास तीर्थ की यात्रा की और सोमेश्वर महादेव का पूजन करके, शत्रु से लूटे हुये माल और हाथियों को लेकर घर लौटा।

लाखा सम्बन्धी और भी सूचना 'कच्छ कलाधर' नामक ग्रन्थ से प्राप्त होती है जो अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय है।

इसके सम्बन्ध में पिलानी से प्रकाशित होने वाली "मरु भारती" के वर्ष २ अंक १ एवं वर्ष ३ अङ्क १ में सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध, पुरासाहित्यविशेषज्ञ पं. झावरमल्लजी शर्मा जसरापुर (खेतड़ी) निवासी का लेख, सुख्यात शोधविद्वान् श्री अगरचन्दजी नाहटा की टिप्पणियाँ और श्री दीनदयाल जी ओझा का लेख भी द्रष्टव्य है जिनमें लाखा के लोक गीतों का सविस्तार विवेचन हुआ है।

(१) जयचन्द का कुमार सेख (सलखोजी) राठौड सीहाजी का पिता।

अणहिलवाडा लौट आने के कुछ दिनों बाद ही मूलराज के चामुण्ड नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। बाल्यकाल ही में इस राजकुमार की असाधारण प्रतिभा झलकने लगी। उसे रुद्रमाला (स्थान) जाने मे बड़ा आनन्द आता था क्योंकि वहाँ ब्राह्मण लोग महाभारत का पाठ किया करते थे और राजकुमार का मन इसमें खूब लगता था।

एक दिन राजकुमार राजसभा में जाकर अपने पिता को नमस्कार करके बैठा। उसी समय दूर दूर के देशों से आये हुये राजदूत दरबार मे आये। इन दूतों के साथ उनके राजाओं ने अणहिलवाडा के राजा की कृपा प्राप्त करने के लिये बहुत सी भेटे भेजी थीं। अङ्गराज की ओर से सुसज्जित रथ, सिन्धु राज की ओर से बहुमूल्य रत्न और वनवास के राजा की ओर से स्वर्ण भेट किया गया। देवगिरि के राजा ने (१) अपना

---

(१) महादेवजी के पुत्र स्वामिकार्तिक (स्कन्द) की गुफा देवगिरि पर है इसलिए यहा का राजा शरजाचल अथवा देवगिरि का राजा कहलाता है। उसको स्वामिकार्तिक की सेवा के फलस्वरूप एक कमल पुष्प की प्राप्ति हुई जो संध्या होने पर भी नहीं कुम्हलाता था। ऐसे प्रतापशाली राजा ने मूलराज को वार्षिक कर के रूप में वही कमल भेंट किया।

ऊपर जिन राजाओं का वर्णन किया है उनके अतिरिक्त विन्ध्य देश के राजा को भी, जो हाथियों को वश में करके बांधने वाला था और विन्ध्याचल मे रहता था, हाथी के समान वश में करके मूलराज ने बांध लिया था। उसने न मुर्झाने वाले कमल के सदृश ही सूड के अग्रभाग वाला शकुनियाल हाथी भेट किया। मूलराज की पादुका का अर्चन करने वाले पाड्देश के अधिपति ने चांदनी की शोभा धारण करने वाला देदीप्यमान हार अर्पण किया।

तेज नाम के देश (शायद यह अरबिस्तान में था इसका दूसरा नाम ताज भी है) के राजा ने तेज घोडे भेट किए थे।

वार्षिक कर भेट किया और कोल्हापुर के अधिपति ने मूलराज की सेवा में पद्मराग मणि अर्पित की। काश्मीर के राजा ने रंग बिरंगे छत्र, तथा पाञ्चाल देश के अधिपति ने [१] गायें और दास दासियां भेजीं। सबसे अन्त में दक्षिण के लाट देश का प्रतिनिधि आया और उसने अपने स्वामी द्वारप की ओर से एक हाथी भेट किया। यह हाथी ऐसा अशुभ और अपशकुनों से भरा हुआ था कि ज्योतिषियों ने उसे कालरूप ही बता दिया। [२] इस भेट के अपशकुनों से सभी दरबारियों के हृदय में त्रास उत्पन्न हुआ और द्वारप द्वारा किये हुये अपने पिता के अपमान से युवराज चामुण्ड को तो इतना क्रोध आया कि वह उसी समय उस पर चढ़ाई करने को उद्यत हुआ। परन्तु बहुत कुछ कह सुनकर मूलराज ने उसे रोका। तुरन्त चढ़ाई करने के लिये कोई मुहूर्त अनुकूल नहीं पडता था इसलिये लाट के राजदूतों को उनकी भेट समेत लौटा देने की आज्ञा

---

(१) पाञ्चाल देश में काम्पिल्य नामक एक नगर था। वहां के सिद्ध और विख्यात राजा ने मूलराज की आज्ञा से दास्याःपुत्र खस (एक क्षत्रियजाति विशेष) को जो चोरों की टोली बना कर लूटने का काम करता था मार कर उसके गिरोह को समूल नष्ट कर दिया था और उसकी ऋद्धि (सम्पत्ति) लाकर मूलराज को भेट कर दी थी। खस का विशेषण "दास्या पुत्र" समझ में न आने के कारण दास (गुलाम) और गाए लाकर भेंट की ऐसा लिख दिया प्रतीत होता है। ऋद्धि से दास दासी ढोर इत्यादि समझ लिए गए हैं।

(२) मूलराज ने चामुण्ड की ओर देखकर हाथी के लक्षण जानने की इच्छा प्रगट की। उसने बृहस्पति [वाचस्पति] कृत "गज लक्षण" शास्त्र को देख कर कहा:—

"यह लम्बी सूँड वाला [दीर्घ हस्त] हाथी जिस घर में चला जाय वहां यदि इन्द्र का सा स्वर्गाधिपत्य हो तो वह भी नष्ट हो जावे। इस हाथी के जैसे शोभाहीन

देकर उस समय तो राजा शान्त हो गया; फिर शुभ मुहूर्त आते ही युवराज सहित मूलराज ने अपनी सेना लेकर द्वारप को उसके गर्व

दन्त शूल वाला हाथी जिसके घर में हो, उसके पिता, शिष्य, पुत्र, बहन, बहनोई तथा भाणजे आदि सबका उच्छेद हो। यह हाथी पिंगल नेत्र है, यह जिसके घर में रहे उसके माता पिता, बहन, भाणजे आदि को क्लेशकर है। ऐसे शुकपिच्छ पुच्छ हाथी को ब्राह्मण भी दक्षिणा में नहीं लेते फिर हम लोग किस प्रकार इसको ग्रहण करें? यह हाथी कृष्णनख (काले नाखूनों वाला) है, इसके स्वामी का ऐसा अनिष्ट हो कि यदि उसका निवारण करने के लिए अग्नि, सोम, वरुण जैसे देवता भी प्रयत्न करें तो वे भी समर्थ न हों। इस प्रकार यह छोटी पीठ वाला हाथी सब प्रकार निन्दनीय है।

इस हाथी के ओठों पर रेखा है, इस तरह का ओष्ठविलमान् हाथी महा दूषित गिना जाता है, और दूषित भी ऐसा कि सूर्य और चन्द्र आदि पूर्व से पश्चिम में उगें तब ही शुभ गिना जावे। यह मृग जाति के हाथियों में उत्पन्न हुआ है, इसके श्वास में दुर्गन्ध आती है. ऐसा हाथी रखने से दुख की प्राप्ति होती है। हमारा अमङ्गल करने के लिए ही द्वारप ने यह हाथी हमारे यहा भेजा है।"

इस प्रकार "द्व्याश्रय में लिखे अनुसार हाथी के अपशकुनों का वर्णन चामुण्ड ने किया था न कि ज्योतिषियों ने। राजकुमारों को राजनीति, अश्वविद्या, गज-विद्या आदि की शिक्षा दी जाती थी, इसी के अनुसार चामुंड भी इनमें निपुण था— यही ग्रन्थकर्ता का अभिप्राय है।

"द्व्याश्रय" के कर्ता ने द्वारप अथवा बारप को लाट देश का राजा लिखा है, "प्रबंध चिन्तामणि" में उसको तिलिंगाने का राजा तैलिप का सरदार लिखा है। "सुकृत संकीर्तन" में उसको कान्यकुब्ज के राजा का सरदार और कीर्तिकौमुदी के कर्ता ने उसे लाट राजा का सामन्त कहा है। हमारे विचार से 'प्रबन्ध चिन्तामणि' का मत अधिक मान्य है।

के लिए शिक्षा देने को चढ़ाई करदी। वे, राज्य की सीमा, नर्मदा (१) नदी के किनारे पर इतनी जल्दी जा पहुँचे कि वहां पर स्नान करने वाली स्त्रियों तक को योद्धा लोगों के ऊंचे किनारे से नदी में उतरने की कुछ भी खबर न हुई। सूर्यपुर (सूरत) और भृगुकच्छ (२) (भड़ौंच) के नगरों में होते हुए वे शीघ्र ही द्वारप के देश में जा पहुँचे। वह देश उस समय अशुभ और भद्दी स्त्रियों के लिए प्रसिद्ध था। उनकी बेडौल कमर और निरन्तर चूल्हे की धुआं के पास रहने से काले तवे के समान चेहरों को देख देख कर गुजरात के योद्धाओं को हँसी आती थी। पास के कुछ द्वीपों के राजाओं ने यद्यपि लाट के राजा की सहायता की परन्तु उसे जीत लेने में अधिक कठिनाई न पड़ी। मूलराज की अध्यक्षता में एक छोटी सी टुकड़ी की सहायता से ही गुजराती सेना को आगे करके राजकुमार चामुंड ने आक्रमण करके उसे मार डाला। (३) इस प्रकार चामुंड ने अपनी कुँवारी तलवार को रक्त पिलाया। इससे मूलराज बहुत प्रसन्न हुआ और सेना लेकर तुरन्त अणहिलवाड़ा लौट आया।

अब मूलराज अपने भाग्योदय की पराकाष्ठा को पहुंच चुका था।

---

(१) हेमाचार्य ने श्वभ्रमती को गुजरात राज्य की सीमा मानी है—यह साभ्रमती (साबरमती) का ही दूसरा नाम प्रतीत होता है। इसी स्थान पर सेनाओं का सामना हुआ था।

(२) ग्रीक लोग भृगु कच्छ को इसके हिन्दू नाम पर बर्यगज कहते थे। इन दोनों नामों में बहुत समानता है।

(३) कीर्तिकौमुदी में लिखा है—(देखो सर्ग २ श्लोक ३ का भाषान्तर)

"सेनानीलाटेश्वरनों, असामान्य पराक्रमी।
ते बापे न हणी जेणे हाथी सेना महीं दली।"

उसने अपने मातृपक्ष से प्राप्त किये हुए राज्य की सीमाको सभी दिशाओं में बढा लिया था। कच्छ को उसने जीत लिया था, सोरठ की पवित्र भूमि में उसकी दोहाई फिरती थी और दक्षिण के लोगों ने नर्मदा और सह्याद्रि पर्वत की घाटी के उस पार तक उसकी विजय पताका को फहराते देखी थी। आबू के पवित्र पर्वत पर दुर्जय अचलगढ़ के किले में राज्य करने वाले परमार राजा ने (१) उसकी अध्यक्षता स्वीकार की और मारवाड़ तथा उत्तरी हिन्दुस्तान के शूरवीर भी पहले पहल उसी की सरदारी में गुर्जर राष्ट्र के झंडे के नीचे चले आये थे। उसका घरेलू जीवन भी सुखमय था। हिन्दू लोग जिस को परम सुख मानते हैं और जो उसके बाद में होने वाले अणहिलपुर के राजाओं के भाग्य में नहीं बदा था, वह सुख भी उसे प्राप्त था क्योंकि उसके पश्चात् गद्दी का उत्तराधिकारी, उसका पुत्र भी परम सुयोग्य था।

मूलराज ने अपने मातृपक्ष के लोगों को मार डाला था, इसका उसने अपने राज्यकाल के अन्तिम दिनों में बहुत पश्चात्ताप किया और इसका प्रायश्चित्त करने के लिए कितने ही तीर्थस्थानों में घूमता फिरा। वह इस पाप का प्रायश्चित्त करके शांतिलाभ करने के लिये मनमाना धन खर्च करने को तैयार था। एक तीर्थस्थान से दूसरे तीर्थ-स्थान तक भटकने के कारण थका हुआ, पाप, दुख, वृद्धावस्था और अज्ञान का मारा हुआ, शान्ति प्राप्त करने के लिये अधीर, वह अन्त में सिद्धपुर जाकर रहा और वहां, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, महादेवजी की कृपा प्राप्त करने के लिये एक शिवालय का निर्माण कराने लगा।

(१) धार में सीयक द्वितीय [हर्ष] ने सन् ९४१ से ९७३ ई० तक और उसके बाद मुंजराज [वाक्पति द्वितीय] ने ९७३ से ९९७ ई० तक राज्य किया।

छोटी परन्तु स्वच्छ सरस्वती नदी, आरासुर की शुभ्र चोटी पर स्थित प्रसिद्ध कोटेश्वर महादेव के देवालय के आगे से निकल कर पश्चिम में कच्छ के रण की ओर बहती है। यों तो सरस्वती नदी सदा सर्वदा से पवित्र गिनी जाती है परन्तु जब वह सिद्धपुर के पास होकर बहती है तो इसका प्रवाह थोड़ी सी दूर के लिये उगते हुये सूर्य के सामने पूर्व दिशा की ओर मुड़ जाता है, इसलिये इस स्थान पर इस की महिमा अधिक मानी जाती है।

सरस्वती के उत्तरी ढालू किनारे पर रमणीय सिद्धपुर नगर बसा है, जहाँ आज नदी की ओर बोहरों (१) तथा अन्य धनवानों के घर बने हुये हैं। इन घरों की बनावट अर्ध-यूरोपीय है, और इनकी बरामदे-दार छतें और परदे लगी हुई खिड़कियां दूर ही से दिखाई देती हैं। बीच बीच में इस पवित्र नगर के ऊंचे ऊंचे शिखरों वाले मन्दिर आ जाने से अपूर्व शोभा दिखाई पड़ती है। जगह जगह इधर उधर लगे हुए बगीचों में केले और अन्य फलों वाले वृक्ष लगे हुए है, साथ ही आमों की भी कोई कमी नहीं है। इन सब के अतिरिक्त पुरातन रुद्रमाला के विकराल एवं विशाल खंडहर आज तक खड़े हैं जिनकी पैड़ियां बड़ी दूर तक नदी के किनारे किनारे चली गई है। दक्षिणी समतल किनारे पर एक विशाल चौक है जिसमें शैवों के आश्रम बने हुये है।

---

(१) ये बोहरा लोग पहले औदीच्य ब्राह्मण थे। अलाउद्दीन ने इनका धर्म नष्ट कर दिया तब से ये लोग मुसलमान कहलाने लगे। उसी ने नागर ब्राह्मणों का भी धर्म बिगाड़ा था—वे भी बोहरा ही कहलाते हैं। ये लोग अब तक भी ब्राह्मणों में प्रचलित अवटंकों से बोले जाते हैं। इन लोगों के एक मोहल्ले में, जिसमें केवल उन्हीं के घर हैं, एक हनुमानजी का मन्दिर भी बना हुआ है।

इनमें सबसे सुन्दर होल्कर राज की विधवा रानी अहल्याबाई का बनवाया हुआ आश्रम है। यहीं से आरम्भ होकर आरासुर और आबू की ओर फैली हुई पर्वतश्रेणी दृश्य की सुन्दरता में और भी अभिवृद्धि कर देती है। सिद्धपुर असाधारण पवित्रता का स्थान है—

"प्राचीन बड़े बड़े ऋषियों ने कहा है कि श्रीस्थल (सिद्धपुर) सब तीर्थस्थानों में बड़ा है। यह सब प्रकार की सम्पत्ति का देने वाला है और इसके दर्शन मात्र से मुक्ति प्राप्त होती है।"

फिर कहा है :—

"गयाया योजन स्वर्गः प्रयागाच्चार्द्ध योजनम्।
श्रीस्थलाद्धस्तमात्र स्याद्यत्र प्राची सरस्वती ॥"

अर्थात् गयाजी से स्वर्ग एक योजन दूर है, प्रयाग से आधा योजन और श्रीस्थल से, जहाँ सरस्वती पूर्व दिशा में बहती है—केवल एक हाथ भर ही दूर रह जाता है।

मृत्युकाल को समीप जान कर राजा पवित्रता लाभ करने के विचार से इस पवित्र तीर्थस्थान में आ बसा और उसने मरणपर्यन्त वहीं रहने का विचार किया। परन्तु, जैसा कि उसने समझ रखा था— केवल दैहिक कष्ट भोगना ही उसके लिए पर्याप्त न था, क्योंकि "व्रत, नियम, स्नान, ध्यान, तीर्थयात्रा और तप इनका जब तक ब्राह्मण समर्थन न करे तब तक ये फलदायक नहीं होते। जो कुछ ब्राह्मण कहते हैं वह देवताओं को भी मान्य होता है। जिस प्रकार मलिन मनुष्य जल से स्वच्छ हो जाता है उसी प्रकार ब्राह्मणों के वचन से पापी मनुष्य पापमुक्त हो जाता है।" यह बात समझ में आते ही मूलराज तीर्थवासी ब्राह्मणों की आव

भगत का सामान करने लगा। वह इन ब्राह्मणों को बड़ा आग्रह करके उत्तरीय पर्वतों, अरण्यों तथा जलाशय के निकटवर्ती तीर्थस्थानों से लाया था। वेदों में पारंगत विवाहित, युवा और सेवायोग्य ऋषिपुत्र कुमारिका नदी के किनारे जाने को तैयार हो गये। एक सौ पाँच ब्राह्मण गंगा यमुना के संगम-स्थान से आये। सौ सामवेदपाठी च्यवनाश्रम से, दो सौ कान्यकुब्ज से, सूर्य के समान तेजस्वी एक सौ ब्राह्मण काशी से, दो सौ बहत्तर कुरुक्षेत्र से, एक सौ गङ्गाद्वार से और एक सौ नैमिषारण्य से आये। इनके अतिरिक्त राजा ने एक सौ बत्तीस ब्राह्मण कुरुक्षेत्र से और बुलवाये। इन सब ब्राह्मणों के अग्निहोत्र से निकले हुए शुभ धूम्र ने गगनमण्डल को आच्छादित कर दिया।

इनके आ पहुँचने का समाचार सुन कर राजा उनके सामने गया और साष्टाङ्ग प्रणाम करके आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके पश्चात वह हाथ जोड़ कर कहने लगा "आप लोगों की कृपा से मेरा जन्म सफल हो गया। अब मेरा मनोरथ पूर्ण हो जावेगा। हे ब्राह्मणगण! आप लोगों ने जो कृपा की है उसके बदले में आप राज्य, धन, हाथी, घोड़े, अथवा जो कुछ आपको अच्छा लगे वही ले लीजिये। मैं पश्चात्ताप से भरा हुआ आप लोगों का विनम्र दास हूँ।" ब्राह्मणों ने उत्तर दिया "हे महाराज! राज्य का कारबार चलाने की हममें शक्ति नहीं है. इसलिए इसका नाश करने के लिए हम इसे क्यों स्वीकार करें? जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने क्षत्रियों से छीन छीन कर इक्कीस बार पृथ्वी का राज्य हमको दिया था।" राजा ने कहा "हे महान् ब्रह्मदेवो! मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। तुम निर्भय होकर अपना जप तप करो।" ब्राह्मणों ने फिर कहा "विद्वानों का मत है कि जो राजाओं के पास रहते हैं उन पर संकट पड़ते हैं। राजा लोग अभिमानी, धोखेबाज और स्वार्थी होते हैं,

फिर भी यदि तुम्हारी कुछ दान देने की इच्छा ही है तो हे राजाधिराज! यह हृदय को आनन्दित करने वाला विशाल श्रीस्थल हमको दीजिये, यहाँ हम आनन्द से रहेंगे। जो सोना, चांदी और जवाहरात आप ब्राह्मणों को देना चाहते हैं, वह नगर की शोभा बढाने के काम में लीजिये।"

मनोरथ पूर्ण हो जाने के कारण आनन्द से प्रफुल्लित होकर राजा ने ब्राह्मणों के चरण धोये और उनको कङ्कण तथा बालियाँ भेट कीं। उसने उनको श्रीस्थलपुर दे दिया और साथ में गाये, सोने और जवाहरात के हारों से सजे हुए रथ तथा अन्य वस्तुएं भी भेट की।

मूलराज ने, इसके अतिरिक्त, दश ब्राह्मणों को अन्यान्य भेटों सहित सुन्दर और धनधान्य से परिपूर्ण सिहपुर (सिहोर) नगर दिया। अन्य ब्राह्मणों को उसने सिद्धपुर और सिहोर के आसपास के कितने ही छोटे छोटे गाँव दिये। इस प्रकार सभी ब्राह्मणों ने यह तुष्टिदान स्वीकार किया, परन्तु छः ब्राह्मणों ने बहुत समय तक दान लेने में आना कानी की। अन्त में उन्हें राजा की प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी और उन्होंने खम्भात तथा उसके पास के बारह ग्राम ले लिये। "जिन्हें सोमवल्ली [१] पान करने में आनन्द आता था उन छः ब्राह्मणों ने स्तम्भतीर्थ अथवा जिसे लोग खम्भात कहते हैं, वह प्राप्त किया और साथ में साठ घोड़े भी प्राप्त किये।' [२]

---

(१) ब्राह्मणों मे यह बात प्रचलित थी कि हवन कराने वाला हवन कराते समय सोमपान किया करता था। इसका कारण यह था कि असली ब्राह्मण के सिवाय और कोई उसको पीकर पचा नहीं सकता था।

(२) मेरुतुंग ने मूलराज के विषय में इस प्रकार लिखा है —

इस प्रकार पुण्यदान करने के पश्चात् मूलराज ने अपने पुत्र पौत्रों को बुलाया और ब्राह्मणों की रक्षा करने के लिए उन्हें आज्ञा दी। इसके

मेदिन्यां लब्धजन्मा जितबलिनि बलौ बद्धमूला दधीचौ
रामे रूढप्रवाला दिनकरतनये जातशाखोपशाखा।
किञ्चिन्नागार्जुनेन प्रकटितकलिका पुष्पिता साहसाङ्के
थामूलान्मूलराज त्वयि फलितवती त्यागिनि त्यागवल्ली॥

त्याग (दान) रूपी लता ने भूमि पर पहले पहल महाबलिष्ठ बलिराजा मे जन्म लिया. दधीचि ऋषि ने उसको बद्धमूल किया (जड जमाई) और परशुराम ने उसको कोंपलवाली बनाई। दिनकर (सूर्य) के पुत्र (कर्ण) के समय में उस लता के शाखायें व प्रशाखायें उत्पन्न हुईं, नागार्जुन ने उसे किसी अंश तक कलिका वाली किया (उसके समय में कलियां आ गई) और साहसाङ्क के समय में उसके फूल आ गए। हे दानेश्वर! मूलराज! आपने ऐसी त्यागवल्ली को जड से लेकर शिखर तक फलवती कर दिया।

स्नाता: प्रावृषि वारिवाहसलिलैः सरूढदूर्वाङ्कुर—
व्याजेनात्तकुशा: प्रणालसलिलैर्दत्वा निवापाञ्जलीन्।
प्रासादास्तव विद्विषां परिपतत्कुड्यस्थपिण्डच्छलात्
कुर्वन्ति प्रतिवासरं निजपतिप्रेताय पिण्डक्रियाम्॥

हे मूलराज! तुम्हारे शत्रुओं के उजडे हुए राजमहल, वर्षा ऋतु में मेघों के जल से स्नान करके अपने ऊपर उगी हुई दूब के मिष से कुश लेकर, पानी बहते हुए परनालों के जल से, (मानों) अपने स्वामियों को प्रेतान्जलि देते हैं और गिरती हुई भीतों के ढेलों द्वारा नित्य पिण्डदान करते हैं।

उपर्युक्त श्लोक में प्रासादों के प्रस्तुत वर्णन से मृत पुरुष को पिंडदान आदि क्रिया के अप्रस्तुत वर्णन का बोध होता है इसलिये समासोक्ति अलंकार है।

पश्चात् अपने पुत्र चामुण्ड को राज्य सौंप कर वह सिद्धपुर जाकर रहने लगा। उसने अपने जीवन के अवशिष्ट दिन वहीं अपने बनवाये हुए रम्याश्रम नामक महल में बिताये और अन्त मे लक्ष्मीपति (भगवान् नारायण) की सेवा में नारायणपुर को चला गया। [१]

"अग्निदेव ने अपने धुओं के समूह से उसका पूजन किया। पूजन ही से वह इतना महान हो गया था कि दूसरे योद्धाओं का तो कहना ही क्या सूर्यमण्डल का भी उसने वेध कर दिया।" [२]

---

(१) अथ प्राचीं गत्वा द्रुहिणतनया श्रीस्थलपुरे
वपुः स्व हुत्वाग्नौ सुपिहितपिनद्धापरयशा ।
ययौ राज्ञः सूनुर्दिवमनपिनद्धापिहितधी
ग्रहीतु स्वर्गादप्यवनविधिना वक्रयमिव ॥

अर्थात् :—समस्त-शत्रु-विजेता मूलराज ने मानों उनके यश को शृंखला मे बद्ध करके सिद्धपुर में पूर्ववाहिनी सरस्वती नदी के किनारे जाकर अपने शरीर को अग्नि में होम दिया और ज्ञान के कारण जिसकी बुद्धि मोहग्रस्त नहीं हुई थी ऐसा वह राजपुत्र नभ में सूर्य के समान देवताओं का रक्षण करके मानों अपना कर लेने के लिए अन्तरिक्ष में गया। जिस प्रकार सध्या समय सूर्य अपनी लाल किरणमाला रूपी अग्नि में प्रविष्ट होकर प्रातःकाल पूर्व दिशा में आकर अन्तरिक्ष में आरोहण करता है उसी प्रकार इस राजा ने भी सूर्यवशी होने के कारण सूर्य के समान अन्तरिक्षारोहण का क्रम ग्रहण किया। (द्व्याश्रय—सर्ग६ श्लोक १०७)

अंग्रेजी मूल में यहाँ अर्थ का हेरफेर प्रतीत होता है। इस श्लोक में प्रस्तुत राजा के अन्तरिक्षारोहण का वर्णन करते हुए अप्रस्तुत सूर्य के अन्तरिक्षारोहण का अर्थ निकलता है अत एव समासोक्ति अलंकार है।

(२) गुजराती भाषान्तरकार की टिप्पणी

मूलराज के क्रमानुयायियों की टीप एक ताम्रपत्र पर प्राप्त हुई थी। यह लेख सम्वत् १२६६ (१२१० ई०) का है और कुछ ही वर्षों पूर्व अहमदावाद के

मूलराज ने ९४२ ई० से ९९७ ई० तक पचपन वर्ष राज किया (१)

भंडार में जड़ा था, ग्रन्थकर्ता ने उसको रायल एशियाटिक सोसायटी, लंदन को भेंट कर दिया है। ताम्रपत्र पर लेख इस प्रकार है :—

समस्तराजावलीसमलंकृतमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकचौलुक्यकुलकमलविकासनैकमार्तण्डश्रीमूलराजदेव

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकश्रीचामुण्डराजदेव

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकश्रीवल्लभराजदेव

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकश्रीदुर्लभराजदेव

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकश्रीभीमराजदेव

पादानुध्यातपरमेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजत्रिलोकीमल्लश्रीकर्णदेव

पादानुध्यातपरमेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजअवन्तीनाथत्रिभुवनगंडबर्बरकजिष्णु सिद्धचक्रवर्तीश्रीजयसिंहदेव

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकउमापतिवरलब्धप्रसादप्राप्तराज्यप्रौढप्रतापलक्ष्मीस्वयंवरस्वभुजविक्रमरणाङ्गणविनिर्जितशाकम्भरीभूपालश्रीकुमारपालदेव

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकपरममाहेश्वरप्रबलबाहुदण्डदर्पंरूपकन्दर्पहेलाकरदीकृतसपादलक्ष्मापालश्रीअजयपालदेव

पादानुध्यातपरमेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजम्लेच्छतमोनिचयछन्नमहीवलयप्रद्योतनबालार्कआहवपराभूतदुर्ज्जयगर्ज्जनकाधिराजश्रीमूलराजदेव

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकाभिनवसिद्धराजसप्तमचक्रवर्तीश्रीमद्भीमदेव इत्यादि

ऊपर के लेख के बाद अन्तिम राजा त्रिभुवनपाल के विषय में लिखा है :—

पादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकशौर्योदार्यगाम्भीर्यादिगुणालंकृतश्री त्रिभुवनपालदेव

(१) विचार श्रेणी नामक ग्रन्थ के अनुसार मूलराज ने संवत् १०१७(९६१ ई०) से १०५२ (९९६ ई०) तक ३५ वर्ष राज्य किया, और "प्रबंधचिंतामणि" के अनुसार संवत् ९९८ (९४२ ई०) से १०५३ (९९७ ई०) तक पचपन वर्ष राज्य किया।

प्रकरण ५

चामुण्ड (१) वल्लभ–दुर्लभ–सोमनाथ का नाश।

हिन्दू इतिहासकार प्रायः उन विषयों का वर्णन करने में, चाहे वह जैन ग्रन्थों के आधार पर हो अथवा राजपूत वंश के कीर्तिरक्षक भाटों के कवित्त—कलाप पर आधारित, चुप्पी साध जाते हैं जिनसे उन्हें अपने चरित्रनायकों की कीर्ति पर कुछ धब्बा आता दिखाई पड़ता

---

(१) कीर्तिकौमुदी के दूसरे सर्ग के कुछ श्लोकों का आचार्य वल्लभ ने इस प्रकार भाषान्तर किया है।

तस्मिन्नथ कथाशेषे, निःशेषितनिजद्विषि ।
राजा चामुण्डराजोऽभून्महीमण्डलमंडनः ॥ ६ ॥
थे गये ओ कथा शेष, नि.शेष करी दुश्मन,
राजा चामुण्ड राजश्री, पछे गयो मही मडन ॥ ६ ॥
विरोधिवनिताचित्ततापाध्यापनपंडिताः ।
यदीयाः कटकारम्भाः कृतजम्भारिभीतयः ॥ ७ ॥
शत्रु स्त्रियोनां चित्तोने, जेडो' यां ताप आपवे,
इन्द्र ने भय देनारा, जेना सेनाग्रभाग छे ॥ ७ ॥
पाणिपंकजवर्तिन्या, स्फुरत्कोशविलासया ।
यस्यासिभ्रमरश्रेण्या, भिन्ना वंशाः क्षमाभृताम् ॥ ८ ॥
पाणी पद्मे रही जेना, शोभी आश्रयकोशने,
असिभ्रमरनी होय, भेद्या भूभृत वंश ने ॥ ८ ॥

साराश यह है कि समस्त शत्रुओं का नाश करके जब मूलराज मर गया तो पृथ्वी का भूषणरूप चामुंड राजा हुआ।

है। उन्हें इसका विचार नहीं होता कि वे बातें कितनी आवश्यक हैं और उनका वर्णन न करने का परिणाम लाभप्रद न होगा (किसी भी अपराधी, मूर्ख और अभागे राजा के चरित्र पर हिन्दू ग्रन्थकार विनीशियन लोगों का सा साहस करके केवल यही लिख कर काला पर्दा डाल देते हैं कि अमुक राजा अमुक समय में पैदा हुआ और अमुक समय में मर गया। इस विषय के जैसे उदाहरण प्रबन्धचिन्तामणि के कर्ता वढवाण के जैन साधु ने मूलराज के क्रमानुयायी चामुण्ड के राज्यकाल का वर्णन करने में प्रस्तुत किए हैं वैसे अन्यत्र बहुत कम मिलेंगे। इसी राजा के राज्यकाल में मुसलमानों के झंडे के आगे राजपूतों का सौभाग्य-सूर्य अस्त हुआ, इसी के समय में भारत के मैदानों पर उन्मत्त विदेशियों का वह प्रबल आक्रमण हुआ, जिससे प्राचीन राजवंशों की जडें हिल गई, और प्राचीन देवता, यहां तक कि स्वय महाकालेश्वर भी, नष्ट होगये) फिर भी, ऐसे समय में अणहिलवाड़ा के इस सत्तावान् राजा के विषय में, जो इस दुखद दृश्य का प्रमुख अभिनेता था, ग्रन्थकार ने कुछ ऐसे अस्पष्ट शब्द लिख कर छुट्टी लेली है) जैसे कि पिछले दिनों में लंदन के वेस्टमिनिष्टर के शान्त मैदान में दफनाए गए साधुओं के स्मारकों पर लिखे जाते थे जो उन लोगों के विषय में कोई भी स्पष्ट सूचना देने में समर्थ नहीं होते।

"विक्रम संवतसर १०५३ (ई० सन् ९९७) से संवत् १०६६ (१०१० ई० तक) से तेरह वर्ष पर्यन्त चामुंड राज ने राज्य किया।" [१]

---

(१) मेरुतुंग ने प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि संवत् १०५३ में श्रावण सुदि ११, शुक्रवार पुष्य नक्षत्र के वृष लग्न में चामुंड गद्दी पर बैठा। इसने श्रीपत्तन में चन्द्रनाथ देव का तथा अपनी बहन के नाम पर चाचिणेश्वर देव का मन्दिर बनवाया।

रत्नमाला के एक खंड में चामुंडराज के व्यक्तिगत चरित्र का चित्रण किया गया है परन्तु उससे अन्य विषयों की बहुत ही थोड़ी सूचना मिलती है। फिर भी, एक कारण से इसका महत्व अवश्य है— वह यह कि एक हिन्दू लेखक के द्वारा इस बात का लिखित प्रमाण प्राप्त होता है कि चामुंड़ के राज्यकाल में मुसलमान लोग गुजरात में आ चुके थे। वह वृत्तान्त इस प्रकार है—

"मूलराज का पुत्र चामुंडराज था। वह दुबला पतला तथा पीले चेहरे वाला था। उसको खाने, पीने तथा सुन्दर पोशाक पहनने का बहुत शौक़ था। अपने बाग में उसने अच्छे अच्छे पेड़ लगवाये तथा कुवे और तालाब बनवाये। परन्तु बहुत,से कामों को अधूरा ही छोड़ कर वह यमपुरी को चला गया। वह अपने पिता से अच्छा था, यवनों के अतिरिक्त उसका कोई शत्रु न था। प्रजा में बहुत दिनों तक उसकी याद बनी रही।"

चामुंड के राज्यकालका जो कुछ थोड़ा सा वर्णन द्व्याश्रय मे मिलता है वह भी यद्यपि उपर्युक्त दोषों से भरा पडा है और कहीं कहीं तो इनमें सच्ची बातों को छुपाने के लिए ही ऐसे ऐसे वर्णन गढे गये हैं कि जिनसे लेखक और पाठक दोनों का ही मनस्तोष हो जाय, परन्तु फिर भी यह वर्णन इसलिये महत्वपूर्ण है कि इससे भारतवर्ष पर होने वाले पहले मुसलमानी हमले के इतिहास के विषय में कितनी ही उलझनें दूर हो जाती हैं।

कहते हैं कि पिता की मृत्यु के बाद चामुंड ने अणहिलवाड़ा का राज्यकार्य बहुत अच्छी तरह चलाया। उसने धन, कोष, सेना और यश की वृद्धि की। वह सब प्रकार निर्दोष था और उसने मूलराज से

प्राप्त की हुई पृथ्वी का अच्छा संरक्षण किया। चामुंड के वल्लभराज [१] नामक एक पुत्र हुआ और वह भी राजनीति में कुशल और सिंहासन के लिये सर्वथा योग्य सिद्ध हुआ। वह विनम्र और वीर था इसलिये राजा अपने मन में बहुत सुखी हुआ और राज्य के शत्रुओं ने, जो चामुंड की मृत्यु के बाद सुख से रहने की बाट देख रहे थे, अपनी आशा छोड़ दी।

कृष्णाजी ब्राह्मण ने लिखा है "वल्लभराज कद का ठिंगना था परन्तु उसकी बुद्धि बड़ी प्रबल थी। वह अवगुणों से दूर रहता था। उसका चेहरा लाल रंग का था और शरीर पर तिल व लशुन के चिन्ह बहुत थे। राज्य का उसे बहुत लोभ था परन्तु वह अपना वचन भंग नहीं करता था। अपने सारे मनसूबों को अधूरा छोड कर ही वह चल बसा।"

हेमाचार्य ने वर्णन किया है कि चामुंड के एक और पुत्र था जिसका नाम दुर्लभराज था। यह भी परम पराक्रमी हुआ और उसके डर से कोई भी असुर सिर न उठा सका। जब ज्योतिषियों ने उसकी जन्मपत्री देखी तो विश्वस्त होकर कहा कि वह बड़ा पराक्रमी होगा, अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करेगा, बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यों को इससे

---

(१) मेरुतुंग कहता है कि इसने मालवा पर चढाई करके धारा नगरी के कोट को घेर लिया था, परन्तु शीतला के रोग से बीच में ही इसकी मृत्यु हो गई। 'राज मदनशंकर' तथा 'जग झपण' ये इसके विरुद थे। इसके बाद इसका भाई दुर्लभराज गद्दी पर बैठा। इसने अपने भाई की याद में मदनशंकर नामक प्रासाद तथा श्रीपत्तन में सप्तभूमि धवलगृह बनवाया जिसमें व्ययकरण (दानशाला) हस्तिशाला और घटिकागृह आदि भी निर्मित थे। अपने नाम पर दुर्लभ सरोवर नामक एक तालाब भी बंधवाया।

उत्तेजना मिलेगी और वह राजाधिराज पद को प्राप्त करेगा।

दुर्लभ और उसके बड़े भाई वल्लभराज ने साथ साथ विद्याध्ययन आरम्भ किया और वे अपने पिता का आदर्श सामने रखते हुए आपस में बड़े प्रेम से रहते थे। इसके पश्चात् चामुंडराज के तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम नागराज था।

एक बार काम के वश होकर चामुंडराज ने अपनी बहन चाचिणी देवी के साथ सभोग किया [१]। इस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये वल्लभराज को सिंहासन पर बैठा कर वह काशीयात्रा के लिये चला गया। मार्ग में मालवा के राजा ने उसके छत्र, चंवर और अन्य राजचिन्हों को छीन लिया। यात्रा करके जब चामुंड अणहिलवाड़ा लौटा तो उसने वल्लभराज की पितृभक्ति को जागृत करके अपना अपमान करने वाले मालवराज को शिक्षा देने के लिए उत्साहित किया। इस पर वल्लभ राज ने सेना इकट्ठी करके मालवा [२] पर चढ़ाई की परन्तु दैवयोग से वह मार्ग में ही शीतला (माता) से पीड़ित हुआ और इसका उपचार करने में कोई भी वैद्य सफल न हुआ। अब, वल्लभराज ने युद्ध की आशा छोड़ दी और परमेश्वर का भजन करते हुए दान पुन्य करने लगा। वहीं उसकी मृत्यु हो गई और रोती विलपती सेना

---

(१) श्रीयुत फार्बस साहब ने इस बात का समर्थन नहीं किया है।

(२) धारा नगरी में मुन्ज के भाई सिन्धुराज (सिन्धुल) ने सन् ९९७ से १०१० ई० तक राज्य किया इसके पीछे भोजदेव प्रथम ने १०१० से १०५५ ई० तक राज्य किया।

अणहिलवाड़ा लौट आई (१)। अपने ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु से चामुंड का हृदय भग्न हो गया और दूसरे कुंवर दुर्लभराज को गद्दी देकर वह अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिये नर्मदा नदी के किनारे भडौंच के पास शुक्ल तीर्थ में रहने लगा। इसी तीर्थ पर प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त और उसका मन्त्री चाणक्य (२) भी अपने पाप निवारणार्थ आकर रहे थे। इसीलिए यह स्थान इतना प्रसिद्ध है। यहीं चामुंड की मृत्यु हुई। (१०१० ई०)

---

(१) जैसलमेर के इतिहास में लिखा है कि जब महमूद गजनवी ने भारत पर चढाई की तो सामना करने वालों में रावल बेचर (Rawal Bachera) भी था। इस रावल का विवाह १०१० ई० में पट्टण के सोलंकी राजा वल्लभ की लड़की के साथ हुआ था। (टॉडकृत राजस्थान भाग २ पृ० २४० और पादटिप्पणी)

(२) कहते हैं कि चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के आठ राजवंशी भाइयों को मरवा डाला था। फिर लिखा है कि जब चाणक्य का बदले की भावना से उत्पन्न हुआ क्रोध शान्त हुआ तो उसके मन में बहुत अशान्ति हुई। वह अपने पापकृत्य के पश्चात्ताप से इतना दुखी हुआ कि मानों कोई विषैला जानवर काटता हो और उसके शरीर का लहू जलने लगा हो। अतएव वह समुद्र के पास नर्मदा नदी के किनारे भडौंच से पश्चिम दिशा में सात कोस की दूरी पर प्रसिद्ध शुक्लतीर्थ नामक स्थान पर पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए चला गया। कठिन तपस्या और बहुत सी पाप शुद्धि की क्रियाओं के उपरान्त उसे आज्ञा मिली कि वह सफेद बादवानों वाली नाव में बैठ कर नदी में तैरे। फिर यदि वे सफेद बादबान काले हो जांय, तो उसे यह निश्चय समझना चाहिए कि वह पापों से मुक्त हो गया और उसके पापों की कालिमा बादबानों में चली गई। उसने ऐसा ही किया और ऐसा ही हुआ भी, फिर उसने आनन्द से अपने पापों सहित उस नाव को नदी में छोड़ दिया।"

"यही अथवा इससे मिलती जुलती क्रिया (क्योंकि नाव छोड़ने में बहुत खर्चा पड़ता है) आज तक शुक्लतीर्थ में होती है, परन्तु अब नाव के स्थान पर साधारण मिट्टी

इस घटना के पश्चात्, वीरता से असुरों का नाश करते हुए, मन्दिरों का निर्माण कराते हुए व बहुत से धर्मकार्यों को सपन्न करते हुए दुर्लभराज ने बड़ी योग्यता से राज्यकार्य चलाया और अणहिलवाड़ा में दुर्लभसरोवर नामक एक तालाब भी बँधवाया। उसने श्रीजिनेश्वर सूरि से शिक्षा ग्रहण की थी इसलिए जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों का ज्ञाता होने के कारण वह प्राणी मात्र पर दया करने के मार्ग पर अग्रसर हुआ। उसने अपनी बहन का विवाह करने के लिए स्वयंवर मण्डप रचा जिसमें मारवाड़ के राजा महेन्द्र को उसने अपना पति वरण किया। [१] महेन्द्र-

---

के घड़े काम में लिए जाते हैं। इन घड़ों पर दीपक रख कर लोग अपने सचित पापों के साथ उन्हें नदी में छोड़ देते हैं।" (इस प्रकार नदी में दीपक छोड़ने का जो कारण ऊपर लिखा गया है वह सही नहीं है वरन् यह है कि जब कुटुम्ब का कोई मनुष्य मर कर अवगति प्राप्त करके भूत पिशाच हो जाता है तो वह अपनी दुर्दशा का हाल घर के जीवित लोगों से आकर कहता है। तब वे लोग उसे कहते हैं "रेवाजी में चल कर तेरा उद्धार करेंगे।" फिर रेवा नदी पर जाकर जिस मनुष्य में भूत आता हो उसके माथे पर मिट्टी का टीका लगा कर बिठा देते हैं और भूत की जिस मिठाई में रुचि होती है वहा घड़े में रख कर नदी में छोड देते हैं। वही घडा थोडी दूर बह कर डूब जाता है, तब कहते हैं कि रेवा माताजी ने मृतक की गति करदी। हांडी के बजाय जब छोटी दियालियों में दीवा छोडते हैं, तब वह दीपक पाप मेटने के लिए छोडा हुआ समझा जाता है। हजारों लोग इस प्रकार दीवे छोडते हैं परन्तु इसका कारण नहीं जानते। वे तो केवल इतना ही समझते हैं कि जिस प्रकार मन्दिर में दीपक जलाने से पुण्य होता है उसी प्रकार रेवा माताजी में दीवा छोड़ने से भी पुण्य होता है।)

"ऐसा प्रतीत होता है कि राजगद्दी पर पापपूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेने के बाद चन्द्रगुप्त भी चाणक्य के साथ आत्मशुद्धि के लिए शुक्लतीर्थ में गया था।"

(विलफोर्ड द्वारा मगध के राजाओं के विषय में लिखे हुए निबंध के आधार पर, एशियाटिक रिसर्चेज भाग ९ पृ० ९६।)

(१) द्व्याश्रय में लिखा है कि मारवाड के राजा महेन्द्र ने अपनी बहन दुर्लभदेवी

राज की छोटी बहन दुर्लभदेवी ने राजा दुर्लभराज को अपना पति चुना और उसी के साथ उसका विवाह हो गया। इस विवाह के कारण दुर्लभदेवी से विवाह करने की इच्छा रखने वाले कितने ही दूसरे राजाओं के साथ दुर्लभराज की शत्रुता हो गई। उसी अवसर पर दुर्लभ देवी की छोटी बहन लक्ष्मी ने चामुण्ड के (सब से छोटे) पुत्र नागराज का पतिरूप में वरण किया।

इसके बाद दुर्लभराज के छोटे भाई नागराज के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम भीम पड़ा। मनुष्य मात्र पर तीन प्रकार के ऋण रहते हैं जो आचरण की पवित्रता से, बुद्धि का सम्पादन करने से, यज्ञयागादिक करने से तथा पुत्र उत्पन्न करने से चुकाये जा सकते हैं। इसलिए जब

के स्वयंवर में दुर्लभराज को निमन्त्रित किया था। वह अपने भाई नागराज और सेना सहित वहां गया। स्वयंवर में अंगराज, काशीराज, अवंतीश, चेदिराज, कुरुराज, हूणाधिप, मथुरेश, विन्ध्यदेशाधिप और आंध्रराज आदि सभी राजा आये थे। इनमें से दुर्लभराज को ही राजकुमारी ने वरण किया। महेन्द्र ने अपनी दूसरी बहन का विवाह दुर्लभराज के छोटे भाई नागराज के साथ कर दिया। इसके पश्चात् लौटते समय उपर्युक्त राजाओं के साथ युद्ध करके उनको हरा कर और विजयी होकर दुर्लभसेन अपने देश लौटा।

हेमाचार्य ने स्पष्टतः यह नहीं लिखा है कि महेन्द्र कहाँ का राजा था परन्तु टीकाकार अभयतिलक ने ही उसे मारवाड़ का राजा बताया है। वह सम्भवतः नाडोल के लक्ष्मणसिंह का पौत्र और विग्रहपाल का पुत्र था। दुर्लभ की बहन के साथ उसका विवाह होना संदेहास्पद ही है।

जबलपुर के पास त्रिपुरी (तेवर) में चेदियों का राज्य था। इसकी स्थापना कोकल्ल प्रथम ने नवम शताब्दी में की थी। मुंज ने इस वंश के दसवें राजा को युवराज बनाया था।

भीम का जन्म हुआ तो अपने को पितृऋण से मुक्त हुए जानकर दुर्लभ और नागराज बहुत आनन्दित हुए और उन्होंने दरबार में महोत्सव मनाया। राजकुमार के जन्मते समय यह आकाशवाणी हुई कि यह महा पराक्रमी होगा।

जब भीम बड़ा हुआ तो दुर्लभ[१] ने उससे इस प्रकार इच्छा प्रकट की "मैं अपना आत्म कल्याण करने के लिए किसी तीर्थस्थान में जा बसूं और वहाँ तपस्या करूँ। तुम मुझे इस राज्यभार से मुक्त करो।" पहले तो भीम ने इनकार कर दिया परन्तु जब दुर्लभ और नागराज ने बहुत आग्रह किया तो उसने अपना राज्याभिषेक करा लिया। उस समय आकाश से पुष्पवर्षा हुई। तत्पश्चात् दुर्लभ और नागराज दोनों स्वर्ग-लोक को गये।

रत्नमाला में दिया हुआ दुर्लभराज का निम्नलिखित वृत्तान्त हमारे अनुसन्धान के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। 'दुर्लभ का कद ऊँचा और रंग गोरा था। वैराग्य की ओर उसका झुकाव अधिक था और वह पार्वती के पति शिवजी का अनन्य भक्त था। ज्ञानी होने के कारण उसे एकाएक क्रोध नहीं आता था। सत्संग, स्नान ध्यान, पुण्यदान और गगा नदी का तट उसे बहुत प्रिय थे। युद्ध की ओर तो जन्म से ही उसकी प्रवृत्ति नहीं थी।"

---

(१) जब दुर्लभसेन गद्दी पर बैठा तो उन्हीं दिनों उसके कुटुम्ब की रानिया और कुंवरियां सोमनाथ की यात्रा करने गईं। उस समय जूनागढ के राव दयास उपनाम महीपाल प्रथम (ई० १००३ से १०१० तक) ने उनका अपमान किया। इस पर दुर्लभसेन ने अपनी सेना लेकर सोरठ पर चढाई की और राजधानी वामनस्थली (वंथली) को जीत लिया। राव जूनागढ दुर्ग के ऊपर के कोट में जा छुपा था उसको घेरा डाल कर परास्त किया।

हेमाचार्य ने चामुण्डराज के विषय में जो बात लिखी है वही बात प्रबन्धचिन्तामणि के कर्ता ने दुर्लभराज के विषय में दोहराई है। वह कहता है कि भीमदेव को राज्य सौंप कर वह काशीयात्रा को गया। मार्ग में मालवा के तत्कालीन राजा मुञ्जराज ने उसको रोका और उसके राजचिन्हों को छीन लिया। आगे लिखा है कि दुर्लभराज ने वैरागियों का सा वेश धारण करके अपनी यात्रा पूरी की और बनारस जाकर मर गया। उसने किसी प्रकार मालवा के राजा द्वारा किये हुए अपमान की बात भीमदेव तक पहुँचा दी थी। कहते हैं कि उसी समय से गुजरात और मालवा के बीच वैरभाव का बीजारोपण हुआ था।

भोजचरित में लिखा है कि दुर्लभराज मुञ्ज से मिला और उसने उसको राज्य वापस लेने की सलाह दी थी। यह सलाह भीमदेव को बहुत बुरी लगी। [१] प्राचीन काल में इस प्रकार राज्य छोडने की रीति राजपूतों में साधारणतया प्रचलित थी, क्योंकि उनका यह विश्वास था कि गया की पुण्य भूमि में मृत्यु होने से मोक्ष का मार्ग सरलता से प्राप्त होजाता है। परन्तु आगे चल कर उन्होंने इस प्रथा को अपने धर्म के शत्रुओं, इसलाम पंथियों पर चढ़ाई करने के रूप में बदल लिया था। यह बात सहज ही समझ में नहीं आती कि दुर्लभ को पुनः गद्दी पर बैठने योग्य क्यों कर समझा गया? राजपूतों के नियमानुसार कोई भी राजा एक बार राज्य छोड़ देने के पश्चात राजधानी में प्रवेश नहीं कर सकता। वह तो मृत के समान हो जाता है। प्रजा बन कर वह रह नहीं सकता और राजा अब रहा ही नहीं। अपने पहले वाले नाम को छोड़ कर वह साधारण त्यागियों जैसा कोई और ही नाम ग्रहण कर लेता है इस कार्य को और भी निश्चयात्मक

(१) देखिये टॉडकृत वेस्टर्न इण्डिया पृ० ७०—१०१

करने के लिए उसका पुत्तलविधान भी किया जाता है। राज्य-त्याग के बारहवें दिन उसके लिए पूर्ण शोक मनाया जाता है और उसके पुतले को चिता में रख दिया जाता है। उसका उत्तराधिकारी दाढ़ी मूँछ मुँड़वाता है और स्त्रियों के रोने पीटने से अन्तःपुर गूंज उठता है। [१]

कृष्णाजी कवि ने जो भीमराज का वर्णन किया है वह स्पष्टतया प्रीतिभाव से लिखा हुआ प्रतीत होता है। अभी, मुसलमान इतिहास लेखकों द्वारा बार बार कही हुई सोमनाथ की कथा को छोड़ कर हिन्दू-ग्रन्थकारों द्वारा लिखे हुए भीमदेव के राज्यकाल का वर्णन यहाँ लिखना चाहते हैं, परन्तु इससे पहले कृष्णाजी लिखित थोडे से भाग को उद्धृत करना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि इससे उसके चरित्रनायक(भीमराज) ने जो पराक्रम गजनी के क्रूर, देवमूर्तिभञ्जक महमूद से टक्कर लेने में दिखाया था उसका पता चल जाता है।

"दुर्लभ के बाद भीमदेव (प्रथम) राजा हुआ। वह देवाधिदेव इन्द्र के समान प्रतापी, युद्ध कला में निपुण और धनुर्विद्या मे कुशल था। उसका शरीर पुष्ट और कद ऊंचा था, सारा शरीर बालों से भरा हुआ, चेहरा कुछ श्याम परन्तु देखने में सुन्दर था। वह बड़ा स्वाभिमानी और युद्धप्रेमी था। म्लेच्छों का सामना करने से वह डरता न था।"

---

(१) देखिये टॉड राजस्थान प्रथम भाग पृ० ७७। द्वितीय भाग पृ० ४५०, ४६६।

(जो त्यागी होकर चला गया हो उसकी बारह वर्ष तक प्रतीक्षा करनी चाहिए, ऐसा धर्मशास्त्र में लिखा है। इसके बाद यदि उसका पता न चले तो उसका पुत्तल-विधान करना चाहिए। जिस दिन अग्निसंस्कार किया जावे, उसी दिन से सूतक माना जाता है और चौथे दिन उत्तर क्रिया की जाती है

जिस समय इंगलैण्ड मे कैन्यूट दी ग्रेट सॅक्सन (डेन) लोगों को हरा कर विन्चैस्टर के जीर्ण देवालय की ऐसी तड़क भड़क के साथ सजावट करने में व्यस्त था कि सोने चांदी और जवाहरात की जगमगाहट से दर्शक एकदम चकित हो जावें, उन्हीं दिनों में इधर सुदूर पूर्व मे एक दूसरा बादशाह, जो उतना ही वीर, योद्धा, साहसी और इमारतों का प्रेमी था, अपनी बहादुरी एक मूर्तियुक्त सुन्दर मन्दिर को नष्ट करके अपना नाम अमर करने में खर्च कर रहा था। जिस क्रिश्चियन देवालय की स्थापना मे नीति-कुशल पश्चिमीय बादशाह कैन्यूट लगा हुआ था, उससे यह देवालय शोभा में कहीं बढ़ चढ़ कर था। इसलाम के शत्रु हिन्दुओं पर, गजनी के सुल्तान ने ग्यारह बार चढ़ाई की और प्रत्येक बार उसके लोभ और लालसा की पूर्ति हुई—परन्तु, इधर मूर्तिपूजकों का अपने धर्म में अटल विश्वास बढ़ता रहा और महाकालेश्वर की इस मूल आज्ञानुसार यह भावना और भी दृढ़ता पकड़ती गई कि बहुत से लोग सच्चे भाव से सोमेश्वर की पूजा नहीं करते, उन्हीं को शिक्षा देने के लिए बार बार मुसलमानों के हमले होते हैं और उनकी विजय होती है। इसीलिए अब की बार धर्म के दीवाने महमूद गजनवी ने एक बार फिर अपनी सारी शक्ति संचित करके ऐसा अन्तिम प्रयत्न करने की ठानी कि जिससे उसका नाम उसके बाद में यदि बड़े से बड़े इसलाम धर्म के प्रवर्तकों में नहीं तो मूर्तिभञ्जकों में अवश्य गिना जाय।

सोमनाथ पर चढ़ाई करने के लिए सन् १०२४ ई० के सितम्बर मास में महमूद गजनी से रवाना हुआ। तुर्किस्तान में से चुने हुए श्रेष्ठ और स्वेच्छा से आए हुए युवकों के झुण्ड के झुण्ड उसकी असंख्य सेना के साथ थे। एक महीने में वे लोग मुलतान पहुँचे। उनके

और हिन्दुस्तान के मैदानों के बीच में जो विशाल जंगल पड़ता था उसे पार करने के कठिन कार्य के लिए वे सन्नद्ध हुए। इस जगल को पार करने मे उन्हे सफलता मिली और शीघ्र ही अजमेर नगर [१] इनके हाथ में आ गया। पास ही की पहाडी पर बने हुये किले की ओर बिना ध्यान दिये वे आगे बढे। अरावली की तलहटी को पार करने के बाद अद्भुत आबू पहाड़ को डोलायमान अवस्था में पीछे छोड़ कर वे गुजरात के मैदानों मे जा पहुँचे और उनको सामने ही अणहिलवाड़ा का विस्तृत नगर दिखाई पड़ा। इस आकस्मिक हमले के लिए चामुण्डराज [२] तैयार न था। इस समय उसके सामन्त तितर बितर हो चुके थे। उसका ध्यान लड़ाई के लिए तैयार रहने की अपेक्षा बाग के पेड़ों तथा अपने बधाये हुये जलाशय की ओर अधिक लगा हुआ था। इस महान् आक्रमण से राजधानी को बचाने के लिए इस समय उसके पास कोई साधन भी न था। वह घबरा कर भाग गया और मुसलमानों की सेना वे रोक टोक नगर में घुस गई।

---

(१) राजपूत इतिहास में लिखा है कि चौहान राजा वीर बीलनदेव अथवा धर्मगजदेव जो लडाई में मारा गया था, उसने महमूद को अजमेर से पीछे हटा दिया था (टॉड राजस्थान भाग २ पृ० ४४७, ४५१)

परन्तु बाद मे महमूद ने अजमेर पर हमला किया, लोग शहर छोड कर गये और आसपास का देश लूट व नाश के लिए खुला छोड गये। फिर, गढ बीतली (अजमेर का तारागढ) सामने आया और यहा महमूद हारा और घायल हुआ और उसे नादोल होकर लौटना पडा। नांदोल एक दूसरा चौहानों का स्थान था जिसको उसने लूटा और फिर नेहलवाड की ओर आगे बढा।" वही पुस्तक पृष्ठ ४४८।

(२) चामुंडराज इस चढाई से चौदहवर्ष पहले सन् १०१० ई० में ही मर चुका था इस समय अणहिलवाड़ा की गद्दी पर भीमदेव राज्य करता था जो १०२२ ई० में गद्दी पर बैठा था।

इस बार महमूद की लडाई हिन्दू राजाओं से न होकर हिन्दू देवताओं से थी, इसलिए वनराज के नगर (अणहिलवाड़ा) को पीछे छोड कर उसकी सेना सोमनाथ की ओर जल्दी से आगे बढ़ी।

सौराष्ट्र के दक्षिण पश्चिमी किनारे पर वेरावल का छोटा सा बन्दर और अखात है। यह भूभाग अत्यन्त धनी, उपजाऊ और घने जंगलों से ढका हुआ है। यह छोटा सा अखात अपनी गम्भीर और रमणीय वक्रता को लिये हुए स्थित है और इसके किनारे की सुनहरी बालू समुद्र की लहरों से निरन्तर उलट पुलट होती रहती है। इसीलिए यह कहा जाता है कि हिन्दुस्तान में इसकी बराबरी का दूसरा कोई स्थान नहीं है। इसी अखात की दक्षिणी सीमा बनाता हुआ एक छोटा सा भूभाग आगे निकला हुआ है जिस पर देवपट्टण अथवा प्रभास नगरी स्थित है। यहां केवल पत्थरों का बना हुआ एक किला है जिसमें चूने का प्रयोग नहीं हुआ है। इसके दोहरा दरवाजे हैं और वह कितनी ही समकोण बुर्जों द्वारा रक्षित है। किले के घेरे में लगभग दो मील जमीन आगई है। इसके चारों ओर पच्चीस फीट चौड़ी और लगभग इतनी ही गहरी खाई है जो ऐसी कारीगरी से बनाई गई है कि इच्छा-नुसार पानी से भरी जा सकती है। इस नगर की निर्माण-योजना, इधर उधर बिखरी पड़ी टूटी फूटी मूर्तियां, कितनी ही मस्जिदों और घरों पर अब तक विद्यमान इमारती सजावट आदि, विजेताओं द्वारा कितने ही परिवर्तन कर देने पर भी इस सोमनाथ के नगर के मौलिक हिन्दुत्व की सूचना पुकार पुकार कर उस भाषा में दे रहे हैं जिसमें कभी भूल नहीं हो सकती। नगर के नैर्ऋत्य कोण में किले की दीवार के पास ही एक चट्टान पर प्रसिद्ध महाकालेश्वर का मन्दिर है। जिसकी जड़ समुद्र के जल से धुलती रहती है, यद्यपि यह अब नष्ट

प्राय हो चुका है परन्तु इसके खण्डहरों से इसकी बनावट आदि की योजना और भवन निर्माण की सुन्दरता का अनुमान लगाया जा सकता है। मन्दिर के चारों ओर दूर दूर तक पड़े हुए खम्भों के टुकड़ों, कुराई का काम हुये पत्थरों और इस इमारत के कितने ही टूटे फूटे भागों से बहुत सी जमीन भरी पड़ी है। इसकी आश्चर्यजनक मजबूती की परीक्षा, इन्हीं कुछ वर्षों में, पास ही के वेरावल बन्दर की समुद्री डाकुओं से रक्षा करने के लिए, इसकी छतों पर चढ़ा कर चलाई गई भारी तोपों के द्वारा हो चुकी है।

यह तो अत्यन्त प्रसिद्ध और कीर्तिमान सोमेश्वर महादेव के मन्दिर की वर्त्तमान स्थिति का वर्णन हुआ। अब, मुसलमानी फौज के सामने जो दृश्य आया होगा उसके लिए तो एक दूसरी ही कल्पना करनी होगी। इसका गगनचुम्बी शिखर इसके पिछवाड़े के समुद्र के आसमानी क्षितिज से भी दूर निकला हुआ दिखाई पड़ता होगा। उस पर शिवजी का भगवाँ ध्वज फहरा रहा होगा। इसका द्वारमण्डप, रंग मण्डप, शकु के आकार का गुम्बज, विस्तृत चौक और खम्भोंवाले सभामंडप तथा प्रधानगृह के चारों ओर बने हुए अगणित छोटे छोटे मन्दिर, ये सब भगवान् सोमनाथ के मनोहर मन्दिर की अति रमणीय शोभा को बढ़ा रहे होंगे। जो मन्दिर आज पृथ्वी पर समतल होकर पड़ा है उसकी दीवारों से मसजिद की दीवारें बना ली गई हैं, अथवा अपने आप धीरे धीरे नष्ट हो गई हैं, अथवा कहीं कहीं उनमें गरीब मर्त्यों के निवासस्थान बन गये हैं।[१]

---

(१) सोमनाथ का यह वर्णन टॉड कृत वेस्टर्न इन्डिया तथा किटो के नोटिस् आन ए जरनीटू गिरनार से लिया गया है। (Journal of the Bengal Branch of the Asiatic Society Vol. vii p. 865

यद्यपि महमूद बहुत जल्दी ही वे रोक टोक यहां पहुँच गया था और जिस देश में होकर वह आया वहाँ भी विशेष अड़चन न थी परन्तु फिर भी सोमनाथ की रक्षा के लिए तथा आक्रमणकारियों को दण्ड देने के लिए तैयार सशस्त्र और अपनी जान पर खेलने वाले बहुत से धर्म प्रेमियों का समुदाय उसके सामने आया। राजपूतों ने एक दूत को भेजकर युद्ध की सूचना दी और अभिमान सहित यह भी बताया कि हिन्दुस्तान के देवताओं के अपमान का बदला लेने के लिए और उनको एक ही क्षण में नष्ट कर देने के लिए ही मुसलमानों को सर्वशक्तिमान् सोमेश्वर भगवान् ने पास खींच लिया है। दूसरे दिन प्रातःकाल पैगम्बर का हरा झण्डा फहराते हुए मुसलमानों ने किले की दीवार के पास आकर हमला बोल दिया। तीरन्दाजों ने थोड़ी ही देर में मोरचा तोड़ दिया और हमले की असाधारण प्रगति से आश्चर्य में भर कर हिन्दू लोग घबरा गये। किले की दीवारों को छोड़ कर वे पवित्र मन्दिर की चार-दीवारी में इकट्ठे हो गये और हताश से होकर आंखों में आंसू भर देव-मूर्ति के सामने दण्डवत् करते हुए सहायता की प्रार्थना करने लगे। आक्रमणकारियों ने इस अवसर को हाथ से न जाने दिया और "अल्ला हो अकबर" के नारे लगाते हुए सीढ़ियां लगा कर दीवार पर चढ़ गये। परन्तु, राजपूत लोग जिस प्रकार यकायक घबरा कर अव्यवस्थित हो गये थे उसी प्रकार उनको जोश भी आया और वे तुरन्त ही व्यवस्थित हो होकर सामना करने लगे। सूर्यास्त होते होते तो महमूद के सिपाहियों के पैर उखड़ गये गये और वे थकान व भूख से व्याकुल होकर भाग खड़े हुए।

दूसरे दिन, सुबह फिर लड़ाई हुई। ज्योंही मुसलमान दीवार पर चढ़ने लगे कि हिन्दुओं ने उन्हें उलटा धकेल दिया और उनकी मेहनत

पहले दिन की अपेक्षा अधिक असफल हुई।

तीसरे दिन, वे राजा लोग, जो देवालय की रक्षा हेतु इकट्ठे हुये थे, लड़ाई के लिए तैयार होकर, हारबंध बांध कर इस तरह खड़े हुए कि महमूद की छावनी से साफ दिखाई पड़ें। सुलतान ने उनके इस प्रयत्न को रोकने का निश्चय किया और सामान की रक्षा के लिए एक टुकड़ी फौज छोड़ कर वह स्वयं शत्रु से मोर्चा लेने को आगे बढ़ा। घमासान लड़ाई शुरू हुई और किस पक्ष की जीत होगी यह कहना कठिन हो गया। इतने ही में युवराज वल्लभसेन और उसका शूरवीर भतीजा युवक भीमदेव बहादुरों की एक नई सेना लेकर आ पहुँचे जिससे हिन्दुओं का साहस द्विगुणित हो गया। जब, महमूद ने अपनी सेना को ढिलमिल होते देखा तो वह घोड़े पर से कूद पडा और जमीन पर लेट कर अल्लाह से मदद मांगने लगा। फिर, वापस अपने घोड़े पर सवार होकर मदद के लिए एक सिरकाशियन सरदार का हाथ पकड़े हुये वह राजपूतों की ओर आगे बढ़ा और अपनी सेना का उत्साह बढ़ाने लगा। जिस बादशाह के साथ वे लोग कितनी ही बार युद्धस्थल में लड चुके थे, और घायल हो चुके थे उसको इस समय छोड़ते हुए उन्हें शर्म मालूम हुई और इसलिए वे एक ही सांस में हिन्दुओं पर टूट पड़े। इस जोरदार हमले को हिन्दू लोग सहन कर न सके —मुसलमानों के टूट पडते ही पांच हजार हिन्दू मारे गये। अब, चारों ओर भगदड़ मच गई। सोमनाथ के रक्षकों ने जब अणहिलवाड़ा के राजध्वज को गिरते हुये देखा तो वे अपना स्थान छोड़कर समुद्र की ओर के दरवाजे से निकल कर भाग गए। लगभग चार हजार सिपाही बच निकले परन्तु इससे उनका बहुत सा नुकसान भी हुये बिना न रहा।

अब, किले की दीवारों और दरवाजों पर रक्षकों को रख कर गजनी का

विजयी सुलतान अपने पुत्रों और कुछ चुने हुए सरदारों के साथ सोमेश्वर के मन्दिर में घुसा। उसने चिकने पत्थर की भव्य इमारत देखी। इसका ऊंचा मण्डप कुराई का काम हुये रत्नों से जड़े हुये खम्भों के आधार पर स्थित था। अन्दर के निज-मण्डप में बाहर से प्रकाश नहीं आ सकता था। छत के बीच से लटकती हुई सोने की सांकल पर एक दीपक लटक रहा था और उसी के प्रकाश में सोमेश्वर का लिंग दिखाई पड़ रहा था। यह शिवलिंग नौ फीट ऊपर और छः फीट जमीन के अन्दर था। बादशाह की आज्ञा से इस मूर्ति के दो टुकड़े कर दिये गये, जिनमें से एक तो हिन्दुस्तान की सार्वजनिक मसजिद की सीढ़ियों में जड़ने के लिये दे दिया गया और दूसरा गजनी में महल के दीवानखाने के दरवाजे पर लगाने के लिये रखा गया। अन्य टुकड़े मक्का और मदीना जैसे धार्मिक नगरों की शोभा बढ़ाने के लिये रख लिये गये। जब महमूद इस प्रकार टुकड़े करने में व्यस्त था उसी समय एक ब्राह्मण-मण्डली ने आकर इस प्रकार प्रार्थना की "मूर्ति का कुछ भाग बचा है उसको यदि आप न तोड़ें तो हम एक बहुत बड़ी धनराशि आपकी भेंट करेंगे।" महमूद का मन डगमगाया और उसके उमराव उसको उचित सलाह देने लगे परन्तु थोड़ा सा विचार करने के बाद सुल्तान बोला "मैं यह चाहता हूँ कि मेरे बाद, लोग मुझे मूर्तिभञ्जक कह कर याद करें न कि मूर्ति बेचने वाला।" ऐसा कह कर उसने लूट का काम जारी रखा और मूर्ति के नीचे भी उसको बहुत सा धन मिला।

मुसलमान इतिहासकार यह स्वीकार करते हैं कि यद्यपि भीमदेव घेरा डालने में असफल हुआ परन्तु उसने तीन हजार मुसलमानों को नष्ट कर दिया था और देवपट्टण ले लेने के बाद वह सोमेश्वर के नष्ट

हुये मन्दिर से १२० मील की दूरी पर गणदावा [१] के किले मे चला गया था। इधर सोमनाथ के धन को प्राप्त करके महमूद ने उसका

(१) अंग्रेजी मूल में इस किले का नाम गणादाबा (Gundaba) दिया है और गुजराती अनुवाद मे कंडहत (कच्छ का कंथकोट) लिखा है तथा नीचे लिखी टिप्पणी भी दी है :—

अंग्रेजी मूल मे "गणदावा" लिखा है यह भूल है। उन्होंने शायद फरिश्ता के आधार पर ऐसा लिख दिया है। त्रिग ने गणदेवी लिखा है—यह भी कल्पनामात्र है। फरिश्ता की कितनी ही प्रतियों में खडाव या खडव भी देखने में आता है। आसपास के वृत्तान्तो से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह लेख कच्छान्तर्गत कन्थकोट पर लागू होता है। यह किला एक ऊँची पहाडी पर तीन मील के घेरे में मजबूत बँधा हुआ है अत. भीम को यह उपयुक्त मालूम हुआ क्योंकि जब बारप ने आक्रमण किया तब मूलराज भी वही पर गया था।

कच्छ उस समय भीम के अधिकार में था, यह बात उसके एक ताम्रपट्ट से सिद्ध होती है। यह लेख इन्डियन एन्टीक्वैरी भाग ६, पृ० १६६ तथा उसी में बर्जस् द्वारा अणहिलवाडा के चालुक्यों के विषय में लिखे हुए लेख की छोटी सी पुस्तक के पृ० ४८–५१ में है। यह लेख कार्तिक शुदि १५ स० १०८६ का है—इससे कच्छ मंडल का मसूर ग्राम भट्टारक अजयपाल को दिया हुआ मालूम होता है।

इस स्थान को कंथकोट ठहराने में यहां की स्थिति देख कर कितने ही लोगों को सन्देह होता है। कच्छ द्वीप कहलाता है, इसके आसपास पानी रहता अवश्य था परन्तु वह उत्तर और पूर्व की ओर धीरे धीरे कम होता गया है। अब फिर कच्छ के पूर्वीय भाग में रण का पानी विस्तार प्राप्त कर रहा है। शिकारपुर के आगे कुछ समय से मछुए फिरने लगे हैं और सभवतः कुछ समय बाद यह फिर बन्दरगाह बन जायगा। कर्नल वाटसन का विचार है कि यह स्थान काठियावाड के किनारे मियाणी पर से ईशान कोण में कुछ मील पर स्थित गॉधवी नामक स्थान हो सकता है (काठियावाड गजट पृ० ८०) इसी प्रकार दूसरे विद्वानों के भी भिन्न भिन्न मत है परन्तु सभी बातों को लक्ष्य में रखते हुए यह स्थान कथकोट ही हो सकता है, यही हमारा अभिप्राय है। हमने इस स्थान का अच्छी तरह निरीक्षण भी किया है।

पीछा करने की तैयारी की। वह उधर चला तो गया परन्तु उसे किले के पास पहुँचना अशक्य दिखाई पड़ा क्योंकि इसके चारों ओर पानी भरा हुआ था, केवल एक ही जगह ऐसी थी जिधर से उतरा जा सकता था। महमूद ने अपने लश्कर समेत नमाज पढ़ी और अपने भाग्य को कुरान पर छोड़ कर सेना सहित जिधर से पानी का उतार था उधर से उतर पड़ा। सकुशल दूसरी पार पहुँच कर उसने ताबड़तोड़ हमला कर दिया। मुसलमानों के पहुँचते ही भीमदेव भाग गया और आक्रमणकारियों ने सहज ही में किले पर अधिकार करके रक्षकों की भीषण मार काट शुरू कर दी। स्त्रियां और बच्चे कैद कर लिये गये और गुणदावा के किले को लूटने से महमूद के खजाने की और भी वृद्धि हो गई।

इस प्रकार विजयी होकर महमूद अणहिलवाड़ा लौटा, और ऐसा प्रतीत होता है कि उसने वर्षा ऋतु वहीं व्यतीत की। कहते हैं कि उसको वहां की जमीन इतनी उपजाऊ, वहां की हवा इतनी स्वच्छ और नीरोग तथा वह देश इतना रम्य और हरा भरा प्रतीत हुआ कि उसने अपना गजनी का राज्य शाहज़ादा मसूद को सौंप कर वहीं अपनी राजधानी बना कर कुछ वर्षों रहने का विचार किया। जवाहरात इकट्ठे करने का महमूद को बच्चों का सा शौक था। लंका के जवाहरात और पेगू की खानों के किस्से सुन सुन कर उसकी कल्पना के पंख लग गए थे और उसने इन देशों को जीतने के लिए समुद्री फौज तैयार करने का विचार किया था। परन्तु, जब उसने अपने मंत्रियों की गम्भीर सलाह पर विचार किया, तो उसने लौट जाना ही उचित समझा।

विलासी चामुण्डराज को शायद उसके देश की इस दुर्दशा के कारण

---

(१) बहुत से लोग यह मानते हैं कि महमूद की चढ़ाई के समय चामुण्ड

ही अपना राज्य छोड़ना पड़ा था [१] न कि उसके विषय में कही हुई बहन के साथ गोत्रगामी सम्बन्ध होने की बातों के कारण। कुछ भी हुआ हो, परन्तु इस घटना के बाद में उसका कही भी कोई विवरण नही मिलता। जब महमूद और उसके कार्यकर्ताओं ने गुजरात मे किसी हकदार और योग्य करद राजा को स्थापित करने लिये तलाश की तो उनका ध्यान वल्लभ और दुर्लभसेन, इन दोनों भाइयों की ओर गया प्रतीत होता है। युवराज वल्लभसेन बहुत बुद्धिमान् और विद्वान् था। सभी ब्राह्मणों को उसकी बुद्धिमत्ता में विश्वास था। उसके विषय में यह बात भी आग्रहपूर्वक कही गई कि एक परगना पहले ही से उसके अधिकार मे था और उसका व्यवहार इतना न्यायपूर्ण और विश्वस्त था कि यदि वह एक बार कर देना स्वीकार कर लेगा तो फिर कर की रकम प्रतिवर्ष गजनी भेजने मे भूल न होगी। उधर दुर्लभसेन के पक्ष वालों ने कहा कि वह दर्शनशास्त्र के अध्ययन और योगाभ्यास में लगा हुआ था, इसलिये राज्य उसी को मिलना चाहिए। परन्तु उसके विपक्षियों ने इसका विरोध किया और कहा "वह दुष्ट स्वभाव का पुरुष है, ईश्वर की उस पर अकृपा है, और जो वह संसार से विरक्त सा रहता है सो अपने मन से नहीं वरन् उसने कितनी ही वार गद्दी प्राप्त करने का प्रयत्न किया था और उसके भाइयों ने उसे कैद कर लिया था इसलिए अब अपने बचाव के लिए उसने यह ढोंग रच रखा है। इस विवाद का उत्तर देते हुए सुल्तान ने कहा कि यदि युवराज वहाँ उपस्थित होकर राज्य के लिए प्रार्थना करता तो वह उसे स्वीकार कर सकता था परन्तु

अथवा जामुण्ड अणहिलवाड़ा का राजा था और अपने देश की दुर्दशा देखकर विरागी हो गया था, परन्तु ऐसी बात नहीं थी। इब्न असीर सबसे पुराना लेखक है, उसने स्पष्ट लिखा है कि उस समय भीमदेव प्रथम अणहिलवाड़ा का राजा था।

जिसने न कोई सेवा ही की और न सलाम बजाने ही आया उसको इतना बड़ा राज्य किस तरह दिया जाय ? इस प्रकार उसने वनवासी दुर्लभसेन को अधिक पसन्द किया, जिसने गुजरात का राज्य प्राप्त करके काबुल और खुरासान (कंधार) कर भेजना स्वीकार कर लिया। इसके बाद उसने सुल्तान से प्रार्थना की "मेरा पूरा अधिकार जमने के पहले ही वल्लभसेन अवश्य ही मुझ पर आक्रमण करेगा इसलिये थोड़ी सी सेना मेरी रक्षा के लिये यहां छोड़ दी जावे।" दुर्लभसेन की इस प्रार्थना पर महमूद के मन में यह बात आई कि देश को छोड़ने के पहले वल्लभसेन को नष्ट करने का उपाय किया जावे और थोड़े ही समय बाद वल्लभसेन उसके सामने कैद करके लाया गया। (१)

(२) इस प्रकार एक वर्ष से भी अधिक समय गुजरात में बिता कर महमूद ने घर की ओर प्रस्थान करने का विचार किया और दुर्लभसेन की

---

(१) द्वयाश्रय के गुजराती अनुवाद पृ० १०३ में इस प्रकार टिप्पणी दी है—

"चामुण्डराज बहुत कामी था, इसलिये उसकी बहन चाचिणी देवी ने उसको पदच्युत किया। वह अपने पुत्र वल्लभराज को गद्दी सौंपकर स्वयं त्यागी बन कर काशी की ओर चल दिया। मार्ग में मालवा के लोगों ने उसे लूट लिया इसलिये वापिस लौट कर उसने वल्लभराज को आज्ञा दी कि मालवा के राजा को दण्ड दे।"

इसके अनुसार वल्लभ ने मालवा पर चढ़ाई की परन्तु बीच ही में उसके शीतला निकली और वह मर गया (१०१० ई०)। इससे स्पष्ट है कि वल्लभराज ने तो अधिक दिन राज्य ही नहीं किया। इसके पश्चात् चामुंड ने अपने दूसरे पुत्र दुर्लभराज को राजा बनाया जिसने १०१० से १०२२ ई० तक राज्य किया और इसके बाद वह अपने भाई नागराज के पुत्र भीमदेव को राज्य सौंप कर तीर्थवास करने चला गया; अतः महमूद की चढ़ाई के समय भीमदेव ही राजा था। यह संभव है कि अपने धर्माभिमान से प्रेरित होकर दुर्लभराज ने त्यागी होते हुए भी महमूद के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया हो।

की प्रार्थना के अनुसार युवराज वल्लभसेन को भी अपने साथ गजनी ले जाने का निश्चय किया। वह जिस मार्ग से आगे बढ़ा उसको अपराजित भीमदेव ने और उसके मित्र अजमेर के राजा बीसलदेव ने रोक लिया था। लडाई और जलवायु की प्रतिकूलता के कारण मुसलमानी फौज बहुत थोड़ी रह गई थी इसलिए अब और लड़ाई की जोखिम न उठा कर महमूद ने सिन्ध के पूर्व में होकर नये रेतीले मार्ग से जाने का निश्चय किया। इस रास्ते में भी उसको बड़े बड़े उजाड़ मैदान पार करने पड़े

---

(२) सोमनाथ पर महमूद की चढाई का यह वृत्तान्त ब्रिग कृत फरिश्ता, आईन-ए-अकबरी, बर्ड कृत मिरात-ए-एहमदी, और एलफिन्स्टन कृत हिन्दुस्तान के इतिहास में से लिया गया है—

जब महमूद गजनवी ने अणहिलवाडा पर कब्जा किया उस समय के राजा का नाम आईन-ए-अकबरी व मिरात-ए-अहमदी के कर्ताओं ने स्पष्टतया चामुंड [अथवा जामुंड जैसा कि वहा लिखा है] लिखा है। हम देख चुके हैं कि हिन्दू ग्रन्थों में महमूद के हमले का कोई वृत्तान्त नहीं मिलता है। हाँ, उनसे केवल इतनी सी बात मालूम होती है कि चामुंड अपने पुत्र वल्लभसेन की मृत्यु के बाद भी जीवित रहा था। मुसलमान इतिहासकारों ने जो वृत्तान्त दो दाबिशलीम के बारे में लिखा है उन्हें वल्लभसेन और दुर्लभसेन मान लेने में कोई आपत्ति न होगी और जो ''ब्रह्मदेव'' के विषय में लिखा है वह भीमदेव के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। वल्लभ और दुर्लभ के विषय में जो बातें लिखी हैं उनमें से कौनसी बात दोनों भाइयों में से किसके साथ लागू होती है इसका निर्णय करना कठिन है। चामुंडराज के बाद में थोडे से दिन वल्लभसेन ने राज्य किया, यह बात सभी वर्णनों में मिलती है। चौथे प्रकरण के अन्त में ताम्रपट्ट के आधार पर दी हुई मूलराज प्रथम से लेकर भीमदेव द्वितीय तक के राजाओं की नामावली से भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि वल्लभसेन ने राज्य नहीं किया परन्तु दुर्लभसेन गद्दी पर अवश्य बैठा था। यदि हम यह मानलें कि चामुंड ने युवराज वल्लभदेव के लिए राज्य

जहां पानी के बिना उसकी बहुत सी फौज नष्ट हो गई और बहुत से घुड़सवारों को दानापानी बिलकुल न मिल सका। तीन दिन और तीन रात एक हिन्दू पथ-प्रदर्शक उनको रेतीले उजाड़ में आडे रास्ते ले गया। बहुत से सिपाही असह्य धूप और प्यास के मारे व्याकुल होकर मर गये। जब उस पथप्रदर्शक को बहुत दुख दिया गया तो उसने यह स्वीकार किया कि सोमनाथ का पुजारी था और उस देवालय का नाश करने वालों से बदला लेने के लिये तथा मुसलमानी सेना को नष्ट

छोड दिया था और वल्लभसेन भीमदेव के साथ महमूद का सामना करने के लिये आया था तो वृत्तान्त की सगति बैठ जाती है और जो कुछ थोडा बहुत वृत्तान्त हिन्दू ग्रन्थों में मिला है तथा जो कुछ मुसलमानी वृतान्तों मे लिखा है उसके साथ भी सामंजस्य हो जाता है। ऐसी दशा में स्वाभाविकतया महमूद ने दुर्लभसेन को ही अपना करद राजा बनाने के लिए चुना होगा। यह समव है कि दुर्लभ ने अपने भाई के विपक्ष में अपने ही देश के मनुष्यो का एक दल बना रखा होगा, परन्तु यह मानने में कि युवराज को ही महमूद ने पसन्द किया होगा—एक अड़चन पड़ती है। वह यह कि उस राज्य पर उसका तो पूरा हक था ही, इसको कोई इन्कार भी नहीं कर सकता था, फिर उसको हटा कर उसके भाई को लोग राजा बना देंगे, इस बात का डर उसको क्योंकर हुआ? फिर मुसलमान इतिहासकारों के लेखों मे ऐसा ही प्रतीत होता है कि जैसे वनवासी "दबींशलीम" के चुनाव के कारण गद्दी पर बैठने वालों का अनुक्रम ही टूटता था। ऐसी दशा में उस कथा को तो छोड़ ही देना पड़ेगा जिसके अनुसार दोनों दलों का भाग्य उलट गया और वनवासी दुर्लभसेन को उसी तैदखाने में पड़ना पड़ा जो उसने युवराज के लिए तैयार कराया था। यद्यपि इस विषय में मिस्टर एल्फिन्स्टन ने लिखा है कि यह कोई असम्भव बात नहीं है और यह किसी शक्तिशाली हिन्दू आचार्य की चालों का सच्चा चित्र हो सकता है जो कि किसी मुसलमान लेखक ने कल्पना करके लिख दिया होगा।

करने के लिये उसने यह प्रयत्न किया था। इस पर बादशाह ने उसको मृत्यु दण्ड दिया। उस समय साझ हो चुकी थी इसलिये बादशाह ने नमाज पढ़ी और सब के उद्धार के लिये खुदा से प्रार्थना की। मुसलमान इतिहासकार का कहना है कि उसी समय उत्तर दिशा मे एक तारा दिखाई दिया और उसी तरफ लश्कर आगे बढ़ा। प्रातःकाल होते होते वे लोग एक सरोवर के किनारे जा पहुँचे।

हुये उसे राज्य देने पर जोर दिया था परन्तु उसने इसको स्वीकार ही नहीं किया।

तारीखों के विषय में एक और बडी अड़चन पडती है उसका यहा पर वर्णन अवश्य कर देते हैं परन्तु उसको हल करना बडा कठिन है। मुसलमानी इतिहास के प्रमाण से तो महमूद ने १०२४–५ ई० में गुजरात पर विजय पाई परन्तु हिंदू ग्रन्थकार लिखते हैं कि वल्लभसेन [जिसने ६ महीने ही राज्य किया] और दुर्लभसेन १०१० ई० में गद्दी पर बैठे और भीमसेन १०२२ में गद्दी पर बैठा।

[फरिश्ता के आधार पर यह बात मान कर कि महमूद गजनवी के हमले के समय चामुण्ड ही राज्य करता था, मिस्टर फार्बस एक अजीब गडबड में पड़ गये हैं। इब्न असीर (११६० ई०) का सबसे पुराना प्रमाण है। उसने लिखा है कि उस समय भीमदेव प्रथम राज्य करता था। द्व्याश्रय के आधार पर भी यही स्पष्ट हो जाता है। उसमें लिखा है कि चामुण्ड युवराज वल्लभसेन को राज्य देने के लिए बहुत उत्सुक था, परन्तु वह (युवराज) अच्छी तरह राज्य की बागडार सम्हालने भी नहीं पाया था कि मालवा पर चढाई करते हुए १०१० ई० में शीतला के रोग से उसकी मृत्यु हो गई। इसलिये यह स्पष्ट है कि उसने कोई राज्य ही नहीं किया। इसके पश्चात् चामुण्ड ने दुर्लभराज को राज्य सौंप दिया और उसने १०१० से १०२२ ई० तक राज्य किया और फिर १०२२ ई० में अपने भतीजे भीमदेव को राज्य सौंप कर वन में चला गया [अथवा उसको चला जाना पडा] इसलिये हमले के समय भीमदेव ही राजा था और वह पहले तो मुसलमानी सेना से हार कर भाग गया था परन्तु बाद में जब वे (मुसलमान) लौटने लगे तो उन पर उसने हमला किया। दुर्लभ को महमूद ने अपना प्रतिनिधि बना कर राज्य दे दिया

अन्त में सोमनाथ के विजेता सुलतान पहुँचे और वहां से गजनी लौट गये।

होगा, यह असम्भव नहीं है, परन्तु वनवासी दाबिशलीम और ब्राह्मण द्वारा महमूद को जंगल में भटकाये जाने की बात किम्वदन्ती मात्र मान कर अविश्वसनीय है]

यहां दाबिशलीम शब्द से दुर्लभसेन का तात्पर्य लिया है परन्तु यह फारसी शब्द है और अन्य फारसी भाषा के ग्रन्थों में इसका प्रयोग हिन्दुस्तान के सभी राजाओं के लिए किया गया है। इसलिए यह दुर्लभसेन के लिए ही लिखा गया है, यह विश्वस्त रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर भी रोजतुल सफा के कर्ता ने दो दाबिशलीम का उल्लेख करके गड़बड़ी खड़ी कर दी है। इस ग्रन्थ के पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों ने तो भीमदेव प्रथम का ही उल्लेख किया है। इस ग्रन्थकार ने ऐसा क्यों लिखा है इसका कोई आधार ज्ञात नहीं होता है। इण्डियन एण्टीक्वेरी के भाग ८ पृ० १५३ में स्वर्गीय थॉमसन ने एक मुसलमानी लावणी का भावार्थ छपवाया था उसमें भी पाटण के सोमनाथ के विषय में ऐसी ही अप्रामाणिक बातें लिखी हैं।

प्रकरण ६

भीमदेव (प्रथम) १०२२ ई० से १०७२ ई० तक। ५० वर्ष

भीमदेव प्रथम ने सन् १०२२ ई० से १०७२ ई० तक राज्य किया। उसके कार्यकलाप का सारांश द्व्याश्रय के लेखक ने लिखा है। यद्यपि अपने पक्ष के लिए जरा सी भी विरुद्ध पड़ती हुई बात को दबा देने का दोष, अन्य हिन्दू लेखकों के समान, इस लेखक में भी आगया है, परन्तु जिस समय का वर्णन उसने लिखा है, उसके निकटतम समय में वह वर्तमान था और उसके लेखों द्वारा दूसरे स्रोतों से भी सामग्री एकत्रित करने में सहायता मिलती है इसीलिए हमने इसे ग्रहण किया है। हेमाचार्य ने लिखा है—

"भीमदेव ने बहुत अच्छी तरह राज्य किया। वह व्यभिचारियों को कभी क्षमा नहीं करता था, चोरों को युक्ति से पकड़ कर शिक्षा देता था इसलिए उसके राज्य में चोरी कम होती थी। वह जीवरक्षा बहुत करता था। और तो क्या, उसके समय में बाघ भी जङ्गल में किसी को नहीं मार सकता था। कितने ही राजाओं ने शत्रु के भय से भाग कर भीमदेव की शरण ली थी और कितनों ही ने आकर उसके राज्य में नौकरी करली थी इसलिये वह 'राजाधिराज' कहलाया। पुण्ड्र और आन्ध्र के राजा उसके पास नजरें भेजते थे, मगध में भी उसकी कीर्ति फैल चुकी थी। कवियों ने मागधी और अन्य भाषाओं में कविता करके उसके पराक्रम का बखान किया, इसलिये उसकी कीर्ति इतनी फैल

गई थी कि दूर-दूर के लोग भी उससे इस प्रकार परिचित हो गये थे मानों उन्होंने उसे आंखों ही देखा हो।"

एक बार भीमदेव के गुप्तचरों ने आकर कहा "इस पृथ्वी पर सिंधुराज (१) और चेदि (२) का राजा आपकी कीर्ति से घृणा करते हैं और आपके अपयश का बखान करने वाली पुस्तकें लिखवाते हैं। सिन्धुराज तो यहां तक धमकी देता है कि 'मैं एक बार भीम की खबर लूंगा। यह राजा जैसी हिम्मत करता है वैसा ही उसमें बल भी है। उसने बल से छोटे छोटे द्वीपों के राजों और गढ़पतियों के साथ सिवसाग के राजा को भी जीत लिया है।"

जब भीम ने ये बातें सुनीं तो उसने अपने मन्त्रियों को बुलाया और उनसे इस विषय में बातचीत करने लगा। इसके बाद शीघ्र ही उसने सेना इकट्ठी करके प्रस्थान किया। सिंध से मिला हुआ ही पंजाब देश है जिसमें पांच नदियाँ बहती हैं। इन पांचों का पानी इकट्ठा होकर एक समुद्र के समान बना रहता है। मजबूत किले के समान इस पानी के प्रवाह के बल पर ही सिन्धुराज अपने शत्रुओं को जीत कर सुख की नींद सोता था। पहाड़ियों को तोड़ तोड़ कर

बड़े बड़े पत्थरों से भीम की सेना ने पुल बनाना आरम्भ किया और जब यह पूरा होने को आया तो जिस प्रकार अग्नि पर रखे हुये दूध में उफान आता है उसी प्रकार इस प्रवाह का पानी उमड़ कर कई भागों में बट गया और दूसरे मार्ग से बहने लगा। सूखे और हरे पेड़ तथा मिट्टी और पत्थर भी पुल बनाने के काम में लिये गये थे। जब काम पूरा हो गया और भीम ने उसका निरीक्षण किया तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और सब लोगों को प्रसन्न करने के लिए उसने शक्कर और दूसरी मिठाइयां बांटी। इसके बाद पुल को पार करके वह सेना सहित सिन्ध में घुस गया। वहां का हम्मुक (१) नाम का राजा उसका सामना करने आया। घमासान लड़ाई शुरू हुई। चन्द्रवंशी भीम बडे शौर्य के साथ लड़ा और बहुत से अन्य योद्धाओं के साथ सिध के राजा को अपने वश मे कर लिया।

इसके बाद भीमदेव ने चेदि पर चढ़ाई की और रास्ते में जो राजा आये उनको आधीन करता गया। चेदि के राजा कर्ण ने (२) जब यह सुना कि भीम आ पहुँचा है तो उसने पहाड़ी और जगली लोगों की एक सेना इकट्ठी की। परन्तु उसने भीम की कीर्ति अच्छी तरह सुन रखी थी इसलिये सोचा कि वह उसको न जीत सकेगा। अत उसने लड़ाई का विचार छोड़ कर सन्धि की प्रार्थना की। इतने ही में उसकी पैदल

---

(१) हम्मुक यह सिन्ध का हम्मीर सुमरा (द्वितीय) होगा क्योंकि उसका समय भी यही था। हम्मीर सुमरा ने कच्छान्तर्गत कीर्तिगढ के केशर मकवाणे को मारा था और उसका पुत्र हरपाल मकवाणा वहा से भाग कर अणहिलवाड़ा में राजा कर्ण सोलकी की शरण में चला गया जहा पर उसको झालावाड़ प्रान्त इनाम में मिला था।

(२) कर्ण के पिता का नाम गांगेयदेव और उसके पुत्र का नाम यशकर्ण था। दाहल चेदि देश कहलाता था।

गई थी कि दूर-दूर के लोग भी उससे इस प्रकार परिचित हो गये थे मानों उन्होंने उसे आंखों ही देखा हो।"

एक बार भीमदेव के गुप्तचरों ने आकर कहा "इस पृथ्वी पर सिंधुराज (१) और चेदि (२) का राजा आपकी कीर्ति से घृणा करते हैं और आपके अपयश का बखान करने वाली पुस्तकें लिखवाते हैं। सिन्धुराज तो यहां तक धमकी देता है कि 'मैं एक बार भीम की खबर लूंगा। यह राजा जैसी हिम्मत करता है वैसा ही इसमें बल भी है। इसने बहुत से छोटे-छोटे द्वीपों के राजों और गढ़पतियों के साथ शिवसाण के राजा को भी जीत लिया है।"

जब भीम ने ये बातें सुनीं तो उसने अपने मन्त्रियों को बुलाया और उनसे इस विषय में बातचीत करने लगा। इसके बाद शीघ्र ही उसने सेना इकट्ठी करके प्रस्थान किया। सिंध से मिला हुआ ही पंजाब देश है जिसमें पांच नदियाँ बहती हैं। इन पांचों का पानी इकट्ठा होकर एक समुद्र के समान बना रहता है। मजबूत किले के समान इस पानी के प्रवाह के बल पर ही सिन्धुराज अपने शत्रुओं को जीत कर सुख की नींद सोता था। पहाड़ियों को तोड़ तोड़ कर

(१) धारा नगरी के सिन्धुराज (सिन्धुल) का समय ९९७ से १०१० तक है। इसके बाद भोजदेव राजा हुआ (१०१०—१०५५) इसलिए उस समय इसका होना ही अधिक संगत प्रतीत होता है। यह शब्द 'सिन्धुराज' सिन्धु देश के राजा के विषय में भी लागू होता है।

(२) चेदि से आजकल के चन्देल से तात्पर्य है जो गोंडवाना में है। यह श्रीकृष्ण के शत्रु शिशुपाल का देश था। (चन्देल, यह आजकल बुन्देलखण्ड है) तत्कालीन राजा कर्णदेव कलचुरी (१०४०—७० ई०) ने बाद में मालवा की लड़ाई में भीम का साथ दिया था और उसके पुराने शत्रु कीर्तिवर्मा चन्देला से था।

बड़े बड़े पत्थरों से भीम की सेना ने पुल बनाना आरम्भ किया और जब यह पूरा होने को आया तो जिस प्रकार अग्नि पर रखे हुये दूध में उफान आता है उसी प्रकार इस प्रवाह का पानी उमड़ कर कई भागों में बट गया और दूसरे मार्ग से बहने लगा। सूखे और हरे पेड़ तथा मिट्टी और पत्थर भी पुल बनाने के काम में लिये गये थे। जब काम पूरा हो गया और भीम ने उसका निरीक्षण किया तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और सब लोगों को प्रसन्न करने के लिए उसने शक्कर और दूसरी मिठाइयां बांटी। इसके बाद पुल को पार करके वह सेना सहित सिन्ध में घुस गया। वहां का हम्मुक (१) नाम का राजा उसका सामना करने आया। घमासान लड़ाई शुरू हुई। चन्द्रवंशी भीम बड़े शौर्य के साथ लड़ा और बहुत से अन्य योद्धाओं के साथ सिंध के राजा को अपने वश मे कर लिया।

इसके बाद भीमदेव ने चेदि पर चढ़ाई की और रास्ते मे जो राजा आये उनको आधीन करता गया। चेदि के राजा कर्ण ने (२) जब यह सुना कि भीम आ पहुँचा है तो उसने पहाड़ी और जगली लोगों की एक सेना इकट्ठी की। परन्तु उसने भीम की कीर्ति अच्छी तरह सुन रखी थी इसलिये सोचा कि वह उसको न जीत सकेगा। अतः उसने लड़ाई का विचार छोड़ कर सन्धि की प्रार्थना की। इतने ही में उसकी पैदल

---

(१) हम्मुक यह सिन्ध का हम्मीर सुमरा (द्वितीय) होगा क्योंकि उसका समय भी यही था। हम्मीर सुमरा ने कच्छान्तर्गत कीर्तिगढ के केशर मकवाणे को मारा था और उसका पुत्र हरपाल मकवाणा वहां से भाग कर अणहिलवाडा में राजा कर्ण सोलंकी की शरण में चला गया जहां पर उसको झालावाड़ प्रान्त इनाम में मिला था।

(२) कर्ण के पिता का नाम गांगेयदेव और उसके पुत्र का नाम यशकर्ण था। डाहल चेदि देश कहलाता था।

और घुड़सवार सेना लड़ाई के लिए तैयार होकर आगे आई, और राजा की नौबत तथा अन्य बाजे बजने लगे । उस समय भीमदेव ने अपने दामोदर नामक (१) सान्धिविग्रहिक द्वारा कहलाया कि यदि (चेदि-राज) कर देना स्वीकार करे तो उसकी सन्धि प्रार्थना स्वीकृत हो सकती है। दामोदर ने कहा "हमारे राजा ने दशार्णव, काशी, तथा अन्यान्य देशों के राजों को अपने आधीन कर लिया है । गजगंध के भद्रभट्ट नामक राजा ने दूर देश से आकर शरण ली है। तैलंग देश के तंतीक राजा ने अपने शस्त्रास्त्र फेंक कर आधीनता स्वीकार करली है। अयोध्या के राजा ने पहले कभी किसी को कर नहीं दिया था परन्तु उसने भी भीम को अपना वह खजाना अर्पित कर दिया है, जो उसने गार्द के राजा से प्राप्त किया था।" थोड़ी सी हिचकिचाहट के बाद कर्ण ने भी इन बड़े बड़े राजाओं के विषय में सुन कर उनका अनुकरण करना स्वीकार किया तथा दामोदर के साथ सोना, हाथी पवन सदृश वेगवान् एक घोड़ा, तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएं और इनके साथ ही वह सुनहरी पालकी [२] भी जो उसने मालवा के राजा भोज से प्राप्त की थी अणहिल-वाड़ा के राजा की सेना में उपहारस्वरूप भेज दीं। इस भेट को लेकर सफलकाम प्रतिनिधि दामोदर भीमदेव के पास लौटा। भीमदेव ने प्रस्तावित शर्तों को स्वीकार करके मन्त्रियों से सलाह कर उनकी पुष्टि

---

(१) मेरुतुंग ने डामर नाम लिखा है।

(२) भोज ने कर्ण को सोने की पालकी भेट में दी थी परन्तु जब भीम ने राज्य छीन लेने का प्रपंच रचा तब वह भीम से मिल गया और उसको कितनी ही वस्तुएं भेट कीं जिनके साथ ही उसकी यह पालकी भी उसको अर्पण की थी।

(धार राज्य का इतिहास पृ० ६४)

की। इसके बाद वह जयोत्सव मनाता हुआ अणहिलवाड़ा लौटा। वहां के लोगों ने नगर को इस प्रकार सजाया मानों कोई उत्सव ही हो, और अच्छी-अच्छी पोशाके पहन कर उसकी अगवानी की। उसके समय में प्रजा पर कोई आपत्ति नहीं आई इसीलिये वह अपने प्रजाजनों को परम प्रिय लगता था। उसके समय मे देश में छोटी मोटी चोरीचकोरी भी न हो पाती थी। केवल यही नहीं, बाहरी डाकों व हमलों से भी देश के लोग सुरक्षित थे और शहरों व गावों में लूट तथा आग का भय बिलकुल नहीं था।

इस प्रकार हेमाचार्य ने यह वृत्तान्त लिखा है। इसमें भीमदेव, मालवा के प्रसिद्ध राजा भोज एव एक और सुदूर पूर्वीय राजा कर्ण के राज्य के विषय में जो कुछ उसने लिखा है वह अन्य लेखकों के मत से भी मिलता है। उसने पजाब और सिन्ध की लड़ाइयों के विषय मे लिखा है, इससे शायद उस लड़ाई से तात्पर्य है जो भीमदेव के समय में गजनी के सुलतान मोदूद के सैनिकों और हिन्दुओं के बीच इस "धर्मक्षेत्र" से मुसलमानों को निकाल देने के लिए हुई थी। इस लड़ाई में भीम ने कोई भाग नहीं लिया, ऐसा अन्यत्र लिखा हुआ है। इस अवसर पर युद्ध में भाग लेना अस्वीकार करके उसने अन्य राजाओं को अपने विरुद्ध शस्त्र उठाने का कारण उत्पन्न कर दिया था। इन वृत्तान्तों के सम्बन्ध में जो दूसरे प्रमाण मिलते हैं अब हम उन्हीं का वर्णन करते हैं।

उस समय मालवा के परमार राजा सिंहभट्ट (१) के कोई पुत्र नहीं था। उसको मूंज नामक घास की झाड़ी में एक बच्चा मिला इसलिए

---

(१) सिंहभट्ट, सिंहदन्त, श्रीहर्ष, ऐसा भी पाठान्तर है।

उसने उसका नाम मुंज रखा और अपना पुत्र बना लिया। इसके पश्चात् सिंहभट्ट के सिंधुल नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। मरते समय राजा सिंहभट्ट ने मुंज को पास बुलाकर अपने बाद वही (मुंज) गद्दी पर बैठे, यह इच्छा प्रकट की और उसे उसके जन्मसम्बन्धी एवं जिस प्रकार वह उसका पुत्र हुआ, यह सब कथा भी कह सुनाई, साथ ही छोटे भाई सींधुल पर प्रीति भाव बनाये रखने की भी अभ्यर्थना की।

गद्दी पर बैठने के बाद मुञ्ज ने अपने योग्य मत्री रुद्रादित्य की सहायता से राज्य को खूब बढ़ाया, परन्तु सिंहभट्ट की अन्तिम शिक्षा और अपने जन्म के रहस्य को जानने वाली अपनी स्त्री को मरवा कर तथा गद्दी के मूल अधिकारी सिंधुल को मालवा से बाहर निकाल कर उसने अपनी क्रूरता का भी परिचय दिया। ऐसा मालूम होता है कि सिंधुल उन्मत्त स्वभाव का राजकुमार था और उसने मुंज की आज्ञा का उल्लङ्घन करके उसे रुष्ट कर दिया होगा। कुछ समय तक वह गुजरात में कासद (अहमदाबाद से चौदह मील की दूरी पर काशिन्द्रा पालड़ी) नामक गांव में रहा और वहां एक गांव भी बसाया। अन्त में सिंधुल फिर मालवा लौटा और मुंज ने उसका बहुत आदर सत्कार किया तथा राज्य का कुछ भाग भी उसके आधीन कर दिया। परन्तु, यह मेल अधिक समय तक न चल सका और अन्त में मुंज ने उसको कैद करके उसकी आखें निकलवालीं।

प्रसिद्ध भोजराज सिंधुल का पुत्र था। वह बाल्यावस्था में ही युद्ध-कला एव शास्त्रों में प्रवीण हो गया था परन्तु ज्यौतिषियों ने निम्मलिखित बलिष्ठ जन्माक्षरों की घोषणा करके मुंजराज को उस पर कुपित कर दिया :—

"पंचाशत् पञ्चवर्षाणि सप्तमासं दिनत्रयम् ।

भोजराजेन भोक्तव्यः सगौडो दक्षिणापथः ॥"

अर्थात्, भोजराज पचपन वर्ष सात (१) महीने और तीन दिन तक दक्षिणापथ और गौड़ देश का राज्य भोगेंगे ।

राजा मुंज ने सोचा कि यदि भोज गद्दी पर बैठेगा तो उसके पुत्र को राज्य न मिल सकेगा, इसलिए उसने उसको मरवा देने का निश्चय किया । परन्तु, जिन लोगों (२) को इस काम के लिये नियुक्त किया गया था वे भोज की सुन्दरता और सद्गुणों को देख कर उसे मार न सके और अपने कार्य में असफल हुये । जब राजा ने उनको सौंपे हुये काम के विषय में पूछा तो उन्होंने कहा "हमारा काम पूरा हो गया है ।" ऐसा कह कर उन्होंने भोज का दिया हुआ एक कागज (३) राजा के सामने रख दिया । उसमें लिखा था :—

---

(१) मूल अंग्रेजी में (Six months) छः मास लिखा है—यह भूल मालूम होती है ।

(२) इस विषय में ऐसी कथा है कि बंगाल (वगदेश) के भूपाल का वत्सराज नामक एक योद्धा था, उसको एक गांव देने का लालच देकर मुंज ने भोज को मार डालने का काम सौंपा था । वत्सराज को यह बात अयोग्य मालूम हुई, परन्तु राजा को प्रसन्न रखने के लिए उसने नाममात्र को यह कार्य अपने ऊपर ले लिया । वह भोज को वन में ले गया, परन्तु मारे बिना ही वापिस लाकर बहरे (तहखाने) में छुपा कर सुरक्षित रखा और राजा को विश्वास दिलाने के लिए एक कृत्रिम मस्तक लाकर दिखा दिया ।

(३) ऐसी किंवदन्ती है कि भोज ने वड के पत्ते पर खून से लिख कर यह पद्य दिया था—कागज पर नहीं ।

मान्धाता स महीपतिः कृतयुगालङ्कारभूतो गतः ।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः ॥
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते !
नैकेनापि समं गता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति ॥

अर्थात्, सत्ययुग का अलङ्कारभूत राजा मान्धाता भी चला गया, जिसने समुद्र पर सेतु-बन्धन किया और जिसने दश मस्तक वाले रावण को मारा वह राम कहां गया ? इनके अतिरिक्त युधिष्ठिर आदि अन्य बड़े बड़े राजा भी चले गये, परन्तु इनमें से किसी के साथ भी यह पृथ्वी नहीं गई। अब, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हे मुंजराज ! सम्भव है यह आपके साथ ही जायेगी।

यह श्लोक पढ़ने पर मुंज के हृदय में बड़ा खेद हुआ और वह ऐसे प्रतिभाशाली कुमार को मरवा डालने का पश्चात्ताप करके रोने लगा। जब उसको विदित हुआ कि भोज के प्राण नहीं लिए गए हैं तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसको अपने पास बुला कर उसकी बुद्धि की प्रशंसा करते हुये युवराज नियत किया। ऐसी दंतकथा प्रचलित है कि कच्छ के छोटे रण के पूर्व में एक प्रदेश है जिसको ब्राह्मण लोग धर्मारण्य (१) कहते हैं —वहां की यात्रा करके मुंज ने अपने पाप-निवारण की बात प्रसिद्ध की और वहां एक नगर बसाया जो आज तक मुंजपुर के नाम से प्रसिद्ध है।

तदनन्तर मुंजराज ने तिलंगाना के राजा तैलिपदेव पर चढ़ाई करने की तैयारियां कीं। उस समय प्रधान अमात्य रुद्रादित्य ने उसको बहुत समझाया, पहले की लड़ाइयों में जो नाश हो चुका था उसके विषय

(१) पाटण के पास मोढेरा और उसके आसपास की भूमि को धर्मारण्य कहते हैं।

में भी कहा तथा एक भविष्यवाणी की ओर भी ध्यान दिलाया कि जिस दिन मालवा का राजा गोदावरी नदी के पार चला जायगा उसी दिन उसका नाश हो जायगा, परन्तु मुंज ने एक भी न सुनी। भावी दुष्परिणाम की असह्य वेदना से दुखी होकर रुद्रादित्य ने अपना पद छोड़ दिया और शीघ्र ही चिता में जल कर मर गया। हठ पर आकर राजा भाग्य पर खेल गया और तैलिपदेव की सेना पर टूट पडा। इस लड़ाई में उसकी हार हुई और वह कैद कर लिया गया। अब भी उसके मंत्रियों की युक्ति [१] से बच कर वह निकल सकता था। परन्तु तैलिपदेव की बहिन मृणालवती से वह कैद में ही प्रेम करने लगा था उसको उसने सब रहस्य बता दिया। मृणालवती ने उसको धोखा दिया और उसके साथ बुरे से बुरा व्यवहार किया गया। अन्त में, जहां नीच से नीच अपराधी को फांसी दी जाती है वहां ले जाकर उसका शिर काट लिया गया और राजा तैलिप के महल के पास एक लकड़ी में लटका दिया गया जिसे मृतमांस खाने वाले जानवरों ने नोंच खाया।

---

(१) मुंज को काठ के पिंजडे में बंद किया गया था—उसी के नीचे से जमीन में सुरंग खोदकर मालवा जाने का रास्ता बना दिया गया था। परन्तु, मुंज ने यह भेद मृणालवती से कह दिया। मृणालवती आयु में मुंज से बडी थी, इसलिए उसने सोचा कि मालवा जाकर वह जवान रानियों से प्रेम करेगा और मुझे भुला देगा। यह सोच कर उसने उसके भागने का भेद अपने भाई से कह दिया जिससे मुंज की यह दुर्दशा हुई। उसने कहा :—

जा मति पच्छइ सम्पजई, सा मति पहिलीं होइ।
मुंज भणइ मुणालवइ, विधन न वेठइ कोइ ॥

मुंज कहता है कि जो मति पीछे उत्पन्न हुई वह पहले उत्पन्न होजाती तो हे मृणालवती कोई विघ्न न हो पाता।

[मुनि शुभशील सूरिकृत भोज-प्रबन्ध में लिखा है कि मृणालवती का जन्म

कहते हैं कि मुंजराज ने पृथ्वी का भूगोल-शास्त्रीय वर्णन लिखा था, जिसका बाद में भोजराज ने संशोधन किया। [१] वह बड़ा भारी विद्याप्रेमी और विद्वानों का आश्रयदाता रहा होगा जैसा कि उसके मरण के समय कहे गये निम्नांकित श्लोक से ज्ञात होता है:

"लक्ष्मीर्यास्यति गोविन्दे वीरश्रीर्वीरवेश्मनि।
गते मुंजे यशःपुञ्जे निरालम्बा सरस्वती॥

अर्थात्, यश के पुंज राजा मुंज की मृत्यु हो जाने पर लक्ष्मी तो श्रीकृष्ण के पास चली जायगी, वीरश्री (शौर्य) वीर के घर पहुँचेगी, परन्तु सरस्वती को कोई आश्रय देने वाला नहीं रहा-वह आयश्र हीन हो गई।

मुंज के पश्चात् श्रीभोजराज गद्दी पर बैठा जो अणहिलवाड़ा के सोलंकी राजा भीमदेव प्रथम के समय में हुआ। ग्रन्थकारों ने भोजराज में सभी प्रकार के राजोचित गुणों का समावेश पाया। उसके विषय में लिखा है कि वह नित्यप्रति यह विचार करता था [२] कि किसी का भाग्य

तैलिप के पिता देवलदेव से सुन्दरी नाम की दासी के गर्भ से हुआ था। वह श्रीपुर के राजा चन्द्र को व्याही थी। मुन्ज के वन्दी होने के समय वह विधवा हो चुकी थी। बाद की शोध से तैलिप के पिता का नाम विक्रमादित्य होना पाया जाता है।]

(१) Asiatic Research Society Vol. IX pp. 176.

(२) श्रियश्च चलतां निज चेतसि चिन्तयन् कल्लोललोलं निजं जीवित च।

इसकी एक घटना इस प्रकार है :—

राजा भोज नियमानुसार नित्यकर्म से छुट्टी पाकर प्रातःकाल सभामण्डप में आ जाता था और वहां पर आये हुए याचकों को इच्छित दान देकर सन्तुष्ट करता था। उसके इस ढंग को देख कर रोहक नामक मन्त्री ने सोचा कि यों तो राज्य का

सदैव समान नहीं बना रहता और यह जीवन जल की तरंगों के समान चञ्चल है इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर वह जो कोई भी उसके पास आता उसको मनमानी वस्तु दे देता था। खिलाड़ियों, मांगने-

---

खजाना ही खाली हो जायगा। इसलिए जहां तक हो सके इसे रोकना चाहिए। परन्तु प्रत्यक्षरूप से समझाने में राजा के रुष्ट होने का डर था अतः उसने सभामण्डप की दीवार पर यह वाक्य लिखा :—

"आपदर्थे धनं रक्षेत्"

अर्थात् :—आपत्तिकाल हेतु धन की रक्षा करनी चाहिए दूसरे दिन राजा ने इस श्लोक को देख कर आगे यह अंश जोड़ दिया :—

"भाग्यभाजः क्व चापदः"

अर्थात् :—भाग्यशाली पुरुष को आपत्ति कहां ?

यह देख प्रधान ने फिर लिखा :—

"दैवं हि कुप्यते क्वापि"

अर्थात् :—कदाचित दैव ही रुष्ट हो जाय ?

तब राजा ने इसके आगे लिखा:—

"सचितोपि विनश्यति"

अर्थात् :—तो सञ्चय किया भी नष्ट हो जायगा।

तब रोहक ने राजा से इस बात की क्षमा मांगी।

प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि राजा भोज के कङ्कणों में ये ४ श्लोक अंकित थे :—

इदमन्तरमुपकृतये प्रकृतिचला यावदस्ति संपदियम्।
विपदि नियतोदितायां पुनरुपकर्तुं कुतोवसरः ॥१॥

अर्थात्:—चंचल स्वभाव वाली इस सम्पत्ति के रहते ही उपकार करने का समय है। विपत्ति के आ जाने पर उपकार करने का अवसर कहाँ ?

वालों, ब्राह्मणों, और चोरों को भी जो उसके महल में चोरी करने

निजकरनिकरसमृद्ध्या धवलय भुवनानि पार्वणशशाङ्क !
सुचिर हन्त न सहते हतविधिरिह सुस्थितं किमपि ॥२॥

अर्थात् :—हे पूर्णमासी के चन्द्रमा ! तू अपनी किरणों की उज्ज्वलता से पृथ्वी मंडल को धवलित करले, क्योंकि यह दुष्ट भाग्य, संसार में, किसी की भी उत्तम अवस्था को अधिक ममय तक नहीं सह सकता। (तात्पर्य यह है कि सुसमय रहते भलाई करना आवश्यक है एक सा समय सदा नहीं रहता)

अयमवसर सरस्ते सलिलैरुपकर्तुमर्थिनामनिशम् ।
इदमपि सुलभमम्भो भवति पुरा जलधराभ्युदये ॥३॥

अर्थात् :—हे सरोवर ! प्यासों की भलाई करने का तेरे लिए यही अवसर है। वर्षा ऋतु में, यही जल, सुविधा से प्राप्त होने लग जायगा। (तात्पर्य यह है कि उपकारका अवसर हाथ से नहीं जाने देना चाहिए)

कतिपयदिवसस्थायी पूरो दूरोन्नतोपि चण्डरयः ।
तटिनि ! तटद्रुमपातिनि ! पातकमेकं चिरस्थायि ॥४॥

अर्थात् :—हे प्रचण्ड वेग वाली नदी ! तुझ में ज्वार तो कुछ दिनों ही आता है परन्तु किनारे के वृक्षों को गिराने की निन्दा हमेशा के लिए रह जाती है। (तात्पर्य यह है कि प्रभुता तो सदा नही रहती। परन्तु उस समय की हुई बुराई सदा की निन्दा का कारण बन जाती है)। इसी प्रकार उसके पहनने के कंठे में (अथवा कुण्डलों पर) लिखा था :—

यदि नास्तमिते सूर्ये न दत्तं धनमर्थिनाम्
तद्धनं नैव जानामि प्रातः कस्य भविष्यति ॥१॥

अर्थात् :—यदि सूर्य अस्त होने से पूर्व जरूरत वालों को धन नहीं दिया गया तो, नहीं कहा जा सकता कि प्रातःकाल वह धन किसका हो जायगा।

ग्रासादर्द्धमपिग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते ।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥२॥

जाते थे, श्रीभोज की उदारता का समान रूप से प्रसाद प्राप्त होता था। (१)

अर्थात् :—यदि एक ग्रास भी प्राप्त हो तो उसमें से आधा ग्रास आवश्यकता वाले व्यक्ति को क्यों न दिया जाय ? इच्छा के अनुसार धन तो कब किसके पास आता है ? (इसका कुछ पता नहीं।)

(१) इन प्रसगों की कुछ रोचक कथाए इस प्रकार हैं—

एक बार एक गरीब ब्राह्मण नदी पार कर नगर की तरफ आ रहा था। इतने ही में राज भोज भी उधर से जा निकला और ब्राह्मण को नदी पार से आया जानकर पूछने लगा :—

"कियन्मात्रं जलं विप्र!" अर्थात् :—हे ब्राह्मण कितना जल है ?

इस पर ब्राह्मण ने उत्तर दिया :—

जानुदघ्नं नराधिप ! अर्थात् :—हे नृप घुटने तक।

इस उत्तर के "जानुदघ्नं" शब्द में "दघ्नच्" प्रत्यय के प्रयोग को, जो ऊँचाई बताने के लिए ही प्रयुक्त होता है, सुन कर राजा समझ गया कि यह कोई विद्वान है। तब फिर पूछा :—

"कथं सेयमवस्था ते ? अर्थात् तुम्हारी ऐसी अवस्था क्यों ?

पण्डित भी समझ गया कि राजा ने मेरी विद्वत्ता जान ली है अत. उत्तर दिया :—

न सर्वत्र भवादृशाः॥" अर्थात् :—सर्वत्र आपके समान नहीं है।

इस उत्तर से प्रसन्न होकर राजा ने उसे २ लाख रुपये और १० हाथी पुरस्कार में दिये।

एक दिन राजा भोज हाथी पर बैठ कर नगर में जा रहा था उस समय उसकी दृष्टि पृथ्वी पर से अन्न एकत्रित करते एक मनुष्य पर पड़ी। तब राजा ने कहा :—

नियउयर पूरणम्मि य असमत्था किंपि तेहीं जाएहिं।

अर्थात् :—जो मनुष्य अपना पेट नहीं पाल सकते उनके पृथ्वी पर जन्म लेने से क्या लाभ है ?

जिन मंत्रियों ने उसको इस तरह खुले हाथों धन न लुटाने के लिये प्रार्थना की उनको उसने अलग कर दिया। उसको इस विचार में बड़ा

यह सुन कर उस पुरुष ने उत्तर दिया :—

सुसमत्था विहु न परोवयारिणो तेहि वि नहि किंपि।

अर्थात् :—जो समर्थ होकर भी परोपकार न कर सकें उनके पृथ्वी पर जन्म लेने से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ?

इस पर राजा ने फिर कहा :—

परपत्थणापवत्तं मा जणणि जणेसु एरिसं पुत्तं।

अर्थात् :—हे माता ! पराए लोगों से भिक्षा मांग कर पेट पालने वाले पुरुष को जन्म मत दे।

यह सुन कर पुरुष बोला :—

मा पुहवि माधरि उजसु पत्थण भङ्गो कओ जेहिं।

अर्थात् :—हे पृथ्वी ! तू याचकों की प्रार्थना पर ध्यान न देने वाले पुरुष को अपने ऊपर धारण न कर।

उसकी इन उक्तियों पर राजा ने उसका परिचय पूछा तो उसने बताया "मैं शेखर नाम का कवि हूँ। परन्तु आपकी सभा विद्वानों से भरी है। अत. आपके दर्शनार्थ यह युक्ति अपनायी है। इस पर राजा ने प्रसन्नता प्रकट की और बहुत सा धन दिया।

एक बार चाँदनी रात में राजा की आंखें चन्द्रमा पर अटक गई और उसने यह श्लोक पढा :—

यदेतच्चन्द्रान्तर्जलदलवलीलां प्रकुरुते
तदाचष्टे लोकः शशक इति नो मां प्रति यथा।

अर्थात् :—चांद के भीतर जो यह बादल का टुकड़ा दिखाई देता है लोग उसे खरगोश कहते हैं। परन्तु मैं ऐसा नहीं समझता।

संयोगसे इसके पहले ही एक विद्वान् चोर वहां छिपा बैठा था। जब राजा ने दो तीन बार इसी श्लोकार्द्ध को पढ़ाऔर श्लोक का उत्तरार्द्ध उसके मुंह से न निकला तब

आनन्द आता था कि वह वलि राजा, कर्ण तथा विक्रमादित्य से भी बढ़ गया था और उसके समान पहले किसी ने दान नहीं दिया। इस प्रकार धन लुटाने के रोग का उपाय उसको इसी में मिल गया। कहते हैं कि [१] एक वार एक कवि आया और उसने राजा की प्रशंसा में बहुत

उसने (चोर ने) उसकी पूर्ति इस प्रकार कर दी :—

अहं त्विन्दुं मन्ये त्वदरिविरहाक्रान्ततरुणी-
कटाक्षोल्कापातव्रणशतकलङ्काङ्किततनुम् ॥

अर्थात् :—मेरे विचार से तुम्हारे शत्रुओं की विरहिणी स्त्रियों के कटाक्ष रूपी उल्काओं के पड़ने से चन्द्रमा के शरीर में सैकड़ों घाव हो गये हैं और ये उसी के दाग हैं !

राजा इससे प्रसन्न हुआ और सवेरे ही राजसभा में उसे पुरस्कृत किया।

(१) मेरुतुङ्ग के अनुसार असली वात यों है कि नई कविता करके लाने वाले को भोज एक लाख रुपया देता था। इसके लिए मतिसागर प्रधान ने चार ऐसे पण्डित रख दिये थे कि जब कोई पण्डित नई कविता बना कर लाता तो पहला कवि उसको एक वार सुन कर याद कर लेता और वह उसको उसी समय ज्यों का त्यों दोहरा देता था। दूसरे कवि को दो वार सुनने से याद हो जाती तथा तीसरे को तीन वार तथा चौथे को चार वार सुन कर वह कविता याद होजाती थी और वे इसको दोहरा देते। इस प्रकार आने वाले कवि की कविता नई न समझी जाती और उसको पुरस्कार प्राप्त न होता। किसी कवि ने इस युक्ति को भांप लिया और वह निम्नलिखित नई कविता बना कर लाया—

देव त्वं भोजराज त्रिभुवनविजयी धार्मिकः सत्यवादी
पित्रा ते मे गृहीता नवनवतियुता रत्नकोट्यो मदीयाः।
तांस्त्वं मे देहि राजन् सकलबुधजनैर्ज्ञायते वृत्तमेतत्
त्वं वा जानासि नो वा नवकृतिरथचेल्लक्षमेकं ददस्व ॥

अर्थात्—हे देव भोजराज ! तुम तीनों भुवनों के विजेता, धार्मिक और सत्यवादी हो। तुम्हारे पिता ने मुझ से ९९ अयुत रत्न उधारे लिये थे। हे राजन् ! वह मुझे

सुन्दर पद्य सुनाया। इस पहले पद्य का पुरस्कार ले भी न चुका था कि दूसरा पद्य उससे भी बढ़ कर सरस और सुन्दर कह सुनाया। इस प्रकार एक के बाद दूसरा एक से एक बढ़ कर पद्य वह सुनाता चला गया और अन्त में राजा को हार मान कर अपनी पैठ रखने के लिये उसे मौन होने को कहना पड़ा।

जान पड़ता है कि भीमदेव ने भोज के पास अपने सांधिविग्रहिक प्रतिनिधियों को भेजा होगा परन्तु, दोनों प्रतिपक्षी राजाओं के इस संपर्क का परिणाम आपस में एक दूसरे के पास कविताऐं (वे भी व्यावहारिक नहीं, साहित्यिक) भेजने के अतिरिक्त कुछ न निकला होगा। [१] संभव

वापस दे दीजिये। इस वृत्तान्त को तुम्हारी सभा के सभी विद्वान् कवि जानते हैं और तुम भी जानते होगे, यदि नहीं, तो इस श्लोक को नई रचना समझ कर एक लाख तो दे दीजिये।

(२) एक दिन राजा भोज अपनी सभा में पण्डितों की प्रशंसा कर रहा था। उसी समय गुजरात के पण्डितों का भी प्रसंग आ गया। इस पर भोज ने कहा कि हमारे यहां के से पंडित वहां नहीं हो सकते। यह सुन कर एक गुजराती बोल उठा कि औरों का तो कहना ही क्या, हमारे देश के तो चरवाहे तक विद्वान् होते हैं। इसके पश्चात् वह गुजराती अपने घर लौटा और उसने भीम को सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब भीम ने एक चतुर वेश्या तथा एक विद्वान् को चरवाहे के रूप में भेजा। चरवाहे के रूपधारी विद्वान् ने कहा :—

भोयएहु गलि कण्ठुलउ भण केहुउ पडिहाइ।
उर लच्छिहि मुह सरसति सीम निबद्धिकाई॥

अर्थात्—हे राजा भोज ! आपका यह कण्ठा कैसा मालूम होता है ? क्या अपने हृदय में रहने वाली लक्ष्मी और मुख में रहने वाली सरस्वती की सीमाएं निर्धारित करदी हैं ?

है अणहिलवाड़ा के कार्यक्षम चंचल योद्धाओं की अपेक्षा इस कविता की लड़ाई में भोजराज बढ कर रहा हो परन्तु, फिर भी भीमदेव को सर्वतोभावेन वढ़ कर मानना ही पड़ेगा।

एक बार मालवा में भीषण अकाल पड़ा। इसलिए भोजराज ने गुजरात पर चढ़ाई करने का विचार किया, परन्तु भीम के प्रतिनिधि डामर [१] (हेमाचार्य के अनुसार 'दामोदर') ने इसको पूरा नहीं पडने दिया

इतने में वह वेश्या भी साज शृङ्गार कर सभा में आ पहुँची। उसे देख कर राजा ने पूछाः— इहकिम् ? अर्थात्—यहा क्यों ?

यह सुन कर वैश्या बोली :—पृच्छन्ति ? अर्थात्—पूछते हैं !

यह सुन कर राजा प्रसन्न हुआ और तीन लाख मोहरें पुरस्कार में दीं। सभा में बैठे अन्य लोग इस वार्तालाप का अर्थ कुछ भी न समझ सके। अन्त में आग्रह करने पर राजा ने बताया कि तिरछी चितवन से देखते समय इस वेश्या की दृष्टि (अथवा आखें) कान तक पहुँचती हैं। यह देख कर हमने इससे पूछा था कि तेरी दृष्टि (अथवा आँखें) यहां तक क्यों जाती हैं ? इस पर इसने कहा कि वे कानों से पूछती हैं कि तुमने जिस राजा भोज की प्रशंसा सुनी है क्या यह वही है ?

(१) यह बडा ही कुरूप था, इसी से जब वह भोज के पास पहुँचा तो उसे देख कर राजा ने हँसी में पूछा—

यौष्माकाधिपसन्धिविग्रहपदे दूताः कियन्तो वद ।

अर्थात्—तुम्हारे राजा के यहां सन्धि-विग्रह के काम को करने वाले (तुम्हारे जैसे) कितने दूत हैं ?

डामर ने राजा का अभिप्राय जान कर उत्तर दिया—

मादृशा बहवोपि मालवपते ! ते सन्ति तत्र त्रिधा ।
प्रेष्यन्तेऽधममध्यमोत्तमगुणप्रेक्षानुरूपं क्रमात् ॥

अर्थात्—हे मालव नरेश ! वहां मेरे जैसे दूत तो बहुत हैं। परन्तु उनकी तीन श्रेणियां हैं, और उत्तम मध्यम और अधम के हिसाब से जैसा अगला पुरुष होता है

क्योंकि उसने [१] तिलंगाने के राजा तैलिप वाले पुराने झगड़े को नया

वैसा ही दूत उसके पास भेजा जाता है ।

फिर राजा भोज ने पूछा—"कहो भीमडिया नाई क्या करता है ?"

इस पर डामर ने उत्तर दिया—उसने औरों के सिर तो मूंड डाले हैं, सिर्फ एक का सिर भिगो कर रक्खा हुआ है, सो उसे भी अब मूंडने वाला है।'

तब भोजने डामर को एक चित्रपट दिखाया। जिसमें भीम को कर्नाट नरेश की खुशामद करते दिखाया था। इसे देख कर डामर ने कहा—

भोजराज ! मम स्वामी यदि कर्णाटभूपतेः
कराकृष्टो, न पश्यामि कथं मुञ्जशिरःकरे ॥

अर्थात—हे राजा भोज ! यदि वास्तव में ही इस चित्रपट में मेरा स्वामी (भीम) कर्णाट राजा (तैलप) द्वारा खींचा जा रहा है, तो तैलिप के हाथ में राजा मुंज का मस्तक क्यों नहीं दिखाई देता ?

यह सुन कर भोज को पुराना वैर याद आगया और उसने गुजरात पर चढाई करने का विचार छोड़कर कर्णाट पर चढाई करने का विचार कर लिया।

(१) मुंज के समयमें कल्याण का सोलकी राजा तैलिप था जिसने ९७३ से ९९७ ई० तक राज्य किया अतः वह राजा भोज के समय में नहीं हो सकता। तैलप के बाद ही सत्याश्रय राजा हुआ जिसने १००९ ई० तक राज्य किया। भोजराज का समय १०१० से १०५५ ई० तक का है। अतः न तैलप हो सकता है, न सत्याश्रय, न तीसरा विक्रमादित्य ही। इसके बाद तैलप के पौत्र जयसिंह अथवा जगदेकमल्ल ने १०१९ से १०४२ तक राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र सोमेश्वर १०४३ से १०६८ ई० तक रहा। इसलिए भोज के सयय में इन पिछले दो राजाओं में से ही कोई हो सकता है। भोज-चरित्र में लिखा है कि भोजराज की सभा में एक नाटक दिखाया गया जिसमें तैलप को मुंज का सिर काटते हुए बताया गया। यह देख कर भोज को बडा क्रोध आया और उसने तैलप को युद्ध में हरा कर उसका शिरश्छेद किया। यहां पर तैलिप से जयसिंह ही को समझना चाहिये। जयसिंह के कुंअर सोमेश्वर ने जो मालवे पर आक्रमण किया था वह भी इसी वैरभाव को लेकर किया था।

करने की युक्ति की और जब तैलिप ने मालवा पर चढ़ाई की तो भोजराज भीमदेव से उसकी मनमानी शर्तों पर सन्धि करने को राजी हो गया। इन चिन्ताओं से निवृत्त होकर भोजराज धारा नगरी [१] अथवा धार (जैसा कि साधारणतया बोला जाता है) के निर्माण एवं पुन-र्निर्माण में व्यस्त हो गया।

बाद में जब भीमदेव सिन्ध के आक्रमण में व्यस्त था तब भोजराज गुजरात पर आक्रमण करने का अवसर न चूका। कुलचन्द नामक एक साहसिक योद्धा [२] उसकी सेना लेकर रवाना हुआ और उसने राजा के जन्मपत्र में लिखी हुई इस बात को पूरा करने का प्रण किया कि भोजराज दक्षिण और गौड़ देश का स्वामी होगा। भीमदेव की अनुप-स्थिति में कुलचन्द अणहिलपुर में घुस गया और नगर में लूट पाट

---

(१) धारा नाम की वेश्या अपने पति अग्निवेताल के साथ जाकर लङ्कापुरी का नकशा ले आई थी। उसी नकशे के अनुसार इस नगरी की स्थापना की गई और उसी वेश्या की इच्छानुसार इसका नाम धारा रखा गया था। (प्रबन्धचिंतामणि)

(२) एक दिन राजा भोज सन्ध्या के समय नगर में भ्रमण कर रहा था। इतने में उसकी दृष्टि कुलचन्द्र नामक एक दिगम्बर साधु पर पड़ी, जो कह रहा था—

"मेरा जन्म व्यर्थ ही गया, क्योंकि न तो मैंने युद्ध में वीरता ही दिखलाई न गार्हस्थ्य सुख ही भोगा।"

यह सुन कर दूसरे दिन प्रातः काल राजा ने उसे सभा में बुला कर पूछा "कहो तुममें कितनी शक्ति है ?" इस पर वह बोला—

देव ! दीपोत्सवे जाते प्रवृत्ते दन्तिनां मदे।
एकछत्र करोम्येव सगौड दक्षिणापथम् ॥

अर्थात्—हे राजा ! दीपोत्सव हो जाने और हाथियों के मद का बहना प्रारम्भ होने पर गौड देश से दक्षिणा पथ तक एकछत्र राज्य बना सकता हूँ।

उसके इस कथन को सुन राजाने उसे अपना सेनापति बना लिया।

करके महल के आगे, जहां घंटा बजता था, कौड़ियां गड़वा दीं और एक जय-पत्र लिखवा कर वापस मालवे लौट आया। भोज ने उसका बहुत आदर सत्कार किया परन्तु उस नष्ट हुए स्थान पर नमक गड़वाने की जगह कौड़ियां गड़वाने के लिये उसको बहुत कुछ भला बुरा भी कहा। "तुमने एक अपशकुन कर दिया जिसका अर्थ यह निकलता है कि भविष्य में मालवा का कोप गुजरात में चला जायगा।" यह भविष्यवाणी, भोज के वंशज यशोवर्म्मा के समय में पूरी हुई।

कहते हैं कि, एक बार भीमदेव राजदूत डामर के नौकर का वेष बना कर चुपचाप राजा भोज की राजसभा में भी गया था। परन्तु इसका कोई स्पष्ट परिणाम निकलना ज्ञात नहीं होता। फिर, एक बार ऐसी घटना हुई कि हिम्मत करके गुजरात के कुछ घुड़सवार भोज की सीमा में चले आये और एक दिन जब भोज धार के नगर-द्वार पर अपनी कुलदेवी का पूजन कर रहा था तो उन्होंने उसे पकड़ कर लगभग कैद ही कर लिया। इन बातों से स्पष्ट जान पड़ता है कि ये दोनों ही राजा अपने राज्यकाल में निरन्तर एक दूसरे से वैरभाव रखते रहे।

देलवाडा अथवा आबू पर्वत की सपाट भूमि पर, जो देवालयों का प्रदेश कहलाता है, बहुत से संगमर्मर के बने हुये जैन मन्दिर हैं। इनमें से एक मन्दिर बहुत भव्य और दर्शनीय है। इस पर लगे हुये एक लेख से ज्ञात होता है कि इसको सन् १०३२ (संवत् १०८८) में विमल शाह ने बनवाया था। [१] आख्यायिका में लिखा है कि, पहले इस

(१) इसको विमलवसहि, विमल शाह का देवरा, अथवा देलवाड़ा का देवरा कहते हैं।

स्थान पर शिव और विष्णु के मन्दिर थे परन्तु विमलशाह ने आबू पर और कोई स्थान पसन्द न करके इसी को पसन्द किया और अपने धर्म को विजयी करने के लिए लक्ष्मी का आश्रय लेते हुए, उसने जितनी जगह पर देवालय बनवाने का विचार था उतनी जगह का मूल्य उस जमीन को चांदी के सिक्कों से पाट कर देने को कहा। उसकी बात मान ली गई और यही सब से पहला अवसर था कि शास्त्रीय विधि से प्रतिष्ठित देवताओं के पवित्र स्थान पर आदिनाथ की स्थापना हुई। उस समय अचलेश्वर का दुर्ग जिस राजा के अधिकार में था उसका नाम धंधुराज [१] परमार था। इसने अग्निकुण्ड में उत्पन्न हुए क्षत्रियों के वंशज कान्हडदेव के कुल में जन्म लिया था। धंधुराज की राजधानी चन्द्रमावती पुरी थी जिसके खण्डहर अब तक विद्यमान हैं। उसके पूर्वजों ने अणहिल-वाडा के राजाओं की आधीनता स्वीकार कर ली थी, परन्तु लेखों से ज्ञात होता है कि धंधुराज ने भीमदेव की नौकरी छोड़ कर भोज से मित्रता करली। इस पर गुजरात के राजा भीमदेव ने विमलशाह को दण्डपति का अधिकार देकर आबू भेजा और जब वह इस पद का उपभोग कर रहा था तभी माता अम्बा भवानी ने उसको स्वप्न में दर्शन देकर युगादिनाथ का मन्दिर बनवाने की आज्ञा दी।

यह वही विमलशाह था जिसने आरासुर पर्वत पर कुम्भारिया में अम्बाभवानी के प्रसिद्ध मन्दिर के पास मन्दिर बनवाये थे। इनकी बना-वट देलवाड़ा के मन्दिर की बनावट के समान है, और कहते हैं कि

---

(१) आबू पर धन्धुक राजा राज्य करता था। इसने भीमदेव का आधिपत्य स्वीकार किया था और वह अपने को उसका उमराव मानता था। इससे आबू के परमारों की प्रतिष्ठा कम हो गई थी। (धार राज्य का इतिहास पृ० ३७)

ये सब गुप्त मार्ग द्वारा मिले हुए हैं। इनके विषय में जो बातें चली आती हैं उनका वर्णन आगे करेंगे।

उन्हीं दिनों, डाहल नामक देश पर कर्ण नाम का राजा राज्य करता था। यह डाहल आजकल तिपेरा के नाम से प्रसिद्ध है और पवित्र काशी नगर (अथवा वाराणसी) में है। कर्ण देवतुदेवी का पुत्र था जो अपनी दृढ धर्मनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध थी। कर्ण को जन्म देते समय ही इस रानी की मृत्यु हो गई थी। शुभ लग्न में जन्म लेने के कारण इस राजा का राज्य चारों दिशाओं में फैल गया और एक सौ छत्तीस राजा उसके चरणकमलों की पूजा करने लगे।

उज्जयिनी के राजा भोज की कीर्ति से डाह करके कर्ण ने उस पर चढ़ाई करने की तैयारी की, और इसी प्रसंग में सरहद के गाँव में भीमदेव से मिलने का प्रबन्ध किया। भीमदेव ने उससे प्रतिज्ञा की कि वह पश्चिम की ओर से हमला करके भोज का ध्यान उसकी ओर से हटा लेगा और उसने ऐसा ही किया भी। इस प्रकार जब दोनों राजाओं ने भोजराज पर आक्रमण किया तो उसने उनका सामना करना अपनी परिस्थिति के अनुकूल न समझा और अपने नगर में घुसने के रास्ते को घुडसवारों से रोक कर बैठ रहा। उसी समय भीमदेव ने डामर को अपना प्रतिनिधि बना कर राजा कर्ण की छावनी में भेजा। जब समाचार लाने को दूत भेजा गया तो डामर ने उसको यह गीति याद करादी और उसने लौट कर गुजरात के राजा के सामने उसे दोहरा दी[१]:—

---

(१) पानीपत की लडाई के समय का भाउ का नोट देखिये—एशियाटिक रिसर्चेज़ भाग ३ पृष्ठ १५५—"प्याला लबालब भर गया है, अब इसमें एक बूंद भी अधिक नहीं समा सकती।"

गाथा·—अम्बय फल सुपक्कं विणट्टं सिढिल समुब्भडो पवणो
साहा मिल्हणसीला, न याणिमो कज्ज परिणामो ॥

अर्थात् :—आम के पेड़ का फल पक गया, डॉड शिथिल हो गये हैं जोर के पवन से टहनियाँ हिल (काँप) रही हैं—आगे नहीं जानता क्या परिणाम होगा।"

इस गीति को सुनकर भीमदेव ने शान्त रहने का निश्चय किया।

अब, भोजराज को मालूम हो गया कि उसे परलोक यात्रा की तैयारी करनी चाहिए। अतः उसने समयोचित रीति से पुण्यदान किया और राज्य का कार्य भार अपने सुभटों को सौंप कर आज्ञा दी "जब मुझे अर्थी में रख कर श्मशान में ले जावो तो मेरे हाथ वाहर निकले हुये रखना जिससे सब को मालूम हो जायगा कि मैं अपने साथ कुछ नहीं ले जा रहा हूँ।[१]

भोजराज का समाचार सुन कर राजा कर्ण ने धार पर चढाई कर दी और नगर को नष्ट करके राजकोष अपने कब्जे में कर लिया। जब भीमदेव की ओर से डामर ने लूट का भाग मांगा तो यह तय हुआ कि मालवा के देवालयों की आय गुजरात के राजा की होगी।

महमूद की मृत्यु के वाद उसके वशज अपने ही देश में आपसी झगडों में लगे रहे इसलिये कितने ही वर्षों तक वे हिन्दुस्तान की ओर ध्यन न दे सके। सुल्तान की मृत्यु के तेरह वर्ष वाद जब उसका पौत्र सुल्तान मोदूद् गद्दी पर था तब हिन्दुओं ने अपने पर अत्याचार

(१) 'कसुकरुरे पुत्रकलत्रधी कसुकररे करसण वाड़ी।
एकला आइवो एकला जाइवो हाथ पग वे झाड़ी॥

"पुत्र कलत्रादि एवं खेती वाडी से क्या होगा? अकेला आया है और दोनों हाथ पैर झाड कर अकेला जाना है।

करने वाले इस पर-राज्य के बोझ को दूर करने का अवसर देख कर महा प्रयत्न किया। फरिश्ता के लेखानुसार सन् १०४३ में, दिल्ली के राजा ने अन्य हिन्दू राजाओं की सहायता से हाँसी, थानेश्वर तथा इनके नीचे के अन्य छोटे छोटे राज्यों को मोदूद के सरदारों से वापस ले लिया। इसके बाद, राजपूत नगरकोट के किले की ओर बढ़े और चार महीने तक घेरा डाल कर पड़े रहे। अन्त में, खाने पीने का सामान बीत जाने के कारण भूख प्यास से तंग आकर तथा सहायता के लिये निराश होकर मुसलमानों को आत्मसमर्पण करना पड़ा। किले के वापस हाथ आ जाने पर देवालय में फिर महादेव की स्थापना हुई और इस धार्मिक विजय से लोगों का उत्साह इतना बढ़ा कि हिन्दुस्तान के सभी भागों से हजारों यात्री सोना, चांदी और जवाहरात की भेंटे ले कर भीम के किले के देवालय की धार्मिक-महिमा को फिर से बढ़ाने के लिये आ पहुँचे।

इस विजय से राजपूतों का आत्मविश्वास बहुत बढ गया था। मुसलमान इतिहासकारों का कहना है कि, जो लोग पहले मुसलमानों के हथियारों के डर से लोमड़ियों की भाँति छुपे रहते थे और सिर भी उँचा न कर सकते थे वही राजपूत अब सिंहरूप धारण करके खुल्लम खुल्ला अपने अधिपतियों (मुसलमानों) का सामना करते थे। तीन राजाओं ने दस हजार घुड़सवार और अगणित पैदल साथ में लेकर लाहोर पर चढ़ाई की। सात महीनों तक मुसलमान, बड़ी कठिनता से एक एक गली और एक एक खंडहर की रक्षा करते रहे। अन्त में जब अपने को पराजय के किनारे ही पाया तो उन्होंने विजय अथवा मृत्यु दोनों में से एक प्राप्त करने की सौगन्ध खाई और ऐसा व्यूह बनाया कि शत्रुओं को पीछे हटना पड़ा।

हिन्दू ग्रन्थकारों ने लिखा है कि इस अभिसन्धि का नेता अजमेर का चौहान राजा वीसलदेव था। कहते हैं कि हिन्दुओं के धर्म और स्वतंत्रता के रक्षण के लिये किये गये इस अन्तिम, महान् और संगठित प्रयत्न में भाग लेने के लिये अन्य राजाओं के समान अणहिलवाड़ा के राजा को भी निमन्त्रण दिया गया था। यद्यपि जब सोमनाथ का नाश करने वाला महमूद सिर पर चढ़ आया था तब उस समान-शत्रु से लडाई करने में भीम सांभर के राजा से मिल गया था, परन्तु इस समय दोनों वंशों में चले आये पुराने मनसुटाव के कारण वह इस कार्य मे भाग लेने से रुक गया, क्योंकि इस में चौहान राजा का नेतृत्व था। अस्तु, गुजरात की सेना तटस्थ रही, और वीसलदेव अपने घुडसवारों सहित विजय पर विजय प्राप्त करता हुआ आगे बढ़ता गया। उसने म्लेच्छों का नाश करके भारत–भूमि को एक बार फिर से "धर्मक्षेत्र" कहलाने योग्य बना दिया और इस भव्य यश को अपने कीर्तिस्तम्भ पर साभिमान खुदवाने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया। [१]

चन्द बरदाई कृत पृथ्वीराजरासो के ६६ अध्याय हैं। उनमें से एक में अजमेर के राजा की कथा के साथ साथ कवि ने उस लडाई का भी वर्णन किया है जो भीमदेव के इस उदासीन व्यवहार के कारण उसमें और विजयी राजाओं में हुई थी। अब हम पाठकों के सामने उसी का उल्लेख करते हैं।

बारहट चद कहता है "ऋषियों ने आबू पर्वत पर यज्ञ कुण्ड में से एक पुरुष उत्पन्न किया और उसको राजपद दिया। उसी के वंश में परम

---

(१) देखो एशियाटिक रिसर्चेज पुस्तक ७ पृष्ठ १८०।

धार्मिक वालण [१] राजा उत्पन्न हुआ। बालण का पुत्र वीसलदेव हुआ, जो वैशाख शुक्ल प्रतिपदा, शुक्रवार को गद्दी पर बैठा। उस समय छत्तीस [२] शाखाओं के राजपूत और भाट लोग इकट्ठे हुए थे। वीसल

---

(१) यह वही वालण है जिसको कर्नल टॉड ने वीर बीलनदेव लिखा है और जिसने महमूद गजनवी के मुकाबले में बीटली के गढ अथवा अजमेर की पहाडी पर स्थित गढ (तारागढ) की रक्षा की थी। फीरोजशाह के स्तम्भ पर इसका नाम वेल्लादेव अथवा वेलदेव लिखा है। व और व का अभेद है, अतः वीसलदेव को प्रायः वीसलदेव भी कहते हैं।

[२] छप्पय—रवि, शशि, जादव वंश, कोकस्थ, परिमार, सदावर,
चहुआण, चालुक्य, चद सेलार, अभीयर,
दोयमत, मकवाण, गरुअगोह, गोहेलपत,
छापोकट, परिहार, रावराठोड, सरोषजुत.
देवडा, टांक, सिन्धव, अनंग, पोतक पडिहार, दधिभट,
कारटपाल, कटुपाल, हुन, हरितक, गोर, कमाख, भट,
ध्यानपालक, निकुम्भवर, राजपाल कवनीश,
कालच्छर को आदि दै, वरणे वंस छतीस॥

अर्थात्—(१) सूर्यवंशी, (२) चन्द्रवंशी, (३) यादव, (४) ककुत्स्थ, [कछवाहा] (५) परमार, (६) सदावर [तवर], (७) चहुआण, (८) चालुक्य [सोलकी], (९) छंद [रादेल], (१०) शिलार, (११) आभियर, (१२) दोयमत [दाहिमा], (१३) मकवाणा [झाला], (१४) गोहिल, (१५) गहिलोत [शिशोदिया], (१६) चापोत्कट [चावडा], (१७) परिहार, (१८) राठौड, (१९) देवड़ा (२०) टॉक, (२१) सिंधव, (२२) अनिध [अगन]. (२३) पोतिक, (२४) प्रतिहार, (२५) दधिमट, (२६) कार्टपाल [कारट], (२७) कोटपाल, (२८) हुन [हुण] (२९) हरितक [हाडा], (३०) गोर [गौड], (३१) कमाड [जेठवा]

को राजछत्र अर्पित किया गया, उसके ललाट पर राजतिलक किया गया, और ब्राह्मणों ने वेदघोष एवं चण्डीपाठ करना आरम्भ कर दिया।

जब वीसल ने राजछत्र धारण किया तब ब्राह्मणों ने यज्ञकुण्ड तैयार करके उसमें पंचशर छोड़े। उसमें से धुँआ निकला, फिर ज्वाला निकली, ब्राह्मणों ने मन्त्रपाठ करते हुए उसका राज्याभिषेक किया और सब लोग बोल उठे—"महाराज वीसल की जय हो ! जय हो !"

वीसल ने इन्द्र के समान सुख भोगा, उसने यश और न्याय को फिर स्थापित कर दिया। अजमेर नगर में निवास करते हुए और अपने शत्रुओं का विनाश करते हुए—वीसल ने निर्विघ्न राज्य किया। उसने बड़े बड़े समृद्धिशाली नगरों को जीत कर आधीन कर लिया और उसके राज्य में पृथ्वी एक ही छत्र की छाया में दिखाई पड़ने लगी।

उसने नगर को ऐसा सुसज्जित कर रखा था मानों विश्वकर्मा ने ही अपने हाथ से सजाया हो। उसने अधर्म का नाश करके धर्म की स्थापना की, कोई पाप कर्म नहीं किया, सदैव सबसे अपना उचित भाग ही ग्रहण किया, लोभ करके अनुचित भाग नहीं लिया। चारों वर्ण चौहान के आधीन थे और छत्तीस शाखाएं उसकी चाकरी में थी। धर्म-धुरन्धर वीसलराज पृथ्वी पर देवराज इन्द्र के समान प्रतापी था।

एक बार वीसलदेव जङ्गल में हरिणों का शिकार कर रहा था। वहाँ एक योग्य स्थान देख कर उसकी इच्छा तालाब बँधवाने की हुई। उसने

---

(३२) मट [जाट], (३३) ध्यान पालक [धान्य पालक], (३४) निकुम्भ, (३५) राजपाल और (३६) कालछर। इस प्रकार ३६ वंशों का वर्णन है।

एक अच्छी सी जगह ढूंढ निकाली जहाँ पर्वत पर से झरने भी खूब बह कर आते थे और वन भी अत्यन्त रमणीय था। वहीं अपने प्रधान मंत्री को पुष्कर के समान एक जलबाँध बँधवाने की आज्ञा प्रदान करके अत्यन्त प्रमुदित होता हुआ वह घर लौटा। उसने धर्मपुत्र युधिष्ठर के समान राज्य किया। वीसल पृथ्वी पर मनुष्यों में इन्द्र के समान हो गया है, उसके शिर पर छत्र शोभायमान था, दोनों ओर चवर ढुलते थे और वह स्वयं देखने में अश्विनीकुमार के समान सुन्दर था। वीर पुतासर तँवर आदि छत्तीसों शाखा ही वहाँ पर उपस्थित रहती थीं। राजा उन्हें अपने पास बुलाता और पान सुपारी देकर उनका सत्कार करता। जब गन्धर्व लोग उसकी कीर्ति का गान करते तो राजा हँस कर नीचा मस्तक कर लेता। इस राजसभा में राजा लोग तारों के समान सुशोभित होते थे और उनके मध्य में चौहान राजा चन्द्रमा के समान विराजता था। सब के नमस्कार को स्वीकार करता हुआ राजा सभा को विसर्जित करता और जब वे लोग अपने अपने घर लौटते तो भाट लोग उनको आशीर्वाद देते। एक प्रहर रात गये राजा महल में जाता। वह महल कपूर, चन्दन, कस्तूरी और अन्य सुगन्धित पदार्थों से महका करता था। आँगन पर बहुमूल्य इत्र छिड़के जाते थे। चित्रविचित्र रंगों से चित्रित, आनन्द उपजाने वाले सभामण्डप में राजा का स्वागत होता। वहाँ वह नाटककारों, गवैयों और अन्य गाने बजाने वालों को बुलाता और अपनी प्रियतमा रानी परमार पुत्री के साथ परम आनन्द का उपभोग करता। यह रानी रूप यौवन में एक अप्सरा के समान थी और राजा को अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय थी। उसको एक क्षण भी उसके बिना चैन नहीं पड़ता था और दूसरी किसी भी सुन्दरी पर वह दृष्टिपात नहीं करता था।

परमार रानी ने सारङ्गदेव नामक पुत्र को जन्म दिया जो बड़ा होने पर कीरपाल कायस्थ की देखरेख में शाकम्भरीदेवी के प्रिय नगर सांभर भेजा गया और वहीं उसके रहने सहने का प्रबन्ध भी किया गया। जल्दी ही सुयोग्य कन्या गौरी के साथ उसका विवाह हुआ जो रावल देवराज की पुत्री थी और सारङ्गदेव के साथ इस प्रकार शोभित होती थी जिस प्रकार कामदेव के पास रति।

इस प्रकार कल्याणकारी शुभ लक्षणों के साथ वीसल के राज्य का आरम्भ हुआ, परन्तु आगे चल कर उसकी बढ़ती कला बहुत से विपत्ति रूपी बादलों से घिर गई। चंद बरदाई तो कहता है कि एक बार तो उसको गद्दी भी छोड़नी पड़ी। इसका कारण यही जान पड़ता है कि वह परमार राजा की पुत्री पर अत्यन्त मोहित था और उसी पर उसका अगाध प्रेम था इसलिए दूसरी रानियां और उनके सम्बन्धी ईर्ष्यालु हो गये। फिर भी जैसे तैसे श्री शिवजी के प्रसाद से उसने पुनः सत्ता प्राप्त करली और उसका अधिक त्रासदायक रीति से उपभोग करने लगा। इसमें मुख्य बात तो यह हुई कि वह काम के वश होकर निर्मर्याद हो गया और निराश होकर उसकी प्रजा ने टोलियां बना बना कर देश छोड़ने की धमकी दी।

नगर वासियों के झुण्ड के झुण्ड इकट्ठे होकर प्रधान मंत्री के घर पहुँचे और रुष्ट होकर कहने लगे—"स्त्रियों और पुरुषों, दोनों पर ही आफत है—हम यहां नहीं रहेंगे—कहीं अन्यत्र चले जावेंगे।" प्रधान ने उत्तेजित प्रजा को शान्त किया और उनमें से कुछ मुखियाओं एवं रानियों के साथ सलाह करके वे सब वीसल के पास उपस्थित होकर कहने लगे "भूमि की रक्षा करने के लिए राजा को भ्रमण करते रहना चाहिए, भूतल पर बहुत से छोटे मोटे राजा हैं। ऐसे कण्टकों को दूर करने के

लिए [१] अधिराज को उन पर आक्रमण करके-उनके राज्य को अपने आधीन करना चाहिए।" राजा ने उनके कथन का भावार्थ समझ लिया और कहा "मुझ में जो आग भड़क उठी है वह तुम्हें जलाती है। अब तुम जैसा कहोगे वैसा ही करूँगा। मै कीरपाल को बुलाऊँगा और फिर तुम जिस देश पर चढ़ाई करना उचित समझोगे उसी पर तुम्हारे साथ चढ़ कर चलूँगा।"

इसके बाद उसने सब मन्त्रियों को आज्ञा दी और कीरपाल को बुला भेजा। कीरपाल सांभर से अजमेर नगर को आ पहुँचा। आते ही उसने राजा के चरण छूकर भेट स्वरूप एक तलवार आगे रखदी। इस तलवार की मूंठ और म्यान रत्नों से जड़ी हुई थी। राजा ने उस तलवार को कमर में बाँधली और मुहूर्त विचारने में चतुर ज्योतिषियों ने इसको शुभ शकुन बताया। तब राजा ने कहा "यह शकुन मेरे अनुकूल हुआ इसलिए अब मै नव खण्ड पृथ्वी मे अपनी तलवार चलाऊँगा और समस्त भूमण्डल को अपने आधीन करूँगा मेरु के समान दृढ़ राजाओं को भी अपना करद (आधीन) बना कर छोड़ूंगा। हे कीरपाल ! मेरी बात सुनो ! कोप लेकर मेरे साथ चलने को तैयार हो जाओ और बीसल सरोवर पर चल कर खेमे गाड़ दो।"

---

(१) मुसलमानों ने भारत की सीमा पर कितने ही स्थानों पर अधिकार कर लिया था। इन्हीं को पुनः हस्तगत करने के लिये बीसलदेव की अध्यक्षता में बहुत से छोटे छोटे राजा इकट्ठे हुए थे परन्तु गुजरात से भीमदेव नहीं आया और न कोई सोलंकी ही सम्मान प्रदर्शन करने आया। ये सभी बातें चन्द ने लिखी हैं जो ऊपर लिखी हुई बातों से स्पष्ट होती है। यदि भीमदेव भी साथ मिल गया होता तो हिन्दुस्तान में मुसलमानों के पैर न जमते।

उसने दशों दिशाओं में बुलावे भेजे "सब लोग अजमेर आकर मुझ से मिलें।" महान् श्री परिहार उससे आकर मिला, मंडोवर के अधिपति ने उसके चरण छुये, सब गहलोत इकट्ठे होकर आ पहुँचे। राम गौड, तँवर, पावा का अधिपति, मेवाड का राजा महेश और दूनापुर का मोहिल (१) भी अपने अपने साथियों सहित आये। बलोच अपनी पैदल सेना को साथ लेकर आये और सिन्ध का राजा सिन्ध को भाग गया। भटनेर के राजा ने भेंट भेजी और मुलतान तक के राजा आकर सम्मिलित हुए। जैसलमेर आज्ञा पहुँची, सब भूमिये आधीन हो गये, यादव, बाघेला, मोरी और महान् गुर्जर, इन सबने आज्ञा को माना। अन्तर्वेद से कुरभ आया। समस्त मेरों ने आधीन होकर बीसल के चरणों का स्पर्श किया। आज्ञा को शिरोधार्य करके जैतसिंह रवाना हुआ और साथ में तचिपुर के राजा को भी लेता आया। बहुत से परमार घोड़ों पर चढ़ कर आये, दोनों ने उसका साथ दिया, चन्देलों और दाहिमों ने उसकी पूजा की। उसने अपनी तलवार घुमाकर समस्त भूमियों को आधीन कर लिया।

सोलंकियों में से कोई भी उसका सम्मान करने के लिये नहीं आया। वे सब अपनी तलवार को दृढ़ता से पकड़े हुए अलग खड़े रहे। यह देखकर जैतसी गोलवाल ने कहा "अपने घरों और नगर की रक्षा के लिये थोड़ी सी फौज अजमेर में छोड़कर हम लोग आगे बढ़ें, अब चालुक्य बच नहीं सकते।" कूच पर कूच करते हुए योद्धा लोग पहाडी मार्ग से आगे बढ़े और राजा बीसल ने भी सोलंकी पर पहला

(१) मोहिल—मानिकराव से उत्पन्न हुई चौहानों की एक शाखा (देखो टॉड राजस्थान भाग २ पृ० ४४५; इस उद्धरण का प्रमाण भाग २ पृ० ४४६।

वार करने के लिये कदम बढाया। उसने बहुत से दुर्गों को मिट्टी में मिला दिया। जालोर को हस्तगत करके दुर्ग को नष्ट कर दिया- शत्रु जंगल में और पहाड़ों में भाग गये। आबू पर चढ़ कर उसने अचलेश्वर के दर्शन किये। वागर को विजय कर लिया। गिरनार की भूमि, सोरठ में उसको बिना लड़ाई लड़े ही सम्मान व कर मिल गया।

सत्तर नगरों के देश गुजरात में उस समय चालुक्यराव बालूक योद्धा था। समाचार सुनते ही बालूक घोड़े पर सवार होकर आया और शिव और दुर्गा का पूजन किया। उसके कन्धे पर तलवार थी; उसके साथ तीस हजार घुड़ सवार और सत्तर मदमाते हाथी थे। लगभग दो गावों की (एकलीग) दूरीपर जाकर उसने घेरा डाला। वीसल ने चालुक्य-राय के प्रस्थान का हल्ला सुना। उसने एक एक घोड़ा मँगवाया और उस पर सवार हुआ। राज-नौबत बजने लगी और अपनी सेना का व्यूह रच कर वह आगे बढ़ा। उसके आ पहुँचने का शोर शत्रुओं ने सुना। वह सत्तर हजार सेना के साथ आया था। ऐसा मालूम होता था मानों वर्षा ऋतु में बरसाती जानवर शब्द कर रहे हों. ढालें और तलवारें चमकने लगीं, वीरों में उत्साह था, आनन्द था, कायरों के हृदय में घबराहट थी। चालुक्य के देश का नाश करती हुई, समुद्र की वेगवती तरङ्गों के समान सेना आगे बढ़ रही थी। शहर, कस्बा एवं गाँव जो भी मार्ग में आया, लूट लिया गया।

जब चालुक्य ने यह समाचार सुना तो वह धुँधुआती हुई आग के समान भड़क उठा। चालुक्य योद्धा बालूकराव ने जल मंगाकर स्नान किया और विष्णु भगवान् का चरणामृत लिया। फिर हरि को गले में धारण करके बोला "अर्थं साधयामि वा देहं पातयामि (आज या तो जय

प्राप्त करूँगा अथवा इस शरीर को छोड दूंगा। यदि मैं रणस्थल छोड़ कर भागू तो मेरे कुल की कीर्ति नष्ट हो। क्या पृथ्वी पर कोई योद्धा ही नहीं रहा, जो यह वीसल इस प्रकार वे रोकटोक आगे वढता चला आरहा है ?"

श्रीकण्ठ वारहट को शत्रु के पास भेजा गया। वह वीसलदेव चौहान के पास गया और हाथ उठाकर उसको आशीर्वाद दिया। वालूकराव का हाल चाल सुनाते हुये उसने कहा "आपको जो कुछ करना हो वह राजा के साथ करना चाहिये, इस प्रकार प्रजा को दुख देने का क्या अर्थ है ? आपने प्रजा को कष्ट पहुँचा कर अच्छा नहीं किया, ऐसा कोई भी हिन्दू राजा नहीं करेगा। इसलिये अब प्रजा को वरवाद करना वद करके अपने घर अजमेर लौट जाओ और वहीं पर राज्य करो। बालूकराय ने कहलाया है "मै क्षत्रिय वंश का हूँ, लड़ाई लड़ना मेरा धर्म है, भाग जाना मेरे लिए दुख दायक है-परन्तु, रणक्षेत्र में सर जाना मेरे लिए उत्सव के समान है। मेरे साथ जो सामन्त हैं, वे कुलीन हैं, हम तुम्हारे हटाये कभी न हटेंगे-इसलिये लौट जाओ लड़ाई का विचार छोड़ दो और हम से मोर्चा मत लो।" चौहान ने यह संदेश सुनते ही युद्धार्थ कूच का डंका वजवाया। हाथियों और घोड़ों पर सामान सजाया गया। शूरवीरों ने शस्त्रास्त्र धारण किये और दोनों सेनायें आमने सामने आ खड़ी हुई। वे दोनों समुद्र की दो उत्ताल तरङ्गों के शिखरों के समान दिखाई देने लगी। चौहान ने चक्रव्यूह की रचना की और कहा "अव हमें देखना है कि वालूक राय इसको अभिमन्यु(१)

---

(१) महाभारत मे कौरवों ने चक्रव्यूह रचा था। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने छः चक्रों को तो तोड दिया था, परन्तु सातवें के द्वार पर वह मारा गया था।

के समान तोड़ सकेगा या नहीं। जो कुछ होना है वही होगा।"

दोनों सेनाएं भिडीं। योद्धा लोग अपने साथियों से कहने लगे भाइयो! मारो! भाइयो! मारो! लड़ाई छिडी और मारकाट शुरू हुई। चालुक्य की सेना पीछे हटी—बालूक राव सहायता को आ पहुँचा और उसने व्यूह को हिला दिया। परिहार और गहलोतों ने पीठ दिखादी। परिहार भाग कर तंवर के स्थान पर चला गया। इस प्रकार व्यूह टूट कर खिलमिल हो गया। उसी समय कधार और बलोच वीरता से बालूकराव के सामने बढ़े और किसी बात की परवाह न की। योद्धा रक्त से लथपथ हो गये थे और उनके कवच इस प्रकार लाल रंग में रंग गये थे मानो उन्होंने होली खेली हो। खून से रंगे हुये हाथी ऐसे मालूम होते थे मानों वसन्तऋतु में पलाश (टेसू) के वृक्ष लाल लाल फूलों से लद गये हों। अब बालूक और बीसल दोनों सामने सामने हुये। वह (बालूक) ऐसा प्रतीत होता था मानों सूर्य के सामने आने से चन्द्रमा फीका पड़ गया हो। चालुक्य घोड़े पर था और चौहान हाथी पर। दोनों राजाओं मे भयंकर युद्ध हुआ और जब हाथी के दाँतों तक बालूक अपने घोडे को बढ़ा ले गया तब दोनों के शस्त्र टकरा गये। अन्त में रात्रि हो जाने के कारण दोनों योद्धा विलग हुए और अपनी अपनी छावनी में जाकर घायलों की देख भाल करने लगे।

दूसरे दिन सवेरे ही चालुक्य के मन्त्रियों ने इकट्ठे होकर सलाह की और राजा की जानकारी के बिना ही चौहान के पास सन्देश भेजा। यह समाचार सुन कर पावा का अधिपति राजा के पास गया। कीरपाल को भी बुलाया गया। चालुक्य के मन्त्रियों ने कहा "आप जितना चाहें उतना ही धन ले लें, हम आपके चरणों में भेंट करेंगे।" राजा

ने उत्तर दिया "मैं यहां पर एक निशानी छोड़ जाऊंगा और एक मास के समय में एक नगर बसाऊंगा। यदि यह स्वीकार हो तो अपनी भेट ले आओ।" इस प्रकार शर्तें तय हो गईं। चौहान ने खेत जीता और चालुक्य घायल हुआ। यों वीसलनगर की स्थापना करके वीसल घर लौट गया। (१)

चन्द बारहट ने वर्णन किया है कि थोड़े से दिनों के लिए वीसल ने जिस दुर्गुण को छोड़ दिया था, अजमेर पहुँचने पर वह फिर उसी में फस गया। एक साध्वी स्त्री का सतीत्व भंग करने के दण्डस्वरूप उसे मनुष्य शरीर छोड़ कर नरमांस-भक्षक असुर अथवा दानव का रूप धारण करना पड़ा। साधारणतया लोगों का कहना है कि वह सॉप के काटनेसे मर गया था और परमार रानी उसके मृत शरीर को लेकर सती हो गई थी।

वीसलदेव के बाद सारङ्गदेव गद्दी पर बैठा। उसने सबसे पहला काम तो यह किया कि अपनी गर्भवती स्त्री को रणथंभोर के दुर्गम दुर्ग में सुरक्षित रहने के लिए भेज दिया। इस किले में उसके पीहर वालों की बैठक थी। फिर, वह उस दानव को नष्ट करने के प्रयत्न में लगा जिसने उसके स्थान, अजमेर पर कब्जा कर लिया था और अपने क्रोध एव उद्दण्डता के वश होकर नगर को ऊजड़ कर दिया था। परन्तु इस कार्य में सारंगदेव असफल ही नहीं हुआ वरन् स्वयं भी उस दानव की भेट हो गया।

---

(१) कर्नल टॉड कृत वेस्टर्न इण्डिया पृ० १७२ में लिखा है कि समझौते की शर्तों में एक शर्त यह भी थी कि वालूक अपनी कन्या का विवाह वीसलदेव से कर दे। हम्मीर राजा के पराक्रम का वर्णन करते हुए हम्मीर रासो का प्रमाण देकर उसने यह भी लिखा है कि भीम के पुत्र कर्णदेव को वीसलदेव कैद करके ले गया था।

सारङ्गदेव और गौरी का पुत्र आनो इस प्रयत्न में कृत कार्य हुआ। उसने अपने पिता के मार्ग से विरुद्ध प्रकार ग्रहण किया। हथियार लेकर सामना करने के बदले वह उसकी शरण में चला गया और अपनी रक्षा करने के लिये प्रार्थना की। उसकी नम्रता से खूब प्रसन्न होकर दानव ने वरदान दिया "पिता के बाद पुत्र, इस प्रकार तुम्हारा वंश अजमेर पर राज्य करता रहेगा।" यह कह कर वह आकाश में उड़ता हुआ यमुना नदी पर निगमबोध को चला गया और वहाँ पर जब अनंगपाल तँवर ने दिल्ली बसाई तब तक ३८० वर्ष पर्यन्त अपने पापों का प्रायश्चित्त करता रहा। चन्द का कहना है कि उस (दानव) के अङ्गों से पृथ्वीराज के सामन्तों की सृष्टि हुई थी। वह अपने विषय में कहता है कि उसकी उत्पत्ति दानव की जिह्वा से हुई थी। [१] आनो के बाद उसका पुत्र जय-

---

(१) पृथ्वीराज का जन्म स० १२१५ में हुआ था। उसके विषय में ऐसी दन्तकथा है:—वीसलदेव ने एक नागकन्या से विवाह किया और दूसरी रानियों की अपेक्षा उससे अधिक प्रेम करने लगा। रानियों ने उस नागकन्या को जहर देकर मारने की सोची। यह बात जब नागकन्या को विदित हुई, तो वह एक मणि के प्रभाव से, जो उसके पास थी, राजा को एक महल के अन्दर ले जा कर रहने लगी। यह महल जल के भीतर बना हुआ था। उस मणि में ऐसी शक्ति थी कि उसके प्रभाव से जल में भी रास्ता दिखाई पड़ता था। राजा उसी के सहारे जल में आता जाता था। जब रानियों को यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने राजा की पगडी में से उस मणि को चुरा लिया और जला दिया। इस प्रकार नागकन्या के वियोग के कारण राजा बहुत दुखी हुआ। इसके बाद, एक बार राजा ने एक ऋषि-कन्या देखी जो नागकन्या के समान ही सुन्दरी थी। उसकी पवित्रता नष्ट कर देने के कारण उसने राजा को शाप दिया जिससे वह राक्षस हो गया। चार पीढी बाद सोमेश्वर हुआ, वह राक्षस सम्बन्धी बात जानता था। एक बार अपनी स्त्री से दुखी होकर एक ब्राह्मण उस राक्षस के पास गया। राक्षस ने उससे अपने पास आने का कारण पूछा।

सिंह गद्दी पर बैठा और उसके बाद आनन्ददेव, जो भीमदेव द्वितीय से युद्ध करने वाले सोमेश्वर का पिता तथा पृथ्वीराज का दादा था।

भीमदेव प्रथम का विवाह उदयामती से हुआ था जिसके पेट से कर्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस रानी ने अणहिलवाड़ा में एक कुआ बनवाया था जो आज तक टूटी फूटी दशा में विद्यमान है। यह कुआँ वनराज के वंश की बची हुई एकमात्र निशानी है जो अब तक "रानी की बावड़ी" कहलाता है। भीमदेव के दो कुँवर और थे जिनके नाम मूलराज और क्षेमराज थे। आगे पढ़ने पर विदित होगा कि इन दोनों का ही जन्म कर्ण से पहले हुआ था। मूलराज की माता के नाम का तो पता नहीं चलता, परन्तु क्षेमराज की माता का नाम बकुलादेवि था। यह राजा की रखेली थी और नीच कुल की स्त्री थी। प्रबन्धचिन्तामणिकार का कहना है कि वह वेश्या थी और राजा ने उसे मोल लेकर दासी बना लिया था। क्षेमराज को कहीं कहीं हरिपालदेव भी लिखा है। उसने (क्षेमराज ने) जब वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लिया तब विष्णु की पूजा करने के कारण शायद उसका यह नाम पड़ गया होगा।

ब्राह्मण ने जब बताया कि वह अपनी स्त्री से दुखी है तो राक्षस ने उसे बहुत सा धन दिया और कहा "जा इससे तेरी स्त्री राजी हो जायगी, परन्तु इसके बदले में मेरा एक काम करना—वह यह कि तू सोमेश्वर से जाकर यह कहना "मैं (राक्षस) शूकर का रूप धारण करके वन में फिरूंगा और तुम इस प्रसंग में मेरा वध करके मेरे मांस का भक्षण करना। इससे तेरा तो उद्धार होगा ही वरन् जो इस मांस को खायें उनको भी पुत्र की प्राप्ति होगी।" सोमेश्वर अपने विश्वासपात्र साथियों को लेकर वहां गया और जैसा राक्षस ने कहा था वैसा ही किया। इससे उसके पृथ्वीराज उत्पन्न हुआ और उसके साथियों के पृथ्वीराज के सामन्त। उस शूकर की जीभ भाट के भाग में आई जिससे बरदाई चन्द की उत्पत्ति हुई थी।

इसी आचार्य (प्रबन्धचिन्तामणिकार) ने मूलराज के विषय में एक आश्चर्यजनक कथा लिखी है जिससे यह विदित होता है कि भीमदेव का राज-कर वसूल करने का कैसा प्रबन्ध था तथा गुजरात के किसान उस समय भी कर मांगने पर उतना ही हठीलापन दिखाते थे जितना कि आज, परन्तु साथ ही राजाओं में उतनी ही मृदुलता भी थी।

एक बार गुजरात में वर्ष भर वर्षा नहीं हुई जिससे दंडाई और विशोषक नामक छोटे छोटे ग्रामों के कौटुम्बिक उस वर्ष का राज्यकर न दे सके। एक मन्त्री (जिनको आज कल मेहता कहते हैं) इसकी जांच करने के लिए भेजा गया और उसको जिन लोगों के पास कुछ माल मिल्कियत मिली उनको पकड़ कर वह राजधानी मे ले आया। उन लोगों को भीमदेव के सामने उपस्थित किया गया। उस दिन प्रातः काल मूलराज, जो सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ प्रसिद्ध था, वहीं घूम रहा था। उसके साथ राजा का दिया हुआ एक दास भी था। जब मूलराज ने उन किसानों को धीरे धीरे आपस में बातें करते देखा तो उस नौकर से उनके विषय में पूछा। जब नौकर ने उनके विषय में सब विवरण निवेदन किया तो वह गद्गद् हो गया और उसकी आंखों में आंसू आ गये। इसके थोड़ी देर बाद ही उसने अपनी घुड़सवारी की कला से राजा को प्रसन्न किया और जब राजा ने उसे वरदान मांगने को कहा तो उसने इच्छा प्रकट की कि उन कौटुम्बिकों को उनका कर लौटा दिया जावे। राजा की आंखों में आनन्द के आंसू आ गये और उसने इस बात को मान लिया तथा मूलराज से दूसरा वर और मांगने के लिए आग्रह किया।

कैद से मुक्त होने पर कौटुम्बिक लोग उसके चरण छूने आये

और उनमें से कितने ही तो वहीं उसकी सेवा में रहने लगे। दूसरे लोग अपने घर लौटे और चारों दिशाओं में उसकी कीर्ति का प्रसार करने लगे।

थोड़े दिनों बाद ही मूलराज की मृत्यु हो गई और अपने दयालु स्वभाव के कारण वह सीधा स्वर्ग में गया। राजा, उसके दरबारी तथा जिन लोगों को उसने कैद से मुक्त कराया था–सभी उसकी मृत्यु के कारण घोर दुखसागर में डूब गये। परन्तु धीरे धीरे विद्वानों के उपदेश से इस दुख रूपी हाथी का दन्तशूल दब गया। दूसरे वर्ष, वर्षा खूब हुई और प्रसन्न होकर कृषक लोग सभी प्रकार के अनाज सहित, पिछले एव चालू, दोनों ही वर्षों का राजभाग लेकर राजा के सामने उपस्थित हुए। राजा ने पिछले वर्ष का भाग लेना अस्वीकार कर दिया परन्तु कृषकों के बहुत कुछ प्रार्थना करने पर इस विवाद का निर्णय करने के लिये पंच नियुक्त किये गये। पचों ने निर्णय दिया कि दोनों ही वर्षों का भाग राजा ग्रहण करे और यह धन कुमार मूलराज की आत्मा को शांति पहुँचाने के निमित्त त्रिपुरुष प्रासाद नामक देवालय बनवाने में खर्च किया जावे।

द्व्याश्रय के कर्ता ने लिखा है कि सोलंकी वंश के पहले राजा मूलराज एव अपने अन्य पूर्वजों का अनुकरण करते हुये भीमदेव ने भी राज्यकाल के अन्तिम समय में अपने ज्येष्ठ पुत्र क्षेमराज को राज्य सौंप कर स्वर्गप्राप्ति के लिए तपश्चर्या करने का विचार किया। परन्तु क्षेमराज ने इस पद को ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया और कहा "मैं आपसे अलग होना नहीं चाहता, मैं तो आपके एकान्तवास में भी साथ ही रहूंगा।" बहुत कुछ वाद विवाद के बाद भीमदेव और क्षेमराज

दोनों ने कर्ण को सिंहासन पर बिठा कर वन को प्रस्थान किया। इसके थोड़े ही समय पश्चात् भीमदेव की मृत्यु हो गई।

पितृवियोग से दुखी होकर क्षेमराज सरस्वती नदी के किनारे मुण्डकेश्वर नामक स्थान पर जाकर रहने लगा। यह स्थान दधिस्थल अथवा दैथली नामक ग्राम से थोड़ी ही दूर पर है—जो कि कर्णराज ने क्षेमराज के पुत्र कुमार देवप्रसाद को इसलिये दे दिया था कि वह वानप्रस्थ आश्रम में अपने पिता की सेवा कर सके।
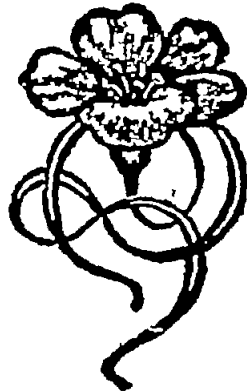
प्रकरण ७

राजा कर्ण सोलंकी—मीनलदेवी का राज्यकारभार-सिद्धराज

राजा कर्ण के राज्यकाल में (१०७२ ई० से १०६४ ई०) गुजरात विदेशियों की लड़ाई से मुक्त रहा। कहते हैं कि, इससे पहले के शासकों ने जिन निकटवर्ती राजाओं को अपने आधीन कर लिया था उनसे तो यह कर लेता रहा और समय समय पर उन पर चढ़ाई भी करता रहा, परन्तु इस बात का प्रमाण कहीं नहीं मिलता कि किसी अन्य सत्तावान् पड़ौसी राज्य से भी इसकी लड़ाई हुई हो। फिर भी, ऐसा प्रतीत होता है कि उसको ऐसा अवसर मिला जिससे उसने लाभ उठाया और मेवास के दुर्गम एव ऊजड़ भाग को अधिकार में करके अपने बल को दृढ़ किया।

साधारणतया यह मानने मे आता है कि बहुत प्राचीन काल में गुजरात जङ्गली जातियों का निवासस्थान था। इन जातियों के वशज अब भी मिलते हैं और सामान्यतया इनमें आपस में बहुत कुछ समानता भी पाई जाती है, परन्तु, इन लोगों के धर्म एवं राजतन्त्र के विषय में कथारूप से बहुत कम वृत्तान्त प्राप्त हैं। बिशप हेबर [२] के मतानुसार ये लोग मध्य एव पश्चिमी हिन्दुस्तान के आदि निवासी थे और बाद में

---

(१) चैत्र वुदि ७ सोमवार सं० ११२८ वि० में हस्त नक्षत्र, मीन लग्न में इसका राज्यभिषेक हुआ—मेरुतुंग।

(२) देखिये बिशप हैबर्स जर्नी वॉल्यूम २, पृष्ठ ३१-६८

ब्राह्मण धर्म मानने वाली और कहीं बाहर से आई हुई जातियों के आक्रमणों द्वारा, अपने अपने किलों में धकेल दिए गये, जहाँ उनका जीवन अत्यन्त दुखदायक और निरुपाय हो गया था। "यह बात तो ये राजपूत लोग भी अपने परम्परागत इतिहास में स्पष्टतया स्वीकार करते हैं कि उनके प्रधान नगरों और किलों में से अमुक अमुक नगर व किला अमुक अमुक भील सरदार द्वारा बसाया अथवा बनवाया गया था और बाद में सूर्यवंशियों ने इसे अपने कब्जे में कर लिया था। भाट लोगों का कहना है कि, उत्तानपाद का मरण एक महात्मा के शाप से हुआ था। उसके वंश में वेणु हुआ और वेणु के शरीर से भील अथवा कैयो उत्पन्न हुआ। इसी भील अथवा कैयो से इन लोगों की एक शाखा चली है। कैयो आबू पर्वत के आसपास के जंगलों में राज्य करता था। वह आजानुबाहु नामक पुत्र छोड़ कर मरा जो बहुत बलवान् था और अपने पिता के राज्य का योग्यतापूर्वक संचालन करता था। इसी के वंश में गुह उत्पन्न हुआ जो केवट का धंधा करता था। अयोध्या से चल कर उसी के घर श्री राम ने पहला विश्राम किया था। गुह से सब भीलों की उत्पत्ति हुई, बाद में जिनकी दश शाखाएं हो गईं।

महाभारत में लिखा है कि उस समय कैया नाम की एक जाति गुजरात में बसती थी। मत्स्यपुर अथवा विराटपुर में, (आज कल वहाँ धोलका नामक कस्बा बसा हुआ है,) जब पाण्डव लोग विराट राजा के यहाँ जाकर रहे तो उन्होंने वहाँ कैयो जाति की सुदेष्णा नाम की रानी देखी जिसके भाई कैया कीचक का, द्रौपदी का सतीत्व नष्ट करने की चेष्टा करने के अपराध में, भीम पाण्डव ने वध किया था। इस कैयो के विषय मे लिखा है कि वह अपनी जाति सहित सब लड़ाइयों

में विजय प्राप्त करके दुर्योधन व उसके मित्र सुशर्मा के अधीनस्थ त्रिगर्त देश (१) को नष्ट करके लौटा था।

एक ऐसी ही दन्तकथा और भी प्रचलित है जिसके अनुसार राजा मान्धाता के पिता यौवनाश्व से कोली लोगों की उत्पत्ति हुई। उसके पूर्वज कोली का पालन पोषण एक साधु द्वारा उसी के आश्रम में हुआ था और वह सदा जंगल ही में रहता था। भाट लोग कहते हैं कि, उसके वंशजों का बस्ती मे तो ऐसा कोई उपयोग नहीं था परन्तु जङ्गलों में वे लोग शेर के समान रहते थे। ये कोली लोग बहुत समय तक सिन्धु नदी के पास ही समुद्र के किनारे रहते रहे परन्तु हिंगलाज माता उनको नल के पास के देश में ले गई जहाँ वे लोग अपने साथ बीरड़ नाम का बीज भी ले गये थे। यह बीज अकाल मे भी निष्फल नहीं जाता। उस समय वे लोग म्हेर कहलाने के साथ साथ कोली भी कहलाते थे और सोनंग म्हेर उनका मुखिया था। उसके बारह पुत्र हुये जिनमे से प्रत्येक के नाम पर अलग अलग शाखा चली। सबसे बड़ा लड़का नरवान नल बावली में जाकर बस गया और वहीं अपने लिये बनवाए हुये एक मन्दिर में हिंगलाज देवी ने भी निवास किया। अब तो यह मन्दिर विद्यमान नहीं है परन्तु नल के एक द्वीप पर इसका स्थान बतलाया जाता है जहाँ अब भी एक आरा हिंगलाज के आरा के नाम से प्रसिद्ध है। (२) दूसरा लड़का धन म्हेर अथवा धाँड था जिसने धन्धुका बसाया, जो बहुत वर्षो तक इसके वंशजों के ही अधिकार मे रहा। वह इतना बलवान था कि उसने स्वयं अपने आप राजा पदवी ग्रहण की। उसके

(१) आजकल का तिरहुत जो नैपाल के दक्षिण मे है।

(२) बॉम्बे ब्रान्च ऑफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल पुस्तक ५ का पृ० ११२

पास पन्द्रह हजार पैदल और अठारह हजार घुड़सवार थे तथा आठ हाथी धाँड के किले में सदैव झूमते रहते थे। दूसरे लड़कों के पास भी इसी प्रकार एक एक गॉव था। भाट कहते हैं कि उस समय गुजरात की जनसंख्या इतनी अधिक नहीं थी वरन् जंगल अधिक थे और ये भील तथा कोली जाति के लोग निर्भय होकर विचरते थे। निस्सन्देह, उस समय इन लोगों ने अब की भॉति ही लूट मार करने के परम्परागत धन्धे को अपना रखा होगा और अपने आपको रात्रिदूत (निशाचर) कहते होंगे। गुजरात के इतिहास में राजा कर्ण सोलकी ही पहला राजा हुआ जिसने अपना ध्यान इन जगली जातियों को दबा कर रखने की ओर लगाया और उसके क्रमानुयायी भी आज तक इस बात को थोड़ो बहुत निभाते चले आ रहे हैं।

इन लुटारू जातियों के रहने के मुख्य निवास स्थान कच्छ के छोटे रण के पूर्वीय भाग से साबरमती नदी तक फैले हुए प्रदेश में थे। आशा नाम का भील सरदार आशावल्ली नामक स्थान मे रहता था जो आजकल आशावल कहलाता है और अहमदाबाद के पास ही स्थित है। कहते हैं कि इस भील पर राजा कर्ण ने चढ़ाई की थी और अगणित धनुर्धारियों का स्वामी होते हुए भी वह हार गया और कर्ण के हाथ से मारा गया। शुभ शकुन देख कर राजा ने वहीं कोचरबदेव के मन्दिर (१) का निर्माण

(१) कर्ण सोलकी जब नगर बसाने के लिए उपयुक्त स्थान ढूढने निकला तो उसके साथ शिकारी कुत्ते भी थे। उनके पास होकर सामने से कुछ खरगोश निकले और नदी में घुस गये। उनको मारने के लिए नदी के जिस भाग में वे घुसे थे वहीं उसने तलवार का वार किया। तलवार के जितने भाग मे नदी के जल का स्पर्श हुआ वह गला हुआ सा मालूम पड़ने लगा। वहीं के रहने वाले किसी मनुष्य से पूछने पर उसने उत्तर दिया कि 'यहां के खरगोश भी कुत्तों को इस तरह छका देते हैं और इस नदी का पानी इतना पाचक है कि लोहे की धार को भी गला देता है।'

कराया। अहमदाबाद के पास नदी के किनारे पर एक स्थान है जिसका यही नाम आज तक सुरक्षित है। प्रबन्धचिन्तामणि के कर्ता मेरुतुंग ने लिखा है कि उसी स्थान पर उसने एक मन्दिर जयवन्ती देवी का तथा दो मन्दिर अपने इष्टदेव कर्णेश्वर एवं कर्णमेरुप्रासाद नाम के बनवाये। उसने वहीं कर्णसागर नामक एक सरोवर भी बँधवाया और कर्णावती नाम की एक नगरी बसाई जिसको उसने अपना निवास-स्थान बना लिया था।

कर्णावती (१) नगरी की स्थिति के बारे मे ठीक ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु कर्णसागर नामक महान् सरोवर की स्थिति के बारे मे किसी को सन्देह नहीं हो सकता। अणहिलवाड़ा पट्टण से दक्षिण की ओर कुछ ही मीलों की दूरी पर मोढेरा नगर के पास एक छोटा सा गाँव है जो आज तक कनसागर (कर्णसागर) कहलाता है। इस गाँव

(१) कर्ण के बाद में, आगे चल कर मुसलमान क्रमानुयायी अहमदशाह हुआ। उसका नगर जहाँ पर आजकल बसा हुआ है वहीं कर्ण का नगर रहा होगा, ऐसा संभव है। कोचरब और आशावल्ली नामों से भी भान होता है कि यह वही स्थान है जहाँ आजकल अहमदाबाद बसा हुआ है। वहा पहले कोई हिन्दू नगर था, इसमें भी कोई सन्देह नहीं है। मुसलमानी कथाओं में शाह अहमद के नाम के साथ आशावल्ली का भी नाम आता है जो कदाचित् राजा कर्ण की प्राचीन कथाओं से सम्बद्ध करने के लिए लिखा गया होगा। आधुनिक हिन्दू और जैन पुस्तकों एवं लेखों में अहमदाबाद को श्रीनगर भी लिखा है। अहमदाबाद के पास जो दादा हरि की बावडी कहलाती है उसको स० १५०० ई० में बेगडा के कुटुम्ब की हरी बाई नाम की स्त्री ने बनवाई थी। उस पर एक लेख में लिखा है कि ' श्रीनगर के ईशान कोण में हरिपुर नामक स्थान मे यह बावडी स्थित है।' श्रीनगर का नाम सिद्धराज के राज्यकाल के वर्णन में भी आया है इसलिए यह निश्चित है कि 'श्रीनगर' किसी नगर का उपमान मात्र है जिसका अर्थ ऋद्धि सिद्धि वाला नगर अथवा शहर होता है।

की भूमि से प्रतीत होता है कि यह किसी पुराने तालाब के पेटे की जमीन है और आसपास के गांवों वाले इसको अब भी दस मील का तालाब कहते हैं। उन लोगों में यह भी दन्तकथा प्रचलित है कि इसको सिद्धराज के पिता, दयावान् कर्ण ने बँधवाया था। यद्यपि अब तो इसका ढाँचा भी नहीं रह गया है फिर भी देखने से साफ मालूम होता है कि यह किसी राजा द्वारा बँधवाया हुआ ठाठ है। खेराल् के दूसरी ओर की पहाड़ियों से बह कर आने वाली रूपेण नदी के 'रन' की ओर जाने वाले प्रवाह को यहाँ रोक लिया गया था और उसका पानी इसी कर्णसागर मे इकट्ठा हो जाता था। इस तालाब की जैसी सुन्दर योजना थी वैसा ही इसका काम भी मजबूती से हुआ था क्योंकि सदियों के बाद सदियाँ बीत गईं, वनराज का वंश विस्मृति में पड़ा गया, मुसलमानों ने इस देश को जीता और क्रमशः उनका भी नाश हो गया और तीर के समान तेज मरहठों का दल बादल भी जोशभरी पश्चिमी तोपों की गड़गड़ाहट से बिखर गया, तो भी रूपेण नदी कर्ण सोलंकी द्वारा बाँधी हुई श्रृङ्खलाओं में आबद्ध रही। परन्तु अन्त में, ये साँकलें टूट गईं और कर्णसागर एक ही क्षण में उपेक्षित उजाड़ सा होकर रह गया। (१)

मोढेरा नगर, एक सपाट मैदान में, ईंटों से बनी हुई इमारतों के खण्डहरों से युक्त एक छोटी सी पहाड़ी की टेकरी पर स्थित है। इसके आस-पास के प्रदेश की दशा, एवं 'रण से आई हुई खारी पानी की नालियों को देखने से यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में यह नगर उस समुद्र

---

(१) यह घटना १८१४ ई० की है। पहले वर्ष तो अकाल पडा और दूसरे वर्ष पानी इतने जोर से बरसा कि थोडी देर के लिए रूपेन नदी का प्रवाह बहुत बढ गया और कर्णसागर की पालें टूट कर बराबर हो गईं।

के किनारे पर ही बसा हुआ था जिसने पूर्व काल में इस भाग को ढक रखा था। जैन-वृत्तान्तों में इसका नाम मोढेरपुर अथवा मोढबक पट्टण लिखा है और इसीलिए यहाँ के रहने वाले ब्राह्मण मोढ़ कहलाते हैं। इस नगर के पास ही हिन्दुओं का एक बहुत ही सुन्दर मन्दिर है जिसके लिए हम कल्पना कर सकते हैं कि वह या तो कर्णेश्वर का हो अथवा कर्णमेरुप्रासाद का, क्योंकि मेरुतुंग के लेखानुसार इन मन्दिरों की खोज या तो कर्णसागर के पास करना चाहिए अथवा आशावल के पास। इस मन्दिर के विषय में आगे चल कर बहुत कुछ लिखा जायगा परन्तु यहाँ पर इतना ही बता देना उपयुक्त होगा कि इसकी बनावट का ढग कर्ण-सागर की शोभा बढ़ाने वाले मन्दिरों में से अब तक बचे हुये दो छोटे छोटे देवालयों से बहुत कुछ मिलता हुआ है। इसकी सर्वाङ्ग-सम्पूर्णता को देख कर प्रतीत होता है कि यह ऐसे समय में बनाया गया था जब कि सभी प्रकार के साधनों की बहुतायत थी और किसी विदेशी आक्रमण का भय नहीं था।

रैवताचल अथवा गिरनार पर नेमिनाथ का एक भव्य मन्दिर है। कहते हैं कि यह भी राजा कर्ण का ही बनवाया हुआ है और इसीलिए 'कर्ण-विहार' कहलाता है।

बहुत दिनों तक कर्णराज के कोई संतान नहीं हुई थी। उसके राज्य-काल के पिछले वर्षों में एक ऐसी रोमाञ्चक घटना हो गई कि जिसके फल-स्वरूप वह एक पुत्र का पिता हुआ और उसके इस पुत्र का भाग्य इतना प्रबल निकला कि उसके द्वारा अणहिलवाड़ा की कीर्ति पराकाष्ठा को पहुँच गई। एक दिन, वह राजसभा में आकर सिंहासन पर बैठा ही था कि चोबदार ने निवेदन किया, 'महाराज! कितने ही देशों विदेशों में भ्रमण करता हुआ एक चित्रकार द्वार पर आया है और दरबार में उप-

स्थित होने की आज्ञा माँगता है।' राजा की आज्ञा से चित्रकार को उपस्थित किया गया। वह राजा का अभिवादन करके बैठ गया और कहने लगा, "महाराज! आपकी कीर्ति देश देशान्तर में फैल गई है और बहुत से मनुष्य आपका ध्यान करते हैं तथा आपके दर्शनों के लिए इच्छुक हैं। मेरी भी बहुत दिनों से यही अभिलाषा थी।' ऐसा कह कर उस चित्रकार ने राजा के सामने बहुत से चित्र प्रस्तुत किये। उनमें से एक चित्र में लक्ष्मी राजा के सामने नृत्य करती हुई दिखाई गई थी और उसके पास ही लक्ष्मी से भी अधिक सुन्दरी एक कुमारी चित्रित थी। राजा ने जब इस चित्र को देखा तो कुमारी के सौन्दर्य की बहुत प्रसंशा की और चित्रकार से उसके कुल आदि के विषय में पूछताछ की। चित्रकार ने उत्तर दिया 'दक्षिण में चन्द्रपुर नाम का एक नगर है, वहाँ का राजा जयकेशी है। यह उसी की पुत्री है और मयणल्लदेवी इसका नाम है। यह इस समय पूर्ण युवती है, कितने ही राजकुमारों ने इससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की परन्तु इसने किसी को भी मान्य नहीं किया। इसके सम्बन्धियों ने इससे कहा कि तेरा फूल सा यौवन तो बीता जा रहा है, तुझे अब विवाह कर लेना चाहिए। इस पर बहुत गुणवान् वर प्राप्त करने के लिए इस कुमारी ने गौरी का आराधन शुरू कर दिया। बौद्धमत को मानने वाले यतिओं ने भी, जो अपने शिर और दाढी मूँछ के बाल मुँडवाते हैं, बहुत से राजकुमारों के चित्र बना कर इसको दिखाए। इसके बाद एक अति कुशल चित्रकार चन्द्रपुर पहुँचा और उसने राजकुमारी को आपका चित्र दिखाया। उस चित्र को देख कर वह मन में बहुत प्रसन्न हुई और उसने अपनी माता से कह दिया कि उसने आपको अपने मन में पसन्द कर लिया है। अब उसकी यह दशा

है कि जब कोई पक्षी उत्तर की ओर से आता हुआ दिखाई पड़ता है तो उससे पूछती है कि क्या वह कर्णराज के यहाँ से आया है ? आप से विवाह हो जाने की इच्छा जल्दी से पूर्ण नहीं हो रही है इसलिये वह न खाती है न पीती है और सूखती चली जा रही है। इसी कारण उसने गुप्त रूप से मुझे आपकी सेवा मे भेजा है और राजा जयकेशी की भी इसमें अनुमति है।" ऐसा कह कर उस चित्रकार ने सोना जवाहरात और अन्य सामान जो जयकेशी ने भेजे थे राजा के सामने भेट किये। राजा ने उन सब को स्वीकृत किये और राजकुमारी से विवाह करने की उसके मन में प्रबल उत्कण्ठा उत्पन्न हो गई।

इसके बाद, शीघ्र ही कर्णराज के साथ विवाह करने के लिये राजकुमारी को अणहिलवाड़ा पट्टण लाया गया। उसका मान बढ़ाने के लिये राजा ने बहुत आदर सत्कार के साथ उसका स्वागत किया तथा उसको पट्टरानी बनाया। मीनल देवी वैसी ही सुन्दरी थी जैसा कि उसका वर्णन किया गया था और जिस गाथा को सुन कर वह उस पर मोहित हो गया था परन्तु फिर भी राजा उससे बहुत प्रसन्न नहीं हुआ। (१) यद्यपि अपना वचन पालने के लिये उसने विवाह की रीति को पूरा कर लिया था, परन्तु उसने एक बार भी आँख भर कर मीनल की ओर नहीं देखा। मीनलदेवी अपने पति के इस व्यवहार से बहुत दुखित हुई। उसने अपनी दासियों सहित चिता मे प्रवेश करके राजा कर्ण के सिर हत्या मँढने का

---

(१) द्व्याश्रय में लिखा है कि विवाह के बहुत वर्षों बाद तक राजा के कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। तब राजाने बहुत से व्रत धारण किए और लक्ष्मी की उपासना की। लक्ष्मी देवि ने प्रसन्न होकर पुत्र होने का वरदान दिया और उससे जयसिंह नामक कुंवर उत्पन्न हुआ।

विचार किया। कर्ण की माता उदयामति ने भी अपनी पुत्रवधू के दुख को असह्य जान कर उसी के साथ आग में जल कर प्राण-त्याग करने की धमकी दी। उसकी प्रजा ने भी राजा की इस क्रूरता और पातकीपन की खुले रूप में निन्दा की और राज्य की शोभा एवं दृढ़ता बढ़ाने के लिये उत्तराधिकारी प्राप्त करने के प्रयत्न से दूर हटने के लिये उसे बुरा भला कहा। इन सब बातों का राजा पर कोई असर न हुआ और वह अपने निश्चय पर दृढ़ रहा और यदि जैसी चाल टामर ने जुडाह के (१) साथ चली थी तथा जिस प्रकार मेरियाना ने उदासीन एञ्जैलो [२] को प्रेम करने के लिये विवश किया था वैसी ही चाल उसके साथ न चली जाती तो शायद वह अपनी प्रजा की आतुरता एव अपनी माता और स्त्री की दृढ़ प्रतिज्ञा की पूरी परीक्षा लेकर ही सन्तोष करता।

नमुञ्जला नाम की एक अत्यन्त सुन्दरी नटी (३) पर राजा आसक्त

(१) ये बाइबल के पात्र हैं।

(२) शेक्सपीयर के नाटक Measure for measure के पात्र।

(३) विल्हण अथवा बिल्हण नाम का कवि कश्मीर का रहने वाला था। उस समय कश्मीर में अनन्तदेव का पुत्र कलशदेव राज्य करता था। बिल्हण मथुरा, वृन्दवन, कान्यकुब्ज, काशी, प्रयाग, अयोध्या, डाहल, धारा नगर, गुर्जरदेश, सोमनाथ पत्तन और सेतुबन्ध तक घूमा था। वह जहां जहा गया वहीं उसकी विद्वत्ता एव कवित्त्व शक्ति के कारण उसे यथेष्ठ सम्मान प्राप्त हुआ। जब वह दक्षिण दिशा के आभूषण-भूत चालुक्य वंश के राजा की राजधानी कल्याण नगर में पहुँचा तो कर्णाटदेश के अधिपति चालुक्य-वंश-भूषण कुन्तलेन्दु त्रैलोक्यमल्ल राजा के कुंवर विक्रमाङ्कदेव ने उसका बहुत सत्कार किया, बहुत सी सम्पत्ति एवं विद्याधिपति की उपाधि भी प्रदान की। यहीं पर कवि ने विक्रमाङ्कदेव चरित नामक महाकाव्य लिखा था। उसी से यह उपर्युक्त वृत्तान्त लिया गया है। बिल्हण चरित नामक एक खण्डकाव्य है जिसमें निम्नलिखित वृत्तान्त है। (चोर अथवा सुन्दर कवि कृत 'सुरत पचाशिका' अथवा चौर पंचाशिका ५० श्लोकों का द्वयर्थक काव्य है। एक अर्थ राजकुमारी के पक्ष में लगता

हो गया था। उससे एकान्त में मिलने का संकेत किया गया। यह बात मुञ्जाल नामक मंत्री को मालूम हो गई और उसने किसी प्रकार उस

है दूसरा दुर्जन के पक्ष में। इसी पंचाशिका को 'बिल्हण पचाशिका' अथवा शशिकला पचाशिका भी कहते हैं और यह बिल्हण की कृति मानी जाती है, इस काव्य पर रामतर्कवागीश की टीका प्रसिद्ध है।)

गुर्जर देश के अणहिल पत्तननामक नगर में वैरीसिंह नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी अवन्ति के भूपाल की पुत्री थी जिसका नाम सुतारा (सुनारा) था। इस रानी से शशिकला नाम की एक कुमारी उत्पन्न हुई जिसको पढाने के लिए इस कवि (बिल्हण) को रखा गया था। कुछ समय बाद इन दोनों में प्रेम हो गया क्योंकि पूर्वजन्म में वे दोनों दम्पति थे। जब राजा को यह बात मालूम हुई तो उसने बिल्हण को शूली देने की आज्ञा दी परन्तु शशिकला ने अपनी माता से सच्चा सच्चा हाल कह दिया और बिल्हण की मृत्यु के बाद स्वयं मर जाने का विचार भी उसके सामने रखने दिया। इस पर रानी ने राजा को समझा बुझा कर शशिकला का विवाह बिल्हण के साथ करवा दिया।

ऊपर लिखा हुआ वृत्तान्त विश्वास के योग्य नहीं है क्योंकि जिस समय बिल्हण काश्मीर छोड कर निकला था उस समय गुजरात में भीमदेव का पुत्र कर्ण राजा (ई० स० १०७२) राज्य करता था। चापोत्कट वंश का बैरीसिंह तो ६२०ई० में ही देवलोक हो चुका था अत: बिल्हण का गुजरात में आना राजा कर्ण के समय में ही सिद्ध होता है।

राजा कर्ण मयणल्लदेवि से प्रसन्न नहीं रहता था और उसने जिस युक्ति से राजा का गर्भ धारण करके सिद्धराज जयसिंह को जन्म दिया, इस वृत्तान्त को लेकर बिल्हण ने 'कर्ण-सुन्दरी' नाम की नाटिका की रचना की जिसकी कथा-वस्तु इस प्रकार है।

एक बार कर्ण चन्द्रचूडेश्वर महादेव का पूजन कर रहा था। उसी समय कुछ अप्सराएं आकाशमार्ग से निकलीं। उनमें से एक अप्सरा शिवलिंग के ऊपर से निकली गई इसलिए उसके पुण्य का क्षय हो गया और वह पृथ्वी पर आ गिरी। परिक्रमण करते हुए राजा की दृष्टि उस सुन्दरी पर पड़ी और वह उसी समय उस पर मोहित हो गया। परन्तु, पूजन समाप्त होने तक उसने अपना मन वश मे रखा। उसी समय रानी की एक परिचारिका भी वहां पर उपस्थित थी जो उस अप्सरा को तुरन्त ही रनवास में ले गई इसलिए पूजन से लौटने पर राजा को वह सुन्दरी दिखाई नहीं

जगह नटी के स्थान पर मीनल देवि को पहुँचाने का प्रबन्ध कर दिया। कर्णराज जाल में फँस गया और रानी उससे सगर्भा हुई। रानी ने उनसे युक्ति द्वारा एक अँगूठी की निशानी इसलिये ले ली थी कि आगे

पडी। रात को वह सुन्दरी राजा को स्वप्न मे दिखाई दी और पूर्ण प्रीति का प्रसंग आते आते उसकी आख खुल गई। इस प्रकार उस अप्सरा का अंकुर राजा के हृदय में बना ही रह गया। अमात्य सम्पत्तिकर को किसी प्रकार यह मालूम हुआ कि यदि वह गन्धर्व-कन्या किसी प्रकार राजा को मिल जावे तो वह चक्रवर्ती हो जावे। इसलिए उसने अपनी स्त्री की सहायता से उस अप्सरा का राजा से योग करवाने का प्रबन्ध कर रखा था। इसने पहले ही से उस सुन्दरी का चित्र राजा के शरदुद्यान में लता-मण्डप में बनवा रखा था, उसी के पास बैठ कर राजा विदूषक के साथ विनोद किया करता था। एक दिन राजा वहीं पर बैठा हुआ उस चित्र को देख कर विनोद कर रहा था। उसी समय रानी आती है और सुन्दरी के विषय की बात चीत सुन लेती है। सुन्दरी का ढँका हुआ चित्र भी उसे दिखाई पड़ जाता है और वह अप्रसन्न होकर चली जाती है।

दूसरे अंक में राजा रूठी हुई रानी को मनाता है और उधर विदूषक से कहता है "जिस स्त्री मे मेरा मन लगा हुआ है वह मेरे अनुकूल है या नहीं इसका तलाश करो।" विदूषक ऐसा ही करता है और अन्तःपुर में छिपाई हुई विरहाकुल स्थिति में पड़ी उस स्त्री का पता चलाता है। यही बात वह आकर राजा कर्ण से कहता है। वह शरदुद्यान में चित्र से अपना मन बहलाव करने जाता है। परन्तु चित्र को रानी ने नष्ट करवा दिया था इसलिए उसको बहुत खेद हुआ। उधर वह स्त्री भी विरहाग्नि मे जल रही थी इसलिऐ सखियाँ उसे कुण्ड पर स्नान कराने के लिए लिवा कर लाती हैं और वह अपनी दशा का वर्णन उनके सामने करती है। अन्त में निराश होकर वह फाँसी लगा कर मरने के लिए तैयार होती है। उसी समय विदूषक राजा को लेकर आ पहुँचता है और उस सुन्दरी को मरने से बचा लेता है। राजा और सुन्दरी का एक दूसरे से बातें करने का प्रसंग आता है परन्तु रानी आ पहुँचती है और रंग में भंग हो जाता है।

चल कर राजा इस बात को अस्वीकार न कर सके। राजा उसको नटी ही समझे हुए था इसलिये अपने वेग के शान्त होने पर उसने बहुत पश्चात्ताप किया और ब्राह्मणों से पूछ कर ताँबे की बनी हुई सात गरम

तीसरे अङ्क में, सुन्दरी राजा के नाम प्रेम-पत्रिका भेजती है परन्तु पत्र को लेजाने वाली दासी वह पत्र रानी को दे देती है। पत्रिका में जिस संकेत-स्थान पर मिलने के लिए लिखा था वहीं पर रानी सुन्दरी का वेष बना कर पहुँच जाती है और वह पत्रिका राजा के पास भिजवा देती है। पत्रिका पढ़ कर राजा संकेत-स्थान पर जाता है और अँधेरे में रानी को ही सुन्दरी समझ कर उसकी प्रशंसा करता है तथा रानी की निन्दा करता है। इस प्रसंग से ऊब कर रानी प्रकट हो जाती है और राजा उससे क्षमा मांगता है परन्तु वह उसका तिरस्कार करके चली जाती है।

चौथे अङ्क में, अमात्य को चिन्ता होती है कि गन्धर्व कन्या के आ जाने पर भी उसका विवाह राजा के साथ नहीं हो रहा है और यह रानी की अनुमति के बिना हो भी नहीं सकता, इसलिए वह उससे कहता है कि, आप तीन बार राजा का अपमान कर चुकी हैं इससे वे नाराज हो गए हैं, अब उन्हें मनाने का उपाय करना चाहिए। बहुत कुछ समझाने पर भी जब रानी नहीं मानती है तो अमात्य उसे एक युक्ति सुझाता है, "आपकी बहन के पुत्र का रूप रंग व आकार प्रकार सुन्दरी जैसा ही है इसलिए उसे स्त्री के कपड़े पहना कर राजा के साथ व्याह करा दो।" राजा की हँसी करने का प्रसंग समझ कर रानी अमात्य से सहमत हो जाती है परन्तु वह उसे भी चकमा देता है और लड़के को तो अन्तःपुर में स्त्री का वेष बनाने के लिए भेज देता है तथा सुन्दरी को बुला कर उसका विवाह राजा से करवा देता है। बाद में जब यह खबर रानी को मिली तो वह बहुत नाराज हुई परन्तु मंत्री ने उसको सब स्थिति समझा कर उसका सन्तोष करा दिया।

विवाह-विधि पूर्ण होते होते रुच्चिक के पास से आकर वीरसिंह गर्जन नगर पर विजय प्राप्त कर लेने के समाचार सुनाता है। इस प्रकार नाटिका की समाप्ति होती है। यह नाटिका महामात्य सम्पत्कर (जो सान्तू के नाम से प्रसिद्ध था) की सूचना के अनुसार अणहिलपुर में आदिनाथ के यात्रा महोत्सव के अवसर पर खेली जाने के लिए रची गई थी।

मूर्तियों से आलिङ्गन करने का भयङ्कर प्रायश्चित्त करने के लिए तैयार हुआ। (१) तब मन्त्री ने जो युक्ति की थी वह सब राजा से कह सुनाई। इस प्रकार मीनलदेवी प्रतापी सिद्धराज जयसिंहदेव की माता हुई। सिद्धराज का जन्म पालनपुर में हुआ था।

सिद्धराज के पिता कर्णराज ने जब विष्णु भगवान् का ध्यान करते हुए इन्द्रपुर (स्वर्ग) को प्रस्थान किया (२) उस समय वह (सिद्धराज)

---

(१) सिद्धराज-प्रबन्ध में मेरुतुंग ने लिखा है–'अथ प्रातस्तद्दुर्विलसितात् प्राणपरित्यागोद्यतो नृपतिः स्मार्त्तैस्तत्प्रायश्चित्तं पप्रच्छ। तैस्तप्तताम्रमयपुत्तलिकालिङ्गनमिति, दूसरा पाठ इस प्रकार है 'उद्यताय नृपतये स्मार्त्तैस्तप्तताम्रमयपुत्तलिकालिंगनमिति प्रायश्चित्तं'। इसमें-सात मूर्तियों का उल्लेख कहीं भी नहीं है, शायद 'स्तप्त' इस शब्द को 'सप्त' समझ कर ऐसा लिख दिया गया है।

(२) कर्ण ने चैत्र सुदि ७ सम्वत् ११२० से पौष बुदी २ सम्वत् ११५० तक २९ वर्ष ८ महीने और २१ दिन राज्य किया। पौष बुदी ३ शनिवार सं० ११५० के दिन श्रवण नक्षत्र वृषलग्न में सिद्धराज का पट्टाभिषेक हुआ था। इसका कारण प्रबन्ध में इस प्रकार लिखा है कि सिद्धराज खेलता हुआ कर्ण की गद्दी पर जा बैठा, वही शुभ समय समझ कर कर्ण ने उसका राज्याभिषेक कर दिया और स्वयं नई नगरी कर्णावती बसा कर वहा चला गया।

कर्ण के समय में ही कच्छ के अधिकार में कीर्तिगढ का राज्य था। वहा का राजा केसर मकवाणा उन्हीं दिनों में सिंध के राजा हमीर सुमरा (द्वितीय) के साथ लडाई में मारा गया था इसलिए उसके कुंअर हरपाल, विजयपाल और सॉताजी गुजरात में चले आए थे। हरपाल राजा कर्ण का मौसेरा भाई था। कर्ण की रानी फूलों देवी को बावरा भूत बहुत सताता था। हरपाल ने लड कर उसको हरा दिया और अपनी आज्ञा में रहने के लिए विवश कर दिया। इस कार्य के बदले में कर्णराज की ओर से हरपाल को बहुत से गाव मिले। उसके वंशज झाला कहलाते हैं और अब तक ध्रांगध्रा, वांकानेर, लींबड़ी, वढवाण, चूड़ा, सायला, लखतर, आदि स्थानों में राज्य करते हैं। हरपाल के भाई विजयपाल के वंशज आजकल महीकांटा, ईलोल आदि गावों में पाए जाते हैं और सांताजी के वंशज कटोसण आदि के मकवाणा तालुकदार हैं।

बच्चा ही था। उसकी बाल्यावस्था में राजसत्ता को हाथ में लेने के लिए कितने ही प्रतिस्पर्द्धियों में आपस में झगड़ा हुआ जान पड़ता है। कर्ण के भाई क्षेमराज के पुत्र देवप्रसाद ने जब राजा की मृत्यु के समाचार सुने तो उसने सरस्वती नदी के किनारे एक चिता बनाई और उसमें अपने आप को जला दिया। उसके त्रिभुवनपाल नामक एक पुत्र था जो सदैव बालक राजकुमार के साथ रहता था और बाद में भी जब सिद्ध-राज समुद्र पर्यन्त पृथ्वी को जीतता हुआ आगे बढ़ा तो वह सदैव ही युद्ध में राजा के आगे रहा। पहले तो कुछ दिनों के लिए राज्य की बागडोर कर्ण की माता उदयामति के भाई मदनपाल के हाथ में रही, परन्तु इस राजवंशी का बरताव बहुत ही त्रासदायक था। मुख्यतः इसने दरबार के प्रसिद्ध और सर्वप्रिय लीला नामक वैद्यको दुःख देकर उससे बहुत सा रुपया ले लिया। (१) इसलिए इसके विरुद्ध एक दल बन गया और सान्तू मन्त्री युक्ति से बालराजा को तो कब्जे में करके घर ले गया और मदनपाल को उसी के सिपाहियों के हाथ मरवा डाला। (२)

अब, पूरी राजसत्ता बाल-राजा की माता मीनलदेवी के हाथ मे आई, सान्तू ,मुञ्जाल और एक ऊदो [३] (उदयन)नामक मन्त्री उसको राज

(१) कहते हैं कि उससे बाईस हजार रुपया दण्ड में लिया गया था।

(२) सिद्धराज-प्रबन्ध में लिखा हैं कि मदनपाल को कर्णपुत्र (सिद्धराज) ने मरवाया था। दूसरी प्रतियों में ऐसा पाठ है कि सान्तू मन्त्री ने मदनपाल को अपने घर बुलवा कर सेवकों से मरवा डाला।

(३) ऊदा अथवा उदयन मारवाड़ का रहने वाला श्रीमाली बनिया था। एक बार वह रात के समय घी बेचने के लिए कहीं जा रहा था। रास्ते में उसने कुछ आदमियो को एक क्यारी से दूसरी क्यारी में पानी देते हुए देखा। पूछने पर उन लोगो ने कहा "हम लोग अमुक मनुष्य के मजदूर हैं।" ऊदा ने पूछा, मेरे मजदूर कहां

काज में सहायता देते थे। ये तीनों ही जाति के बनिये थे और जैनधर्म को मानते थे। वीरमगॉव के पास मीनलसर अथवा मानसर और धोलका के पास मलाव अथवा मीनल तलाव नामक सरोवर मीनलदेवी ने अपने नाम से अपने राज्यकाल में ही बँधवाये थे।

है?' उन्होने अनायास उत्तर दिया 'कर्णावती मे।' ऊदा ने शकुन शोध कर समझ लिया कि इस समय कर्णावती में जाने से सेवक आदि की समृद्धि प्राप्त होगी। इसके बाद वह कुटम्ब सहित कर्णावती चला गया। वहा जाकर वह वायड़ा जाति के लोगों के बनवाये हुए अजितनाथ के मन्दिर में दर्शन करके बैठा। उसी समय श्रावक धर्म का पालन करने वाली लाछी नाम की छीपण उधर से निकली। उसने ऊदा को अपना सहधर्मी मनुष्य समझ कर नमस्कार किया और पूछा 'आप किसके अतिथि हो?' उसने उत्तर दिया 'मैं तो परदेशी आदमी हूँ, जो बुलाएगा उसी का अथिति हो जाऊँगा।' लाछी उसे अपने घर ले गई और एक खाली मकान में उतार दिया। किसी बनिए के यहा तैयार करा कर उसे भोजन भी करा दिया। कुछ दिन बाद जब ऊदा के पास कुछ पैसे जमा हो गए तो वह कच्चा घर तुड़वा कर ईंटों का पक्का घर बनवाने लगा। उस समय उस मकान में ऊदा को एक द्रव्य-भण्डार मिला। ईमानदारी से वह बनिया लाछी को धन देने लगा परन्तु उसने कहा, "यह धन तो तुम्हारे ही भाग्य का है :—

'कृतप्रयत्नानपि नैव कांश्चन स्वयं शयानानपि सेवते परान्।
द्वयेऽपि नास्ति द्वितयेऽपि विद्यते श्रियः प्रचारो न विचारगोचरः॥'

इसी वणिक् ने आगे चल कर ७२ जिनालयवाला श्रीजिनप्रासाद बनवाया। सिद्धराज ने इसको अपना मंत्री बना कर स्तम्भतीर्थ में भेजा था। जब कुमारपाल भटकता हुआ खम्भात पहुँचा तो उदयन ने उसे अपने यहां महमान बना कर रखा था। इसके बदले में जब कुमारपाल राजा हुआ तब उसने उदयन को अपना प्रधान अमात्य बनाया।

(४) खेड़ा जिले में उमरेठ नाम का कसबा है, वहां पर मलाव नामका तालाव है।

मीनलसर के पूर्व की ओर एक गणिका का घर था जो इस तालाब की योजना में अटकता था और जिसके रहने से तालाब की बनावट बेढगी सी हो जाती थी, इसलिए रानी ने बहुत सा धन देकर उस घर को खरीद लेना चाहा। परन्तु, गणिका ने धन लेने से इनकार कर दिया और कहा 'तालाव बँधवाने से रानी की जितनी प्रसिद्धि होगी उतनी ही घर बेचने से इनकार करने पर मेरी हो जावेगी।' मीनलदेवी न्यायप्रिय थी इसलिये उसने बल प्रयोग नहीं किया और घर को अपनी जगह रहने दिया। ऐसा करने से यद्यपि तालाब के आकार में कुछ बेढगापन आ गया परन्तु इससे उस के राज्य की कीर्ति हुई(१) और एक कहावत चल पड़ी कि, यदि न्याय ही देखना है तो मीनलदेवी के पास जाओ। उसका अनुकरण करते हुए उसके मन्त्रियों ने भी बहुमूल्य स्थान बँधवाये जिनके विषय में ग्रन्थकार (मेरुतुंग) लिखता है कि उनमें से एक तो कर्णावती का जैन उपासरा अथवा उदयन–विहार है। श्री मुञ्जालेश्वर तथा सान्तू का स्थान भी शायद उसी नगर में है।

शुक्लतीर्थ से थोड़ी दूर ऊपर की ओर चल कर नर्मदा नदी का एक आरा(२) है जो वाहुलोद कहलाता था (आजकल भालोद कहलाता है)। इस स्थान से आगे सोमेश्वर के मन्दिर की यात्रा को जाने वाले यात्रियों से एक कर वसूल किया जाता था। अपना देश छोड़ने से पहले शिवजी के एक पुजारी ने आग्रह करके मीनलदेवी से इस कर को बंद

---

(१) नौशेरवां ने भी अपना महल बनवाते समय एक बुढिया की झोंपडी को नहीं तुडवाया था, इससे उसकी कीर्ति हुई थी। देखो-गुजराती अनुवाद-कर्ता कृत पादशाही राजनीति पृ. १५३-१५४।

(२) नदी का वह स्थान जहा से मनुष्य व जानवर आसानी से पार उतर सकें।

कर देनेकी शपथ ले ली थी। उसके धर्मगुरु ने उससे कहा कि पूर्व-जन्म में वह ब्राह्मणी थी और देवपट्टण की यात्रा पूरी करने के लिये बाहुलोद तक तो जा पहुँची थी परन्तु माँगा हुआ कर न दे सकने के कारण उसे आगे जाने से रोक दिया गया था। इस परिताप से दुखी होकर उसने अनशन किया और शरीर त्याग दिया। अब, उसका वचन पूरा करने का अवसर आ गया था इसलिए वह सिद्धराज को साथ लेकर बाहुलोद गई। वहाँ यात्रियों को जो अड़चनें पड़ती थीं उन्हें अपनी आँखों देखने का प्रसंग आया। जिन पचों को कर उगाहने का काम सौंपा गया था उनको बुलाया गया और हिसाब दिखाने के लिए कहा गया। यद्यपि इस कर से बहुत बड़ी आय (१) होती थी परन्तु सिद्धराज ने अपनी माता के हाथ में पानी का चुलुक रख कर कहा, 'यह तुम्हारी ओर से मैं एक धर्म कार्य करता हूँ और आज से इस कर को बंद करता हूँ।' अब मीनलदेवी ने यथाविधि सोमेश्वर का पूजन किया और एक हाथी, हाथ में तुला लिए हुए एक तुलापुरुष (२) की स्वर्ण मूर्ति, तथा अन्य बहुमूल्य भेटें चढ़ाई। (३)

---

(१) कहते हैं, इसकी आय ७२ लाख वार्षिक थी।

(२) अथवा प्रचलित चाल (रिवाज) के अनुसार उसने अपने बराबर तोलकर सोना चढाया होगा।

(३) द्व्याश्रय के बारहवें सर्ग में लिखा है कि, एक दिन सिद्धपुर से आकर ब्राह्मणों ने पुकार की कि, सरस्वती के तीर पर तुम्हारी बँधाई हुई सत्रशाला को राक्षसों ने नष्ट कर दिया है। यह सुनकर राजा अपने प्रमाद पर पश्चात्ताप करता हुआ सेना लेकर रवाना हुआ। राक्षसों का स्वामी बर्बर अथवा बर्बरक भी सेना साथ लेकर मुँह से आग की लपटें निकालता हुआ, वृक्षों और पत्थरों की वर्षा करता हुआ सामने आया। उसकी भीषणता को देखकर जयसिंह की सेना पीछे हटने लगी,

जिस समय गुजरात का बालक राजा इन कामों में लगा हुआ था उसी समय मालवा के राजा यशोवर्म्मा ने उसके राज्य के उत्तरी भाग पर चढ़ाई कर दी। सिद्धराज की अनुपस्थिति में सान्तू मन्त्री अणहिल-वाड़ा में राजकाज चलाता था। उस समय उसके पास आक्रमणकारियों का सामना करने के लिए न तो पर्याप्त साधन ही था, न उसमे इतनी शक्ति ही थी कि जो कुछ साधन उसके पास था उसका ही उपयोग शत्रु के विरुद्ध कर सके। इसलिए उसने मालवा के राजा को एक बड़ी धन-

---

परन्तु प्रतिहार ने सैनिकों का बहुत तिरस्कार किया और जब स्वय जयसिंह युद्ध करने के लिए उतरा तो सेना वापस आ गई। बर्बर और सिद्धराज जयसिंह आमने सामने हुए। जयसिंह ने तलवार का वार किया परन्तु तलवार मुड गई। फिर, द्वन्द्वयुद्ध शुरू हुआ। सिद्धराज ने बर्बर को बाँधकर कैद कर लिया, तब उसकी स्त्रियों ने प्रार्थना की 'अब यह दुराचार छोडकर ठीक रास्ते पर चलेगा और जीवनपर्यन्त तुम्हारा दास रहेगा।' इस पर जयसिंह ने उसे छोड दिया और उसी स्थान का रक्षक नियुक्त कर दिया।

तेरहवें सर्ग में लिखा है "सिद्धराज जयसिंह अपनी प्रजा का हाल जानने के लिए रात्रि के समय घूमा करता था। एक दिन घूमता हुआ वह सरस्वती नदी के किनारे जा पहुँचा। वहां पर उसने किसी को इस तरह बोलते हुए सुना "मैं तुम्हे छोडकर नहीं जीऊंगी, यदि तुम कुए में पडोगे तो तुम्हारे साथ ही मैं भी पडूंगी।" ये शब्द सुनकर सिद्धराज उधर गया और वहां पर खड़े हुए नागपुत्र को कष्ट से छुडाने का वचन देकर उसका हाल पूछा। उसने कहा 'मैं वासुकी के प्रीतिपात्र रत्नचूड का पुत्र हूँ और मेरा नाम कनकचूड है। मेरे सहाध्यायी दमन और मुझ मे विवाद होकर यह होड हुई कि, यदि वह इसी हेमन्त में मुझे लवली दिखा दे तो मैं मेरी स्त्री को हार जाऊंगा। उसने ऐसा ही किया और मैं हार गया। इसी बीच में हम दोनों को बुलाकर नागपति ने कहा कि, तुम दोनों में से दमन को हुल्लड के पास जाना पडेगा। हुल्लड, वरुणदेव से वरदान प्राप्त किया हुआ एक नाग है जो कश्मीर में रहता है। वह एक बार पाताल लोक को पानी में डुबोने के लिए तैयार

राशि देकर लौटा दिया। जब नवयुवक राजा अपनी राजधानी में लौटा और यह हाल सुना तो बहुत क्रोधित हुआ और उसी दिन उसने मालवे का नाश करने का निश्चय कर लिया।

जिस समय सिद्धराज ने मालवा पर चढाई करने की तैयारी की थी उसी समय उसने अणहिलवाड़ा में सहस्त्रलिंग तालाब बनवाने का काम भी आरम्भ कर दिया। बहुत सी प्रचलित दन्तकथाओं और वार्ताओं के कारण यह तालाब बहुत प्रसिद्ध है। इस तालाब की खोज करने के लिये पट्टण के पास जो जमीन खोदी गई थी वह अब तक बताई जाती है, परन्तु इसका कोई ईंट या पत्थर अब वहाँ नहीं मिलता। इस तालाब का आकार गोल अथवा बहुत से कोनों वाला होगा जैसे कि अब भी थोड़े बहुत इसी आकार प्रकार के सरोवर गुजरात में पाये जाते हैं। वीरमगाँम के मीनलसर के चारों ओर आज तक बहुत से शिव-

---

हुआ तब नागों ने उससे यह शर्त की थी कि, तुम्हारी पूजा करने के लिए प्रतिवर्ष एक नाग कश्मीर भेजा जायगा और यदि ऐसा न हो तो जैसा तुम्हारे मन में आवे वैसा ही करना। हुल्लड ने इस बात को मंजूर कर लिया। परन्तु, अब कश्मीर जाना बहुत मुश्किल है क्योंकि कश्मीर बर्फीला देश है और जो कोई वहाँ पर जाता है वहीं मर जाता है। परन्तु, इस कुए में जो उप (ओख) है उसको शरीर पर लगाने से बच जाता है और जो लगाता है वह सही सलामत वापस आ जाता है। दमन ने मुझे कहा है कि, यदि मैं कुए में से उप लादूं तो वह मुझे होड से मुक्त कर देगा। अतः मैं उप लेने के लिए आया हूँ परन्तु वज्रमुखी मक्खियों से भरे हुए इस अंधेरे कुए में से वापस जीवित लौटने की आशा नहीं है। यह मेरी प्राणप्रिया मुझे इसमें उतरने नहीं देती और मेरे काम में विघ्न करती है।" यह कथा सुनकर सिद्धराज ने उस छोटे से कुमार को धीरज बँधाया और उप लाकर दे दी। इसके बाद उसने उस कुमार को अपने एकनिष्ठ भक्त बर्बर के साथ पाताल लोक को भेज दिया।

मन्दिर मौजूद हैं। इसी प्रकार इसके चारों ओर भी अनेक मन्दिर रहे होंगे और इसीलिए इसका नाम सहस्त्रलिङ्ग (१) सरोवर पड़ा होगा। इस सरोवर के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहानी अब तक बहुत प्रसिद्ध है और गाई तथा कही जाती है:—

जस्मा ओडण[२] की बात

एक समय, मालवा से एक नगरनिवासी आया और उसने सिद्धराज के सामने जस्मां ओडण के रूप का बखान किया। राजा ने उसे प्राप्त करने के बहुत से प्रयत्न किए परन्तु वे सब निष्फल हुए। अन्त में

---

(१) यह तालाब अकबर के जमाने तक मौजूद था क्योंकि उसका वजीर बैरमखां जब मक्के जा रहा था तो वह गुजरात में आया और पट्टण अणहिलवाड़ा में ठहरा था। उस समय यहां मूसी लोदी का आधिपत्य था। उस समय बैरमखां सहसनक नामक सरोवर को देखने गया था और उसने इसके किनारे पर एक हजार मन्दिर देखे थे। (ब्रिग की फरिस्ता नामक पुस्तक भाग २ पृ० २०३) इन्हीं महाशय (बैरम खां) ने पट्टण में खान सरोवर बनवाया बतलाते हैं। (शायद ब्रिग साहब सहसलिंग को सहसनक पढ गये क्योंकि फारसी में इन दोनों शब्दों के लिखने में थोड़ा ही अन्तर है।)

(२) ओड़ नीच जाति के लोग होते हैं जो तालाबों आदि में मिट्टी खोदने का काम करते हैं। गुजराती अनुवाद में "जस्मा ओडण को रासडो" गुजराती भाषा में दिया हुआ है।

जसमां ओडण को रासड़ो

आज (संवत् १९२५ वि०) से लगभग ५० वर्ष पूर्व पण्डित जेष्ठाराम लड़कियों के मुख से इस रासड़े को गवा कर सुनते थे। उनकी बहिन उस समय लगभग ६० वर्ष की अवस्था में थीं। उनको जितना अंश याद था उसे उद्धृत करते हुए पण्डित जेष्ठाराम लिखते हैं:—

जब राजा ने पट्टण में सहस्त्रलिंग सरोवर खुदवाने का कार्य आरम्भ किया तो उसने अपने बहनोई दूधमल्ल चावड़ा को मालवा से कुछ ओड़ और ओडणें लाने के लिए भेजा। वह उन लोगों की तलाश में निकला और उनके गांवों में पहुँच कर उसने कहा, "सिद्धराज सोलंकी ने एक विशाल सरोवर बनवाना आरम्भ किया है–

"मेरी समझ में ऐसा आता है कि निम्नलिखित रासडे में अर्थ की आनुपूर्वी पर लक्ष्य रखते हुए किसी स्थान पर पूरी तुकों की कमी पडती है। इस रासड़े के रचयिता का उद्देश्य, ऐतिहासिक वृत्तान्त को प्रसिद्ध करने के साथ साथ गायिकाओं को सतीत्व का बोध कराने एवं सदुपदेश देने का है कि पातिव्रत के आगे राज्यवैभव आदि सभी तुच्छ हैं।

"सर्वेनारी भणे राज" इसका अर्थ यह भासित होता है कि सभी लोग कहते हैं कि रूप, रंग, व्रत और धर्म को देखते हुए सच्ची नारी तो जसमा है, ऐसा ही सब कहते हैं और समझते हैं।

रासड़ो

राज बैठो मरीरे समाओ, जाचक आव्या जाचवा; सर्वे नारी भणे राज ॥ १ ॥
राजा रे जशमातुं रूप, ए रे नारि तम घर शोमती; सर्वे नारी० ॥ २ ॥
राजा ए मेल्या[1] चारीगर[2] बे[3] चार, के जाओ रे जसमां ने तेडवा[4]; सर्वे नारी ॥ ३ ॥
गायो[5] चरतल भाई रे गोवाल, के क्यां[6] रे वासो[7] ओड़ो तणो[8]; सर्वे नारी० ॥ ४ ॥
खिरखिरी-आरडी[9] वाड[10], के घूघरियालो[11] झांपलो[12]; सर्वे नारी ॥ ५ ॥
कागल[13] दीधो जशमाने हाथ, के जशमा ए वांचने[14] माथो धूणियो[15]; सर्वे नारी० ॥ ६ ॥
जशमाए दीधो ससराने हाथ, समरे वांचने माथो धूणियो; सर्वे नारी० ॥ ७ ॥

इसमें वह ओडों और ओडणों की सहायता चाहता है।" इस पर जस्मां ने अपनी जाति के लोगों को इकट्ठा किया और वह अपने पति के साथ पट्टण आई। सिद्धराज ने आज्ञा दी कि दूसरे ओड़ों तथा ओडणों को तो नगर के बाहर रखा जावे और जस्मां को महल में लाया जावे, परन्तु, जस्मां ने यह कह कर इन्कार कर दिया कि महलों में तो रानियां सोती हैं ओडण के लिए तो जमीन पर सोना ही अधिक उपयुक्त है।

वहू ! तारू रूप सरूप, एणे रे रूपे लांछन[१६] लागशे; सर्वे नारी० ॥ ८ ॥

ससरा ! तूं हईडे[१७] म हार, नहिं रे टलूं[१८] जशमा ओडणी; सर्वे नारी० ॥ ९ ॥

जशमा ने वारे[१९] छे बाप, म जाजे घीयडी[२०] रे गढ मांडवे; सर्वे नारी० ॥ १० ॥

घेला[२१] बाप घेलडू[२२] शुं बोल, एक वार जाऊं गढ मांडवे; सर्वे नारी० ॥ ११ ॥

हारी[२३] के दलाव्या[२४] जशमाए छऊं, कलशी[२५] दलाव्यो जशमा ए वाजरो; सर्वे नारी ॥ १२ ॥

विजया दशमी केरी रात ओडो ए उचाला[२६] खड्किया; सर्वे नारी० ॥ १३ ॥

सरद पूनम केरी रात ओड़ो ए उचाला पलाणिया; सर्वे नारी० ॥ १४ ॥

ओड़ो ने उतारा देवराओ, के जशमा ने उतारा मेडीए[२७]; सर्वे नारी० ॥ १५ ॥

मेड़ीए तारी राणीने[२८] बेसाड[२९], अमेरे ओडो ने भलां झूंपड़ा, सर्वे नारी० ॥ १६ ॥

ओड़ो ने दांतणिया देवराओ, जशमां ने दातण दाडमी[३०]; सर्वे नारी० ॥ १७ ॥

दातण तारी राणी ने देवराव, अमेरे ओडो ने भली भीसडी[३१]; सर्वे नारी० ॥ १८ ॥

ओडणो ने भोजणिया देवराओ, जसमा ने भोजन लाडवां, सर्वे नारीं० ॥ १९ ॥

जब तालाब खुदना शुरू हुआ तो राजा स्वयं देख रेख करने के लिए आकर बैठता। वह जस्मां पर बहुत आसक्त हो गया था। उसने कहा "जस्मां, मिट्टी के इतने भारी बोझे को मत उठाओ, इससे तुम्हारे शरीर को दुःख पहुँचेगा।' उसने उत्तर दिया कि इसकी उसे परवाह न थी। फिर राजा ने कहा "जस्मां, तुम अपने बच्चे की देखभाल करो, दूसरे ओडों को मिट्टी उठाने दो।' जस्मां ने उत्तर दिया, "मैनें इमली के पेड़ की शाखा पर झूला डाल कर उसको सुला दिया है और आते जाते उसके पलने को हिला देती हूँ।"

३२

खाडवा थारी राणी ने जमाड़, अमेरे ओडो ने भली रावडी; सर्वे नारी० ॥ २० ॥

३३

ओडणो ने मुखवासिया देवराव, जशमा ने मुखवास एलर्ची; सर्वे नारी० ॥ २१ ॥

३४

एलचीं थारी राणी ने खवराव, अमेरे ओडो ने भली मोथर्डी; सर्वे नारी० ॥ २२ ॥
ओडणो ने पोढणिया देवराय, जशमा ने पोढण ढोलियो; सर्वे नारी० ॥ २३ ॥
ढोलिये तारी राणी ने सुवराव,अमेरे ओडो ने भली गोदड़ी; सर्वे नारी० ॥ २४ ॥
जशमा ओडण हालो म्हारे द्वार, मो तो बताऊ म्हारी राणीओ; सर्वे नारी० ॥ २५ ॥

३५

जोउं तारी राणीओं नू रूप, तेवी रे म्हारे घरे भोजाइयो; सर्वे नारी० ॥ २६ ॥
जशमा ओडण अमारे घर हाल, कहो तो बताऊं म्हारा कुंवरो; सर्वे नारी० ॥ २७ ॥

३६

जोउं तारा कुंवरोनूं रूप, तेवा रे म्हारे घेर भात्रीज; सर्वे नारी० ॥ २८ ॥
जशमा ओडण हालो म्हारे द्वार, कहोतो बताऊं म्हारा हाथीओ; सर्वे नारी० ॥ २९ ॥

३७

जोउं तारा हाथीओनूं रूप; तेवीं रे म्हारे घेर भैंसड़ी; सर्वे नारी० ॥ ३० ॥

जब तालाब की खुदाई का काम पूरा हुआ तो राजा ने और सब ओडों की मजदूरी तो चुका दी परन्तु जस्मां से कहा, 'तू अभी यहीं रह, तेरी मजदूरी धीरे धीरे चुका दूंगा।' ऐसा कह कर उसने दूसरे ओडों को जाने की आज्ञा दे दी, परन्तु उनके साथ ही जस्मां भी चुपचाप

---

३८ ३९
केवडूं खणविशो तलाव ? केवडी खणावशो तलावडी; सर्वे नारी० ॥ ३१ ॥
लाखे खणावशूं तलाव, अरध लाखे तलावड़ी; सर्वे नारी० ॥ ३२ ॥
४० ४१
जशमा तारो परणियो देखाड़, कीयो रे जशमा तारो घर धणी, सर्वे नारी० ॥ ३३ ॥
४२ ४३ ४४ ४५
सोनइयो होंस छे हाथ, रूपला वेह ओडो तणा, सर्वे नारी० ॥ ३४ ॥
४६ ४७ ४८
जशमा माटी थोडी री उपाड, तारी रे केड़ लिचक लागशे, सर्वे नारी० ॥ ३५ ॥
४९ ५०
घेला राजा घेलडूं शुं बोल, एह रे अमारो कशब थयो; सर्वे नारी० ॥ ३६ ॥

उपर्युक्त गुजराती गीत के कतिपय शब्दों के हिन्दी रूपान्तर नीचे दिये जाते हैं जिससे गीत की कथा वस्तु समझने में सुगमता रहेगी।

१ मेल्या=भेजे। २ वारीगर=दूत। ३ बे=दो। ४ तेड़वा=बुलाने के लिये। ५ गायोचारतल=गाए चराता हुआ। ६ क्यारे=कहा रे। ७ वासो=निवास। ८ ओडो तणों=ओड़ों का। ९ खिरखिरीआरड़ी=कांटों वाली एक प्रकार की झाड़ी। १० वाड=घेरा। ११ घूघरिआलो=झाड़ का। १२ झांपलो=आड। १३ कागल=कागज, पत्र॥ १४ वांचने=पढ कर। १५ माथो धूणियो=सर धुना। १६ लांछन=कलक। १७ हईड़े=हृदय। १८ टलूं=डिगूं। १९ वारै छै=मना करते हैं। २० धीयडी=पुत्री। २१ घेला=मूर्ख। २२ घेलडूं=पागल जैसी बात। २३ हारी=आहार। २४ दलाव्या=पिसवाया। २५ कलशी=मटकी। मटकी का उपयोग अनाज के परिमाण के लिये अब भी होता है। २६ उचाला=प्रयाण। २७ मेड़ीए=ऊपर के कच

रवाना हो गई। जब राजा को यह बात मालूम हुई तो घोड़े पर सवार होकर उसने उनका पीछा किया और मोढेरा तक पहुँच कर उसने कुछ ओडों को मार भी डाला। इस पर जस्मां ने अपने पेट में कटारी मारली और मरते मरते सिद्धराज को यह शाप दिया 'तेरे तालाब में कभी पानी नहीं ठहरेगा।'

जब राजा लौट कर पट्टण आया तो तालाब को सूखा पाया। उसने अपने मन्त्रियों को बुला कर सलाह की कि तालाव में पानी ठहराने का

में। २८ वेसाड़=वैठा। २९ अमे=हम। ३० दाडमी=दाड़िम का। ३१ भोसडी=साधारण टहनी। ३२ जमाड=जिमाओ। ३३ एलचीं=इलायची। ३४=मोथड़ी=मोथा। एक प्रकार के घास की सुगन्धित जड। ३५ तेवी=वैसी। ३६ भत्रीज=भतीजे, भाई के पुत्र। ३७ भैंसडी=काठियावाड़ की नागोरी भैंस छोटे हाथी जैसी दीखती है। ३८ केवडू=कितने। ३९ खणावशो=खुदवाओगे। ४० परणियो=परिणीत, पति। ४१ घरधणी=गृहस्वामी। ४२ सोनइयो=सोने का। ४३ होंश=हसिया। ४४ रूपला=चांदी का। ४५ वेह=वही, मेरे पति के हाथ में सोने का हँसिया है दूसरे ओड़ों के हाथ में चादी का। ४६ उपाड=उठा। ४७ केड़े=कटि, कमर। ४८ लिछक=लचक। ४९ कमव=धन्धा। ५० थयो=हुआ।

प्रस्तुत गीत में द्रष्टव्य है कि जैसे जैसे राजा ने अपना वैभव और सम्पत्ति बता कर जस्मा को अपनी ओर आकर्षित करना चाहा वैसे ही जस्मा ने राजा के प्रति भ्रातृभाव प्रकट किया। जशमा ने राजा द्वारा प्रस्तावित सुख-साधनों को स्वीकार करते हुए अपने सीमित और सुलभ साधनों में ही सन्तोष व्यक्त किया।

इसी गीत के भावों से मिलता हुआ एक राजस्थानी लोकगीत 'उदली भीलड़ी' का है जिसमें भीलडी ने प्रलोभन से दूर रहते हुए अपने प्राप्त सुख साधनों को राजसी सुख-साधनों में भी श्रेष्ठ बताया है। देखिये श्रीमती रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत द्वारा सम्पादित राजस्थान संस्कृति परिषद, जयपुर से प्रकाशित "राजस्थानी लोकगीत।"

क्या उपाय किया जावे ? प्रधान ने ज्यौतिषियों से पूछ कर कहा 'यदि एक मनुष्य की बलि दे दी जावे तो शाप का प्रभाव दूर हो सकता है।' उस समय ढेढ़ (अन्त्यज) लोग नगर के बाहर रहते थे और उनको सिर पर कच्चा सूत पहनना पडता था तथा कमर में हरिण का सींग लटकाना पडता था जिसे देख कर लोग पहचान जाते कि वे ढेढ़ हैं और उनसे वच कर निकलना चाहिए। राजा की आज्ञा हुई कि मायो नामक ढेढ़ को तालाव के बीच में खड़ा करके उसका शिर काट दिया जावे जिससे तालाव में पानी ठहरने लगे। मायो ने विष्णु भगवान् का भजन करते हुए मृत्यु को अपनाया और इसके बाद सरोवर में पानी ठहरने लगा। मरते समय मायो ने राजा से यह बात मांगी कि उसके बलिदान के बदले मे यह बात स्वीकार की जावे कि भविष्य में ढेढ़ों को शहर के बाहर रहने के लिए तथा भद्दी पोशाक पहनने के लिए वाध्य न किया जावे। राजा ने बात मानली और उस दिन से मायो की स्मृति में ढेढ़ों को उक्त सुविधायें दे दी गई।

इसके बाद, शीघ्र ही जयसिंह (सिद्धराज) ने उज्जैन मालवा पर चढ़ाई करने के लिए गांव गांव से अपनी सेना इकट्ठी की। वह, कूच करता हुआ, रास्ते में आने वाले राजाओं को हराता हुआ और उनकी सेनाओं को अपने साथ लेता हुआ तथा बहुत से ऊंचे नीचे स्थानों को सपाट करा कर सेना का मार्ग सुगम बनाता हुआ, आगे बढा। कितने ही भील अपने चांचलतापूर्ण खेल दिखाते हुए राजा के साथ चले। वे ऐसे मालूम होते थे मानो राम के साथ साथ हनुमान की सेना चल रही हो। अन्त में गुजरात के राजा ने छिप्रा नदी पर पड़ाव डाला। तंबू तन गये, घोड़े कतारों में बांध दिए गए—और

सब चीजे यथास्थान लगादी गईं। इसके पश्चात् जयसिंह के तंबू में उत्सव होने लगा और नर्तकियां नाचने लगीं।

कहते हैं कि सिद्धराज मालवे में बारह वर्ष (१) तक लड़ता रहा

---

(१) ऐसा मालूम होता है कि सिद्धराज ने जूनागढ के राव खंगार को हराने के बाद में यह चढाई की थी क्योंकि सौराष्ट्र विजय के बाद ही उसने अपने नाम (जयसिंह) से सिंह सवत्सर चलाया था। इस संवत् का आरम्भ विक्रम संवत् ११६९–७० (सन् १११३–१४ ई०) में हुआ था और लडाई वहा के राजा यशोवर्मा के साथ हुई बतलाते हैं। परन्तु, यदि देखा जाय तो यह लड़ाई यशोवर्मा के पिता नरवर्मा (जो संवत् ११६० से ११८९ तक था) के समय में ही शुरू हो गई थी और उसके पुत्र (यशोवर्मा) के समय तक चालू रही थी। सिद्धराज यशोवर्मा को कैद करके अणहिलपुर ले आया था। मतलब यह है कि सिद्धराज ने अपनी पिछली अवस्था में मालवा विजय किया था।

"कुमारपाल प्रबन्ध" में लिखा है कि "बारहवें रुद्र" का प्रसिद्ध सिद्धचक्रवर्ती बिरुद धारण करनेवाले सिद्धराज ने दिग्विजय करते समय बारह वर्ष में धारा नगरी पर कब्जा किया। इस नगरी के तीनों कोटों को तोडकर मुख्य द्वार में प्रवेश करते समय किवाडों की लोहे की आगल तोडते हुए उसका यशःपटह नामक हाथी मारा गया। इसके बाद में मालवे का राजा नरवर्मा जीवित पकड़ा गया।"

नरवर्मा का समय ११०४ ई० से ११३३ ई० तक का था, इससे विदित होता है कि सिद्धराज ने पहले नरवर्मा पर चढाई की, फिर उसके पुत्र यशोवर्मा (११३३ ई० से ११४३ ई०) के साथ लडाई चलती रही। सिद्धराज की तलवार बारह वर्ष तक खुली हुई रही, उसको म्यान में धरने के लिए उसने मालवा के राजा के पैरों की थोड़ी सी खाल उतरवाली, तब उसके प्रधान ने कहा, "महाराज, नीतिशास्त्र में लिखा है कि, राजा अवध्य है इसलिए आप इसे छोड़ दीजिये।" इस पर सिद्धराज ने उसको जीवित ही काठ के पिंजरे में कैद रक्खा, चतुर्विंशतिप्रबन्ध के अन्तर्गत मदनवर्म–प्रबन्ध में ऐसा लिखा है। इससे यह भी पता चलता है कि सिद्धराज ने महाराष्ट्र, तिलिंग, कर्णाट, पांड्य, आदि राज्यों को वश में किए थे।

और इससे उसकी बहुत कीर्ति हुई। परन्तु, राजधानी धारा नगरी को

बुन्देलखण्ड में आजकल जहां पर महोबा है वहां चन्देलकुल के राजा हो चुके हैं। इन राजाओं के समय के सम्वत् ११८६ से १२२० तक के लेख मिलते हैं—इस प्रसंग में कुमारपालप्रबन्ध में लिखा है। —"एक बार सिद्धराज की सभा में आकर किसी भाट ने चित्रकूट के पास स्थित महोबा नगर के राजा मदनवर्मा का बखान किया। इस पर उसने (सिद्धराज ने) अपने एक मन्त्री को महोबापत्तन देखने के लिए भेजा। जब मन्त्री ने वापस लौट कर महोबा का बहुत बखान किया तो सेना लेकर सिद्धराज ने प्रस्थान कर दिया। जब मदनवर्मा को सिद्धराज के आ पहुँचने की खबर मिली तो उसने कहा, "क्या वही सिद्धराज आया है जो १२ वर्ष तक धारा नगरी के चारों तरफ घेरा डाले पड़ा रहा था ? उस कबाड़ी राजा से कहो कि मेरे पास तुम्हारे गुजारे लायक भूमि दिखती हो तो युद्ध करो अन्यथा ९६ करोड़ मोहरें लेकर चले जाओ। सिद्धराज ने दण्ड ले लिया परन्तु मदनवर्मा जैसे मौजी राजा से मिलने की इच्छा भी प्रकट की। मदनवर्मा ने कहलवाया कि बहुत थोड़े आदमियों को साथ लेकर वह आ जावे। इसके अनुसार सिद्धराज उससे मिलने गया। मदनवर्मा आसन से उठ कर उसके सामने गया और उसे सुवर्ण के सिंहासन पर बिठाया। फिर कहा, 'हे सिद्धेन्द्र, आप मेरे पाहुने हुए, इसे मेरा बड़ा भाग्य समझिये।' सिद्धराज ने कहा, "तुम ऐसा विवेक तो लगाते हो, परन्तु मुझे कबाड़ी राजा कैसे कहा ?" मदनवर्मा ने कहा, "इस कलिकाल में मनुष्य की आयु बहुत छोटी है, राज्यश्री भी कम रह गई है और बल भी तुच्छ हो गया है—यदि ऐसी दशा में भाग्योदय से राज मिल जावे तो उसका पूर्ण उपभोग करना चाहिए—इसके विरुद्ध देश विदेश में भटकते फिरना कबाड़ी का ही काम है, इसीलिए मैंने आपके लिए ऐसा कहा है।"

सिद्धराज ने कहा "तुम्हारा कहना सत्य है, मैं वास्तव में कबाड़ी हूँ, तुम धन्य हो जो इस प्रकार सुख का उपभोग करते हो।" इसके बाद सिद्धराज वापस लौटा और अपने साथ १२० अंगरक्षक ले आया—ये इतने सुकोमल थे कि इनमें से आधे तो रास्ते ही में मर गए और बाकी सिद्धराज के साथ अणहिलपुर पहुंचे।

लेने के लिए कितने ही आक्रमण निष्फल हुये इसलिए वह हताश

'हिन्दुस्तान के मध्यकालीन सिक्के' नामक पुस्तक में मेजर जनरल ए० कनिंघम ने महोवा तथा जेहाहुती के चन्देल राजाओं के विषय मे टिप्पणी लिखी है जिसमें मदन वर्मा के सिक्के के समय की भी आकृति मिलती है—इस सिक्के मे एक तरफ तो चार हाथों वाली पार्वती की मूर्ति अङ्कित है और दूसरी तरफ ऊपर की ओर "श्रीमान मदन वर्म देव', ये अक्षर अङ्कित हैं।

जेहाहुति अथवा जेजाकभुक्ति, ये चन्देलों का प्रदेश है और इसकी राजधानी महोवा या महोत्सव नाम से प्रसिद्ध है। इस देश के उत्तर में यमुना नदी, दक्षिण में कियान् अथवा केन नदी, पश्चिम में धसान नदी और पूर्व में विंध्याचल पर्वत है। केन अथवा कर्णावती नदी उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है इस लिए यह इस प्रदेश को पूर्वीय तथा पश्चिमीय दोनों भागों में लगभग बराबर ही विभक्त कर देती है। पश्चिमी विभाग में राजधानी का नगर महोवा और खजुराहो आ जाते हैं और पूर्वीय विभाग में कालिंजर तथा अजयगढ के बडे बडे किले आगए हैं। इस प्रदेश का क्षेत्रफल १२००० वर्ग मील से भी अधिक है। खजुराहो में अभी तक भव्य देवालयों के समूह मौजूद हैं जिससे इसकी उस समय की सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है और साथ ही इसकी कन्नोज विजय और महमूद गजनवी से सामना करने की सत्ता का भी पता चलता है। 'महोवाखण्ड' से विदित होता है कि यहा के राजा चन्द्रवंशी है और इनके विषय मे ऐसी दन्तकथा प्रचलित है कि ये बनारस के राजगुरु हेमराज की पुत्री हेमावती से उत्पन्न हुए हैं। परन्तु, शिलालेखों आदि में उन्हें चन्द्रात्रेय (चन्द्रक आत्रेय) वंश के माने हैं और उनसे ऊपर की बात की कहीं भी पुष्टि नहीं हुई है। खजुराहो के लेख मे प्रथम प्राचीन राजा का नाम नन्नुक लिखा है जिसकी छटी पीढी में धगदेव हुआ जिसने ९५३ ई० से ९९९ ई० तक राज्य किया। धगदेव के दिये हुए ताम्रपत्रों मे उसके दादा हर्षदेव का नाम ही सबसे पहले लिखा है। बारहवाँ राजा कीर्तिवर्मदेव हुआ जिसके समय के सिक्के मिलते हैं (और इसके पहले के नहीं मिलते) चेदी का राजा कर्णदेव, जो कलचुरी वंश का था, इसका खंडिया (मातहत) था, परन्तु बाद मे वह इसका महान्

सा हो गया और अपने साथ आये हुए मन्त्री मुंजाल से वापिस

शत्रु बन गया। इस राजा के सिक्के सोने ही के मिलते हैं परन्तु बाद के राजाओं के सोने और तांबे दोनों के मिलते हैं। एकमात्र चौदहवें राजा जयवर्म देव का एक सिक्का चांदी का मिला है। सोने के सिक्के ६० से ६३ ग्रेन तक के हैं। तांबे के सिक्के भी लगभग इसी वजन के हैं। इसके अतिरिक्त १५—१५ ग्रेन के तांबे और सोने के छोटे सिक्के भी मिले हैं। इन दोनों प्रकार के सिक्कों में केवल इतना ही अ[illegible] है कि तांबे के सिक्कों में पार्वती की जगह हनूमान् की मूर्ति अंकित है।

महोबे के चन्देल राजाओं की वंशावली इस प्रकार है।—

नं०	विक्रम संवत्	ईस्वीय सन्	नाम	लेख का संवत्
१	८५७	८००	नन्नुकदेव	
२	८८२	८२५	वाक्पति	
३		८५०	विजय	
४		८७५	राहिल	
५		९००	हर्षदेव	
६		९२५	यशोवर्मदेव	
७	१०१०	९५३	धंगदेव	१०११—१०५५
८	१०५६	९९९	गंडदेव	१०५६
९	१०८२	१०२५	विद्याधरदेव	
१०	१०९७	१०४०	विजयपालदेव	
११	११०७	१०५०	देववर्मदेव	११०७
१२	११२०	१०६३	कीर्तिवर्मदेव	१०५४
१३	११५५	१०९७	हल्लकशन वर्मदेव	
१४	११६७	१११०	जयवर्मदेव	११७३
१५	११७७	११२०	हल्लकशनवर्मदेव (दूसरा)	
१६	११७९	११२२	पृथ्वीवर्मदेव	
१७	११८६	११२९	मदनवर्मदेव	११८६—१२२०
१८	१२२२	११६५	परमर्ददेव	१२२४

लौटने के विषय में सलाह करने लगा। इस मन्त्री को युद्ध में से भागे हुए एक विपक्षी से यह रहस्य ज्ञात हुआ कि यदि किले के दक्षिणी दरवाजे से आक्रमण किया जाये तो सफलता मिल सकती है। इस आक्रमण में सिद्धराज सब से आगे चला। उसके मनभावते हाथी ने [१] जिस पर वह सवार था, जी तोड मेहनत की और लोहे की मजबूत साँकलों से बंधे हुये होने पर भी त्रिपोलिया के दो फाटकों को तोड़ डाला। परन्तु, परिणाम में उस हाथी को अपने प्राण भी देने पड़े। इस प्रकार प्रवेश करके गुजरात का राजा उस किले का स्वामी हो गया। यशोवर्म ने पूर्ण वीरता से सामना किया परन्तु कैद कर लिया गया। सिद्धराज की पूर्ण विजय हुई और उसका झंडा भोज के नगर पर फहराने लगा। इसी प्रकार चार सौ वर्ष बाद उसके मुसलमान क्रमानुयायियों ने मान्डू (१) की बुर्जों पर अपना निशान फहराया था।

१६	१२६८	१२०३	त्रैलोक्यवर्मदेव	१२६६–१२६७
२०	१२६७	१२४०	वीरवर्म (पहला)	१३१२–१३३७
२१	१३३६	१२८२	भोजवर्म	१३४५
२२	१३५७	१३००	वीरवर्म (दूसरा)	१३७२
३०	१५७७	१५२०	किरतसिंह (कीर्ति)	

(१) इस हाथी का नाम यशःपटह था और इसके महावत का नाम शामल था। इस हाथी की यशोधवल अथवा यशलदेव गणपति के रूप मे नलसर ग्राम में स्थापना हुई थी।

(२) मालवा के राजाओं की निम्नलिखित वंशावली मि० एलफिन्स्टन ने एक लेख से भाषान्तर करके बङ्गाल माल्व आफ् दी एशियाटिक सोसाइटी की पुस्तक ५ पृ. ३८० में छपवाई है उसी के आधार पर यह तैयार की गई है—

६ वें राजा भोजदेव का समय १०१० ई० से १०५५ ई० तक था (गुजरात में चालुक्य राजा भीमदेव इसी समय में था।)

घर लौटते समय सिद्धराज ने उन छोटे छोटे किलेदारों पर हमले किये जो यात्रियों को मार्ग में लूट लेते थे। इस प्रकार उन लुटेरों को निकाल कर उसने देश को निर्भय कर दिया।

---

१० वां राजा जयसिंह १०५५ ई० से १०५६ ई० तक इसके समय मे गुजरात में कर लिया गया था।

११ वा ,, उदयादित्य १०५६ ई० ,, १०८१ ई० ,,

१२ वां ,, लद्दमदेव १०८१ ई० ,, ११०४ ई० ,,

१३ वा ,, नरवर्मा संवत् ११६० (सन् ११३४ ई०) में मरा।

(कोलब्रुक द्वारा उज्जैन के लेख का भाषान्तर)

(ट्रॉजेक्शन आव् दी रा. ए.सो. १ पृ २३२।)

१४ वा ,, यशोवर्मा ११३३ ई० से ११४२ ई० तक, इसके समय मे गुजरात के राजाओं ने इस देश का कुछ भाग जीत लिया था।

११४२ ई० ११५५ ई० तक का अंतर बल्लालदेव कार्याधिकारी

११४३ ई० से ११७६ ई० तक गुजरात के राजाओं का साम्राज्य, जिसमें लद्दमीवर्मा, हरिश्चन्द्र और उदयवर्मा।

१५ वां अजयवर्मा "इस राजा की कृपा से विद्वान् और निपुण राजा श्री हरिश्चन्द्र देव को राज्य मिला" इसने अपनी नीलागिरि राजधानी से ब्राह्मणों को दान दिया, सवत् १२३५ (ई० सं. ११७६) (देखो, जर्नल आव् दी बैंगाल एशियाटिक सोसाइटी पुस्तक पृ. ७३६)

१६ वा विन्ध्यवर्मा "इसने गुजरात देश को वश में करने का विचार किया" (११६० ई०-११८० ई०)

१७ वा अमुश्यायन

१८ वां सुभटवर्म अथवा सोहड "इस विजयी राजा ने अपनी सूर्य की अग्निमय किरण जैसी क्रोधमयी शक्ति अपने गर्जित कोप से गुजरात के पाटण नगर (अथवा नगरों) पर चलाई जो अब भी जब कभी गुजरात में आग लगती है तब अग्नि के रूप में दिखाई पड़ती है।"

मालवा पर विजय प्राप्त करके लौटने पर सिद्धराज की सवारी ने

१६ वा अर्जुन राज "यह राजा जब बालक ही था तब उसने खेलहीं में जयसिंह राजा को नष्ट कर दिया था।" फाल्गुन शुक्ला १० संवत् १२६७ (१२१० ई०) को मान्डू के किले में उसका राज्याभिषेक हुआ उस समय उसने अपने कुलगुरु को दक्षिणा में एक गाव दिया था। इसने १२१ वर्ष राज्य किया।

धारानगरी में मालवा के दोनों वंशों की सत्ता का अन्त सन् १११२ में हुआ। अर्जुनदेव निःसन्तान मरा इसलिए २० वा राजा दूसरी शाखा का देवपाल देव हुआ। उसने १२१६ से १२४० ई० तक राज्य किया। प्रथम शाखा से सम्बद्ध होने के कारण इस राजा ने पहले की तरह ही राजकाज चलाया। यह राजा लक्ष्मीवर्मदेव का पौत्र था। इसी के राज्यकाल में हिन्दुस्थान के बादशाह अल्तमश ने १२३५ ई० में उज्जैन और भीलसा पर कब्जा कर लिया था। इसने महाकालेश्वर के मन्दिर को तोड़ दिया था। चन्द्रावती के परमार राजा सोमसिंह देव को हराकर देवपाल देव ने कैद कर लिया था इसलिए उसने गुजरात के राजा से मिलकर उस पर आक्रमण किया।

२१ वा. जयतुंगदेव अथवा जयसिंह दूसरा-यह जयपालदेव का कुंअर था। इसके समय में मुसलमानों का जोर बहुत बढ़ गया था, वे हिन्दुओं को धर्मभ्रष्ट करते थे, इसका राज्य बहुत घट गया था।

२२ वा. जयवर्मन् (दूसरा) यह जयतुंगदेव का अनुज था, इसने १२५६ से १२६१ ई० तक राज्य किया। इसने अपने छोटे से राज्य में से भी भूमिदान दिया जिसके ताम्रपट्ट अब तक मिलते हैं। इसके समय में मुसलमानों का जोर और भी बढ़ गया था और मालवा की पीडा का पार नहीं था।

२३ वां. जयसिंहदेव तीसरा—इसने १२६१ से १२८० ई० तक राज्य किया। इसके समय में वीसल देव गुजरात के राजा ने धारा नगरी पर आक्रमण करके उसे पराजित किया था, इस विषय का एक शिलालेख मिलता है।

२४ वां. भोजदेव (दूसरा) (१२८०-१३१०) हमीर सोलकी ने इस पर हमला करके हराया। यह मुसलमानों से बहुत पीडित हुआ और अन्त में मुसलमान हो गया। गुजरात के राजा सारंगदेव ने भी इस पर चढ़ाई करके इसको हराया था।

२५ वां. जयसिंह देव (चौथा) यह १३१० ई० में गद्दी पर बैठा और इसी के समय में धारानगर में इस वंश का राज्य समाप्त हो गया।

जयोत्सव मनाते हुए अणहिलवाड़ा नगर में प्रवेश किया। उस अवसर पर पराजित राजा यशोवर्म्मा को यशःपताका के रूप में राज-हस्ति पर बिठाया गया था। इस दृश्य को देखने के लिए पुरवासियों की भीड़ लग गई और वहीं द्व्याश्रय के भावी कर्त्ता, जैनधर्म के आचार्य हेमचन्द्र ने, जो दूसरे श्वेताम्बरों मे मुख्य थे, निम्नलिखित प्रकार से गुर्जरराष्ट्र के अधिपति का कीर्तिगान किया इसलिए, राजा का ध्यान सबसे पहले उसी ओर गया।

> भूमि कामगवि स्वगोमयरसैरासिञ्च, रत्नाकर !
> मुक्तास्वस्तिकमातनुध्वमुडुप ! त्वं पूर्णकुम्भी भव।
> धृत्वा कल्पतरोर्दलानि सरलैर्दिग्वारणास्तोरणा-
> न्याधत्त स्वकरैर्विजित्य जगती नन्वेति सिद्धाधिप ॥

अर्थात्—सिद्धराज जगती को जीत कर आ रहा है, इसलिए हे कामधेनु ! तुम अपने गोमयरस से पृथ्वी का सिञ्चन करो, हे समुद्र ! तुम मोतियों का स्वस्तिक पूरो, हे चन्द्र ! तुम पूर्ण तेज से प्रकाश करो तथा हे दिग्पालो ! तुम अपनी सीधी सूंडों से कल्पतरु के पत्तों की मालाओं को धारण करके तोरण बनाओ। (१)

---

(१) द्व्याश्रय के चौदहवें सर्ग मे लिखा है कि, एक बार नगरचर्या में सिद्धराज का योगिनियों से सामना हो गया। वह उनको परास्त करने की उत्कंठा रखता था। योगिनियों ने उससे कहा, 'तू हमारा पीछा करता है इसमे तेरा भला नहीं है, यदि अपना कल्याण चाहता है तो अवन्ति क राजा के पैरों मे जा पड और हमें बलिदान से तृप्त कर।' जयसिंह देव ने कहा, 'तुम्हे करना हो सो करो, मैं तुम्हारे यशोवर्मा को पराजित करूंगा।' इसके बाद वह बड़ी भारी सेना लेकर रवाना हुआ। रास्ते में भील सेना भी आ मिली और अवन्ति अथवा उज्जैन के किले को

बड़े उत्साह से जयोत्सव मनाये ही जा रहे थे कि उन्हीं दिनों राजा को एक सभा में प्रधान बनने के लिए प्रार्थना की गई। सभा में विवाद का विषय यह था कि हेमाचार्य ने व्याकरण का एक स्वतंत्र ग्रन्थ (१) लिखा था जिसके लिये उसके विरोधी कहते थे कि वह ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया था। उसके विरोधियों के इस प्रवाद को बंद करने के लिए ही राजा को उस सभा में प्रधान बनाया गया था। निर्णय आचार्य के पक्ष में दिया गया और राजाज्ञा से हेमाचार्य का ग्रन्थ एक राजकीय हाथी पर रखकर, उस पर श्वेतच्छत्र तनवाया जाकर तथा चँवर आदि अन्य राजचिन्हों सहित राजमहल में सजाने को लाया गया। फिर भी दुर्जन लोगों ने कहा 'इस ग्रन्थ मे राजा के पूर्वजों की कीर्ति का वर्णन नहीं है।' यह सुनकर राजा को बहुत खेद हुआ परन्तु, दूसरे ही दिन प्रातः काल जब उस व्याकरण की आवृत्ति की गई तो हेमाचार्य इस कमी को पूरी करने के लिए तैयार रहा और

तोड़ने की तैयारियां होने लगीं। एक दिन रात के समय सिद्धराज घूमता हुआ सिप्रा (शिप्रा) के किनारे जा पहुँचा। वहां उसने योगिनियों को अपना पुतला बनवा कर, सिद्धराज हार जावे, ऐसा प्रयोग करते हुए देखा। जयसिंह ने योगिनियों से युद्ध किया, कालिका बहुत से रूप बना कर सामने आई परन्तु परास्त हुई। तब उसने प्रसन्न होकर कहा, "तू साक्षात् विष्णु है और यशोवर्म्मा पर विजय प्राप्त करेगा।' रात ही को यह समाचार यशोवर्मा को मिल गया और वह चुपचाप धारा नगरी को भाग गया परन्तु, जयसिंह ने अवन्ति का किला तोड़ दिया और फिर धारा नगरी को जीत कर यशोवर्मा को कैद कर लिया।

(१) जिस प्रकार पाणिनि ने अष्टाध्यायी लिखी है उसी प्रकार हेमाचार्य ने भी लिखी थी परन्तु उसमें राजा का वर्णन नहीं था इसलिए उसने अष्टाध्यायी के उदाहरण रूप से द्व्याश्रय काव्य लिखा जिस पर अभयतिलक गणि की टीका है।

उसके मुख से सोलंकी राजाओं की कीर्ति-विषयक सरस कविता का प्रवाह होने लगा। इसके बाद थोडे ही समय में उसने द्व्याश्रय ग्रंथ की रचना करके इस कमी की भी पूर्ति कर दी।

इसके पश्चात् सिद्धराज का ध्यान जहाँ मूलराज का अग्निसंस्कार हुआ था वहाँ पर बने हुए त्रिपुरुष-प्रासाद व दूसरे राजमन्दिरों की ओर गया और उसने उनका खर्च चलाने के लिए देव-आय को इतना बढ़ा दिया कि जिस प्रकार क्रोसस ने सायरस (१) को उपदेश दिया था उसी प्रकार यशोवर्म्मा को उसे निम्नलिखित उपदेश देने के लिए बाध्य होना पड़ा —

'मालवा ऐसा देश है जहाँ लाखों रुपये की उपज होती है परन्तु, वह गुजरात में इस प्रकार समा गया जिस प्रकार किसी घड़े में समुद्र

---

(१) सायरस ईरान का बादशाह था। उसने क्रोसस को जीत लिया था और वह चिता जला कर उसको जलाने के लिए तैयार हुआ। चिता में डाले जाने के पहले क्रोसस "सोलन ! सोलन !!" कह कर चिल्लाया। तब सायरस ने उससे पूछा 'सोलन कौन है, और तुमने उसको इस समय क्यों याद किया ?' क्रोसस ने उत्तर दिया 'जब मेरे दिन अच्छे थे तब मैंने एक दिन सोलन को बुला कर पूछा कि 'ससार में सबसे अधिक सुखी कौन है ? उसने उत्तर में किसी ऐसे आदमी का नाम बताया जो मर चुका था और जिसको कोई नहीं जानता था। जब मैंने उससे पूछा कि क्या मैं सुखी नहीं हूँ, तो उसने उत्तर दिया कि, जब तक कोई मनुष्य जीवित रहता है तब तक उसके विषय के कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह कोई नहीं जानता कि भविष्य में क्या होने वाला है ? अब, तुम देखते ही हो कि अपने को परम सुखी मानने वाले मुझ को आज चिता में जीवित जल कर मरना पड रहा है। इसलिए मुझे इस समय सोलन के वाक्यों की सत्यता प्रतीत हो रही है और इसीलिए मैंने उसे याद किया है।" यह बात सुन कर सायरस को ज्ञान हुआ और उसने क्रोसस को उसका राज्य लौटा दिया तथा उससे मित्रता का व्यवहार करने लगा।

समा जाय। इसका कारण यह है कि पहले मालवा महाकालदेव [१] को मिला था इसलिए यह देव-सम्पत्ति हो गया था। हमने इसका उपभोग किया और इसीलिए जिस प्रकार सूर्य क्षितिज में अदृश्य हो जाता है उसी प्रकार हमारी महिमा भी अस्त हो गई। इसी तरह तुम्हारे वंशज इस बढ़े हुए धार्मिक खर्चे को चलाने में समर्थ न हो सकेंगे और उन्हें प्रत्येक देवता के खर्चे में कमी करनी पड़ेगी। इसका फल यह होगा कि अन्त में ऐसी आपत्ति आयेगी कि तुम्हारा वंश जड़ से नष्ट हो जावेगा।"

मूलराज ने श्रीस्थलपुर में रुद्रमहाकाल का मन्दिर बनवाया था, वह मन्दिर अब जीर्णोद्धार हुए बिना यों ही टूटी फूटी दशा में पड़ा था। राक्षस लोग (२) ब्राह्मणों को दुःख देने लगे थे इसलिए अब हवन

---

(१) वनराज के पिता जयशेखर के शत्रु राजा भूवड के विषय में पहले लिखा जा चुका है। उज्जयिनी के महाकालेश्वर के मन्दिर में उसके शरीर के अवयवों की खराबी दूर हो गई थी, इसलिए उसने राजधानी सहित समस्त मालवा महाकालदेव को अर्पित कर दिया था और उसका रक्षण करने के लिए परमार राजपूतों को नियुक्त किया था।

(२) द्व्याश्रय में इन राक्षसों के नायक का नाम बर्बर लिखा है। चौथे प्रकरण के अन्त में दी हुई राजावली तथा चालुक्य वंश के दूसरे ताम्रपट्टों से भी प्रमाणित होता है कि इस राक्षस को जीतने के कारण ही सिद्धराज को बर्बरक-जिष्णु (बर्बरक को जीतने वाला) कहा है। साधारणतया ऐसा माना जाता है कि इस बर्बरक की सहायता से ही सिद्धराज इतने पराक्रम के कार्य किया करता था। सोमेश्वर ने 'कीर्तिकौमुदी' में लिखा है कि, इस राजा ने भूतों के राजा बर्बरक को श्मशान में कैद किया था और सिद्धराज के नाम से ख्याति प्राप्त की थी—

श्मशाने यातुधानेन्द्रं बद्ध्वा बर्बरकाभिधम्।
सिद्धराजेति राजेन्दुर्यो जज्ञे राजराजिषु ॥ ३८ ॥

का धुआँ आकाश में उठता हुआ दिखाई नहीं देता था। सिद्धराज ने ब्राह्मणों के शत्रुओं को निकाल बाहर किया और अपने चतुर कारीगरों को देवालय की इमारत को पूर्ण करने के काम में लगा दिया। फिर, ज्योतिषियों को पूछने पर उसके ध्यान मे यह बात आई कि जिस प्रकार

द्व्याश्रय के कोष मे इस वर्बरक के लिए लिखा है कि, वह राक्षसों अथवा म्लेच्छों का अधिपति था और श्रीस्थल (सिद्ध) पुर के ब्राह्मणों को दुःख देता था। जयसिंह ने उसको जीत लिया और उसकी स्त्री पिंगालिका के कहने से उसका उद्धार किया। इसके बाद बर्बर ने जयसिंह को बहुमूल्य भेंटें दीं और दूसरे राजपूतों की तरह उसकी सेवा में रहने लगा।

डाक्टर बूलर का कहना है कि, बर्बरक नाम की एक अनार्य जाति है जिसके लोग कोली, भील और मेरों की तरह उत्तरी गुजरात की तरफ झुण्डों में बसे हुए हैं—काठियावाड के जिस हिस्से में ये लोग बसे हुए हैं वह अब भी बाबरियावाड कहलाता है।

टॉड साहब ने (Western India pp 173–195) लिखा है कि ग्यारहवीं व बारहवीं शताब्दी मे जिन जंगली लोगों ने गुजरात के मैदान पर हमला किया था उनकी लडाई सिद्धराज के साथ हुई थी।

'बर्बर' यह नाम बहुत पुराना है और हिन्दुस्तान से मोराको तक फैला हुआ है। (विल्सन, पु० ७ पृ० १७६) बर्बरस और बार्बेरियन, इन दोनो नामों में उच्चारण मात्र की ही समानता नहीं है वरन् संस्कृत पुस्तकों में बर्बर शब्द दूर बसने वाले विदेशियों अथवा अनार्यों के लिए प्रयुक्त किया गया है-इससे भी यह बात सिद्ध होती है।

अरबी भाषा में जगल को बर कहते हैं, इसलिए बर में रहने वाले लोगों को बरबरी कहा जाता है, ऐसी धारणा हो सकती है। उत्तरी अफ्रीका में बर्बर प्रदेश है, जिसमें मोराको, अलजीरिया, ट्यूनिस और ट्रिपोली आदि आ गए हैं। इन भूमध्यसागर के किनारे के सस्थानों में रहने वाले लोग बार्बेरियन कहलाते हैं। कर्नल टॉड के मतानुसार मोराको का अर्थ (मरुका=मरु=मारु) रेतीला मैदान है और वहाँ के रहने वाले मूर कहलाए। मूर शब्द मौर का अपभ्रंश हो सकता है और इसका अर्थ 'मरु में

विदेशी आक्रमणकारियों का आगमन देवपट्टण के देवालय के लिए हानिप्रद हुआ था उसी प्रकार शायद कभी इस देवालय के लिए भी हो,

---

रहने वाला' हो सकता है। मेड़=मेर=वेर पालने वाले (ब्रूस के मतानुसार) बेर वेर या वर वर कहलाए और यही शब्द आगे चल कर मरवाड हो गया । मौरीतिनियां के नोमेड़िक राजाओं में से मारु थान (अफ्रीका के विशाल जंगल) के राजा पल्ली अथवा पाली मरवाड़ थे। बार्बरी और ईजिप्ट के फ्लीटा अथवा पाली राजा और कौन थे ? लाल समुद्र के दक्षिणी किनारे और अबीसीनिया के रहने वाले बेर वेर लोग वहा से हट कर उत्तर की तरफ चले गए और एटलस । ँत तक बस कर अपना कब्जा कर लिया। इतना ही नहीं इस जाति के लोग सहारा के विशाल जगल तक बढते ही चले गए और जिन जिन स्थानों में वे लोग बसे वे बार्बरी प्रदेश कहलाने लगे। सोलोमन और उमके समकालीन सिशाक के समय से ही पूर्वीय अफ्रीका और हिन्दुस्थान के बीच गाढा व्यवहार चला आता है।

नीचे लिखे श्लोक में बर्बर शब्द आया है और राहु जैसे बीभत्स दिखने वाले लोगों के लिए प्रयुक्त हुआ है :—

राहुर्बर्बरके देशे सजात कामवर्जित. ।
गोत्रे पैठीनसे छ्ये हि सिंहारूढो वरप्रद. ॥

हनुमन्नाटक के निम्नलिखित श्लोक में भी वर्बर शब्द राक्षस के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

आसीदुद्भटभूपतिप्रतिभटप्रोन्माथिविक्रान्तिको
भूप: पक्तिरथो विभावसुकुलप्रख्यातकेतुर्बली ।
उर्वी वर्बरभूमिभारहतये भूरिश्रवाः पुत्रता
यस्याऽऽस्वमथो विधाय महितः पूर्णश्चतुर्धा विभु. ॥

पृथ्वी पर बढे हुए बर्बरों के भारी भार को उतारने के लिए पूजनीय ऐश्वर्य से युक्त और यशस्वी परमात्मा ने राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के रूप में अपने स्वरूप को विभक्त करके जिसके पुत्रत्व को प्राप्त किया, ऐसा योद्धा, अपने प्रतिद्वन्द्वी राजाओं का मथन करने योग्य पराक्रमवाला, सूर्यकुल में प्रख्यात ध्वजरूप बलवान् राजा दशरथ हुआ ।

इसलिए उसने इसमें अश्वपतियों तथा अन्य राजाओं की मूर्तियाँ स्थापित कीं और पास ही में अपनी एक मूर्ति इस ढंग की बनवाई कि मानों वह प्रार्थना कर रहा है। उसके ऊपर ही एक लेख है जिसमें यह विनती की गई है 'कदाचित् इस देश को नष्ट किया जावे तो इस देवालय का नाश नहीं किया जाना चाहिए।' इसके पश्चात् महादेव की विजयिनी पताका रुद्रमाला के शिखर पर चढ़ाई गई और जैन मन्दिरों पर भी ध्वजा चढ़ाने की अनुमति प्रदान कर दी गई, क्योंकि पहले उन लोगों को ऐसी आज्ञा नहीं थी। अपना जीर्णोद्धार करानेवाले राजा के नाम का स्मारक बन कर तभी से श्रीस्थलपुर ने सिद्धपुर नाम धारण किया है। जैन लोग इस विषय में इतनी बात और कहते हैं कि यहीं सिद्धराज ने एक महावीर स्वामी का मन्दिर भी बनवाया था और यहां मेला भी भराया था।

इसके बाद सिद्धराज तुरन्त ही मालवा (१) आया और वर्षा ऋतु

---

(१) सिद्धराज ने मालवा विजय करने के बाद महोबक (बुन्देलखण्डान्तर्गत आधुनिक महोबा) के चन्देल राजा मदनवर्मदेव को जीता। यह मदनवर्मा संवत् ११८६ से १२२० (ई० स० ११३० से ११६४) तक था। चन्देल कुल के सबसे प्रख्यात राजाओं में से यह भी एक था।

"कीर्ति-कौमुदी" में लिखा है कि सिद्धराज धारा नगर (मालवा) से कालंजर गया। महोबक के राजा ने उसको अपना पाहुना करके बुलाया और सत्कार के रूप में उसको दण्ड तथा कर दिया।

"धाराभङ्गप्रसङ्गेन, यस्याऽऽसन्नस्य शङ्कितः।
प्राघूर्णकमिषाद्दण्ड, महोबकपतिर्ददौ ॥३३॥" सर्ग २.

कुमारपाल चरित में लिखा है कि जब सिद्धराज धारा नगर से वापस लौट रहा था तो पाटण के पास ही उसकी छावनी में एक भाट आया और उसके दरबार की

वहीं पर व्यतीत की। वहां उसको यह सुखद समाचार मिला कि सहस्त्रलिंग सरोवर बन कर पूर्ण हो गया है कि और पानी से लबालब भरा हुआ है। बरसात बीतने पर गुजरात लौटते समय वह बीच में श्रीनगर नामक शहर मे ठहरा। वहां नगर के बहुत से मन्दिरों पर ध्वजाएं फहराती देख कर उसने ब्राह्मणों से पूछताछ की और उन्होंने

प्रसंशा मे कहा, "आपके दरबार की शोभा मदनवर्मा के दरबार की शोभा के समान विचित्र है। यह मदनवर्मा महोबक नगर का राजा है और बहुत ही चतुर, उदार और आनन्दी जीव है।" यह बात सुन कर सिद्धराज ने अपने दूतों को महोबा भेजा। छः महीने मे दूतों ने वापस आकर कहा कि भाट ने जो कुछ कहा है वह अक्षरशः सच है। इस पर जयसिंह ने तुरन्त ही महोबा पर कूच कर दिया और नगर से १६ मील के फासले पर डेरा डाला। वहा से उसने अपने प्रधानमन्त्री को मदनवर्मा के पास भेज कर आधीनता स्वीकार करने के लिए कहलाया। उस समय मदनवर्मा अपने आनन्द-प्रमोद में लग रहा था। उसने प्रधान की कोई परवाह ही नहीं की।

मदनवर्मा ने कहा "यह वही राजा है जो धारा नगर के साथ लड़ाई करता हुआ बारह वर्ष तक पडा रहा था। यह कबाडी अथवा जगली राजा है, पैसा चाहता है। इसको जितने पैसे की आवश्यकता हो उतना दे दो।" इसके बाद उसको पैसा दे दिया गया परन्तु, सिद्धराज ने मदनवर्मा से बिना मिले न जाने का मन्तव्य प्रकट किया। मदनवर्मा ने मुलाकात करना स्वीकार किया और सिद्धराज अपने अंगरक्षकों सहित उससे मिलने के लिए राज्यवाटिका मे गया। मदनवर्मा का महल अत्यन्त सुन्दर था, इसके चारों तरफ पहरेदार गश्त लगा रहे थे। सिद्धराज अपने चारों अंगरक्षकों सहित उस महल मे प्रविष्ट हुआ। मदनवर्मा ने उसकी सब प्रकार से पूरी खातिर की। अपने महल, बगीचे और आनन्दगृह आदि की सैर कराई। जब राजा लौटने लगा तो उसको १२० मनुष्य (दास, माणस) भेट किए।

द्व्याश्रय में लिखा है कि सिद्धराज ने मालवा विजय करने के बाद जेदों के देश के राजा सिंघ को पकड़ कर कैद कर लिया था।

अपने धर्म के तथा जैनधर्म के मन्दिरों की अलग अलग गणना कराई। इस पर सिद्धराज ने क्रोधित होकर कहा "मैंने गुर्जर देश मे जैन मन्दिरों पर ध्वजाए लगाने के लिए निषेध कर रखा है, फिर तुम्हारे इस नगर मे मेरी आज्ञा का पालन क्यों नहीं होता ?" इस पर श्रीऋषभदेव के मन्दिर की प्रबन्धकारिणी सभा ने लाकर एक ताम्रपत्र तथा दूसरे पट्टे दिखलाए और इनके आधार पर सिद्ध किया कि उनको ऐसा करने की प्राचीन काल से ही आज्ञा प्राप्त थी। विवाद के अन्त मे ब्राह्मणों ने भी इस बात को मान लिया और उदार नरेश ने जैन मन्दिरों पर प्रतिवर्ष नई ध्वजा चढ़ाने की आज्ञा प्रदान करदी।

सिद्धराज के सेनापतियों में एक जगतदेव (१) (जगदेव) नामक

---

(१) जगदेव के विषय में मेरुतुंग ने लिखा है कि वह त्रिवीर अर्थात् दयावीर, दानवीर तथा युद्धवीर पुरुष था। सिद्धराज ने सत्कार करके उसे अपना सामन्त बना रखा था परन्तु कुन्तल के परमर्दिराजा ने उसे बुला लिया था। यह परमर्दिराजा पटा खेलने का अभ्यास किया करता था और एक रसोइये को नित्य मार डालता था, इसी लिए 'कोप कालानल' कहलाता था। इस राजा की रानी जगदेव को अपना भाई करके मानती थी। कुन्तलेश्वर ने जगदेव को श्रीमाल के राजा पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी, इसलिए वह वहा पर गया। जगदेव ऐसा श्रद्धालु पुरुष था कि यदि वह देव पूजा में लगा होता और उस समय उस पर कोई सकट आ जाता तो भी वह पूजा पूरी किए बिना आसन से नहीं उठता था। श्रीमाल के राजा को यह बात मालूम हुई और उसने इससे लाभ उठाने का विचार करके जगदेव का नाश करने के लिए सेना भेजी। परिस्थिति से लाभ उठा कर उसने जगदेव की सेना का नाश किया परन्तु जब वह पूजा करके उठा तो बचे खुचे ५०० वीरों को लेकर शत्रु-सेना पर टूट पडा और जिस प्रकार सूर्य अन्धकार का नाश करता है, सिंह हाथियों के झुण्ड को नष्ट कर देता है और महावायु अपने प्रबल वेग से मेघमण्डल को तितर बितर कर देता है उसी तरह एक ही क्षण में शत्रु की सेना को उसने नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इसी स्थान पर यह भी लिखा है कि जब सपादलक्ष के राजा ने पृथ्वीराज के साथ

प्रख्यात परमार राजपूत था। वढ़वाण के ग्रन्थकर्ता आचार्य उसके उस समय के अस्तित्व का वर्णन करते हुए लिखा है कि, त्रिवीर अर्थात् बलवान्, बुद्धिमान् और धनवान् था। सिद्धराज की उ पर बहुत प्रीति थी और अन्त में, वह अपने राजा (सिद्धराज) की नौकरी छोड़ कर परमर्दिराज के दरबार मे चला गया था। परमर्दिराज की पट्टरानी का वह राखी बँध भाई था।

अब जो कथा पाठकों के आगे आएगी उसका मुख्य नायक यही शूर-वीर सेनापति होगा। इस कथा का यद्यपि कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है तथापि इसके द्वारा राजपूत जीवन के वीरतापूर्ण चित्रों को देखने का अवसर मिलेगा तथा एक ऐसी अद्भुत कथा का रस प्राप्त होगा जिससे प्रत्येक सच्चा क्षत्रिय-पुत्र आनन्दित होता है।

सग्राम किया था तब परमर्दिराज सपादलक्ष के राजा के पक्ष में था परन्तु वह हार कर लौट गया था। "जिस पृथ्वीराज ने २१ बार म्लेच्छों का नाश किया" इत्यादि सब वृत्तान्त लिखा है परन्तु इससे पृथ्वीराज के समय के विषय में गडबडी पडती है।
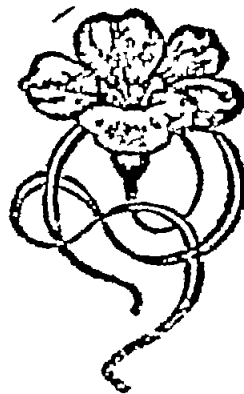
रासमाला

(गुजरात का इतिहास)

प्रथम भाग – उत्तरार्ध

अलेक्जाण्डर किन्लॉक फार्बस

अनुवादक एवं सम्पादक
श्री गोपाल नारायण बहुरा , एम.ए.

प्रथम संस्करण
नवम्बर, सन् 1958 ई.

मंगल प्रकाशन

गोविन्दराजियों का रास्ता,
जयपुर

भूमिका

श्री फार्बस रचित "रासमाला" गुजरात के इतिहास का आकर ग्रन्थ है। श्री गोपाल नारायण जी बहुरा द्वारा उसका यह हिन्दी रूपान्तर स्वागत के योग्य है। मूल अंग्रेजी ग्रन्थ १८५६ ई०में प्रकाशित हुआ था। श्री फार्बस ने ४३ वर्ष की अल्पायु में ही ऐतिहासिक अनुसंधान का महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया। चारणों और भाटों से सम्पर्क स्थापित करके उन्होंने इतिहास सम्बन्धी मौखिक अनुश्रुतियों का संकलन किया। तत्पश्चात् उनका ध्यान ऐतिहासिक काव्यों, रास ग्रन्थों, वार्ताओं और शिलालेखों की छानबीन में लगा और उस समय के रजवाड़ों के पोथीखानों में सुरक्षित बहुमूल्य सामग्री को वे प्रथम बार प्रकाश में लाये। विलक्षण तल्लीनता, परिश्रमशीलता और एकनिष्ठ संकल्प की शक्ति से—जो महापुरुषों के स्वाभाविक गुण हैं—श्री फार्बस ने गुजरात-सौराष्ट्र के प्रादेशिक इतिहास का एक भव्य प्रासाद खड़ा किया। वह स्रोत आज तक श्लाघनीय कहा जा सकता है। जिस जनता को उन्होंने हृदय से प्यार किया था, उस गुजराती लोकमानस ने श्री फार्बस के प्रति सदा अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है और उन्हें गुजरात के भोज के रूप में स्मरण किया है। श्री टॉड ने राजस्थानी इतिहास के लिए, श्रीऑरल स्टाइन ने काश्मीरी इतिहास के लिए और श्री ऐटकिन्सन ने हिमाचल प्रदेश के इतिहास के लिए जैसा मौलिक अनुसंधान कार्य किया, कुछ वैसा ही साहित्यिक साका श्री फार्बस ने गुजरात-सौराष्ट्र के लिए किया।

भारतवर्ष विशाल देश है। उसके इतिहास की सामग्री का देश और काल में अपरिमित विस्तार है। विगत सौ वर्षों में ऐतिहासिक अनुसंधान के अनेक सुफल प्रगट हुए हैं। पुरातत्व–विषयक खोज, संस्कृतसाहित्य के अध्ययन और प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य और अनुश्रुति की छान बीन के फलस्वरूप ऐतिहासिक सामग्री का विशाल सुमेरु पर्वत ही सामने आगया है। राई–राई करके इस पर्वत का भव्य रूप सम्पन्न हुआ है। इतिहास अब राजनीतिक घटनाओं या राजकर्ता छत्रों की नामावली या तिथिक्रम निश्चित करने तक सीमित नहीं रहा। अब इतिहासलेखन के महान् कार्य में सांस्कृतिक जीवन के अनेक पक्ष सम्मिलित होगये हैं जिनके यथार्थ उद्‌घाटन से ही कोई अर्वाचीन ऐतिहासिक अपने विषय के प्रति न्याय कर सकता है। अब भारतीय इतिहास की रचना में दो कार्य महत्वपूर्ण हैं, एक तो राजनीतिक वंशावली या तिथिक्रम का ठाठ खड़ा करना, इसके अतिरिक्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक,प्रशासनिक एवं कला-विषयक जातीय जीवन का समग्र रूप प्रस्तुत करना, जिसके द्वारा इतिहास विजड़ित घटनाओं की ठठरी न होकर जीवित-जाग्रत् रूप में हमारे सामने आ सके और उसमें मानवीय भावना और कर्म के बहुमुखी सूत्र एक दूसरे से गुंथे हुए स्पष्टता से परिलक्षित हो सकें। इस दृष्टि से इतिहास–लेखन ने एक उच्च कला का रूप ले लिया है। मानव जाति जिस आदर्श से अनुप्राणित और प्रेरित होती है, उसका विवेचन ऐतिहासिक का कर्तव्य हो जाता है और यह फल-प्राप्ति सांस्कृतिक इतिहास की सूक्ष्म एवं मार्मिक ऊहापोह से ही सम्भव हो सकती है। भारतीय इतिहास–लेखन के क्षेत्र में सांस्कृतिक इतिहास रचना के लिए अब समय परिपक्व है। 'समन्वय' भारतीय इतिहास और संस्कृति का बीजमंत्र है। अनेक–रूपता या विविधता

हमारे राष्ट्रीय जीवन का तथ्य है। अनेक जन, अनेक धर्म, अनेक भाषा, सब प्रकार की विविधता या नानारूपता प्रकृति के विधान के स्वरूप भारतवर्ष को प्राप्त हुई है, इस सचाई सेहम विमुख नहीं बन सकते। किन्तु भारतीय मानव इस विविधता से त्रस्त या भयग्रस्त नहीं हुआ। उसने अपने हृदय का रस इस नानाभाव में उँडेल दिया और बुद्धि के द्वारा अनेकता में छिपी हुई एकता को ढूंढ लिया। यही भारतीय संस्कृति का निचोड़ है, यही भारतीय मानव की शाश्वती विजय है। भूतों के नानात्व में देवत्व की एकता का दर्शन, यही भारत का सांस्कृतिक सूत्र है। समन्वय, संप्रीति, सहिष्णुता, सांस्कृतिक जीवन का स्वराज्य इस प्रकार की मनोवृत्ति से भारतीय मानव ने विशेष जीवन पद्धति और दृष्टिकोण का विकास किया। यह तथ्य अनेक संस्थाओं के मूल में छिपा हुआ है। समन्वयात्मक जीवन के संवेष्टित सूत्रों की पहिचान और विवेचन से ही भारतीय इतिहास का रसमय पक्ष समझा जा सकता है जिसके निर्माण में युग-युग तक मानवों के सर्वोत्तम कर्म और विचार समर्पित होते रहे। धर्म, साहित्य, दर्शन, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि के क्षेत्रों में भारतीय मानव का जितना पारस्परिक पार्थक्य है, उससे कहीं अधिक वह ऐक्य है जिसके कारण उनके जीवन एक दूसरे के साथ लिपटे और गुंथे हुए रहे हैं। कौन देवता कहां जन्मा और कहां तक फैल गया, इसकी जन्मकुंडली पढने लगें तो धार्मिक आदान-प्रदान की विचित्र कथा सामने आने लगती है। खंडन और निराकरण यहां के लोकमानस को मनःपूत नहीं हुआ; अपनी अपनी रुचि के अनुसार ग्रहण और चुनाव ही यहां सबको रुचा है। समन्वय ही भारतीय इतिहास के समुद्रमन्थन से उत्पन्न कौस्तुभ रत्न है। यही यहां का राष्ट्रिय दृष्टिकोण है।

हमारा अभिप्राय यह है कि भारतीय इतिहासदर्शन के इस मूल सूत्र को एक बार समझ लिया जाय तो देश के सांस्कृतिक इतिहास निर्माण का महत्व, उसकी आवश्यकता और उद्देश्य स्पष्ट हो जाते हैं। आज इसी प्रकार के इतिहास की प्रतीक्षा है जिसमें राष्ट्रिय जीवन की नाड़ी का सच्चा स्पन्दन देखा जा सकेगा। किन्तु इस प्रकार के अखिल भारतीय सांस्कृतिक इतिहास की रचना तो अभी एक आदर्श ही है। उस चोटी तक पहुँचने के लिए कितनी ही सोपान-पंक्तियों का निर्माण आवश्यक है। उनमें मुख्य प्रादेशिक इतिहासों की रचना है। राजनीतिक और सांस्कृतिक, दोनों पक्षों की समस्त उपलब्ध सामग्री के आधार पर बहुसंख्यक प्रादेशिक इतिहासों की योजना भारत के राष्ट्रिय इतिहास का दृढ जगती-पीठ सिद्ध होगा जिसके ऊपर ही इतिहास के अधिदेवता का भव्य प्रासाद खड़ा किया जा सकेगा। काश्मीर से सिंहल और सिंध से प्राग्ज्योतिष तक के भौगोलिक विस्तार में अनेक क्षेत्र या जातीय भूमियों या जनपदों को आधार बनाकर प्रादेशिक इतिहासों की मौलिक सामग्री की व्याख्या, क्रमानुसार व्यवस्था और अर्थापन आवश्यक है। इस कार्य में स्थानीय अनुश्रुति, कलासंबंधी सामग्री, शिलालेख, मुद्रायें, स्थानीय वाङ्मय–इस सामग्री का विशेष उपयोग करना होगा जिसे उसी क्षेत्र में रहकर संकलित करना होगा। श्री फार्बस ने अपनी अन्तःप्रेरणा से इस प्रकार के कार्य की एक कड़ी सफलता पूर्वक सम्पादित की। वही उनका प्रयत्न "रासमाला" के रूप में प्राप्त है।

इतिहास के अनुशीलन से विदित होता है कि उदय और ह्रास का चक्र भ्रमणशील है। 'नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण' कवि का यह महावाक्य मानवीय इतिहास का नियामक है। भारत जैसे महान् देश में कभी कहीं विशेष गौरव का युग आया, कभी कहीं।

गुजरात के विशेष अभ्युदय का युग मैत्रक वंश और चालुक्य वंश के राज्यकाल हैं। इसी वंश के राजाओं के अनुक्रम से 'रासमाला' में गुजरात के इतिहास का ब्यौरा दिया गया है। इस तिथिक्रम के लिये इतने स्रोत उपलब्ध हैं—(१) मेरुतुंगकृत प्रबन्धचिन्तामणि (२) मेरुतुंगकृत विचारश्रेणि या थेरावली, (३)-(४) श्री रामकृष्णगोपाल भण्डारकर को प्राप्त दो वंशावलियां, (५) श्री माधवकृष्ण शर्मा को प्राप्त वंशावली, (६) श्री भाऊ दाजी को प्राप्त वंशावली, (७) अबुल फज़ल कृत आईन अकबरी। इन में परस्पर मतभेद भी है। किन्तु सब पर तुलनात्मक विचार करके श्री अशोककुमार मजूमदार ने अपने अद्यावधिक चालुक्यवंशीय इतिहास में निम्नलिखित कालगणना निश्चित की है।

चालुक्य वंश

१. मूलराज	(पत्नी माधवी)	विक्रम संवत्	९९८-१०५३
२. चामुण्डराज		,, ,,	१०५३-१०६६
३. वल्लभराज	(छह मास राज किया)	,, ,,	१०६६
४. दुर्लभराज		,, ,,	१०६६-१०८०
५. भीमदेव प्रथम	(पत्नी उदयमती)	,, ,,	१०८०-११२२
६. कर्ण सोलंकी	(पत्नी मयणल्लदेवी)	,, ,,	११२२-११५०
७. जयसिंह सिद्धराज		,, ,,	११५०-१२००
८. कुमारपाल	(पत्नी भूपाला देवी)	,, ,,	१२००-१२२९
९. अजयपाल	(पत्नी नायकी देवी)	,, ,,	१२२९-१२३२
१०. मूलराज द्वितीय		,, ,,	१२३२-१२३५
११. भीमदेव द्वितीय (भोलो भीम)	(पत्नी सुमलादेवी)	,, ,,	१२३५-१२९८
१२. त्रिभुवनपाल देव		,, ,,	१२९८-१३०२

बाघेला वंश

त्रिभुवनपाल ने केवल चार वर्ष राज्य किया। उनके बाद पट्ट पर बाघेला वंश की स्थापना हुई जिसकी पांच पीढ़ियों के नाम इस प्रकार हैं :—

१. वीसलदेव	विक्रम संवत्	१३०२-१३१८
२. अर्जुनदेव	,, ,,	१३१८-१३३१
३. राम (केवल कुछ मास राज्य किया)	,, ,,	१३३१
४. सारङ्गदेव	,, ,,	१३३१-१३५३
५. कर्णदेव द्वितीय	,, ;,	१३५३-१३६०

इनमें से अधिकांश राजा साहित्य और संस्कृति के अनन्य उपासक थे। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र कुमारपाल के समकालीन थे। इस युग में कथालेखक, प्रबन्धकार, नाटकाचार्य, कवि आदि की बाढ़ सी आ गई थी। देवालयों मे नाटकों का अभिनय हुआ करता था। वस्तुपाल जैसे धनिक ने स्वयं 'नरनारायणानन्द' नामक नाटक की रचना की। इस युग के लगभग तेतीस नाटक ज्ञात हैं। इन में जयसिंह कृत 'हम्मीरमदमर्दन' और यशःपाल कृत 'मोहराजपराजय' प्रसिद्ध हैं। हेमचन्द्र का द्वयाश्रय महाकाव्य, काव्य और इतिहास की दृष्टि से विशिष्ट रचना है। इसके प्राकृत भाग में कुमारपाल के चरित्र का वर्णन है। हेमचन्द्र कृत सिद्ध हैमशब्दानुशासन आठ अध्यायों में समाप्त महाव्याकरण है जो सिद्धराज जयसिंह का साहित्यिक स्मारक कहा जा सकता है। इस पर आचार्य ने अष्टादश सहस्र श्लोकात्मक बृहद्-

वृत्ति की रचना की। कहते हैं कि इस पर चौरासी सहस्र श्लोकों का एक महान्यास भी रचा गया था। हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि, देशीनाममाला, अनेकार्थसंग्रह नामक कोषग्रन्थ, काव्यानुशासन नामक अलंकारग्रन्थ और छन्दोनुशासन नामक छन्दोग्रन्थ की भी रचना की। तीर्थङ्करों के चरित के रूप में उनका महाग्रन्थ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित है। चौरासी वर्ष की विशिष्ट आयु तक (वि० सं० ११४५–१२२९) हेमचन्द्र साहित्यिक रचना करते रहे। इसी युग में सोमप्रभाचार्य प्रसिद्ध विद्वान् हुए। सुमतिनाथ चरित, सूक्तिमुक्तावली और कुमारपालप्रतिबोध (वि० सं० १२४१) उनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। सोड्ढल कृत उदय सुन्दरी कथा गद्य काव्य की प्रौढ़ रचना है। वस्तुपाल और तेजःपाल नामक दो बन्धु गुजरात के धनकुबेर हुए हैं। उन्होंने अपरिमित धन व्यय करके अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया। उनका काव्य साहित्य पर अत्यधिक अनुराग था और वे विद्वज्जनों और गुणीजनों को मुक्तहस्त होकर दान देते थे। वे बाघेला वंश की दक्षिण भुजा थे। उन्हीं की संरक्षकता में सोमप्रभ ने काव्य रचना की थी। कीर्तिकौमुदी यद्यपि चालुक्य वंश का इतिहास है, किन्तु उसमें सोमेश्वर का मुख्य ध्येय वस्तुपाल की कीर्ति का बखान करना है। सोमेश्वर का दूसरा काव्य सुरथोत्सव है जिसमें सुरथराजा के व्याज से भीमदेव द्वितीय या भोलोभीम के चरित्र का चित्रण हुआ ज्ञात होता है। उसी के राज्यकाल में यह लिखा गया। उदयप्रभसूरि द्वारा रचित सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी वस्तुपाल की शत्रुंजय-यात्रा के अवसर पर उसके पुण्यकार्यों की प्रशस्ति के रूप में लिखी गई। इसी कवि ने वस्तुपाल की प्रशंसा में धर्माभ्युदय या संघाधिपतिचरित्र महाकाव्य की भी रचना की। वस्तुपाल तेजःपाल के गुण-वर्णन के लिये ही अरिसिंह ने सुकृत-

संकीर्तन नामक महाकाव्य सं० १२८५ में लिखा । इसके पहले सर्ग में चापोत्कट या चावड़ों का और दूसरे में चालुक्यों का इतिहास वर्णित है, शेष नौ सर्गों में इन्हीं दोनों भाइयों के सत्कार्यों का वर्णन हुआ है। वस्तुपाल की संरक्षकता में कार्य करने वाले जयसिंहसूरिकृत हम्मीरमद मर्दन नाटक में चालुक्य इतिहास की मूल्यवान् सामग्री है। इसकी रचना वि० सं० १२७६ से १२८६ के बीच में हुई और इसमें मुहम्मद गोरी की पराजय का ऐतिहासिक वर्णन है। वस्तुतः चालुक्य—बाघेलों के स्वर्ण युग में गुजरात में जो विस्तृत साहित्य-रचना हुई उसका पूरा विवरण अभी अनुसंधान का विषय है। उस विविध साहित्य का समुचित प्रकाशन भी किसी संस्था को हाथ में लेना चाहिए। *

चालुक्य युग में मन्दिर-स्थापत्य, चित्रकला, और काष्ठशिल्प की भी अत्यधिक उन्नति हुई। चालुक्य शैली के मन्दिरों का स्थापत्य विशेष अनुसंधान की अपेक्षा रखता है। विशेषतः मध्यकालीन शिल्प-ग्रन्थों के साथ उनका सांगोपांग अध्ययन करने योग्य है। मूलराज प्रथम ने पाटण में 'मूलराजवसहिका' और 'मुंजाल देव स्वामी' के मन्दिर का निर्माण कराया। इस युग में गुजरात के सच्चे नाथ भगवान् सोमेश्वर या सोमनाथ माने जाते थे। राजा और प्रजा दोनों ही सोमनाथ के चरणों में मस्तक नवाते थे। मेरुतुंग के अनुसार मूलराज प्रति सोमवार को सोमनाथ के दर्शन के लिए जाया करते थे। फिर उन्होंने मण्डली में मूलेश्वर महादेव के मन्दिर का निर्माण कराया। मेरुतुंग के अनुसार मूलराज ने अणहिलवाड़ा में 'त्रिपुरुष मन्दिर' की स्थापना की और उसके लिए पूजासामग्री और पुजारी का समुचित प्रबन्ध किया। सम्राट् चामुण्डराज ने 'चन्दनाथ' और 'चाचिणीश्वर'

---

* इसके लिए देखिए चौदहवें प्रकरण के अन्त में विशेष ज्ञातव्य टिप्पणी।

नामक दो मन्दिर बनवाये। भीमदेव प्रथम के दण्डनायक विमल ने आबू पर ऋषभनाथ के लिए वि० १०८८ में 'विमलवसहिका' का निर्माण कराया। वहीं पीछे सं० १२८७ में तेजःपाल ने अपनी पत्नी अनुपमा देवी के पुण्यार्थ नेमीनाथ के भव्य मन्दिर का निर्माण कराया। भीम प्रथम का निजी यशस्वी कार्य सोमनाथ मन्दिर का निर्माण था। अणहिलपाटक से १८ मील दक्षिण में पुष्पवती नदी के बाएं किनारे पर स्थित मोढ़ेरा स्थान का दिव्य सूर्य मन्दिर भी भीमदेव प्रथम के समय में ही किसी काव्यानुभूति-सम्पन्न शिल्पी ने बनाया था। भीम की पटरानी उदयमती ने राजधानी में एक वापी का निर्माण कराया जो 'रानी की बाव' के नाम से प्रसिद्ध है और गुजरात भर में अनुपम बाव है।

भीम के उत्तराधिकारी कर्ण ने आशापल्ली में 'भिल्लदेवी कोछरवा' का और 'कर्णेश्वर शिव' के मन्दिर का निर्माण कराया। राजधानी पाटण में भी कर्ण ने 'कर्णमेरु' नामक देवालय बनवाया। उसके बाद सिद्धराज जयसिंह ने सिद्धपुर में 'रुद्रमहाकाल' नामक अतिविशाल शिव मन्दिर की स्थापना की। इसे ही लोक में 'रुद्रमाल' और तत्पश्चात् 'रुद्रमहालय' की संज्ञा प्राप्त हुई। पूर्वाभिमुखी मन्दिर सरस्वती नदी के तट पर स्थित था और उसके चारों ओर एकादश रुद्रों के ग्यारह मन्दिर और थे। जब सिद्धराज ने मालवा के परमार नरेश यशोवर्मन् पर पूर्ण विजय प्राप्त करके उसे बन्दी बना लिया, तब उज्जयिनी के भगवान महाकाल की अनुकृति पर उन्होंने सिद्धपुर तीर्थ में रुद्रमहाकाल के भव्यदेवप्रासाद की कल्पना को मूर्तरूप दिया। सिद्धराज ने राजधानी अणहिलपाटक की शोभावृद्धि के लिए सहस्रलिंग-सरोवर का निर्माण कराया जो अपने ढंग का अद्वितीय तीर्थ था। इसके

चारों तट मन्दिरों से भरे हुए थे। चालुक्य सम्राट् शैव मतानुयायी थे। कुमारपाल ने हेमचन्द्र के प्रभाव से जैन धर्म के प्रति विशेष भाव प्रकट किया, किन्तु वेरावल लेख में उसे 'माहेश्वर नृपाग्रणी' कहा गया है। द्व्याश्रय काव्य के अनुसार उसने सोमनाथ मन्दिर का प्रतिसंस्कार कराया। हेमचन्द्र का कहना है कि कुमारपाल ने 'केदारनाथ शिव' और 'कुमारपालेश्वर शिव' के मन्दिर बनवाए थे। भीमदेव द्वितीय ने सोमनाथ के शिवमन्दिर में 'सोमेश्वर मण्डप' का निर्माण कराया जिसका विशेष नाम 'मेघध्वनि या मेघनाद' था।

न केवल देव-प्रासाद, वरन् वापी, कूप, सरोवर, मठ, दानशाला, तोरण, प्रपा, मंडप, आपण या हट्ट आदि अनेक प्रकार के सर्व-जनोपयोगी स्थापत्य कार्य चालुक्य सम्राटों के प्रश्रय में लगभग तीन सौ वर्षों तक निर्मित होते रहे जिन्होंने गुजरात की भूमि को सर्वथा सौन्दर्य से मंडित कर दिया। सम्राटों की देखादेखी उनके मंत्री, सामन्त, अधिकारी श्रेष्ठी भी इस सौन्दर्य यज्ञ में भाग लेते रहे। गुजरात के श्रेष्ठी जगड़ंशाह (जगद्देव) की एक सौ बारह दानशालाओं की किंवदन्ती इस दोहे में सुरक्षित है:-

नौकरवाली मणिअड़ा, तेहि अग्गिला च्यारि।
दानसाल जगडूतणी, कीरति कलिहि मंझारि॥

अर्थात् माला (नौकरवाली) के दानों (मणिअड़ा) में चार और जोड़कर जो एक सौ बारह संख्या होती है, उतनी दानशालाओं से जगडूशाह की कीर्ति कलियुग में फैली।

गुजरात के सांस्कृतिक इतिहास की कथा अत्यन्त रोचक है।

'रासमाला' के विद्वान् लेखक ने अपने अन्तिम अध्याय में उसका कुछ संकेत दिया है। किन्तु धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, चित्र, स्थापत्य, सामाजिक जीवन, रहन सहन, व्यापार, उद्योग धन्धे आदि के बहुमुखी क्षेत्रों में मध्यकालीन गुजरात के विलक्षण और प्रभूत सृजनकार्य का लेखा जोखा सांस्कृतिक इतिहास की शतसाहस्त्री संहिता के रूप में ही समा सकता है। इस युग में गुजरात के 'छापल' या छपे वस्त्रों की कीर्ति संसार भर में फैली हुई थी। उनके कुछ नमूने मिश्र देश की पुरानी राजधानी 'फुजनात' में, बालू के नीचे दबे हुए पाए गये हैं। अरब देशों के व्यापारी इस तिज़ारत में भाग ले रहे थे। वहां के भूगोलवेत्ता यात्रियों ने राष्ट्रकूट वल्लभराज को बल्हार कोंकण को कुमकुम तथा गुर्जर प्रतिहार को हरज लिखाया अब उन नामों के बिगड़े हुए रूपों को हम वैसा पढ़ पाते हैं। चालुक्यों के समय में भी भारत और पश्चिमी देशों की वह मैत्री जो मैत्रकों के युग में आरम्भ हुई थी बराबर बनी रही। उन अध्यायों की कथा भी कहने सुनने योग्य है। 'रासमाला' के रूप में इतिहास निर्माण का जो कार्य आरम्भ हुआ था, आशा है भविष्य में उसका उचित विस्तार होता रहेगा।

श्रावणशुक्ला पूर्णिमा
संवत् २०१५ वि०।

वासुदेव शरण अग्रवाल,
काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सम्पादक का वक्तव्य

अलॅक्जॅण्डर किनलॉक् फार्बस रचित रासमाला के प्रथम भाग के हिन्दी अनुवाद का उत्तरार्द्ध प्रकाशित हो रहा है। इस भाग के प्रथम सात प्रकरण तो पूर्वार्द्ध में छप चुके हैं और आठवें से पन्द्रहवें प्रकरण तक का मुद्रण प्रस्तुत पुस्तक में हुआ है। इस प्रथम भाग की समाप्ति के साथ ही गुजरात के इतिहास के स्वर्णयुग की गाथा चापोत्कट वंश के उदय और अस्त एवं बाघेलावंश की विगत के साथ समाप्त हो जाती है।

फार्बस साहब कोरे इतिहासकार नहीं थे। जहां उन्होंने शिला-लेखों, ताम्रपट्टों, राजकीय कागज पत्रों और अन्य आधारों पर ऐतिहासिक तथ्यों की छानबीन की है वहां काव्यों, रासों और अनुश्रुतियों आदि के ललित पक्ष को भी नहीं छोड़ा है। प्रस्तुत पुस्तक में जगदेव परमार और रा' खंगार की वार्ताएं उनकी इसी अभिरुचि का परिचय दे रही हैं। भारतीय महान् आदर्शों के पालन हेतु कष्टों और मृत्यु का सहर्ष आलिङ्गन करने की पवित्र परम्पराएं सहृदय फार्बस के हृदय को रसाप्लुत किए बिना न रहीं और उन्होंने इन सरस वार्ताओं को अपनी कृति का अंग बना लिया। गृह-कलह की विषाग्नि में भस्मसात् होने से बचाने के लिए गृह एवं राज्य का सहर्ष परित्याग करके पौरुष-प्रिय जगदेव ने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम के मार्ग का अनुसरण किया। इसीके परिणाम-स्वरूप उसका तप्तकाञ्चन के समान उद्दीप्त व्यक्तित्व

निखर आया और वह गुजरात तथा राजस्थान में प्रचलित कितनी ही लोककथाओं का नायक बन गया। (१) लङ्केश्वर की प्रणतिभङ्ग में दृढव्रत जनकजा के चरणयुग्म का अनुकरण करते हुए ही वीररमणी सोरठी राणक देवड़ी ने गुर्जरेश्वर जयसिंह के सर्वस्वार्पण-पुरस्सर अनुनय को ठुकरा कर पति का अनुगमन किया। ऐसे ही उदात्त चरित्रों से भारतीय कथानकों की शतसाहस्त्री ओत-प्रोत है।

सिद्धराज जयसिंह, कुमारपाल, भीमदेव द्वितीय और मंत्रिवर वस्तुपाल तेजपाल के व्यक्तित्व और चरित्र भी गुजरात की ऐतिहासिक चरित्रमाला के परम समुज्ज्वल रत्न हैं जिनकी आभा से एतद्देशीय गर्वोन्नत गौरवगिरि सतत भासमान है। विशुद्ध ऐतिहासिक तथ्यों के अतिरिक्त इनसे सम्बद्ध साहित्यिक एवं लोक कृतियों में से चित्ताकर्षक प्रेरक कथाओं को स्वयं फार्बस साहब, गुजराती अनुवादक और इन पंक्तियों के लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में यथावसर उक्त प्रकरणों में समावेशित करने का प्रयत्न किया है कि जिससे पाठक का मन ऊब न जाय।

तेरहवें प्रकरण में मूल लेखक ने भारतीय संस्कृति के जो तत्कालीन चित्र अंकित किए हैं वे सहज रमणीय हैं। दैवदुर्विलास से परास्त और त्रस्त होकर बैठ न रहने वाले साहसैकप्रिय पुनर्निमाणरत भारतीय मानव के प्रति विदेशी लेखक ने जो श्रद्धा-भावना व्यक्त की है वह वास्तव में हमारे लिये गौरव की वस्तु है। इसके अतिरिक्त भी

(१) जगदेव के विषय में ऐतिहासिक जानकारी के लिए देखिए श्री सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट से प्रकाशित राजस्थान भारती के भाग ४ अंक ४में डॉ० दशरथ शर्मा का लेख 'त्रिविधवीर जगद्देव'

भारतीय रहन सहन, वेशभूषा, विश्वास, मान्यता, कला, साहित्य और निर्माण-भावना की सजीव झाँकियां रासमाला के प्रत्येक प्रकरण में देखने को मिलती हैं जिनका अनुशीलन अपने आप में पूर्ण अध्ययनीय विषय है।

जैसा कि पूर्वार्द्ध के पूर्व पृष्ठों में निवेदन कर चुका हूँ, प्रस्तुत अनुवाद ऐतिहासिक अध्ययन के उद्देश्य से नहीं किया गया है। विचार यही रहा कि फार्बस जैसे विद्वान् की इस देश के विषय में जो कुछ धारणाएं बनीं और एतद्देशीय विविध सामग्री का संकलन कर उन्होंने इतिहास लेखन को जो नया मोड़ दिया उस का हिन्दीभाषी जनों में से उन लोगों को परिचय मिल जाय जिनकी मूल ग्रन्थ तक पहुँच न हो। साथ ही विविध उपायों से दिनों दिन समृद्ध हो रहे हिन्दी के भण्डार में इस प्रकार के ग्रन्थ का अनुवाद उपलब्ध न होना भी एक खटकने वाली बात थी। यही समझ कर यह प्रयास किया गया।

प्रस्तुत अनुवाद 'रासमाला' के श्री एच. जी. रॉलिन्सन द्वारा सम्पादित और ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से १९२४ ई० में प्रकाशित संस्करण से किया गया है। तदनन्तर दीवान बहादुर रणछोड़ भाई उदयराम के गुजराती अनुवाद के तृतीय संस्करण (१९२७ ई०) से टिप्पणियाँ उद्धृत की गईं। रॉलिन्सन की प्रायः सभी सम्पादकीय टिप्पणियों का अनुवाद गुजराती अनुवादक ने कर दिया है और आवश्यकतानुसार यथास्थान अपनी अध्ययनपूर्ण टिप्पणियाँ संयोजित कर दी हैं। इसी परम्परा को अपनाते हुए मैंने भी प्रायः सभी गुजराती टिप्पणियों को अपनी भाषा में रूपान्तरित कर दिया है और जहाँ कहीं मेरे कहने योग्य बात हुई वह भी कह डाली है। वास्तव में, रॉलिनसन्

और रणछोड़भाई की टिप्पणियों में तो अभेद सा हो गया है परन्तु पाठकों को मेरे स्वर की भिन्नता स्पष्ट ही विदित हो जायगी। वस्तुपाल और तेजपाल के समय में जिस विपुल साहित्य का निर्माण हुआ उसके विषय में गुजराती अनुवाद के समय तक बहुत सी बातें अज्ञात थीं। अत एव इसकी जानकारी के लिए मैंने चौदहवें प्रकरण के आगे 'विशेष ज्ञातव्य' शीर्षक टिप्पणी संयोजित कर दी है जैसे गुजराती अनुवादक ने 'कुमारपाल विषयक विशेष वृत्तान्त' लिखा है। अनुवाद में भी मैंने स्वतन्त्रता से ही काम लिया है। मूल ग्रन्थ को पढ़ कर जैसा समझ में आया अपनी भाषा में लिख डाला। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक के रूप में मूल रचयिता, गुजराती अनुवादक और इन पंक्तियों के लेखक के प्रयास सम्मिलित हैं। सब मिलाकर इसमें ऐतिहासिक जानकारी, साहित्यिक स्वारस्य, कथा-वार्तादि की रोचकता और पुरातत्त्वविषयक शोध-सामग्री का समावेश अपने आप हो गया है। आशा है भारतीय पुरातत्त्व तथा इतिहास की शोध में संलग्न विद्यार्थी इससे लाभान्वित होंगे।

काशीविश्वविद्यालय के पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष आदरणीय डॉ. वासुदेव शरण जी का मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होंने अपने पिता श्री की अन्तिम सेवा शुश्रूषा में व्यस्त रहते हुये भी इस पुस्तक के लिए सारगर्भित भूमिका लिखने का अनुग्रह किया है। प्रकाशक श्री उमरावसिंह 'मङ्गल' के लिए भी हृदय से मङ्गल-कामना करता हूँ जिन्होंने पूरी लगन और चाव के साथ इस पुस्तक की अनुक्रमणिका तैयार की और उत्साहपूर्वक इसका प्रकाशन सम्पन्न किया।

बहुरा का बाग, जयपुर ;

विजया दशमी, सं. २०१५ विक्रमीय। गोपालनारायण

विषय-सूची

प्रकरण ८

जगदेव परमार की कथा (१)

मालवा देश की धारा नगरी में राजा उदयादित्य(२) राज्य करता था।

(१) जगदेव परमार की कथा राजस्थान और गुजरात में लोक-कथा के रूप में प्रचलित है। जैसा कि प्रायः लोककथाओं में होता ही है, इसके पात्रों और कथावस्तु में कितने ही भेद दृष्टिगत होते हैं। कितने ही अंश स्थान और वक्तादि के भेदों के कारण प्रक्षिप्त एवं उत्क्षिप्त हो गए हैं। इस कथा का राजस्थानी संस्करण स्व० सूर्यकरण पारीक द्वारा सम्पादित 'राजस्थानी वातां' नामक पुस्तक में नवयुग साहित्य मन्दिर, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। इस कथा का सबसे चमत्कारपूर्ण अंश कंकाली भाटण को जगदेव द्वारा शीशदान का प्रसंग है। इसी को लेकर कितनी ही आख्यायिकाओं और लोक-रूपकों की सृष्टि हुई है जो विशेष अवसरों पर सार्वजनिक स्थानों में प्रदर्शित होते एवं खेले जाते थे। राजस्थान में चिड़ावा निवासी नानूलाल रचित 'जगदेव कंकाली का ख्याल' सुप्रचलित है।

(२) उदयादित्य की प्रशस्ति का एक पद्य एपिग्राफिआ इण्डिका (I, p. 236) में इस प्रकार है—

तत्रादित्यप्रतापे गतवति सदनं स्वर्गिणां भर्गभक्ते
व्याप्ता धारेव धात्री रिपुतिमिरभरैर्म्मौलिलोकस्तदाभूत्।
विश्वस्ताङ्गो निहत्योद्भटरिपुति(मि)रं खड्गदण्डांशुजालै-
रन्यो भास्वानिवोद्यद्द्युतिमुदितजनात्मोदयादित्यदेवः ॥

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्यास्त के बाद समस्त पृथ्वी पर अन्धकार छा जाता है

उसके दो रानियां थीं, एक तो बाघेला शाखा की और दूसरी सोलंकी-वंश की। बाघेली के रणधवल (१) नाम का एक राजकुमार था। राजा बाघेली को अधिक चाहता था और सोलंकिनी को कम। सोलंकिनी के भी एक पुत्र था जिसका नाम जगदेव था। जगदेव यद्यपि सांवले रंग का था परन्तु था देखने में सुन्दर। रणधवल बड़ा था, इसलिये युवराज अथवा गद्दी का हकदार था। इन दोनों भाइयों में दो वर्ष की छोट-बड़ाई थी।

जब जगदेव बारह वर्ष का हुआ तो राजा ने मुदार नामक दास से पूछा, 'सोलंकिनी का कोई पुत्र मौजूद है अथवा नहीं?' उसने उत्तर दिया कि उसके जगदेव नामक पुत्र है परन्तु वह दरबार में नहीं आता है। तब राजा ने कहा, 'संसार में पुत्र से बढ़ कर कुछ नहीं है।' यह कह कर उसने जगदेव को दरबार में बुलवाया और वह उपस्थित हुआ।

और प्रातः काल पुनः सूर्योदय होने पर प्रकाश फैल जाता है उसी प्रकार अपने खड्ग दण्डादि रूपी किरण-जाल से शत्रु रूपी अंधेरे का नाश करते हुए लोगों के मन को मुदित करते हुए उदयादित्य रूपी सूर्य का धारा में उदय हुआ।

(१) कर्नल टॉड ने (राजस्थान भाग २ रा पृ० १२०३ में) जैसलमेर की ऐतिहासिक कथाओं में लिखा है कि, "राय धवल पँवार, धार के उदयादित्य का पुत्र (अथवा वंशज) था। उसके तीन पुत्रियां थी जिनमें से एक तो जयपाल (अजयपाल) सोलंकी को, जो सिद्धराज का पुत्र था उसको व्याही थी, दूसरी वीजराज भाटी को और तीसरी चित्तौड़ के राणा को।

टॉड साहब ने ऐसा लिखा तो है परन्तु सिद्धराज के कोई पुत्र नहीं था। अजयपाल, जो कुमारपाल के बाद गद्दी पर बैठा था वह तो, उसका कोई संबंधी था न कि पुत्र अथवा वंशज।

सिद्धराज के समय में जो जगदेव था वह भोज के क्रमानुयायी उदयादित्य

उसकी अँगरखी मोटे कपड़े की थी, शिर पर एक साफ़ा था जो अधिक से अधिक होगा तो एक रुपये का होगा; उसके हाथों और कानों में कोई आभूषण न था, कोरे थे। ऐसी ही दशा में उसने दरबार में आकर राजा को नमस्कार किया। राजा ने उसको छाती से लगा लिया और अपने पास बिठाया। उसकी पोशाक देख कर पूछा, 'पुत्र! तुमने ऐसी पोशाक क्यों पहन रखी है?' जगदेव ने उत्तर दिया, "यह मेरे तप की कमी है। यद्यपि मैंने एक शक्ति-शाली राजा के घर जन्म लिया है परन्तु, महाराज के विशाल मालवा देश में सेर भर आटे का भी ढंग बैठना मेरे लिये कठिन हो रहा है। मेरी माता को आपने एक गांव दे रखा है—उसी से उसका गुजारा होता है और उसका प्रबन्ध भी वही करती है। तनसू गांव, यह नाम तो बड़ा है परन्तु इस गांव से आय बहुत कम होती है। इसी एक मात्र गांव की आय में से खाने पीने, कपड़े लत्ते, दास-दासियों, रथ बैल आदि का खर्च चलाना पड़ता है और मेरी पोशाक का खर्च तो इससे बाहर है।" यह सुनकर राजा ने कोषाध्यक्ष से कहा, 'अब से इसको दो रुपये प्रतिदिन दिया करो।' जगदेव ने कहा, 'महाराज! जो कुछ आपने मुझे प्रदान किया है वह मैंने नतमस्तक होकर स्वीकार कर लिया परन्तु, मेरी प्रतापशालिनी माँजी (१)

का पुत्र था। प्रस्तुत कथा विशुद्ध 'विचित्र कथा' (लोक-कथा) मात्र है। इसके आधार पर किन्हीं ऐतिहासिक तथ्यों पर नहीं जाना चाहिए।

'लक्ष्मणदेव जगदेव का भाई था जिसने अपने पिता के बाद सन् १०८१ से ११०४ ई० तक राज्य किया। दूसरा भाई नरवर्म्मदेव उसके पीछे गद्दी पर बैठा उसका समय ११०४ से ११३३ ई० है।'

(१) यहां बाघेली रानी से तात्पर्य है। मां का आदर सूचक शब्द मांजी है। यह जगदेव का व्यंग्य है।

की मुझ पर बड़ी कृपा है इसलिए मैं इसे न लूंगा, जो कुछ मेरे भाग्य में लिखा होगा सो देखा जावेगा।' फिर राजा ने कोषाध्यक्ष से एक रुपयों की थैली मँगवाई और जगदेव को देकर कहा 'वत्स'! अच्छी पोशाक पहिनो और आराम से रहो।' इसके पश्चात् जगदेव ने विदा मांगी और अपनी माता के पास आकर सब वृत्तान्त सुनाया तथा रुपयों की थैली उसको सौंप दी। बाघेली का एक नौकर यह सब देख सुन रहा था। उसने जाकर सब हाल अपनी मालकिन को कहा। "आज राजा ने जगदेव पर बहुत प्रीतिभाव दिखलाया। उसको दो रुपये प्रतिदिन मिलने की आज्ञा दे दी तथा एक थैली भी प्रदान की है।" रानी ने जब यह बात सुनी तो उसके शिर से पैर तक आग लग गई और उसने एक खवास को भेज कर राजा को बुलवाया। जब राजा आया तो उसने नमस्कार किया। वह गद्दी तकिया लगवा कर बैठ गया तो बाघेली ने लाल-लाल आँखें करके कहा "आज आपने दुहागन (१) के पुत्र को क्या क्या दिया?" राजा ने उत्तर दिया 'सोलंकिनी दुहागन है, परन्तु, उसका पुत्र मेरा पहला प्रीति-पात्र है। रणधवल टीकायत (बड़ा) है इसलिये युवराज है और गद्दी का अधिकारी भी—परन्तु, जगदेव मेरी आंखों को अच्छा लगता है—वह एक अच्छा राजपूत निकलेगा।' बाघेली ने कहा, 'वह काले मुंह का है और उसका भाग्य भी काले अक्षरों से ही लिखा है—आप उसकी इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं? थैली वापस मंगवा लो।' राजा ने उत्तर दिया, "यह तो मैंने प्रसन्न होकर उसे दे दी, अब, भविष्य में देने से पहिले तुम से पूछ लिया करूंगा।"

---

(१) जिस रानी से राजा प्रसन्न रहता है वह सुहागन (सौभाग्यवती) कहलाती है और जिससे अप्रसन्न रहता है वह दुहागन (दुर्भाग्यवती) कहलाती है।

उस समय उदयादित्य मांडूगढ़ (मांडवगढ़) के राजा की नौकरी करता था। उन्हीं दिनों उसका पत्र आया कि वह जल्दी से जल्दी मांडूगढ़ चला आवे। राजा तुरन्त रवाना हो गया और दोनों राजकुमार घर पर रहे। जगदेव के साथी भले थे; उससे जब कोई मिलने आता तो वह उसका आदर सत्कार करता और भली सलाह देता। उसका रहने सहने का ढंग भला और स्वभाव हंसमुख था इसलिए लोग उसकी प्रशंसा करते थे और लोक में उसकी कीर्ति बढ़ने लगी थी। रणधवल तो महल में रहता था और जगदेव अपने घर पर।

इस प्रकार दो वर्ष बीत गये। उन्हीं दिनों गौड़ देश के गौड़ वंशीय राजा गंभीर ने, जगदेव की कीर्ति सुनकर अपने कुल-पुरोहित तथा प्रधान को नारियल देकर धारानगर भेजा। उनके साथ एक हाथी, नौ घोड़े तथा जगदेव को देने के लिये सोने चांदी से मंढ़ा हुआ नारियल था। जब वे लोग धारा नगर पहुंचे तो उनका सत्कार हुआ, रहने के लिए स्थान बताया गया तथा भोजन, घास, दाना आदि का प्रबन्ध कर दिया गया। गौड़ के कुलगुरु ने प्रधान से कहा, "हमारे राजा ने कुमार जगदेव को नारियल देने के लिए कहा है, आप उनको आसन पर बिठाइये, मैं तिलक करके नारियल भेट करूंगा।" इतनी बातचीत होने के बाद सभा विसर्जित हुई। रानी बाघेली बहुत भयभीत सी हुई। उन लोगों ने जाकर उससे कहा, "नारियल तो जगदेव का है।" तब बाघेली ने क्रोध में भरकर कहा, 'हे दैव, तू हमारे इस काले कोढ़िया को नारियल दिलाता है ? नारियल तो मेरे कुंवर के योग्य है–आगन्तुकों से जाकर कहो और समझाओ कि नारियल रणधवल को भेट करें–मैं उन्हें प्रसन्न करूँगी।" गौड कुलगुरु का नाम मतुवी था, उसके पास

जाकर मालवा के कुलगुरु ने कहा, 'जगदेव तो दुहागन का छोकरा है-उसको भरपेट अन्न भी नहीं मिलता। रणधवल युवराज है और इसकी माता पटरानी है इसलिये इसी को नारियल भेट करो।" यह कहकर उसने उस कुलगुरु को एक भारी रकम भी भेट की। इसके बाद युवराज रणधवल को नारियल भेट किया गया, उसके तिलक हुआ और नौबत तथा छत्तीसों(१) वाद्य बजने लगे। इसके बाद, मतुवी ने कहा,

(१) बाजों (वाद्यों) के मुख्य चार प्रकार हैं। (१) ततवाद्य (तंत्रियों से बजने वाले बाजे, जैसे वीणा आदि), (२) सुषिरवाद्य (वंशी आदि बांस और फूंक से बजने वाले बाजे), (३) आनद्ध वाद्य (चमड़े से मँढे हुए मुरज, तबले आदि) और (४) घनवाद्य (कांसी के झांझ. मँजीरे आदि)। सभी प्रकार के बाजे इन चार भेदों के अन्तर्गत आ जाते हैं और समय समय पर इनकी संख्या घटती बढ़ती रही है। संभवतः बीच में छत्तीस तरह के वाद्य चुनकर राजघरानों और सामन्ती ठिकानों में रखने का रिवाज रहा होगा। यह परम्परा अभी पिछले दिनों तक चालू रही है। भूतपूर्व जयपुर रियासत के नक्कारखाने एवं गुणिजन-खाने में निम्नलिखित ३६ बाजे बजाने वाले रहते रहे हैं। इनको उक्त चार प्रकार के वाद्य-भेदों के अनुसार इस तरह विभक्त किया जा सकता है!

ततवाद्य—(१) सारंगी (२) तम्बूरा (३) नसतरंग (४) सरोद (५) इकतारा (६) सितार (७) रावणहत्था (रावणहस्त) (८) रबाब (रबाह) (९) बीन

सुषिरवाद्य—(१०) अलगोजा (११) वंशी (१२) सिंगी (१३) शहनाई (सुनादी अथवा सहनादी) (१४) बाँक्या (तुरही) (१५) भेरी (१६) रणसिंगा

आनद्धवाद्य (१७) तबला (१८) ढोलक (१९) मृदंग (२०) पखावज (२१) डमरू (२२) धौंकारा (बड़ानगाड़ा जैसा) (२३) चंग (२४) मादल (२५) ढोल (२६) नगाड़ा (२७) ढफ (२८) तासा (२९) डिमडिमी

घनवाद्यः—(३०) करताल (३१) मंजीरा (३२) खंजरी (३३) जलतरंग (३४)

'मुझे एक बार जगदेव को दिखला तो दो।' बाघेली के कानों में यह बात डाल कर जगदेव को वहां बुलाया गया। उसे देखकर मतुवी ने गर्दन हिलाई और कहा, 'देखने में कितना सुन्दर, चतुर और कान्तिमान् है यह राजकुमार—परन्तु, जो कुछ भाग्य में लिखा होता है वही होता है।'' इसके बाद उसने विदा मांगी और सेला शिरोपाव आदि प्राप्त करके अपने देश को प्रस्थान किया। देश पहुँचने पर मतुवी ने राजा को पूरा वृत्तान्त यों कह सुनाया 'हमने नारियल रणधवल को भेट किया है। रणधवल ही गद्दी का हकदार है, परन्तु, सुन्दर और कान्तिमान् तो जगदेव ही है। उसकी पोशाक अच्छी नहीं है तथापि वह सूर्य की किरणों के समान देदीप्यमान है। जो विधाता का लेख है उसको मिटाने में कोई समर्थ नहीं है।'' राजा ने कहा, 'तुमने बहुत भारी भूल की-परन्तु, अब दिया हुआ नारियल बिना दिया हुआ नहीं हो सकता और न मेरे दूसरी कन्या ही है।'' यह कह कर उसने ज्यौतिषी को बुलाया और लग्न का दिन ठहरा कर कुंकुम-पत्री लिखवाई तथा धार को रवाना कर दी। एक दूसरा पत्र उसने धार के प्रधान के नाम भेजा जिसमें लिखा था कि राजकुमार जगदेव को अपने साथ अवश्य लाइये, यदि नहीं लावेंगे तो काम नहीं बनेगा। पत्र लेकर दूत धार पहुँचा और प्रधान को पत्र सौंप दिया। प्रधान ने पत्र पढकर रानी के पास पहुँचा दिया। उसने कहा 'कालिया को भी ले जाओ।' जान (बरात–वरयात्रा) की तैयारियां हुई और जगदेव को भी कहलाया गया कि 'कुँवर! बरात में चलने को तैयार हो जाओ।' जगदेव ने कहा, 'बरात के लायक गहनों और कपडों

---

(३५) झालर और (३४) चिपली (अंगूठे और अनामिका में अंगूठी जैसे पहनकर बजाने की)

के बिना मैं कैसे तैयार रहूँ ? फिर, मैं पैदल भी नहीं चल सकता।" प्रधान ने जाकर यह बात बाघेली से कही। उसने भण्डार में से कुछ सुन्दर कपड़े, कड़े, मोतियों की माला, बलेवड़ा (१) और एक सोने की जंजीर भेजी और कहा कि अश्वशाला में से एक अच्छा सा घोड़ा भी ले जाओ और इतने नौकरों में से कुछ को उसके साथ भी भेज दो।'

लगभग बीस हजार मनुष्यों की बरात रवाना हुई। मार्ग में, टूंक टोड़ा (२) नामक स्थान पर डेरा किया। वहां उस समय टांक चावड़ा वंश का राज नामक राजा राज्य करता था। राजा स्वयं आंखों से अंधा था परन्तु बुद्धि की आंख से सब कुछ देख सकता था। अतः उन दिनों उसका पुत्र बीरज ही राज-काज चलाता था। राजा राज के बीरमती नाम की एक कन्या थी जो उस समय विवाह के योग्य हो गई थी और उसका पिता किसी योग्य वर की तलाश ही में था। जब बरात वहां पहुंची तो राजा ने कहा, 'इस बरात में जगदेव है, वह बड़ा अच्छा राजपूत है और राज्य करने के योग्य है, इसी के साथ इस राजकुमारी के मंगल फेरे फिरवा दो।' बीरज ने अपने पिता का कहना मान लिया और वह जान (बरात) का आदर सत्कार करने के लिए डेरे में गया। वहां पहुँच कर उसने कहा, "मैं जो कुछ आप लोगों की आवभगत करूं उसको स्वीकार करके सुबह आगे प्रस्थान करें।" बहुत आग्रह करके उसने अपना निमन्त्रण स्वीकार कराया और गढ़ में लौट कर ज्योतिषियों को बुलवाया। उनकी सलाह से यह स्थिर हुआ कि 'दूसरे

---

(१) गले में पहनने का पटिया जैसा एक आभूषण होता है। (२) टूंक, आधुनिक टोंक; टोड़ा जयपुर राज्य में एक प्रसिद्ध स्थान है यह जयपुर से लगभग ८३ मील दक्षिण में है।

दिन सायंकाल गोधूलि का लग्न श्रेष्ठ है।' इसके बाद उसने और जो कुछ तैयारियां करनी थीं, सब करलीं। दूसरे दिन कुमारी वीरमती को पीठी (१) से स्नान कराया गया और गणेशजी की स्थापना हुई। सायंकाल तीसरे पहर सब लोग जीमने के लिए आये। सबने साथ साथ भोजन किया। वे लोग जीमन समाप्त करके हाथ धो ही चुके थे कि मुहूर्त की वेला आ गई और राजकुमार वीरज ने कुलगुरु तथा प्रधान से कहा, 'मैं अपनी बहन राजकुमार जगदेव को देता हूँ।' यह कह कर उसने नारियल भेट किया और चार घोड़े दिये। फिर कहा 'मालाओं से सजे हुये तोरण वाले दरवाजे में होकर चौंरी (विवाहमण्डप) पर पधारिये।' धार के प्रधान ने सोचा कि बहुत शुभ काम हुआ। तोरण को पार करके वर मंडप में गया और लग्न होते होते प्रातःकाल हो गया। वर को एक हाथी, पचीस घोड़े और नौ दासियां भेट की गईं। इसके पश्चात् बरातियों ने आज्ञा मांगी क्योंकि उन्हें मुहूर्त पर गौड़ देश में पहुँचना था। उन्होंने चावड़ी वीरमती को वहीं छोड़ दिया और कहा "लौटते समय इनको लेते जावेंगे।" अब बरात आगे चली और गौड़ देश की सीमा में जा पहुँची। जगदेव के विवाह की बात प्रसिद्ध हो चुकी थी। राजा गम्भीर ने जगदेव की सूरत देख कर और उसको विवाहित जान कर बहुत कुछ मन मसोसा किन्तु, जो कुछ लिखा होता है वह टलता नहीं। गौड़ाधिप ने अपनी पुत्री का विवाह-संस्कार किया, दोगुनी वर दक्षिणा दी–हाथी दिये, घोड़े दिये और ग्यारह दासियां दीं। इस प्रकार उसने बरात को विदा की। बरात वापस टोडे आई, वहां से चावड़ी (वीरमती) को रथ में बिठाकर अपने साथ लिया और अपने घर

---

(१) उबटन।

लौटी। जब बाघेली को विदित हुआ कि जगदेव का भी विवाह हो गया तो वह अपने मन में बहुत कुढ़ी और कहने लगी 'अरे! इस कालिया को बिना देखे भाले राजा ने कैसे लडकी दे दी?' बरात की अगवानी की रीति पूरी हुई और गौड़कुमारी तथा चावड़ी ने अपनी सासों के चरण छुए और देवताओं का पूजन किया। एक महीने बाद गौड़ और चावड़ा राजाओं ने बुलावा भेज कर अपनी अपनी पुत्रियों को घर बुला लिया। जगदेव को जो सामान चावड़ी के साथ वर-दक्षिणा में मिला था उसमें से पोशाक और गहने तो उसने रख लिए और बाकी सब वापस भेज दिया और कहा 'मैं इनको अभी नहीं रखूंगा।'

जब जगदेव पंद्रह वर्ष का हुआ तब उदयादित्य, जो काम उसको सौंपा गया था उसको पूरा करके, घर लौटा। उसके मन में बड़ी आतुरता थी। राजकुमार रणधवल स्वागत करने गया और प्रमुख नागरिकों के साथ राजा को नमस्कार किया। पूरा दरबार लगा और सबने एक दूसरे को प्रणाम किया परन्तु, जगदेव की सूरत कहीं दिखाई न दी। राजा दरबार में गद्दी पर बैठा और आतुर होकर अपने नौकरों से पूछने लगा 'राजकुमार जगदेव कहाँ है?' उन्होंने उत्तर दिया 'वह सोलंकिनी के पास होगा।' एक खवास उसको बुलाने के लिए गया और जगदेव ने अपनी उसी मोटी पोशाक में उपस्थित होकर राजा को प्रणाम किया। राजा ने उसे छाती से लगाया, हाथ पकड़ कर पास बिठा लिया और कहा, 'मेरे पुत्र! क्या अब भी तुम्हारी यही पोशाक है?' राजकुमार ने हाथ जोड़कर कहा, 'महाराज! आप जब यहाँ से पधारे थे तब मेरे नित्य के खर्चे के लिए कुछ रकम नियत कर गये थे परन्तु, मुझे माताजी (बाघेली) की आज्ञा के बिना कुछ न मिला। जो जैसा

भोजन करता है उसका वैसा ही शरीर होता है—यह आप अच्छी तरह जानते हैं। एक गाँव की आमद में नौकर-चाकरों के खर्चे के अतिरिक्त मेरे कपड़े कहाँ से आ सकते हैं ?" यह सुनकर राजा ने अपना कवच, मोतियों का कण्ठा, कमरबन्ध, बलेवड़ा, हाथों के कड़े और शिरपेच उसको दिये तथा एक ढाल, तलवार और जवाहरात से जड़ी मूंठ की कटार भी प्रदान की। जगदेव ने ये सब नतमस्तक होकर स्वीकार तो कर लिए परन्तु, हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की, "महाराज ! आपने प्रसन्न होकर जो कुछ मुझे दिया वह मैंने ले लिया परन्तु, बाघेली मांजी की मुझ पर बहुत कृपा है इसलिए जब आप उनके महल में पधारेंगे तब वे इन सबको वापिस मँगवाने के लिए हठ करेंगी और मुझे जो कुछ एक बार मिल चुका है उसको वापस देने की यदि आप स्वयं भी आज्ञा देंगे तो मैं कभी न दूँगा।" राजा ने कहा, "बाघेली कुछ भी कहे, परन्तु पुत्र ! मैं तुमको रणधवल से भी अधिक चाहता हूँ और जो कुछ मैंने तुमको दिया है वह तुम्हारा है। अश्वशाला में एक बढ़िया घोड़ा है, वह मैं तुम्हें देता हूँ, तुम सायंकाल दरबार में आना।" यह कहकर राजा ने उसको विदा किया और जगदेव घोड़े को अपने साथ लेकर चला गया। घर जाकर उसने सोलंकिनी को प्रणाम किया। अपने पुत्र की असाधारण सुन्दरता देखकर उसने कहा, 'पुत्र ! जब तक राजा बाघेली के साथ रहते हैं तब तक क्या तुम्हें उनका विश्वास है ?"

खवासों के मुखिया ने दौड़कर बाघेली को खबर दी, "आज तो महाराज ने जो कुछ अपने पास था वह सब जगदेव को दे दिया और अश्वशाला में जो सबसे अच्छा घोड़ा था वह भी प्रदान कर दिया।"

यह सुनकर उसका कलेजा धधक उठा और उसने राजा से कहलवाया "महाराज पाकशाला में पधारें, भोजन तैयार है; बाघेली ने अभी मुँह भी नहीं धोया है; वह महाराज के दर्शन करके और उन्हें सुखी देखकर दाँतुन करेंगी।" यह सुनकर राजा तत्काल ही सवेरे सवेरे उसके महल में गये, बाघेली ने प्रणाम किया और बिछे हुए सिंहासन पर महाराज विराज गये। बाघेली ने कहा, "मैं आपके स्वरूप पर वारी जाती हूँ। (१) आप सहज-सुन्दर हैं इसलिए आपने आभूषणों का मोह छोड़ दिया है परन्तु, हे पृथ्वीनाथ! आपके बिना आभूषणों की शोभा नहीं है।" राजा ने उत्तर दिया, 'मेरे पास आभूपण और जवाहरात तो बहुत थे परन्तु, जब मैंने जगदेव को कोरा देखा तो सब उसी को दे दिये।' यह सुनकर रानी ने कहा, 'इस कालिया में ऐसा क्या जादू भरा है? जवाहरात का इसको दोहरा भाग मिल गया है। मैंने उसके पास भण्डार से नये नये गहने भेजे थे, वह सब उसने टोड़ी चावड़ी को दे दिये। महाराज! आपने बिना बिचारे ही ये सब उसको दे दिये—आपने मेरे पुत्र रणधवल को कभी कोई वस्तु प्रदान नहीं की इसलिए वे सब चीजें वापस मंगवा लीजिये और रणधवल को दे दीजिये।' राजा ने उत्तर दिया, "एक गरीब आदमी भी जिस वस्तु को एक बार दे चुकता है उसको वापस नहीं लेता, मैं तो देश का राजा हूँ। रणधवल और जगदेव—ये दोनों ही मेरे लिये समान हैं; मैं इन चीजों को वापस नहीं ले सकता।" रानी बाघेली ने कहा, "कटार, तलवार और खासा (२) घोड़ा—ये तो सब युवराज के होते हैं। जब तक आप इन सबको वापस न मंगवा लेंगे, मैं दाँतुन नहीं करूँगी।" राजा ने सोचा स्त्री का हठ छोड़ना कठिन है, कहावत है कि—

---

(१) न्यौछावर होती हूँ। (२) राजा के बैठने का मुख्य घोड़ा।

अर्थ अनर्थ न जानहीं, हठ पर चढें जो चार ।(*)
बालक, मंगण और नृप, बहुत लाडली नारि ।।१।।

हिम शीतल, पर वन दहे, जल तहँ पथर जडाय ।(+)
रूठी महिला जो करे, विधना सो न कराय ।।२।।

राजा दण्डे निज प्रजा, महिला सब संसार ।(×)
पण्डित को खण्डित करे, तिरिया-चरित अपार ।।३।।

इस प्रकार सोच विचार करके राजा ने अपने प्रधान खवास को जगदेव के पास भेज कर कहलाया 'पुत्र ! मैं तुम्हें दूसरी बहुत अच्छी तलवार दूँगा परन्तु, यदि तुम्हें मेरा सुख प्रिय है तो जो तलवार मैंने तुम्हें दी है वह वापस दे दो। मेरे पुत्र ! इसमें हठ मत करना।" जब खवास ने जाकर इस प्रकार प्रार्थना की तो जगदेव ने सोचा कि झगड़ा करने से कुपूत कहलाना पडेगा इसलिये तुरन्त ही तलवार वापिस दे दी। फिर, उसने उत्तेजित होकर माता से कहा 'मैं राजपूत का बच्चा हूँ; कहीं भी चला जाऊँगा और अपनी रोटी पैदा कर लूँगा—

पान पदारथ, सुघड़ नर, बिन तौले बेचाय।
ज्यों ज्यों दूरे संचरैं, कीमत त्यों बढ़ जाय ।।१।।

सिंह न देखे चन्द्रमा, ना संपति ना रिद्धि।
एकाकी साहस भलो, जहँ साहस तहँ सिद्धि ।।२।।

(*) यदि बालक, माँगने वाला भिखारी, राजा और बहुत प्यारी स्त्री—ये हठ पर चढ जावें तो नुकसान फायदे को बिलकुल नहीं देखते।

(+) बर्फ के समान शीतल होकर भी पूरे वन को जला दे, जहां जल हो वहां पत्थर जड़ दे—रूठी हुई स्त्री जो कुछ कर दे वह विधाता भी नहीं कर सकता।

(×) राजा तो अपनी प्रजा को ही दण्ड दे सकता है परन्तु स्त्री सारे संसार को पीड़ित कर सकती है। उसके सामने पण्डितों का भी मान खण्डित हो जाता है। स्त्री-चरित्र का कोई पार नहीं पा सकता।

यौवन में परदेश जा, जो न कमाया अर्थ।
जीवन का वह भाग फिर, गया समझिये व्यर्थ ॥३॥
चंगा-भला जो घर रहे, तीनों अवगुण होय।
वस्त्र फटें, कर्जा बढ़े, नाम न जाणें कोय ॥४॥

इसलिए माताजी! यदि आप आज्ञा दें तो मैं अपने भाग्य की तलाश में कहीं बाहर चला जाऊँ।" उसकी माता ने उत्तर दिया, "कुमार! अभी तू नादान है—अकेला कहाँ जावेगा? विदेश में अकेला घूमना बहुत कठिन काम है।"जगदेव ने उत्तर दिया, "माताजी! ईश्वर मेरी बढ़ती करेगा, मैं कहीं जाकर नौकरी कर लूँगा। ईश्वर ने पहले भी कुलीन कुमारों की लाज रखी है, वही अब मेरी भी रख लेगा। माताजी! आपके पुण्य से मेरा भाग्योदय होगा।"उसकी माता ने सोचा कि—

ठंडा अपने काम में, समरथ पर उपकार।
साईं ताहि न रोकिये, जब छोड़े घर द्वार ॥

इसलिए उसने कहा "पुत्र! तुमको जो अच्छा लगे वही करो।" तब जगदेव ने अस्तबल में से एक सब से अच्छा घोड़ा लिया और फिर खजाना खोल कर दो सोने की मोहरों से भरी थैलियां निकालीं; हथियारों में उसने एक धनुष और एक बाणों से भरा हुआ तरकश लिया। तरकश को कमर में लटका कर माता को प्रणाम किया और घोड़े पर चढ़ कर सीधा टूँकटोडा की ओर रवाना हो गया।

नगर के बाहर एक बगीची थी-वहीं उसने विश्राम किया; घोड़े को एक पेड़ से बाँध दिया। वह वहीं कजई करता हुआ(१) खड़ा रहा और जगदेव झाड़ियों में एक कपड़ा बिछाकर बैठ गया। उसने अपनी ढाल

---

(१) लगाम को चबाता हुआ।

पास में रख ली और सायंकाल होने पर नगर में जाने का विचार किया।

उसी समय वीरमती चावड़ी पालकी में बैठकर अपनी सहेलियों के साथ उधर आ निकली। उस समय उनके विवाह को हुए तीन या चार वर्ष हो चुके थे। झरमर झरमर वर्षा हो रही थी इसलिए एक चमेली के मण्डप में गलीचा बिछा दिया गया और वह वहीं बैठ गई। एक खवास को दरवाजे पर पहरा देने के लिए बिठा दिया।

राजकुमारी ने दासियों को फल चुनकर लाने की आज्ञा दी। एक दासी ने जब वह फल लेने के लिये निकली तो एक सवार और एक घोड़े को देखा। घोड़ा कोई चार पांच हजार रुपये की कीमत का होगा। उस पर बहुमूल्य सामान था और पीले रंग की काठी थी। फिर, उस दासी ने चुपचाप उस युवक सरदार को देख लिया और विचार किया कि यह तो राजकुमारी के वर जैसा मालूम होता है—इसके नाक की नोक और आंखों की ललाई देखकर मुझे विश्वास होता है कि यह राजकुमार ही है। फिर उसने दौड़ कर राजकुमारी से कहा, "कुमारीजी! बधाई! बीस विस्वा में उन्नीस विस्वा मुझे विश्वास है कि राजकुमार पधारे हैं।" चावड़ी ने कहा, 'मैं पर-परुष के मुख की ओर नहीं देख सकती, परन्तु तू समझदार है इसलिए जा और पक्की खबर लेकर आ।' दासी ने फिर जाकर देखा और लौटकर कहा, 'कुमारीजी! लाख बातों की एक बात है, यह तो राजकुमार ही हैं।' तब राजकुमारी ने कहा,'देख, तू समझदार और बुद्धिमान् है इसलिए तेरा कहना पर्याप्त है।' यह कह कर उसने चमेली के झाड़ के पर्दे की ओट से देखा तो वह सचमुच राजकुमार ही था। वह तुरन्त बाहर आकर प्रणाम करके कहने लगी—

"नित प्रति काग उड़ावती, कब आवें प्रिय नाथ।
आधी चूड़ी झड़ गई, आधी मेरे हाथ॥
सुख-शय्या, शीतल भवन, साजन मेरे पास।
पूरी मेरे दैवने, सब विधि मन की आस॥"

चावडी फिर बोली, 'धन्य घड़ी (१)! धन्य भाग्य! आज मेरे आनन्द का समय आया है कि आप से मेरा मिलन हुआ परन्तु, आप के साथ के नौकर चाकर कहाँ हैं? आप यहां बगीचे में अकेले, छुपे हुए से, क्यों बैठे हैं? इन सब बातों का अर्थ क्या है?" तब राजकुमार ने चावड़ी को पूरा हाल कह सुनाया और कहा, 'इस समय मैं नौकरी की तलाश में आया हूँ, तुम्हें इस बात को अभी प्रकट नहीं करनी चाहिए।' इसी बीच में एक दासी महल को दौड गई थी और कह रही थी "बधाई! बधाई!! राजवंशी जमाई जी पधारे हैं।' तुरन्त ही अगवानी की तैयारियाँ होने लगीं और बधाई देने वाली दासी को पुरस्कार मिला। राजकुमार बीरज पैदल ही दौड़ पड़ा और जगदेव से मिला। चावड़ी महल को लौट गई, बीरज जगदेव को साथ लाए। वहां आकर जगदेव ने राजा राज को प्रणाम किया। पांच दिन ठहर कर जब उसने आगे जाने की आज्ञा मांगी तो राजा ने कहा "यह राज-मन्दिर आप ही का है। हम सब की इच्छा यही है कि आप यहीं रहें।" तब जगदेव ने कहा, "आप इस समय हठ न करें, मैं एक बार अकेला ही विदेश में जाऊँगा और अपने भाग्य को टटोलूँगा।" इस प्रकार उनमें बहुत हठाहठ हुआ, परन्तु अन्त में, उन्हें जगदेव को जाने के लिए 'हां' कहना पड़ा। इस के बाद, रात को उसने अपना विचार चावड़ी को कहा और जाने के लिए उससे भी अनुमति चाही। चावड़ी ने कहा

(१) समय

'आपकी दासी तो अब निरन्तर आपकी सेवा में ही रहेगी।' जगदेव ने कहा, "तुम सयानी और समझदार होकर ऐसी बातें करती हो ? जानती हो कि विदेश में स्त्री बन्धन के समान होती है, इसलिए अभी तो मुझे अकेला ही जाने दो, फिर मैं तुम्हें शीघ्र ही बुला लूँगा।" तब चावड़ी ने उसके गले में बाहें डालकर कहा 'क्या छाया शरीर से अलग रह सकती है ? यदि छाया शरीर के साथ न रहे तो मैं भी आपसे विलग हो सकती हूँ और आप मुझे यहाँ रहने की आज्ञा दे सकते हैं।" जगदेव ने चावड़ी को बहुत कुछ समझाया बुझाया परन्तु उसने एक बात भी न मानी और साथ जाने का हठ पकड़ कर बैठ गई। इसके बाद, दो घोड़ों पर जीनें कसी गईं, उन्होंने अपने साथ बहुत से बहुमूल्य जड़ाऊ गहने ले लिये और चलने के लिए तैयार हो गये। चावड़ी ने अपने मुख पर एक परदा (बुरका) डाल लिया और ज्यों ही जगदेव घोड़े पर सवार हुआ वह भी तैयार हो गई। मोहरों की दो थैलियाँ उनके घोड़ों के तोबरों (१) में रख दी गईं। उनके प्रस्थान की बात मालूम होते ही राजकुमार बीरज तीन सौ घोड़े लेकर उनको पहुंचाने (विदा करने) आया। चावड़ी अपने माता पिता से गले मिली और फिर दौड़ कर अपनी सहेलियों से लिपट गई। तब जगदेव की सास ने उसको रुपया और नारियल देकर तिलक किया और अपनी पुत्री की सम्हाल रखने के लिए कहा। इसके बाद राजा राज को प्रणाम करके और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करके वे विदा हुए। नगर से थोड़ी दूर जाने पर जो सवार उनको पहुँचाने गये थे उन्होंने ने कहा, 'महाराज ! यदि आप

---

(१) यहाँ कपड़े के उन थैलों से तात्पर्य है जो जीन के नीचे दोनों ओर लटकाये जाते हैं। राजस्थानी में ऐसे थैले को खड़िया अथवा हुक्का-थैली कहते हैं।

घर पधारें तो यह रास्ता है।' तब जगदेव ने अपना विचार स्पष्ट करके कहा, "मैं इस समय सिद्धराज जयसिंह देव सोलंकी के यहाँ नौकरी करने के लिए पट्टण जा रहा हूँ।' यह कह कर उसने उधर जाने का सीधा रास्ता पूछा। सवारों में से एक ने कहा 'यहाँ से आगे टोरड़ी गांव होकर रास्ता जाता है, टोरड़ी बीस मील है और यदि आप पहाड़ियों आदि को बचा कर निर्भय रास्ते से जावें तो तीस मील का रास्ता है।' तब जगदेव ने कहा, 'हम सीधा रास्ता क्यों छोड़ें ? क्या घोड़ों से वैर है ?" तब राजपूतों के प्रधान ने कहा, "इस सीधे रास्ते को एक बाघ और बाघनी ने रोक रखा है, इन्होंने गॉव के गाँव ऊजड़ कर दिये हैं। बाघ तो एक देव का देव है—कितने ही राजा और उमराव अपने अपने ढोल नगारे लेकर उनको वश में करने के लिए चढ़े परन्तु सफल न हुए। इनके डर से कोई भी चौपाया पूरा नहीं पनप पाता। यह रास्ता नौ वर्षो से बन्द है, घास बड़ी बड़ी हो गई है, पगडंडियाँ टूट गई हैं, इसलिए लम्बे रास्ते होकर ही आप टोरड़ी जाइये-वही सरल और निर्भय मार्ग है।" यह सुन कर जगदेव ने बीरज को प्रणाम करके विदा ली और सीधा बीस मील वाले रास्ते हो लिया। राजकुमार बीरज ने उनको बहुत रोका परन्तु उन्होंने एक न सुनी। जगदेव ने कहा 'इन गंडक-गंडकडियों(१) के डर से क्यों कोई इतना चक्कर खाने लगा ?" निर्भय होकर उन दोनों ने अपने घोड़े आगे बढ़ाए। जगदेव ने चावड़ी से कहा 'बाएं हाथ की ओर घास की तरफ निगाह रख कर चलो।' इस प्रकार जब वे छः कोस चले गये तो चावड़ी ने कहा, 'राजकुमार ! सामने ही बाघनी आ गई है।' यह सुनकर जगदेव ने एक तीर निकाला और अपने धनुष पर चढ़ाकर कहा, 'शेरनी। तू राँड(२) है मेरा सामना मत

(१) कुत्ते कुतियों। (२) यह स्त्री के लिये अपमान-सूचक शब्द है।

कर, रास्ता छोड़, या तो दांई तरफ चली जा या बांई तरफ चली जा। जब शेरनी ने "रांड" यह शब्द सुना तो उसने अपनी पूँछ उठाई और अपने सिर को जमीन तक नीचा ले जा कर उस पर छलांग भरी। उसी क्षण जगदेव ने बाण छोड़ दिया, वह ठीक उसके कपाल में लगा और उसको आरपार बेध करके दस कदम आगे जा पड़ा। शेरनी ऊपर उछली और मुर्दा होकर गिर पड़ी। सौ एक कदम आगे चलने पर उन्हें शेर बैठा हुआ मिला। तब जगदेव ने अपने तरकश से दूसरा तीर निकाला और उससे कहा, 'इधर उधर हो जा और रास्ता छोड़ दे, वरना तुझे भी तेरी गंडकड़ी के पास अभी पहुँचा दूँगा।' अपनी पूंछ को फटकारते हुए सिर को जमीन तक नीचा लेजाकर शेरने छलांग भरी, उधर जगदेव ने अपना तीर छोड़ा जो इसके माथे को बींध कर आर-पार निकल गया और बीस कदम दूर जा पड़ा। शेरनी की तरह शेर भी ऊपर उछला और गिर कर मर गया। जगदेव ने कहा, 'मैंने इन गरीब जानवरों को क्यों मारा? मुझे इनको मारने का दोष लगेगा।' चावड़ी ने कहा, 'महाराज! यह तो क्षत्रियों के खेल है।'' इस तरह बात-चीत करते हुए वे टोरड़ी गांव के बाहर एक तालाब पर आये जहाँ बहुत से बड़ और पीपल के पवित्र वृक्ष थे और पानी में छोटी छोटी लहरें पड़ रहीं थी। यहां एक बड़ के पेड के नीचे वे अपने अपने घोडों पर से उतरे, अस्त्र शस्त्र उतार कर रख दिये और गंगाजली (१) में ठंडा पानी

---

(१) प्रवास में पानी पीने का पात्र। ऐसे पात्रों में यात्रा जाते समय गंगाजल भरकर ले जाने की प्रथा हिन्दुओं में अब भी है। इसी से इसका नाम गंगाजली पड़ गया है। ठीक अर्थ न समझने के कारण अंग्रेजी मूल में 'गंगाजल जैसा पानी खींच कर पिलाया' ऐसा लिखा है।

लाकर घोड़ों को पिलाया। चावड़ी दांतन कुल्ले करके अपना मुँह धोने लगी।

इधर राजकुमार बीरज ने अपने घर लौट कर राजा राज को निवेदन किया कि जगदेव तो बीस मील वाले सीधे रास्ते ही गये हैं। यह सुनकर राज बहुत क्रोधित हुआ और उसने कहा, 'अपने साथ शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित दो सौ पचपन सवार ले जाओ और जहां भी उनके मृत शरीर मिलें वहीं उनका अग्नि-संस्कार करके आओ और यदि वे जीवित मिल जावें तो उनके कुशल समाचार लेकर आओ।"

आज्ञा मिलते ही सवार रवाना होगए। जब वे मार्ग में इधर उधर देखते हुए और डरते हुए से जा रहे थे तो उन्होंने शेर और शेरनी को रास्ते में मरे हुए पड़े पाया; परन्तु, कोई घोड़ा या सवार वहाँ नहीं था इसलिए उन्होंने सोचा कि जिनकी तलाश में वे निकले थे वे सुरक्षित हैं और कहीं पानी के किनारे विश्राम कर रहे होंगे। थोडी ही देर में उनकी तलाश में निकले हुये सब सवार इकट्ठे हुये और उन्होंने आपस में राम राम किया। जान पर खेलकर जो काम अपने सिर पर लिया था उसके पूरा हो जाने पर उन्होंने एक दूसरे को बधाई दी। खुश होते हुए और उन दोनों बाणों को लिए वे निर्भय होकर आगे बढ़े। जब वे तालाब पर आकर पहुंचे तो उनको जगदेव वहीं मिले। चावड़ी ने उनको पहचान लिया और बोली, 'ये तो अपने राजपूत हैं।' सवारों ने पास आकर नमस्कार किया और कहा, 'राजकुमार! आपने पृथ्वी और गायों का रक्षण करके बड़ा धर्म-कार्य किया है; यह शेर और शेरनी तो मानों यमराज के दूत ही थे, कोई भी राजा व उमराव उनको न मार सका था। राजकुमार! आपके अतिरिक्त संसार की इस आपत्ति को कौन दूर कर

सकता था ?" जगदेव ने इन बातों की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया और उन राजपूतों को विदा किया। उन्होंने घर आकर शेर और शेरनी के मारे जाने की पूरी कथा कह सुनाई जिसको सुनकर राजा राज और जगदेव का साला बीरज बहुत प्रसन्न हुए।

इधर सांझ होते होते जगदेव और चावड़ी ने नगर में प्रवेश किया और खाने पीने का सामान जुटाया। कुछ पैसे देकर उन्होंने अपने घोड़ों की मालिश कराई। एक दिन और दो रात वहां ठहरने में उनके भोजन आदि में कुछ रुपये खर्च हुए। इस प्रकार मंजिल पर मंजिल तय करते हुए वे लोग पट्टण पहुंचे और सिद्धराज के बंधाये हुए सहस्रलिंग तालाब की पाल पर एक बड़ के वृक्ष की छाया में जाकर उतरे। वहीं अपने घोड़ों को बाँध दिया, मीठा जल लाकर उनको पिलाया और देख भाल की। घोड़े अपनी लगाम को चबाते हुए खड़े रहे और इतने ही में थोड़ा जलपान करके वे भी तैयार हो गए। उस समय जगदेव ने चावड़ी से कहा, "तुम तो यहीं घोड़ों के पास रहो और मैं नगर में जाकर एक किराये का मकान तलाश करके आता हूँ। इस तरह नट नटी की तरह शहर में अपना दोनों का फिरना अच्छा नहीं लगेगा।" चावड़ी ने कहा, 'जाइये, मैं यहीं हूँ।" इस तरह कटार और तलवार लेकर जगदेव किराये का मकान तलाश करने के लिए शहर में गया।

अब आगे का हाल सुनिए। सिद्धराज के मुख्य परगने का अधिकारी डूंगर-शी था, जो पट्टण का कोतवाल था। डूँगरशी के एक लाल कुंवर नामक लड़का था जो अपने पूर्ण यौवन में मदान्ध था और किसी को कुछ न समझता था। पट्टण जैसे शहर की कोतवाली और इतने बड़े परगने का अधिकार प्राप्त होने के कारण उसका मदान्ध होना भी कोई

बड़ी बात न थी। इसीलिए वह जमीन पर पैर रख कर भी नहीं चलता था। उस समय पट्टणमें पांच सौ वेश्याओं के घर थे, उन सब की सरदार जामोती(१) नामकी वेश्या थी जिसके पास बहुत सा धन और अनेक छोकरे छोकरियां थीं। उसके छोकरे भी बहुत धनवान थे। एक दिन कोतवाल का लड़का जामोती के यहाँ रमण करने के लिए गया और उससे कहा, 'ए जामोती ! यदि मुझे कोई ऊँची जाति की बहुत सुन्दरी स्त्री मिले तो मैं उसे रखूँ और तुझे बहुतसा इनाम दूँ।' जामोती बोली "बहुत अच्छा, मैं तलाश करूँगी और आपकी सेवा में उपस्थित करूँगी।" जामोती ने अपनी दासियों को भी सूचना करदी और वे भी तब से इस तलाश में रहने लगी।

जिस दिन जगदेव और उसकी स्त्री पट्टण आकर पहुँचे थे उसी दिन दोपहर के समय जामोती की एक दासी घड़ा लेकर सहस्रलिंग तालाब पर पानी भरने आई। उसी समय चावड़ी ने चादर ऊँची करके देखा कि आस पास में कोई पुरुष तो नहीं है। जब देखा कि कोई नहीं है तो उसने अपना परदा उतार कर रख दिया और बैठी बैठी तालाब के पानी और पाल पर बनी हुई इमारतों की ओर देखने लगी। जामोती की आज्ञा का स्मरण करके वह दासी भी उसकी ओर एकटक देखने लगी। उसने जब चावड़ी को देखा तो वह उसे इन्द्र की अप्सरा सी तथा आकाश की बिजली जैसी मालूम हुई। मन में प्रसन्न होती हुई घड़े को लेकर चावड़ी के पास आई और नमस्कार करके बोली, "बाईजी, आप कहाँ से पधारी हैं, और इस घोड़े के सवार कहाँ गये ?" चावड़ी ने कहा, 'तू पूछने वाली कौन है ?' तब उसने

(१) जाम्बवती।

उत्तर दिया, "मैं तो सिद्धराज जयसिंहदेव के दरबार की प्रधान बडारण(१) हूँ।" चावड़ी ने कहा 'मैं उदयादित्य परमार राजा के पुत्र को ब्याही हूँ।' दासी ने पूछा, 'क्या आपके पति से बड़े भाई भी हैं ?' उसने कहा, 'हाँ, उनके बड़े भाई का नाम रणधवल है।' दासी ने फिर पूछा, 'बाईजी साहबा ! कुँवरजी साहब का क्या नाम है ?' चावड़ी ने जवाब दिया, 'पगली ! कोई स्त्री अपने पति का नाम भी बतलाती है ?' दासी बोली, 'स्त्री या तो अपने पति का नाम लेती है या उस संसार को रचाने वाले महिमामय भगवान का। खैर, आप देश की स्वामिनी हैं—जैसा आपको अच्छा लगे वैसा करें।" तब चावड़ी ने कहा, 'राजकुमार का नाम जगदेव है।' दासी ने फिर पूछा, 'आपका पीहर कहाँ है ?' चावड़ी ने उत्तर दिया, 'मेरा पीहर टोडा है, मैं राजा राज की पुत्री और राजकुमार बीरज की बहन हूँ।' दासी ने फिर कहा, 'ऐसा मालूम होता है कि राजकुमार तो शहर में गये हैं और आप घोड़ों की रखवाली करने बैठी हैं।' चावड़ी ने कहा, 'उस काले नाग के घोड़े पर नजर डालने की किसकी हिम्मत है ?' दासी बोली, 'इतने बड़े राजा के लड़के होकर इस तरह अकेले ही क्यों निकल पड़े ?' चावड़ी ने कहा, 'अपनी विमाता से झगड़ा होने पर रोष में आकर चल दिये।' यह कह कर उसने अपनी पूरी कहानी सुनादी। दासी ने आदि से अन्त तक कहानी ध्यान से सुनी और फिर अपना घड़ा भरकर नमस्कार करके चली गई।

दासी ने आकर जामोती गणिका से कहा, "यदि आप अपने युवा मालिक को प्रसन्न करना चाहती हैं तो तालाब की पाल पर दो घोड़ों

---

(१) मुख्य सेविका।

को लिए एक युवती बैठी है, वह इतनी सुन्दरी है कि इस शहर में उसके समान कोई नहीं है। वह ठीक वैसी ही स्त्री है जैसी आप चाहती थीं और जिस प्रकार की सुन्दरी का आप वर्णन किया करती हैं। उसने मुझे अपनी जाति, श्वसुर का नाम, अपने पति का नाम और अपने घर का पता आदि सब बतला दिया है।" यह सुनकर जामोती ने उस दासी को बहुमूल्य कपड़े और जड़ाऊ गुजराती गहने पहनाये। एक सुन्दर रथ तैयार करवाकर उसमें स्वयं बैठ गई और नौकरों ने रथ के लाल पर्दे बन्द कर दिये। उसने दूसरी दासियों को भी सुन्दर सुन्दर कपड़े और गहने पहनाये; बीस अथवा तीस अच्छी पोशाक पहनी हुई दासियों और शस्त्र कसे हुए कुछ नौकरों को अपने साथ लेकर तथा एक सजेधजे खवास को घोड़े पर बिठाकर आगे रवाना किया। इस प्रकार वह जहाँ चावड़ी बैठी थी उस स्थान के लिये रवाना हुई वहाँ पहुँचकर उसने आड़ी कनात लगवा दी और फिर स्वयं उतरी जो दासी पहले चावड़ी से बातें करके गई थी उसने आकर प्रणाम किया और जामोती ने कहा, "बहू ! उठो मैं तुम्हारा आलिङ्गन करूँ मैं तुम्हारे श्वसुर की बहन हूँ। जब इस बडारण ने जाकर तुम्हारे आने की सूचना दी तो तुरन्त ही रथ तैयार करवा कर महाराज की आज्ञा से मैं यहां आई हूँ। जब मेरे भतीजे जगदेव का विवाह टोडे हुआ था उस समय मैं न आ सकी थी, परन्तु, मैं रणधवल को जानती हूँ। मेरा भतीजा जगदेव कहां है ? तुमको मेरे घर आकर ठहरना चाहिये था, तुम्हारा विवाह उच्चकुल में हुआ है इसलिए यह स्थान तुम्हारे बैठने योग्य नहीं है।"

जामोती की इन भड़कीली बातों और ढंग को देखकर चावड़ी चक्कर में पड़ गई और सोचने लगी कि कहीं उसको धोखा तो नहीं

दिया जा रहा है। उसने सोचा कि सिद्धराज जयसिंह देव के साथ किसी सम्बन्ध के विषय में जगदेव ने कभी कुछ नहीं कहा। परन्तु, उसने फिर सोचा कि राजा से राजा का सम्बन्ध होना सम्भव है, इसलिये उन आये हुए अनजान लोगों की बातों का विश्वास करके और उनकी पोशाक और गहने आदि की ओर देखकर उसने जामोती को नमस्कार किया, और उससे मिली। जामोती ने उसे आशीष दी और रथ में बैठने के लिए आग्रह किया। उसने चावड़ी से फिर कहा "मैं यहां एक आदमी छोड़ दूंगी जो लौटने पर जगदेव को दरबार में ले आएगा।" यह कह कर उसने एक नौकर को बुलाया भी और उसको घोड़ों की सम्हाल रखने को कहा। चावड़ी ने थैलियां अपने पास ले लीं और रथ में बैठ गई। रथ रवाना होगया। इस प्रकार जामोती उसे अपने घर ले आई। उसका घर बहुत विशाल था, दरवाजे से आगे चलकर एक बहुत बड़ा चौक था, उसी चौक में आकर रथ ठहर गया। पहले जामोती उतरी फिर चावड़ी। उनका स्वागत करने के लिए घर के बहुत से लोग आये। बहुत सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहने हुए और जवाहरात से सुसज्जित स्त्रियां चावड़ी से मिलने आईं किसीने उसको प्रणाम किया, कितनी ही स्त्रियों ने उसके पैर छुए, कितनी ही उसके आगे आकर 'जय, खम्मा, खम्मा (१) कहने लगीं और आगे आगे चलने लगीं। इस प्रकार स्वागत सत्कार के साथ चावड़ी ने उस घर में प्रवेश किया।

जामोती का घर चार मंजिल ऊँचा था और बहुत ही सुन्दर बना हुआ था। चारों ओर से लिपा पुता-जहां झाड़ फानूस आदि लटक रहे थे, सजी हुई दीवारों पर सोने चांदी के चौखटों में मंढी हुई तस्वीरें

---

(१) क्षमा। यह राजपूतों में अभिवादन का प्रकार है।

लगी हुई थीं और खिड़कियों में जाली का काम हो रहा था। नौकरों ने लाकर तुरन्त ही एक सुन्दर गालीचा बिछा दिया, उस पर गद्दी, तकिये, मसनद और गालमसूरियाँ(१) आदि लाकर लगादीं जिनमें सोनेके कसीदे निकले हुए थे। चावड़ी को उस पर बैठने के लिए निवेदन किया गया, वह अपनी दोनों थैलियां रखकर बैठ गई। हाथ पैर धोने के लिए गरम जल तैयार हुआ। इतने ही में जामोती ने एक दासी से कहा,' जा, महाराज से प्रार्थना कर कि परमार रानी का भतीजा कुंवर जगदेव यहां आया है, वह आपसे मिलने आयेगा, आप उसका बहुत आदर के साथ स्वागत करें। महाराज को यह भी विदित करना कि जगदेव की स्त्री चावड़ी मेरे महल में ठहरी है।' दासी ने यह सुनकर प्रणाम किया और चली गई। लगभग आध घण्टे के बाद वह लौटी और कहने लगी, "महाराज बहुत प्रसन्न हुए और यह आज्ञा दी है कि जगदेव पहले उन से मिलें और फिर आपके पास आवें।"

अब भोजन तैयार हुआ। जामोती ने कहा, "बहू! भोजन करने के लिए तैयार हो।' चावड़ी ने कहा, "मैं पातिव्रत धर्म का पालन करती हूँ। जब राजकुमार भोजन कर लेंगे तभी मैं भोजन करने का विचार करूँगी। अभी तक वे आए ही नहीं।" इतने ही में दासी ने आकर कहा, 'आपके भतीजे जगदेव महाराज से मिल लिए हैं। महाराज उनसे गले मिले और उनको अपने पास बिठा लिया, राजकीय रसोवड़े से थाल वहां पहुंच गये हैं।' जामोती ने कहा, "जल्दी करो, जाकर जगदेव को वहां भोजन करने से रोक दो और महाराज से प्रार्थना करके उन्हें यहां अपने साथ ले आओ। आज भुआ और भतीजा साथ साथ

(१) गालों के नीचे लगाने के छोटे छोटे तकिये।

भोजन करेंगे; भोजन यहां तैयार है।" थोड़ी देर बाद जामोती फिर कहने लगी, 'क्या बात है, मेरा भतीजा जगदेव अभी नहीं आया। उसके भोजन किए बिना मैं भी कैसे खा सकती हूँ? जब उसके भोजन कर लेने की खबर मुझे मिल जायगी तभी मैं भोजन करने का विचार करूँगी।" इतने ही में जो दासी गई थी वह लौट कर आ गई और कहने लगी, 'महारानीजी! राजकुमार महाराज के साथ भोजन कर रहे हैं, वे दोनों एक ही बड़े थाल पर बैठे हैं। मैंने आने से पहले अपनी आंखों से उन्हें देखा है; परन्तु, आपके भतीजे आपके पास आने की तैयारी कर रहे हैं। उनका वर्ण श्याम है न।" जामोती ने कहा, "यह तो मेरे पीहर वालों की साधारण निशानी ही है। मेरा भाई उदयादित्य भी श्याम वर्ण का ही है; परन्तु मुझे मेरे पीहर के लोगों से अधिक सुन्दर कोई नहीं जंचता।" इस प्रकार बातचीत होती रही। बाद में जामोती ने भोजन के सुन्दर थाल मंगवाये और एक थाल चावड़ी के आगे रखकर कहा 'बहू! कुछ खा लो।' चावड़ी ने थोड़ा बहुत भोजन किया और फिर बातें होने लगीं। जब तीसरे पहर के तीन बज गये तो चावड़ी ने कहा 'क्या बात है, राजकुमार अभी तक भी अपनी भुआ से मिलने नहीं आये?' जामोती ने कहा, 'दासी! दौड़ तो, मेरे भतीजे जगदेव को ले तो आ।' ऐसा कहकर वह फिर बहू के साथ बातें करने लगी, परन्तु चावड़ी को जगदेव की अनुपस्थिति में उसकी बातों में कोई रस नहीं मिलता था। लगभग आध घण्टे के बाद दासी लौट कर आई और कहने लगी, 'राजकुमार महाराज से बातें कर रहे हैं, वे उन्हें उठने ही नहीं देते और यह कहा है कि राजकुमार जब नौ बजे इस महल में सोने के लिए पधारेंगे तब ही अपनी भुआ से मिलेंगे।' यह सुनकर जामोती ने दासी पर क्रोध करके कहा, 'जा, महाराज से

विनय कर कि जगदेव को मुझ से मिले बहुत वर्ष हो गये हैं; आप से मिलने के लिए तो उसे सुबह बहुत सा समय मिलेगा, कृपा करके अभी तो उसे मुझ से मिलने के लिए भेज दीजिए। लगभग आध घण्टे और ठहर कर दासी फिर आई और बोली, 'महाराज ने पहले जो उत्तर दिया था वही अब दिया है।'

जामोती ने इधर लाल कुँवर को कहला भेजा कि आज मेरा मुजरा(१) मालूम हो, नौ बजते ही सीधे यहां आ जाइये, मेरे हाथ में एक स्त्री है उसको यदि आप चाहें तो रखलें नहीं तो मैं अपने घर रख लूंगी।'

यह सुन कर लालकुंवर ने अफीम चढ़ाना शुरू किया और ऊपर से कितने ही मसाले पड़ी हुई बहुत जोरदार माजूम जमाई, फिर पुष्पों से निकाली हुई मीठी शराब पीकर बढ़िया से बढ़िया पोशाक और गहने पहने और अपने शरीर पर कस्तूरी, अतर, मुश्क आदि का लेप किया। इस प्रकार बन ठन कर एक भाले को टेकता, टेकता डोलता फिरता, हाथ में एक शराब की बतक लिए हुए वह आया। उसको देख कर एक दासी ने दौड़ कर चावड़ी से कहा, 'बहूजी ! मुझे बधाई की इनाम दीजिए, राजकुमार आ पहुंचे हैं।' चावड़ी ने जाना कि सचमुच ही राजकुमार आ गए। उसी क्षण युवक लालकुँवर महल के दरवाजे पर आ पहुँचा, जहां से वह साफ साफ दिखाई पड़ता था। जब वह अन्दर घुसा तो पीछे से दासी ने दरवाजा बन्द कर दिया और सांकल चढा कर गायब हो गई। चावड़ी ने देखा कि यह तो मेरा पति नहीं है, ऐसे समय में होशियारी से काम लेना चाहिये, क्योंकि मुझ में इस पुरुष जितना बल तो है नहीं, और फिर वह शराब में चूर है। उसको कहावत याद आई

(१) नमस्कार पूर्वक आमन्त्रण।

कि ठग के साथ ठगी का ही व्यवहार करना चाहिए। फिर, ऐसे संकट के समय में उसे अपने पातिव्रत को रक्षा करनी थी इसलिए उसने सावचेत रहने का निश्चय किया। इस प्रकार सोच विचार करके वह उठी और बोली, "राजकुमार ! आइये, पलंग पर बैठिए।' उसने उत्तर दिया, 'चावड़ी ! तुम भी बैठो।' उसकी सुन्दरता को देखकर वह गोला (१) रीझ गया और चावड़ी ने भी उस पर अपने कटाक्ष इस प्रकार चलाए कि वे उसके कलेजे को पार कर गये।

"नयन रूपी भालों के लगने पर जो परिणाम होता है उसे दो ही जानते है ; एक वह जो घायल हुआ और दूसरा वह जिसने वह भाला चलाया है।"(१)

अब तो वह गोला पिघलकर पानी पानी हो गया और चावड़ी ने उससे सच्चा सच्चा हाल कहलवा लिया। उसने कहा, 'जामोती ने मेरे लिए बहुत अच्छा किया है।' लाल ने कहा, 'ए चावड़ी ! मैंने उससे कह रखा था कि यदि कोई कुलीन, चतुर और सुन्दरी युवती मिल जावे तो मैं उसे अपने पास रखूँगा, और मैं जैसी स्त्री चाहता था तुम ठीक वैसी ही हो। अब तुम जैसा कहोगी मैं वैसा ही करूंगा।'

अब, चावडी को मालूम हो गया कि उसको और उस गोले को जबर-दस्ती धोखे से एक जगह कर देने वाली जामोती गणिका है। लाल की लाई हुई शराब की बतक और प्याले को देखकर तथा यह जानकर कि वह तो शराब में पहले से ही चूर है, उसने वह बतक और प्याला लिया

(१) नैन भलक भल लग्गिया, निसर गया दो सार।
केउ घायल जाणसी, केउ नाखणहार ॥

और शराब से लबालब भर कर लाल की ओर बढ़ाकर कहा, 'कुँवरजी ! मेरे हाथ से एक प्याला पिओ।' लाल ने कहा, 'यह बहुत तेज है, मैंने पहले ही बहुत पी ली है, तुम मुझे और पिलाती हो क्या ? नहीं, नहीं, हम तुम तो बातें करेंगे।' तब चावड़ी ने कहा, "बातों में क्या रखा है ? मैंने पहले पहल आपको प्याला भर कर दिया है, मेरा हाथ वापिस मत करो ; जो कुछ मैं दूँ उसे आप स्वीकार कर लीजिए। मेरे कहने से इसे तो आपको पीना ही पड़ेगा।' जब चावड़ी ने इस प्रकार कहा तो उसने प्याला ले लिया और उसको पीकर खाली कर दिया; फिर उसने कांपते हुए हाथों से दूसरा प्याला भर कर चावड़ी की ओर बढाया। चावड़ी ने घूँघट की ओट करके उस प्याले को अपनी कंचुकी पर ऊँडेल लिया, और फिर प्याला भर कर देखा कि गोज़ा पलंग पर लेट तो गया है परन्तु अभी पूरा बेहोश नहीं हुआ है इसलिए वह प्याला भी उसको दे दिया जिसको पीते पीते तो वह दांत पीस कर पलंग पर चित हो गया। जब चावड़ी ने देखा कि उसको इतना नशा हो गया है कि वह कुछ नहीं कर सकता तो वह तुरन्त उठी और अपनी तलवार लेकर उसकी गर्दन काट डाली। फिर, पलंगपोश लेकर उसमें उसके शव को लपेट कर नीचे ही राजमार्ग में खिड़की से फेंक दिया ।

आधीरात बीतने पर चौकीदार गश्त पर निकले। उन्होंने एक गठ्टर पड़ा पाया और सोचा कि किसी बनिये के घर में चोर घुसे होंगे और जाग होने पर इसको पटक कर भाग गये होंगे। फिर, उन्होंने सोचा कि कोतवाल साहब के सामने यदि यह माल ले जावेंगे तो इनाम मिलेगी, इसलिये उन्होंने उस गट्ठर को उठा लिया, जो उनको बहुत भारी मालूम हुआ। वे आपस में कहने लगे "हम लोग इसको अभी न खोलें, सवेरे ही इसका मालिक चोरों को ढूंढता हुआ अपने माल की

तलाश में आवेगा, इसलिए चलकर इसको कोतवाली के चबूतरे पर रखें और सुबह होते ही उनको (कोतवाल को) सूचना दें।'' उधर चावड़ी आत्मरक्षा के लिये अपनी शक्ति के अनुसार पूरी तैयार होकर बैठी रही।

अब जगदेव का हाल सुनिये। एक घर किराये करके और सब इन्त-जाम करके सांझ पड़ते पड़ते वह तलाव के किनारे लौटा जहाँ वह अपनी स्त्री और घोडों को छोड़ कर गया था। वहां उसने घोड़ों और गाडियों के निशान देखे तो तुरन्त समझ गया कि कोई न कोई धोखा देकर चावड़ी को ले गया। जो कुछ हुआ उसकी सूचना देने के लिए वह दरबार में गया। वहाँ दरबार-भवन के सामने ही अश्वपाल (घोडों का रक्षक) बैठा था। जब जगदेव उधर पहुंचा तो अश्वपाल ने अपने मन में कहा 'यह तो कोई सच्चा राजवंशी है।' वह खड़ा हुआ और उसका आलिङ्गन करके कहने लगा 'आप कहां से आये हैं?' जगदेव ने कहा 'मैं तो यहां अपनी दो रोटी की तलाश में आया हूँ, परमार राजपूत हूँ। अश्वपालन ने कहा 'यदि तुम इन घोड़ों की देखभाल कर लिया करो तो हम तुम साथ रहा करें और तुमको तनखाह व भोजन मिला करेगा।' जगदेव का हृदय और विचार वहां नहीं थे, परन्तु उसने सोचा कि यह अधिकारी उसका राजा से परिचय करा सकता है। अश्वपाल ने यह आश्वासन दिया कि वह उसको राजा से मिला देगा तो उसने उसके साथ रहने को हां कह दी। इस बात से यद्यपि वह सन्तुष्ट नहीं था; परन्तु—

'क्षण क्षण करके तो चन्द्रमा बढता है और क्षण क्षण करके घटता है कभी आधा रह जाता है कभी पूर्ण हो जाता है-विधाता ने चन्द्रमा को भी तो समान दिन नहीं दिये हैं।'(१)

---

(१) खण खीणो खण बड्ढलो, खण आधो खण लीह।
दैव न दीधा चन्द ने, सबै सरीखा दीह॥

उसने सोचा काम तो है परन्तु किया भी क्या जाय?' संध्या होते ही उसने घोड़ों को दाना खिलाया। अश्वपाल अपने घर से भोजन लाया परन्तु जगदेव को भूख नहीं थी, फिर भी उसने खाने का बहाना किया और थाल लौटा दिया। रात भर वह अपने बिस्तर पर करवटें बदलता रहा।

अन्त में, दिन उगा और कोतवाल डूंगरशी कोतवाली के चबूतरे पर आया। चौकीदारों ने नमस्कार करके वह गट्ठर दिखलाया और कहा कि रात में भागते हुये चोरों से उन्होंने उसको छीना था। इस पकड़ से कोतवाल प्रसन्न हुआ और कहने लगा, 'इस गट्ठर को खोलो और देखो इसमें क्या है!" नौकर जल्दी जल्दी गट्ठर खोलने लगे परन्तु जब उन्होंने तीसरा पड़त खोला तो उनको खून दिखाई दिया और वे सब चौंके। वे फिर उसको जल्दी जल्दी खोलने लगे तब उनको मालूम हुआ कि उसमें तो किसी ने मनुष्य को मार कर लपेट दिया है। डूँगरशी उस शव को पहचान गया और बोला, 'अरे! यह तो लालड़ा(२) है, इसमें कोई सन्देह नहीं, हाय! वह मुझे कितना प्यारा था, कपड़े और गहने पहने हुये यह सजीव सा दिखाई देता है" यह कह कर कोतवाल अपनी छाती पीटने लगा और नौकरों से कहने लगा, 'अरे! दौड़ो, जल्दी खबर लाओ यह तो तुम्हारे स्वामी लाल का मुख है।' उन्होंने कहा, 'लालजी तो घर पर सो रहे हैं।' फिर उन्होंने उसके खवास को पुछवाया तो उसने जवाब दिया कि वह रात को नौ बजे जामोती गणिका के घर पर गया था। तब वे लोग दौड़े और जामोती के घर गये। वहां उसने कहा कि वह तो आराम से ऊपर के कमरे में सो रहा है। यह सुनकर उन्होंने उसे जगाने के लिए कहा। तब दासी ने जाकर आवाज दी, 'चावडी! राज-

---

(१) यह लालसिंह का संक्षिप्त प्यार का नाम है।

कुमार को जगाओ और यहाँ भेजो।' चावड़ी ने क्रोध में भरकर कहा, "कम्बख्त रांड! वह तेरा बाप जिस समय यहां आया था उसी समय मैंने उसको मार डाला और एक गट्ठर में बांधकर सड़क पर फेंक दिया। तूने चावड़ों की लड़की के साथ चालाकी खेलने की हिम्मत की है। अभागिन! जब मेरे पति राजकुमार को इसका पता चलेगा तब वे तुझे इसका मज़ा चखाएंगे। दूसरी स्त्रियां चाहे वेश्यावृत्ति करती होंगी परन्तु मैं तुझे शाप देती हूँ कि तेरा सत्यानाश होगा। तूने एक गोले को– जो मेरे दरवाजे पर बैठने योग्य भी नहीं था, उसको मेरे पास भेजा! तेरी यह हिम्मत कि मेरी ओर आंख उठाए!' यह सुनकर तो वह वेश्या अधमरी हो गई। दौड़ कर नौकरों ने कोतवाल को खबर दी कि किसी चावड़ी राजपूतानी ने उनके स्वामी का वध किया है। अब तो कोतवाल दो सौ आदमियों को साथ लेकर जामोती के घर पर पहुंचा और ऊपर की मंजिल पर चढ़ गया। जिस कमरे में चावड़ी थी उसका दरवाजा तो जोर से बन्द था परन्तु पीछे की ओर दीवार में एक खिड़की थी जिसमें होकर एक बार में एक ही आदमी अन्दर घुस सकता था। सीढ़ी लगाकर एक नौकर ऊपर चढ़ा और खिडकी में से ज्योंही अन्दर झांका कि चावड़ी ने अपनी तलवार से उसका शिर काट डाला, जो कमरे के अन्दर पड़ गया और धड़ बाहर की ओर गिर पड़ा। इसी प्रकार उसने पांच या छः आदमियों को तलवार के घाट उतार दिया परन्तु उसको पकड़ने में कोई भी सफल न हुआ और वे सब के सब थर थर कांपने लगे।

यह बात चारों ओर फैल गई और सिद्धराज जयसिंह को भी ज्ञात हुआ कि किसी चावड़ी राजपूतानी को धोखा हुआ है और उसने एक कोतवाल के लड़के और पांच छः दूसरे लोगों को मार डाला है तथा एक बन्द कमरे में बैठी अपनी रक्षा कर रही है। राजा ने आज्ञा दी, 'जाओ

और कह दो कि जब तक मैं न आऊँ कोई भी उससे कुछ न कहे; मैं अभी वहाँ आता हूँ।' सिद्धराज ने अपना घोड़ा मंगवाया और उस पर सवार हुआ। अश्वपाल और जगदेव ने प्रणाम किया। जगदेव को देख कर राजा आकर्षित हुआ। उसने अपने मन में कहा, 'यह तो बड़ा सुन्दर राजपूत है–मैंने पहले इसे यहां कभी नहीं देखा।' जगदेव घोड़े पर चढ़कर राजा के आगे आगे चला और राजा भी रास्ते भर जामोती के घर तक उसकी तरफ एकटक देखता गया। सिपाहियों ने भीड़ में रास्ता किया और वहां पहुंच कर राजा ऊपर चढ़ा। अश्वपाल और जगदेव उसके पीछे पीछे चले। ऊपर जाकर जयसिंह ने कहा 'बेटी चावड़ी! मुझे बताओ, तुम्हारा पीहर कहां है ? तुम्हारा सुसराल कहां है ? और तुम्हारा विवाह किसके साथ हुआ है ? ' चावड़ी ने देखा और समझ गई कि यह तो कोई बड़ा सरदार है, इसलिए उसने कहा, 'महाराज ! मैं राजा राज चावड़ा की लडकी और बीरज की बहन हूँ। मेरा विवाह धार के राजा उदयादित्य परमार के छोटे पुत्र के साथ हुआ है।' तब राजा ने पूछा, 'बेटी चावड़ी ! तूने मेरे आदमियों को क्यों मार डाला ?' इस पर चावड़ी ने क्रोधित होकर कहा, "महाराज ! यह गणिका धोखे से मुझे यहां ले आई और फिर एक गोला मेरा सतीत्व भ्रष्ट करने आया इसलिए मैंने उसे मार डाला। मैं राजपूत की लड़की हूँ; मरने से पहले कितनों ही को मारूँगी और अन्तिम दम तक लड़ती रहूँगी। फिर जैसी ईश्वर की इच्छा होगी वैसा होगा। मेरा पति राजकुमार भी यहीं कहीं शहर में है।" उसी समय जगदेव ने आगे आकर कहा, 'चावड़ी ! दरवाजा खोल दो; तुमने एक बड़ा भारी संकट मोल ले लिया है। जगदेव की आवाज को पहचान कर चावड़ी ने किवाड़ खोल दिया और उसकी गोद में आ गिरी। अब, जयसिंह जान गया कि यही जगदेव है।

उसने चावड़ी से कहा 'तुम मेरी धर्म की पुत्री हो।' यह कह कर उसने अपने नौकरों को बुलाया और कहा, 'एक रथ लाओ और दस दासियों सहित इनको एक सुन्दर घर में ले जाओ।'

अब, डूंगरीशी कोतवाल आया और राजा से विनय करने लगा, "महाराज! आपकी जय हो! मेरे घरका सत्यनाश करनेवाली के लिए आपने क्या आज्ञा दी?" राजा ने कहा, 'इस बेटी चावड़ी ने अपने पातिव्रत धर्म की रक्षा की है,। जब कोई गोला किसी राजपूत की बहू-बेटी का सतीत्व भ्रष्ट करने आवे तो उसे दण्ड मिलना ही चाहिये। क्या इस तरह के खोटे काम करने के लिए ही मैंने नगर को तुम्हारे भरोसे पर छोड़ रक्खा था?" इसके बाद आज्ञा हुई कि, उस मूर्ख को कोतवाल के पद से हटा दिया जावे और वह राजाको अपना मुँह भी न दिखा सके। यह कह कर उसने डूंगरशी के मालमते जायदाद आदि को भी जब्त कर लिया, और उसको देश निकाला देकर उसका घर लुटवा लिया। इस प्रकार राजा ने दूसरों के सामने कोतवाल का उदाहरण स्थापित किया। इसके पश्चात् सिद्धराज ने सभी वेश्याओं को पकड़वा लिया और उनके नाक कटवा कटवा कर सबको शीतला के वाहन (गधे) पर बिठाकर नगर में फिराया और बाहर निकाल दिया तथा उनके घर बार लुटवा दिये। चावड़ी को रथ में बिठाकर और दस दासियां उसकी सेवा के लिये देकर राजा ने एक हवेली में रख दिया। जयसिंहदेव स्वयं उसको वहां तक पहुंचाने गया और काम काज देखने के लिए एक खवास (१) उसके तैनात कर दिया। उसके घर में इतना खाने पीने का सामान भरवा दिया जो एक साल भर चले, और घर के उपयुक्त ही साज सामान का भी प्रबन्ध

(१) राजा का मुख्य सेवक। खास=मुख्य। खवास खास शब्द का बहुवचन है।

करवा दिया। उसके घरकी चौकसी के लिए एक पुष्ट चौकीदार भी नियुक्त किया गया तथा जो जो बातें उसके लिए आवश्यक थीं उन सब का प्रबन्ध कर दिया और उसने एक बार फिर घोषित किया कि वह उसकी धर्मपुत्री थी। इसके बाद जगदेव को साथ लेकर वह अपने दरबार में गया और वहाँ बैठकर उस से अन्य बातों की पूछताछ करने लगा। राजा जगदेव से अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसको अपने साथ भोजन कराया। रात को नौ बजे उसने पोशाक, मोतियों की माला और कण्ठा आदि भेंट करके उसको विदा किया। जगदेव ने घर जाकर चावड़ी को गले से लगा लिया और मोतियों का कण्ठा देकर कहा, 'तूने जल्दी ही अपना परिचय राजा से करवा दिया नहीं तो दस बीस दिन की देर हो जाती और किसी तीसरे मनुष्य द्वारा उसको मालूम करवाना पड़ता।' इस प्रकार बहुत रात तक वे उस दिन की घटनाओं के बारे में बातचीत करते रहे।

चावड़ी पातिव्रत धर्म का पालन करती थी इसलिए उसने उस दिन कुछ भी न खाया था। वह सवेरे तीन बजे ही उठी और रसोई तैयार करने लगी—पानी गरम होने को रख दिया। जब सब कुछ तैयार हो गया तो उसने जगदेव को जगाया। उसने कहा, 'आज इतनी जल्दी क्यों?' चावड़ी ने कहा, 'राजा आपको बुलावेंगे, कल उन्होंने आपसे बातें की थीं इसलिए आज वे आपके बिना एक क्षण भी न रहेंगे। मैंने जो नियम ले रखा है वह तो आप जानते ही हैं। इसलिये कल से मेरा उपवास ही चला आ रहा है; अब आप उठिये, स्नान कीजिये और आपके भोजन कर लेने पर मैं भोजन करूँगी।' जगदेव ने कहा, 'ठीक है।' वह उठा, स्नान आदि से निवृत्त हुआ और फिर दोनों ने भोजन किया। इतने ही में एक आदमी घोड़ा लेकर आया

और दरवाजे पर आवाज देने लगा। जगदेव अपनी स्त्री से विदा लेकर नीचे आया और घोड़े पर चढ़ कर दरबार को चला।

जब वह दरबार में पहुँचा तो राजाने खड़े होकर उसका आदर किया और फिर वे दोनों बातें करने लगे। राजा ने पूछा, 'आप मेरे यहाँ काम करेंगे ?' जगदेव ने उत्तर दिया, मैं तो दो रोटी पैदा करने के लिये ही घर से निकला था।' राजा ने फिर पूछा कि आप पट्टा (जमीन) लेंगे या नकद तनख्वाह लेते रहेंगे ?' जगदेव ने कहा 'महाराज ! नकद तनख्वाह लेना मुझे ठीक जंचता है; मैं एक हजार रुपये रोज लूँगा और अधिक से अधिक जोखिम वाले स्थान पर मुझे भेज दीजिये, यदि पीछे पैर रखूँ तो असल राजपूत नहीं।' तब राजा ने कहा, 'बहुत ठीक है।' यह कह कर उसने कोपाध्यक्ष को बुलाया और आज्ञा दी कि जगदेव को दो हजार रूपये प्रतिदिन के हिसाब से साठ हजार रुपया महीना दिया करो, इनकी तनख्वाह में कोई अड़चन न पड़े।' इसके बाद राजा ने जगदेव को एक शिरोपाव(१) भेंट किया और परवाना लिखकर उस पर अपनी मोहर करके दे दिया।

जब जगदेव घर चला गया तो पट्टण के बड़े बड़े सरदार आपस में कानाफूसी करने लगे, 'राजाने इसको क्यों नौकर रखा है ? सूर्य उगते ही इसको दो हजार रुपये मिल जाते हैं; अस्सी लाख घुड़सवारों की फौज आवेगी तब यह अकेला उसको कैसे हरा देगा ?' परन्तु राजा उससे निरन्तर प्रसन्न रहता, उसको अपने बराबर या सामने बिठाता और कुछ न कुछ भेंट किये बिना उसको घर न जाने देता। इस प्रकार यह क्रम एक वर्ष तक चलता रहा। एक वर्ष समाप्त होते होते जगदेव के एक कुँवर उत्पन्न हुआ जिसका नाम जगधवल रखा गया; और तीन वर्ष बाद

(१) सम्मान सूचक वस्त्रालंकार आदि।

दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम बीजधवल पड़ा। राजा इन छोटे छोटे राजकुमारों का बहुत लाड़ प्यार करता था। उसे छोटे बच्चों और भोले मनुष्यों की भोली बातों पर इनामें देने का बहुत शौक था। दान पुण्य में भी वह नित्यप्रति एक हजार रुपये खर्च करता था। इन बातों का फिर भाट लोग क्यों न उल्लेख करें? धर्मगुरु और धर्म का भला करने वाले का नाम याद करना भी नित्य के छः व्रतों में से एक व्रत है।

उस समय बड़ा कुँवर पांच वर्ष का और छोटा दो वर्ष का हो चुका था, भादों का महीना था, बादल छा रहे थे, काली अंधियाली रात थी, मेह बरस रहा था—मैंढक टर्रा रहे थे, मोर केकारव कर रहे थे, पपीहा बोल रहा था और बिजली के झपाके हो रहे थे, ऐसी भाद्रपद की घनघोर रात्रि थी जिसमें कायरों की छाती तो यों ही डर के मारे धड़क रही थी। ऐसी रात्रि में राजा ने एक शोर सुना जो ऐसा मालूम होता था मानों पूर्व दिशा में चार स्त्रियाँ तो प्रसन्न होकर गीत गा रही थीं और उससे थोड़ी ही दूर पर दूसरी चार स्त्रियां रो रही थीं। राजा ने पूछा 'यहां कोई पहरायती जग रहा क्या? जगदेव ने उत्तर दिया, "महाराज! पहरायती को क्या आज्ञा है?" राजा बोला, 'जगदेव! तुम अभी घर नहीं गये? राजकुमार जगदेव ने उत्तर दिया, "महाराज की आज्ञा के बिना मैं घर कैसे जा सकता था?" राजा ने कहा, 'तो अच्छा, अब घर जाओ।' जगदेव ने कहा, 'महाराज आप पहरायती के लिये क्या आज्ञा प्रदान करने वाले थे? मैं उस आज्ञा को पूरी करके ही जाऊँगा।' राजा ने पूछा, 'यह हम क्या शोर सुन रहे हैं?' जगदेव ने उत्तर दिया 'कुछ औरतें गा रही हैं और कुछ रो रही हैं।' तब राजा ने कहा 'यह कौन गा रही हैं और कौन रो रही हैं, और क्यों? मुझे इसकी खबर

लाकर दो, सुबह होते ही मैं इस बात को सुनना चाहता हूँ।' जगदेव ने प्रणाम किया और अपनी ढाल सिर पर रखकर तथा हाथ में तलवार लेकर अकेला ही चल दिया। राजा ने मन ही मन सोचा, 'भादों की रातें भयावनी होती हैं, ज़रा देखूँ तो यह जाता है या नहीं।' इस प्रकार सोच विचार करके एक काला कपड़ा चारों ओर लपेट कर सिद्धराज भी जगदेव के पीछे पीछे चल दिया। कुछ और भी सरदार पहरे पर थे। वेष बदले हुए राजा ने उनसे उनके नाम पूछे और उन्होंने अपने अपने नाम बतला दिए। उसने उनसे भी कहा कि पूर्व की ओर कुछ स्त्रियाँ गा रही हैं और कुछ रो रही हैं, राजा उनकी खबर मंगवाना चाहते हैं।' एक सामन्त ने कहा, "जिसको दो हज़ार रुपये प्रतिदिन मिलते हैं और जिसको नित्य इनामें मिलती हैं उसे भेजने दो अब तक तो वह मुफ्त की पगार पाता रहा है।" राजा ने यह सब चुपचाप सुन लिया। कुछ सरदारों ने कहा, 'हम इसकी खबर ले आएंगे।' फिर जब वे अपनी अपनी चारपाई में सोने लगे तो एक दूसरे से कहने लगे, 'ठाकुरो! उठो! उठो!।' इसके बाद जैसे अपने हथियार ही तैयार कर रहे हों इस तरह का शब्द करके और अपनी ढालों को खड़खड़ाते हुए वे ऊँघने लगे।

इतनी ही देर में जिधर से रोने की आवाज आ रही थी उधर पूर्व की ओर जगदेव रवाना हुआ। सिद्धराज भी उसके पीछे पीछे हो लिया। जगदेव नगर के दरवाजे पर पहुंचा और दरवान ने खिड़की खोलकर उसे बाहर जाने दिया। सिद्धराज ने कहा, मैं इस सरदार का खवास हूँ, यह कह कर वह भी बाहर निकला। जिधर स्त्रियाँ रो रही थीं उधर ही जगदेव आगे बढ़ा और उनसे कहने लगा, 'तुम कौन हो? तुम मृत्यु-लोक की रहनेवाली हो, देवियां हो, अथवा भूतनी या प्रेतनी, सिद्धा वा

शिकोतरी (१) हो ? इस आधी रात के समय क्यों विलाप कर रही हो, मुझे कहो, तुम्हें क्या दुःख है ?' वे बोलीं, 'पुत्र जगदेव ! इधर आओ, तुम कहां से आए हो ? उसने कहा, 'मैं तुम्हारे विलाप का कारण पूछने आया हूँ।'' उन्होंने उत्तर दिया, 'हम पाटण की योगिनियां हैं, कल दस बजते बजते सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु का समय है और इसीलिए हम विलाप कर रही हैं। अब भक्ति, बलिदान और दानपुण्य कौन करेगा ? हमें विलाप करना ही चाहिए।' राजा जहाँ छुपकर खड़ा था वहीं से उसने यह सब कुछ सुना। जगदेव ने फिर पूछा, 'परन्तु, ये जो गा रहीं हैं, वे कौन हैं ?'' योगिनियों ने कहा, 'जाकर तुम्हीं पूछ लो।' जगदेव उधर गया और प्रणाम करके बोला, 'तुम बधावे (२) गा रही हो, तुम में प्रधान कौन है ? और, तुमको ऐसी क्या प्रसन्नता है कि तुम इस प्रकार गीत गा रही हो ? वे बोलीं, 'हम दिल्ली की इष्टदेवियाँ हैं और सिद्धराज जयसिंह देव को लेने के लिए आई हैं, वह देखो विमान मौजूद है। यही हमारे गाने का कारण है।' जगदेव ने पूछा, 'उसकी मृत्यु कब होगी ?' देवियों ने जवाब दिया, 'प्रातःकाल सवा पहर दिन चढ़े जब वह स्नान आदि से निवृत्त होकर पूजा के लिए तैयार होगा और पीताम्बर पहनकर चौकी पर खड़ा होगा उसी समय हम उसे मार देंगी और वह शरीर छोड़ देगा।' जगदेव ने फिर पूछा, 'आज कल के समय में सिद्धराज जैसा कोई राजा नहीं है। कोई पुण्य, दान शपथ (व्रत) अथवा अन्य कोई ऐसा उपाय है क्या, जिससे कि वह संकट से बच जाय ?' देवियों ने कहा, 'इसका केवल एक ही उपाय है और वह यह है कि

---

(१) शाकिनी/डाकिनी के छः भेदों में एक भेद है।

(२) वर्धापन गीत।

यदि सिद्धराज की बराबरी का कोई सामन्त अपना मस्तक काटकर हमें दे दे तो जयसिंह की आयु बढ़ सकती है।' जगदेव ने कहा, 'क्या मेरे मस्तक से काम चल जायगा? यदि मैं अपना सिर उतार कर तुम्हें अर्पण कर दूँ तो क्या सिद्धराज की आयु और राज्य बढ़ जाएंगे? यदि ऐसा हो सके तो मैं तैयार हूँ।' देवियों ने यह बात मान ली और कहा, 'जो तू अपना सिर दे दे तो सिद्धराज बच सकता है।' उसने कहा, 'मुझे थोड़ी देर की छुट्टी दो, मैं जाकर यह सब वृत्तान्त अपनी स्त्री को सुना आऊँ और उसकी अनुमति ले आऊं।' यह सुनकर देवियां ठहाका मारकर हंसने लगीं और कहने लगीं, 'क्या कोई स्त्री अपने पति के मरण में सहमत होगी? परन्तु जा और उसे पूछकर जल्दी लौट आ।'

अब जगदेव घर की ओर चला। सिद्धराज ने मन में कहा, देखूँ अब यह वापस आता है या नहीं और चावड़ी क्या कहती है! यह सोचकर वह भी उसके पीछे पीछे चला। जगदेव घर पहुँचकर ऊपर के कमरे में गया और उसने चावड़ी का आलिङ्गन किया। सिद्धराज जयसिंह पति-पत्नी की बातचीत को ध्यान से सुनने लगा। वे नित्य की तरह पास पास बैठे। जगदेव बोला, 'चावड़ी! एक बहुत गम्भीर मामला है।' चावड़ी ने हाथ जोड़कर पूछा, 'नाथ! क्या आज्ञा है?' तब जगदेव ने आदि से लेकर अन्त तक सब कथा कह सुनाई और फिर कहा 'मैं तुम्हारी अनुमति लेने आया हूँ।' चावड़ी बोली, 'आज का दिन और रात धन्य है! ऐसे ही अवसर के लिए हम नमक खाते हैं। अपना जीवन अर्पित कर दो। इसी के लिए तो वेतन, धन और जमीनें मिलती हैं। आपने बहुत सुन्दर निश्चय किया है, राजपूत का यही धर्म है। यदि सिद्धराज जीवित रहें

और राज्य करते रहें तो सब कुछ ठीक है, और यदि वे ही न रहें तो जीवन का क्या मूल्य रह जायगा ? परन्तु, मेरे स्वामी ! एक प्रार्थना है, वह यह कि मैं जीवित रह कर क्या करूँगी ? केवल दो घड़ी जीवित रह कर मैं क्यों यह संकट अपने ऊपर लूँ (१) मैं भी अपना जीवन आप ही के साथ समाप्त कर दूँगी।' जगदेव बोला, 'परन्तु बच्चे–उनका क्या होगा ?'' चावड़ी ने कहा, 'उनका भी उसी समय बलिदान कर दो। फिर जगदेव बोला, 'यदि ऐसी बात है तो देर मत करो।' जगदेव अपने बड़े बच्चे का हाथ पकड़कर नीचे उतरा और चावड़ी उसके पीछे पीछे चली। सिद्धराज जयसिंह देव आश्चर्य से भर गये और बोले, 'धन्य राजपुत्र ! धन्य राजपुत्री !!'

इसके बाद वे चारों रवाना हुए और राजा भी यह देखने को कि क्या होता है उनके पीछे पीछे चला। जगदेव और चावड़ी देवियों के पास आकर पहुंचे। वे बोलीं, 'जगदेव ! तुम अपना मस्तक अर्पण करने को तैयार हो ?' वह बोला, 'मेरे शिर के बदले में तुम सिद्धराज की कितनी आयु बढ़ा दोगी ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'इसके बदले में वह बारह वर्ष और राज्य करेगा।' जगदेव ने फिर कहा, 'चावड़ी और इन दोनों लडकों में से प्रत्येक के जीवन का मूल्य भी मेरे जीवन के बराबर ही है इसलिये चारों की जिन्दगी के बदले में सिद्धराज की अड़तालीस वर्ष की आयु और राज्य बढा दो, मैं चारों का जीवन अर्पण करता हूँ।' देवियों ने कहा 'ऐसा ही होगा।' इसके बाद चावड़ी ने अपने बड़े पुत्र को आगे किया

(१) भावार्थ यह है कि उसके पति के मर चुकने के बाद तो वह सती होगी ही फिर, यही अच्छा है कि वह साथ ही साथ अपने प्राण भी समर्पित कर दे। दो घड़ी का वियोग भी क्यों भोगे ?

और जगदेव ने तलवार निकाल कर उसका शिर काट डाला। फिर वह अपने दूसरे पुत्र को चढ़ाने लगा, इतने ही में देवियों ने उसको रोक दिया और कहा, 'जगदेव ! हमने तुम्हारे, तुम्हारी स्त्री और दोनों बच्चों के अड़तालीस वर्ष स्वीकार कर लिए।' यह कह कर उन्होंने जगदेव के बड़े पुत्र के शव पर अमृत छिड़का और वह तुरन्त जी उठा। फिर, देवियों ने हँसकर कहा, 'तुम्हारी और तुम्हारी स्त्री की स्वामिभक्ति से हम बहुत प्रसन्न हैं।' इसके बाद उन्होंने दोनों बच्चों के शिर पर हाथ फेरा और उन्हें चावड़ी को सौंप दिया। उन्होंने कहा, 'जगदेव ! तुम्हारी स्वामिभक्ति के कारण हमने सिद्धराज का राज्य अड़तालीस वर्ष और बढ़ा दिया है।' यह कह कर उसको विदा किया, और उसने तथा चावड़ी ने नमस्कार करके अपने बच्चों को साथ लेकर घर की ओर प्रस्थान किया।

जगदेव की स्वामिभक्ति और उसकी स्त्री की पतिभक्ति को देखकर राजा गद्गद हो गया। वह राजमहल को लौट गया और पूर्ववत् लेट रहा। वह लेटे लेटे विचार करने लगा, 'जगदेव ! तू धन्य है ! तूने मेरा राज्य और आयु अड़तालीस वर्ष और बढ़ा दिये।' वह इसी प्रकार विचार करता रहा और उसे नींद नहीं आई। सुबह के चार बजते ही साईस जगदेव को बुलाने आ पहुंचा। उसने उठकर मुँह हाथ धोये और स्नान करके सर्वशक्तिमान् प्रभु की पूजा की। इसके बाद उसने माला जपी, ललाट पर तिलक किया और पौ फटते फटते तो राजा के पास उपस्थित होगया।

जब जगदेव आया तो राजा सिद्धराज दरबार में विराजमान था। उसने सिंहासन से उठ कर उसको गले से लगा लिया और अपने पास ही दूसरा सिंहासन लगवा कर आग्रह करके उस पर बिठाया। इसके

बाद उसने उन सामन्तों को बुलाया जिनको रात्रि के समय खबर लाने के लिए आज्ञा दी थी। जब वे आए तो उनसे पूछा, 'रात्रि के क्या समाचार लाए?' उन्होंने उत्तर दिया, 'दो गाड़ियों में चार माऊ(१) बैठी थीं। एक गाड़ी में बैठी हुई स्त्री के पुत्र उत्पन्न हुआ था इसलिए वे गाती थीं, और जो दूसरी में बैठी थीं उनका पुत्र मर गया था, इसलिए वे विलाप कर रही थीं।' सामन्तों की यह बात सुनकर सिद्धराज ने एक घृणापूर्ण हँसी हँसी और कहा, "तुम एक एक लाख के पटायती(२) हो, तुम मेरे राज्य के बड़े बड़े स्तम्भ हो, यदि तुम्हीं खबर लाकर न दोगे तो कौन देगा?" ऐसा कह कर उसने जगदेव की ओर देखा और रात्रि का वृत्तान्त कह सुनाने के लिए कहा। जगदेव ने कहा, "जैसा सामन्तों ने कहा है वैसा ही हुआ होगा।" राजा ने फिर कहा, "जो कुछ हुआ हो सो सच सच कहो, मैंने सब कुछ देख सुन रखा है।" जगदेव ने कहा, "मैंने कुछ देखा हो तो कहूँ, मुझे कहानी बना कर तो कहना नहीं आता।" तब जगदेव की उदारता और धैर्य की प्रशंसा करते हुए जयसिंह कहने लगा, "सामन्तो! भाइयो! और सरदारो! इस कथा को सुनो। आज प्रातःकाल का पहला पहर मेरे मरण का समय था, परन्तु इन जगदेव के प्रताप से मुझे अड़तालीस वर्ष का राज्य और आयु और मिल

---

(१) दुष्काल पड़ने पर अथवा कोई अन्य संकट पड़ने पर घरबार छोड़ कर निकलने वाली स्त्रियाँ 'माऊ' या मऊ कहलाती हैं। मारवाड़ के बनिये माऊ कहलाते हैं। वे कच्छ काठियावाड़ में आकर बस गये हैं और आज तक 'माऊ' नाम से पुकारे जाते हैं। 'माऊ' या 'मऊ' का अर्थ दुःखी मनुष्य है। जब मारवाड़ में अकाल पड़ता है तब वहाँ के लोग देशान्तरों में जाकर निर्वाह करते हैं। इसीलिए भविष्याकलन करते हुए भड्डली ने भी कहा है कि यदि ऐसे चिन्ह दृष्टिगोचर हों तो 'मऊ मालवे जाय।'

(२) एक लाख रुपया वार्षिक आय की जागीर के उपभोक्ता।

गये हैं। इन्होंने अपने दोनों पुत्रों सहित अपना और अपनी स्त्री के शिर मेरे लिए देवियों को अर्पण कर दिये थे, और बड़े लड़के का शिर तो प्रत्यक्ष ही काट कर चढ़ा दिया था। इस शूरवीर सरदार का साहस और स्वामिभक्ति देख कर तथा इसकी स्त्री के पति-प्रेम से प्रसन्न होकर देवियों ने सब कुछ लौटा दिया और मुझे भी आयु प्रदान की। आज से जो मैं राज्य करूँगा वह राजकुमार जगदेव ही के प्रताप से करूँगा। तुम लोग अपने किसी लाभ के लिए झूँठ बोलते हो, मैंने यह सब कुछ अपनी आंखों से देखा है और अपने कानों से सुना है। उसको जो तनख्वाह मिलती है उसे देखकर तुम लोग कुढ़ते हो परन्तु यदि मैं लाख अथवा करोड़ मुद्रा भी नित्य खर्च करूँ तो मुझे इसके समान राजपूत नहीं मिल सकता" ऐसा कहकर राजा जयसिंह ने जगदेव को अपनी बड़ी पुत्री का नारियल भेट किया और साथ ही दो हजार ग्रामों का पट्टा भी कर दिया। इसके उपरान्त उनके व्यक्तिगत खर्चे के लिए उसने उन्हें पांच सौ गांव और दिए। इसके पश्चात् कड़े, मोतियों का कंठा, शिरपेच और बहुत से बहूमूल्य जवाहरात भेट करके उनको विदा किया। घर लौट कर, जो कुछ हुआ वह सब उसने चावड़ी को कह सुनाया। उसने कहा, 'आप राजा हो, आपके अन्तःपुर में दो चार राजकन्याएँ तो चाहिए ही, आपने बहुत अच्छा किया, सम्बन्ध बहुत ठीक हुआ है।'

इसके अनन्तर शुभ मुहूर्त देखकर जगदेव का विवाह संस्कार पूरा हुआ। सब लोग सिद्धराज जयसिंह और जगदेव को बराबर समझने लगे। इस प्रकार उन्होंने दो तीन वर्ष सुख सम्पत्ति का पूर्ण उपभोग करते हुए बिताए।

भुजनगर में राजा फूलजी राज करता था। उसके लाखा फूलाणी(१)

---

(१) कच्छ में बोलाड़ी ग्राम के समीप अणघोर गढ़ में राजा फूल (८५५ से ८८० ई० तक) की राजधानी थी। डवाय नदी की एक क्षुद्र धारा के

नाम का एक पुत्र था जिसके दो पुत्रियाँ थीं। एक बार उसने विचार किया कि ये लड़कियां विवाह के योग्य होगई हैं इसलिए सुयोग्य वरों की तलाश करना चाहिए। अपने मन्त्री को बुलाकर उसने सिद्धराज जयसिंह देव के पास नारियल भेजने की सलाह की और अन्त में जाड़ेजी का नारियल पाटण आ ही तो पहुँचा। जयसिंह ने भी बरात तैयार की और जगदेव तथा अन्य सामन्तों के साथ रवाना होकर भुज नगर आ पहुंचा। बड़े समारोह के साथ उनका स्वागत करके नगर प्रवेश कराया। राजा फूल को जगदेव के कुल की बात पहले ही विदित थी और फिर इस अवसर पर उसके प्रधान ने यह कह कर और भी दृढ़ता ला दी कि, 'जगदेव एक सच्चा राजपुत्र, शूरवीर और धीर पुरुष है, छोटी राजकुमारी इसको देना चाहिए।' इस कुमारी का नाम फूलमती था इसका नारियल जगदेव को दिया गया। राजा फूल के मंडप पर सिद्धराज सोलंकी और जगदेव पँवार के साथ दोनों जाडेजियों का विवाह हो गया। कुलमर्यादा के अनुसार वरदक्षिणा आदि मिलने पर उन्होंने विदा मांगी और पाटण आकर सुख से रहने लगे। इस प्रकार बहुत दिन बीत गए। उन्हीं दिनों

तट पर बोलाड़ी का कोट अणघोर गढ़ तथा कतिपय जैन मन्दिरों के खंडहर अब भी विद्यमान हैं। परन्तु यहाँ ऐतिहासिक विसम्वाद है। लाखा फूलाणी तो जयसिंह के परदादा मूलराज के हाथों ही मारा जा चुका था। फिर वह इस समय कैसे हो सकता था? वास्तव में, यह लाखा जाड़ाणी था न कि फूलाणी। जाम लाखा जाडाणी के सात कन्यायें थीं, उनके लिए योग्य वर न मिलने के कारण वे जल मरी थीं—यह बात प्रसिद्ध है। परन्तु उनमें से दो बड़ी कन्याओं का लग्न होगया हो और बाकी पाँच जल मरीं हों—यह सम्भव है। जाम लाखा जाडाणी की राजगद्दी लखियार वियरा में थी। इसलिए सिद्धराज के समय में लाखा फूलाणी नहीं था वरन् यह लाखा जाडाणी था। इसका समय १०४७ ई० से ११७५ तक था।

चावड़ी के पीहर से दूत उसे लिवाने आए और वह जगदेव की आज्ञा प्राप्त करके दोनों बालकों सहित अपने पीहर चली गई ।(१)

अब, आगे की कथा मनोरञ्जक होने के बदले विस्मय-जनक अधिक है। कवि ने वर्णन किया है कि किस तरह जगदेव ने उपकारों से अपने स्वामी को वश में कर लिया था। कहते हैं कि सिद्ध-राज की जाड़ेजी रानी पर काल-भैरव का असर था। (२) जगदेव ने उस

---

(१) इस कथा की ऐतिहासिक उपयोगिता दिखाने के लिए यह बात बताना आवश्यक है कि जो विवाह नहीं हुआ हो अथवा जिन कुलों में आपस में सम्बन्ध नहीं हुआ हो उनके विषय में यह लिखना कि सम्बन्ध हुआ था—इतनी स्वतन्त्रता किसी भाट को नहीं हो सकती क्यों कि ऐसा करने से वे दोनों ही कुल उस पर अप्रसन्न हो जायेंगे।

(२) इस कथा का प्रसंग इस प्रकार मिलता है—"जाड़ेजी बहुत रूपवती थी। वह मृगनयनी पद्मिनी के समान शोभा वाली थी। उसके अंगराग में नित्य पांच सौ रुपये की सुगन्धित सामग्री खर्च होती थी। स्नान के समय जब उसके नहाने का जल बहता तो उस प्रवाह पर सुगन्धि के लोभी भँवरे मँडराया करते थे—इससे रानी को बड़ा दुःख पहुँचा। कोई काल भैरव रानी पर आसक्त होगया और नित्य आकर रानी में आविष्ट होने लगा। जब सिद्धराज को काल भैरव की बात मालूम हुई तो उसे बहुत दुःख हुआ और वह इसी चिन्ता से नित्य सूखने लगा और बहुत ही उदास मालूम पड़ने लगा। अब वह किसी भी प्रकार के रागरंग व राज्य कार्य में भाग नहीं लेता था और न उसका चित्त ही लगता था।

इस प्रकार पाँच महीने बीत गये। जगदेव ने इसका कारण जानने का निश्चय किया। एक दिन रात पड़ने पर सभी दरबारी लोग राजा की आज्ञा ले लेकर चले गये परन्तु जगदेव नहीं गया। राजा ने उसे भी जाने के लिए कहा तो उसने निवेदन किया, "महाराज! आपके चित्त में कोई गहरी चिन्ता है—आप

कालभैरव के साथ लड़ाई लड़ी और उसको जीत लिया। इसके अतिरिक्त यह भी वर्णन मिलता है कि, एक बार चामुण्डा माता एक भाट स्त्री के वेश में दान मांगने के लिए जयसिंह के दरबार में गई और जगदेव ने उस को अपना मस्तक अर्पण करके उदारता की प्रतिस्पर्द्धा में अपने स्वामी सिद्धराज को नीचा दिखाया। ऐसा प्रतीत होता है कि

उसे मुझे कहिये।" तब सिद्धराज ने कहा, "कुँवरजी! मेरे मन के दुःख को मेरा मन ही जानता है:—

हिवड़ा भीतर दव जले, कोय न जाणे सार।
कै मन जाणै आपणो, कै जाणै करतार॥

मेरे हृदय में जो अग्नि जल रही है उसके रहस्य को कोई नहीं जानता। या तो मेरा मन जानता है या भगवान जानता है।

कुँवरजी! यह बात कहने की नहीं है, परन्तु कहे बिना पार भी नहीं पड़ती क्योंकि आप मेरे घर के हो। आज आप ड्योढी (रनिवास) में रह कर रानी की दशा को देखो तो मेरे मन की सारी वेदना आपके समझ में आ जावेगी।

इसके बाद सिद्धराज तो सो गया और जगदेव ढाल, तलवार तथा शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर अनार और चमेली की बाड़ी में छुप कर बैठ रहा। आधी रात बीतते बीतते काल भैरव ने आकर राजा को नीचे पटक दिया, पलंग का पाया उसके सीने पर रख दिया और रानी में प्रवेश करके उसको तरह तरह की यातना देने लगा। यह देखकर जगदेव ने समझ लिया कि सिद्धराज के दुःख का कारण यही हो सकता है और वह इस दुःख को किसके आगे कहे? इसके बाद तलवार हाथ में लेकर वह भैरव पर टूट पड़ा और भैरव से कहने लगा, "पर-काया में प्रवेश करने वाले चोर! सावधान! बहुत दिनों से तू बच बच कर निकल जाता था—आज जगदेव से तेरा पाला पड़ा है। अब तेरी खैर नहीं है।" फिर भैरव ने अपना बहुत सा चमत्कार दिखलाया परन्तु जगदेव ने उसकी एक भी न चलने दी और उसको इतना तंग किया कि वह बहुत ही निर्बल पड़ गया। अब वह कहने लगा, 'मुझे छोड़दो आज से मैं कभी इस शरीर में नहीं आऊँगा।' इसके बाद उसका आवेश

इस घटना के बाद जयसिंह जगदेव पर रुष्ट हो गया क्योंकि उसने उसको पैरों तले कुचल कर संसार में उसकी कीर्ति को मन्द कर दिया था। शायद, इसी रोष के परिणामस्वरूप जयसिंह ने धार पर चढ़ाई करने का विचार किया। जब जगदेव को राजा के इस विचार का

उतारने के लिए रानी को एक तहखाने में उतारा गया और भैरव को कैद करके रानी को बाहर निकाल लिया। दूसरे दिन सवेरे ही जगदेव परमार दरबार में पहुँचा और वहाँ सिद्धराज ने उसको दो हजार गांव, कड़े, मोती आदि दिये।

काला भैरव और गोरा खेतरपाल (क्षेत्रपाल) ये दोनों चामुण्डा माता के अखाड़े के वीर थे। एक बार गोरे खेतरपाल (क्षेत्रपाल) को अकेला देखकर माता ने पूछा, 'काला कहां है?' तब क्षेत्रपाल ने उत्तर दिया 'माताजी! आपसे क्या छुपा हुआ है?' फिर माता ने ज्ञानदृष्टि से देखा तो सब बात मालूम हो गई। वह बोली, 'मैंने उसे पहले ही कह दिया था कि जहाँ जगदेव परमार हो वहाँ मत जाना परन्तु वह माना नहीं।' ऐसा कह कर उसको छुड़ा लाने के लिए माता ने भाट-स्त्री का रूप धारण किया।

माता का रूप इस प्रकार का था—लम्बे लम्बे दाँत, देखने में विकराल, माथे के बाल बिखरे हुए और तेल में सने हुए—सफेद शेतर (ऊँट) के बालों जैसे। कपाल पर सिन्दूर लगा हुआ था, कन्धों पर काली ओढ़नी पड़ी हुई थी और वह काले ऊन का बना हुआ वस्त्र तथा सिन्दूर में लदबद हुई काँचली (चोली) पहने हुई थी। ऐसा रूप धारण किए हुए हाथ में त्रिशूल लेकर वह सिद्धराज के दरबार में आई। उसने राजा को बाएँ हाथ से आशीर्वाद दिया और जगदेव को दाहिने हाथ से। साथ ही, जगदेव के सामने जाते ही उसने अपना शिर भी ढँक लिया।

इतने ही में जगदेव तो किसी प्रसंगवश अपने डेरे पर चला गया और सिद्धराज ने माता से अपनी अपेक्षा और जगदेव के प्रति अधिक सम्मान प्रदर्शित करने का कारण पूछा। उसने उत्तर दिया 'जितना सम्मान मैंने जगदेव के प्रति प्रकट किया है वह उससे भी अधिक के योग्य है।' यह सुनकर राजा के मन में

पता चला तो उसने नौकरी छोड़ने का निश्चय किया क्योंकि कहावत चली आती है कि :—

जहँ पँवार तहँ धार है, धार तहाँ परमार।
धार बिना परमार नहिं, नहिं पँवार बिन धार।

अतः घर जाकर जगदेव ने अपनी स्त्री जाडेजी से सलाह की, "राजा अपने से शत्रुता करने पर तुला हुआ है, अब यहां रहने से कोई लाभ नहीं है। यदि वह आग्रह भी करे तो हम यहाँ नहीं रहेंगे। हम अपना

कुछ ईर्ष्या उत्पन्न हुई और उसने कहा, 'जा, तू पहले जगदेव के पास ही जाकर जो कुछ मांगना हो वह मांग ला, वह जो कुछ देगा उससे चौगुना दान मैं तुझे दूंगा।' तब कंकाली भाटणी (चारणी) ने कहा, हे सिद्धराज ! इस पृथ्वी पर परमार की बराबरी कोई नहीं कर सकता अतः तुमको उसकी होड़ नही करना चाहिए, क्योंकि—

प्रथम बड़ा परमार, पृथ्वी परमारां तणीं।
एक उजेणी धार, त्रीजुं आबू बैसणीं॥

इस पर सिद्धराज ने कहा, 'अवश्य ही जो कुछ जगदेव तुझे देगा उससे चार गुना तौल कर मैं दूंगा। उसका इतना बखान करती है तो पहले उसी के पास जा।'

तदनुसार कंकाली भाटण जगदेव के पास गई और दरबार में घटी घटना का सम्पूर्ण विवरण उसे सुनाकर दान माँगा। जगदेव ने विचार किया, 'मैं जो कोई भी वस्तु इसको दान में दूंगा वही राजा भी दे सकता है। इसलिए कोई ऐसी वस्तु देनी चाहिए कि जो राजा दे ही न सके।' यह सोचकर उसने अपना मस्तक दान में देने का निश्चय किया। इस विषय में जब उसने अपनी रानियों से सलाह की तो सोलंकिनी रानी ने उसे कहा, 'आप सर्वस्व दे दीजिए परन्तु शीश मत दीजिये।' जाड़ेजी रानी ने कहा, 'हे स्वामी, एक आप अपना शीश दीजिए और दूसरा मेरा। राजा इन से चार गुने अर्थात् आठ मस्तक कहाँ से लावेगा ?।' इस प्रकार भाटणी के कार्य के लिए अन्तःपुर में ही बहुत सा

भाग्य आजमा चुके हैं।' रानी ने कहा, "एक राजवंशी के समान आपकी कीर्ति संसार में व्याप्त हो चुकी है और आपको सभी शोभा प्राप्त हो चुकी है, अब आपको घर चल कर माता पिता से मिलना चाहिये, मैं भी अपने सास श्वसुर को नमस्कार करूँगी। आपके सम्बन्धी भी कहेंगे कि राजकुमार ने नाम पैदा किया है, इसलिए अब शीघ्र ही अच्छा मुहूर्त देख कर चलना चाहिये।"

इसके बाद जगदेव ने ज्यौतिषी को बुलवाया और शुभ मुहूर्त निकलवा कर शहर के बाहर अपना तम्बू तनवाया। इतने ही में चावड़ी भी अपने पीहर से आ पहुँची और अपने पति से मिलकर बहुत प्रसन्न हुई। जगदेव ने उसको पूरी बात कह सुनाई और वह भी शीघ्र ही चलने को तैयार हो गई। उन्होंने अपना पूरा खजाना ऊँटों पर लाद लिया और अपने हाथी, घोड़े, रथ, पालकी ढोर तथा दास दासी आदि

वादविवाद करने के पश्चात् जगदेव ने अपना मस्तक काटकर थाल में रख कर भेट कर दिया। भाटणी भी प्रसन्न होती हुई वह भेट लेकर राजा के पास गई परन्तु चलते समय जगदेव की स्त्री से कहती गई, 'मैं सिद्धराज के पास जाकर आऊं तब तक इसके धड़ का रक्षण करना और मङ्गल गीत गाती रहना।'

दरबार में पहुँचकर कंकाली ने राजा से कहा, 'मैं जगदेव से दान ले आई हूँ, लाओ तुम अब इससे चार गुना दान दो।' यह कह कर उसने थाल पर से कपड़ा हटाया। जगदेव का मस्तक देख कर राजा आश्चर्य में भर गया और बहुत सोच विचार के बाद इतना ही कह सका, 'मैं तुझे अपना और अपने मुख्य घोड़े का सिर दे सकता हूँ, परन्तु, तू ही अपने हाथ से मेरा सिर उतार ले।' भाटणी ने कहा, "मैं योगिनी तथा भिक्षुणी हूं, दाता के हाथ से दिया हुआ दान ही लेती हूँ, बिना दिए हुए पदार्थ के हाथ भी नहीं लगाती। यदि दान ही देना है तो अपने हाथ से सिर काट कर दे।" परन्तु सिद्धराज की हिम्मत न हुई और वह बगलें झांकने लगा। तब भाटणी ने कहा, अपने महल

पूरे घरबार को साथ लेकर रवाना हुए। जब सब सामान शहर के बाहर निकल चुका तो जगदेव अपने घोड़े पर सवार होकर राजा के दरबार में गया। सिद्धराज ने कहा, 'आओ! यहाँ बैठो!' जगदेव ने उत्तर दिया, "महाराज! आपकी सेवा करते हुए मुझे बहुत समय होगया है, अब मुझे घर जाने की आज्ञा मिलनी चाहिए।" राजा ने उसे अपने पास रोकने का बहुत आग्रह किया परन्तु जगदेव न माना। प्रधान और अन्य सामन्तों ने भी बहुत कुछ कहा पर वह घर जाने की आज्ञा माँगता ही रहा। अन्त में, राजा और समस्त सभा को नमस्कार करके जगदेव रवाना हुआ। सिद्धराज की पुत्री भी अपने माता-पिता, बन्धु-बान्धवों, सखी सहेलियों से मिलकर विदा हुई।

इस प्रकार पाँच हजार सवार साथ लेकर जगदेव पाटण से रवाना हुआ। आठ हजार पैदल उसके आगे आगे चलने लगे। मंजिल

पर चढ़कर जोर से घोषणा करो कि जगदेव जीता और तुम हारे, फिर इस थाल के नीचे से सात बार निकलो तो तुमको छोड़ सकती हूँ।' सिद्धराज बड़े संकट में पड़ गया परन्तु अन्त में छुटकारा पाने के लिए उसे ऐसा करना ही पड़ा।

इसके पश्चात् मस्तक सहित थाल लेकर कंकाली वापस जगदेव के डेरे पर पहुँची और धड़ से मस्तक जोड़ कर पुनर्जीवित करने लगी। तब रानी कहने लगी, 'हैं, हैं, यह क्या करती हो, क्या मेरे स्वामी दान में दिए हुए मस्तक को फिर स्वीकार करेंगे?' यह सुनकर कंकाली भी देखती रह गई—परन्तु एक क्षण रुक कर उसने मस्तकवाला थाल एक ओर रख दिया और रानी को धड़ पर से कपड़ा हटाने को कहा। सबने देखा कि जगदेव के धड़ पर सिर निकल रहा है। पुनर्जीवित जगदेव बैठा हुआ और उसने सुना—जय जगदेव! जय वीर!'

अब, जगदेव ने प्रसन्न होकर भाटणी से कहा, 'मेरा सौभाग्य! जो तू मांगे सो ही दूं।' तब कंकाली ने कहा, 'मुझे और कुछ नहीं चाहिए, काल-भैरव को छोड़ दे।' जगदेव ने भैरव को तुरन्त ही तहखाने से मुक्त कर दिया। उसने

पर मंजिल तय करते हुए वे टूंक टोडे आकर पहुंचे। दूतों ने चावड़ा राजा को जाकर समाचार सुनाये और बधाई का इनाम माँगा। राजकुमार बीरज ने उनको पुरस्कार दिया, नौबत तथा अन्य वाद्य बजने लगे, शहर सजाया गया और बहुत धूमधाम से जगदेव उन लोगों से मिलने गया। सब लोग उससे गले मिले और मोतियों की न्यौछावर हुई। जगदेव वहाँ पर एक महीने तक रहा। वहां के लोगों ने पाटण का हाल सुन तो रखा ही था परन्तु चावड़ी ने आदि से अन्त तक की कथा फिर कह सुनाई जिसको सुनकर सभी को बहुत प्रसन्नता हुई।

एक महीने बाद विदा लेकर जगदेव धार को रवाना हुआ। यद्यपि वहां पर पहले ही खबर पहुँच चुकी थी, तो भी उन्होंने अपनी ओर से दूत को आगे भेजा। समाचार सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने दूत को जवाहरात, कड़े और मोती उपहार में दिये। दो मुख्य दूतों ने जाकर सोलंकिनी को सूचना दी। जगदेव की अगवानी के लिए सवारी (जलूस) की तैयारियां होने लगीं और नगर सजाया गया। राजा उदयादित्य हाथी घोड़े और पालकियां साथ लेकर उसका स्वागत

उसका एक पैर खण्डित कर दिया था इसीलिए तभी से खोड़ा (लंगड़ा) क्षेत्रपाल कहलाने लगा। उसको साथ लेकर कंकाली चली गई।

दोहा—संवत ग्यारह चहोतरा, चैत्र तीज रविवार।
शीश कंकाली भाट ने, दिय जगदेव उतार ॥

इसी आशय का एक दोहा 'धार राज्य का इतिहास' में पृ० ४५ पर इस प्रकार है—

संवत ग्यारसौ इक्यावन, जेत सुदि रविवार।
जगदेव सीस समर्पियो, धारा नगर पँवार ॥

करने आगे आया। जगदेव ने अपने पिता के चरण छुए, और अपने भाइयों, भतीजों, सरदारों, सामन्तों, अन्य राजपूतों, मन्त्रियों और सेठ साहूकारों से प्रेमपूर्वक अच्छी तरह मिला। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और कविगण उसकी कीर्ति का गान करने लगे।

इस प्रकार सब की राम जुहार स्वीकार करते हुए शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हाथियों सिपाहियों व परिकर सहित उन्होंने नगर में प्रवेश किया। जगदेव ने जाकर अपनी माता सोलंकिनी के चरणों में प्रणाम किया। उसने पहले उसके शिर पर हाथ रखे और फिर अपने शिर पर रख लिये मानों उसका दुःख और शोक अपने ऊपर ले लिया हो।(१) फिर उसकी तीनों बहुओं ने उसके चरण छुए। रानी अपने पुत्र और पुत्र-वधुओं को देख कर बहुत प्रसन्न हुई और कहने लगी कि, "मैं इस संसार में बहुत भाग्यशालिनी हूँ जो मैंने अपने पुत्र के वीरतापूर्ण कार्यों का वृत्तान्त अपने कानों से सुना और आँखों से देखा।" बच्चे अपनी दादी की गोद में जा बैठे। तब राजा ने प्रसन्न होकर कहा, "पुत्र! तुमने परमारों की पांच सौ शाखाओं को उज्वल कर दिया। वत्स! तुम्हारे जैसा कोई नहीं हुआ और न होगा। तुमने सिद्धराज को बचाया और उसके जीवन की रक्षा की तथा भैरव को वश में किया। फिर, राजा से अड़कर तुमने उसका मानमर्दन किया। सोलंकिनी! तुम धन्य हो, जिसने ऐसे पुत्र को जन्म दिया और जो इस संसार में मौजूद है। तुम्हारा नाम अमर होगया है।"

इसके बाद बाघेली रानी ने आकर राजा के चरण छुए और जगदेव का सत्कार करने लगी। तब जगदेव ने उसको रोक कर

---

(१) इस तरह करने को 'वारणा लेना' (वारी जाना) कहते हैं।

कहा, "माँजी ! मेरी कीर्ति आप ही के प्रताप से हुई है।, मैं आप ही का कहलाता हूँ।" इस प्रकार अच्छे आदमी बुराई में से भी भलाई निकाल लेते हैं:—

"किसी के अवगुणों की ओर ध्यान न दो, चाहे वे उतने ही क्यों न हों जितने कि बबूल में काँटे–तुम तो उसके गुणों को ही ग्रहण करो–जैसे (बबूल की) छाया में कांटे नहीं होते।"(१)

इस प्रकार विचार करते हुए उसने बावेली के चरणों में प्रणाम किया और रणधवल का आलिङ्गन किया। बहुओं ने भी उन दोनों का उचित सत्कार किया।

इसके थोड़े ही दिनों बाद उदयादित्य को रोग ने आ घेरा और उसके बचने की कोई आशा न रही। उसने अपने सभी सामंतों, जगदेव तथा रणधवल को अपने पास बुलाया और वह उन सभी को यों कहने लगा, "मैं जगदेव को राज्य-चिन्ह प्रदान करता हूँ और राज्य के समस्त अधिकार भी उसी को सौंपता हूँ।" इसके बाद उसने रणधवल को सौ गांव दिये और जगदेव के कहने में चलते रहने को कहा। जगदेव को भी रणधवल की रक्षा करते रहने के लिए कहा। इस प्रकार जगदेव को गद्दी पर बिठा कर राजा देवलोक को सिधारा और रानी बाघेली तथा सोलंकिनी उसके साथ सतियाँ हो गई। राजा जगदेव राज-काज चलाने लगा।

---

(१) अवगुण उर धरिये नहीं, यदपि बहुत से होंय।
काटे घने बबूल में, छाया में सुख सोय॥

जगदेव पंद्रह वर्ष की अवस्था में घर छोड़कर निकला था और उसने अठारह वर्ष तक सिद्धराज की नौकरी की, तथा गद्दी पर बैठने के बाद उसने ५२ वर्ष तक राज्य किया। इस प्रकार वह ८५ वर्ष की अवस्था तक जीवित रहा। अन्त में, राजकुमार जगधवल को गद्दी पर बिठाकर वह स्वर्गलोक को गया। चावड़ी, सोलंकिनी और जाडेजी रानियां उसके साथ हँसती हँसती सतियां होगईं और अपने स्वामी के साथ स्वर्ग सिधारीं।

कवि ने इस कथा को इस प्रकार समाप्त की है, "जगदेव की यह बात सुनने से सत्य, अरोप, धैर्य, शौर्य, बुद्धिमत्ता और उदारता का पूर्ण उदय होगा। यदि राव राणा इस बात को सुनेंगे तो उनकी कायरता, कृपणता और अनुदारता नष्ट हो जावेगी, और उन पर कभी संकट नहीं पड़ेगा। इस प्रकार विचार करके पाठक इसको पढ़ेंगे, कविगण इसका गान करेंगे और राव, राजा, सामंत आदि सुनेंगे। इसके कहने

[अंग्रेजी मूल में जगदेव द्वारा कंकाली भाटण को शीश दान करने की कथा की ओर इंगित मात्र किया है। गुजराती अनुवाद की टिप्पणी में अवश्य ही यह कथा दी हुई है। इसी कथा का अनुश्रुत हिन्दी रूप देश के प्रसिद्धनामा विद्वान् डाँ० वासुदेवशरणजी अग्रवाल निर्मित 'जायसी कृत पदमावत' की संजीवनी व्याख्या के परिशिष्ट में भी प्रकाशित हुआ है जो राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त द्वारा लिपिबद्ध किया गया है। आरम्भ में ही कहा जा चुका है कि राजस्थानी में मूल कथा 'राजस्थानी वातां' में निकल चुकी है। इसी की कितनी ही हस्तप्रतियाँ हमें पुरातत्व मन्दिर में भी मिलीं परन्तु वे प्रायः सूर्यकरणजी पारीक वाली कथा के ही अनुरूप हैं-कहीं २ थोड़ा बहुत अन्तर है। ये सब गद्य में हैं। इनके अतिरिक्त एक पन्द्रह छप्पय छन्दों में निगुम्फित पद्यमयी कथा भी प्राप्त हुई है जो परिशिष्ट में मुद्रित है।

तथा सुननेवालों को वही आनन्द प्राप्त होगा जो अमरपुरी में वास करनेवालों को मिलता है।"

इस प्रकार प्रतापी और शूरवीर जगदेव की वात समाप्त होती है।

उक्त सामग्री के आधार पर ही ऊपर की कथा लिखी गई है। श्री गुप्तजी-वाली कथा से तो इस में अन्तर अवश्य है परन्तु राजस्थानी कथा की दशाधिक प्रतियों के अनुसार यह संक्षिप्त रूप परिपूर्ण किया गया है। इनमें जगदेव द्वारा मस्तक काट कर दान में देने के सम्वत् अवश्य ही भिन्न हैं। 'राजस्थानी वार्ता' में यह सम्वत् ११६१ दिया है। इसके अन्तिम अंश में जयसिंह विषयक कतिपय अन्य सूचनायें भी मिलती हैं। जो इस प्रकार है:—

"सम्वत् इग्यारह इक्याणवै, चैत तीज रविवार।
सीस कंकाली भट्ट नै, जगदे दियो उतार॥"

सिद्धराव जैसिंहजी, खांप सोलंखी, तिणनैं छिन्नूं हजार गांव हुता। संवत् ११३३ तपिया, नै चोटी मांहे गंगा बहै। महारुद्ररो अवतार हुवौ। सिद्धरो पिण वर थो, तिण सूं सिद्धराव कहाणों। इसो सिद्धराव हुवौ। भीमभार्या निर्मलदे पुत्र। कर्ण राजा भार्या, मिलणदे पुत्र। सिद्धराव जैसिंघ देव हुवौ, तिण मालवापति, नरवर राजा नैं वांध्यौ, मोहबक पाटण धणीं मदभ्रम राजानै जीत्यौ। जिणरै ३२ राजकुली सेवा करै। संवत् ११६६ सिद्धराव जैसिंघ वैकुण्ठ गया। सिद्धराव जैसिंघ दे रै प्रधांन कुशल मन्त्री साजनदे हुवौ।"

प्रकरण ६

रा' खँगार

प्रबन्धचिन्तामणिकार लिखता है कि सिद्धराज ने वर्धमान (आधुनिक बढवाण) के अहीर (ग्वाल) राना नवघन के विरुद्ध एक फौज भेजी थी जिसने जाकर वर्द्धमान व अन्य कितने ही शहरों के घेरा डाला परन्तु कई बार पीछे हटना पड़ा। अन्त में, रा'खँगार के विरुद्ध स्वयं सिद्धराज ने प्रस्थान किया और उसके भानजे के कपट-व्यवहार की सहायता से उसे पकड़ लिया तथा मार डाला। उसकी रानी ने बहुत शोक प्रकट किया और रा'खँगार के साथ प्राणत्याग करने का अवसर न मिलने पर विलाप करने लगी।

"राजा के मरने से वर्धमान तो नष्ट हो चुका, मेरे पिता के वंश में भी कोई नहीं है अब मेरा जीवन उजाड़ है, भोगावह (नदी) मेरा उपभोग करे।"

सोरठा—वाढी तो वढवाण, विसरतां न वीसरइ।
सोना समा पराण, भोगवह तइं भोगवीई।"

यहाँ नवघन (नौघण) और रा'खँगार, इन दोनों नामों में गड़बड़ी पड़ती है। वास्तव में ये दो भिन्न भिन्न पुरुषों, पिता और पुत्र के नाम हैं। ये यदुकुल के राजा थे और गिरिनार अथवा जूनागढ़ में

राज्य करते थे। इनमें से सिद्धराज का विपक्षी जिसको उसने मारा था रा' खँगार था और बढ़वाणमें जो रानी सती हुई थी वह इसी की स्त्रीथी।

एक भाट का कहना है कि रा'खँगार (१) के पिता रा' नवघन ने माही (माहीकांटा) नदी पर स्थित उमेठा के राजा को दबाकर अपनी

---

(१) जूनागढ़ के यादव (चूड़ासमा) राजाओं में चौथा रा' ग्राहरिपु (गारित्यो १ ला) ई० स० ६४० से ६८२ तक था। वह सन् ६७६ ई० में मूलराज से पराजित हुआ। उसके बाद उसका पुत्र रा'कवाट (५वाँ रा') सन् ६८२ से १००३ ई० तक रहा। इसने आबू के आन्ना राजा को दस बार पकड़ कर छोड़ दिया; परन्तु शिवाल द्वीप के परमार राजा वीरमदेव (कोई मेघानंद चावड़ा भी कहते हैं) राजाओं को पकड़ कर लकड़ी के पींजड़ों में बन्द कर दिया करता था। उसने यादवों के अतिरिक्त ३६ कुल के राजाओं को तो कैद कर ही लिया था और सोमनाथ पट्टण का वाहन (जहाज) बताने के बहाने से बुलाकर रा' को भी दगे से पकड़ कर कैद कर लिया। वहाँ से रा' ने एक चारण के द्वारा अपने मामा ऊगा वाला के पास समाचार भेजे और उसने आकर उसको छुड़ाया।

कवाट के बाद उसका पुत्र रा' दयास (६) उपनाम महीपाल प्रथम सन् ११०३ से १११० ई० तक हुआ। सोमनाथ की यात्रा करने आई हुई अणहिलवाड़ा की रानियों व कुमारियों के साथ अपमानसूचक व्यवहार करने के कारण दुर्लभसेन सोलंकी ने इस पर चढ़ाई की और इसकी राजधानी वामन-स्थली को जीत लिया। रा' दयास अपने कुटुम्ब के साथ जूनागढ़ के ऊपरकोट किले में छुपकर बैठ गया और सोलंकी ने उसके घेरा डाल लिया।

चूड़ासमा राजपूतों के भाट का कहना है कि जब रा' दयास को जीतना कठिन जान पड़ा तब एक वीजल नाम के चारण ने दुर्लभसेन से कहा, "यदि आप मुझे भारी इनाम देने का वचन दें तो मैं अकेला ही वह काम करके दिखा सकता हूँ जो आपका लश्कर नहीं कर सकता।" राजा ने इनाम देना

विजय की निशानी में उसकी कन्या लेली। हंसराज माहीड़ा नामक उस कन्या का भाई था, उसने कहा 'यह मेरे पिता की कायरता थी जो उसने इस तरह कन्या देदी, इसके बदले में मैं किसी न किसी दिन नवघन को मार डालूंगा, उसने यह धमकी खुल्लमखुल्ला दी थी अतः नवघन ने भी शपथ ली कि मैं कभी न कभी हेमराज माहीड़ा का वध करूँगा।"

स्वीकार कर लिया और चारण, माँगने वाली जाति का होने के कारण बेरोक-टोक किले में चला गया।

रा' दयास सोरठी रानी से विशेष प्रेम करता था इसलिए उस रानी का राजा पर बहुत प्रभाव था। इस रानी ने रात्रि को ऐसा स्वप्न देखा कि, किसी चारण ने राजा से दान में उसका मस्तक माँगा और उसने उसे सहर्ष दे दिया। इस स्वप्न के सच्चे हो जाने की आशंका से उसने राजा को एक कमरे में बन्द कर दिया और कोई भी वहाँ पर न जा सके, ऐसा प्रबन्ध कर दिया।

जब चारण को यह बात मालूम हुई तो वह सदर (प्रधान) बुर्ज के पास बैठ कर रा' के यश-कवित्त बोलने लगा। रा' ने ऊपर खिड़की में से देखा तो चारण दिखाई पड़ा। उसे ऊपर बुलाने के लिये राजा ने एक रस्से से लकड़ी बाँध कर नीचे लटका दी और जब चारण लकड़ी पर बैठ गया तो उसे ऊपर खींच लिया। इस विषय का एक सोरठा है—

चारण चढियो लोढ़, मयो गढ़े मागणें।
सोरठ रा' दयास, से हणे न कदि कहाड़े॥

ऊपर आने पर रा' ने चारण से कहा, 'जो कुछ इच्छा हो वह माँगो।' चारण ने उसका शिर माँग लिया। जब वह अपना मस्तक काट कर देने को तैयार हुआ तो रा' के सब कुटुम्बी आ गए और रानी ने चारण से कहा—

"हे भाई मंगनहार, मैं तुझे हाथी, घोड़े, अपना चन्द्रहार और बहुत सी वस्तुएं दे दूंगी, तू मेरे सरदार (पति) को छोड़ दे।" चारण ने उत्तर दिया,

इस रानी के कारण नवघन को इसी एक झगड़े में पड़ना पड़ा हो यह बात नहीं है वरन् एक ऐसा ही और भी झगड़ा हो चुका था। वह यह है कि जब रानी को लेकर बरात जूनागढ़ लौट रही थी तब जसदन के पास भोंयेरा ग्राम के पास पहुँचने पर वहां के राजा ने, यह सुनकर कि नवघन रानी लिए जा रहा है, हँसकर कहा 'मेरा गढ़ न होता तो वह उसे ले जाता अब तो रानी को यहीं छोड़ देना चाहिए।' जब नवघन ने यह बात सुनी तो उसने यह प्रतिज्ञा की 'मैं इस गढ़ को नष्ट भ्रष्ट कर दूँगा और इस राजा को मार डालूँगा।"

"हाथी तो बहुत से मिल जावेंगे और घोड़ों से तबेले भर जावेंगे परन्तु मुझे शिर देने वाला कहीं नहीं मिलेगा।"

रा' की बहन ने यह समझकर कि भाई का मन डिग गया तो अपकीर्ति होगी इसलिए बोली-'हे भाई, मंगणहार को अपना शिर काटकर दे दो, दानी लोगों की सी दुग्धधवल कीर्ति अदाताओं के लिए प्राप्त करना बहुत ही कठिन है।"

रा' की माँ ने इस प्रकार कहा, "हे दयास, यदि तू मंगनहार को अपना शिर नहीं देगा तो भाट लोग तेरे बाद में तेरे विषय में क्या कहकर कीर्तिगान करेंगे ?"

अन्त में, रा' दयास ने अपना मस्तक काट कर चारण को दे दिया और वह उसे लेकर जाने लगा तब सोरठी रानी ने उसे माँग लिया और दामोदर कुण्ड पर उसके साथ सती हो गई। सोलंकी सेना ने जूनागढ़ पर कब्जा कर लिया और वहाँ पर अपनी तरफ का थानेदार नियुक्त करके पाटण की ओर प्रस्थान कर दिया। रा' दयास की दूसरी रानी अपने पुत्र नवघन को लेकर आलिदर वोडीघर के अहीर देवाईत के घर रही। जब जूनागढ़ के थानेदार को इसकी खबर हुई तो उसने देवाईत को बुलाकर हाल पूछा। उसने कहा कि यदि कुँवर मेरे घर पर छुपाया गया होगा तो मैं लिखता हूं कि वह आपको सौंप दिया जावें। इसके बाद उसने इस आशय का एक सोरठा लिखकर अपने पुत्र ऊगा

एक बार, सिद्धराज सोलंकी और नवघन दोनों नल नामक स्थान के पास सोरठ देश की सीमा पर पाञ्चाल देश में भिड़ गए। तब नवघन को हथियार पटककर और मुँह में तिनका लेकर जयसिंह की शरण लेनी पड़ी। उस समय उसने यह प्रतिज्ञा की कि 'मैं पाटण के दरवाजे को तोड़ डालूँगा।' उन्हीं दिनों सिद्धराज का एक घरू चारण था, जिसने नवघन का उपहास करते हुए एक कविता लिखी जिससे रा' बहुत

के हाथ भेजा "गाड़ी दलदल में फँस गई है, हमें उसे निकालना है; हे ऊदा के पुत्र तू इसमें हाथ लगाकर इसे ऊँची कर।" पत्र मिला, परन्तु थानेदार को नवघन नहीं मिला। इसलिए वह देवाईत को साथ लेकर आलीधर बोडीधर आया परन्तु देवाईत ने नवघण के कपड़े अपने पुत्र ऊगा को पहनाकर थानेदार को सौंप दिया और उसने उसे तुरन्त मार डाला। इसके दस वर्ष बाद अर्थात् सन् १०२० में देवाईत ने अपनी जाति के लोगों को इकट्ठा किया और उनकी सलाह से अपनी लड़की जेसल का विवाह रचाया। उस अवसर पर उसने थानेदार आदि को भी निमन्त्रण देकर जीमने बुलाया और उनको मारकर जूनागढ़ की गद्दी पर रा' नवघण को बिठा दिया।

सातवें रा' नवघण (प्रथम) ने १०२० ई० से १०३४ ई० तक राज्य किया। इसके समय में दुष्काल पड़ने के कारण सौराष्ट्र के बहुत से लोग सिन्ध और मालवे की तरफ चले गए थे। इन्हीं लोगों के साथ देवाईत की लड़की जेसल (जसल) भी, जिसको नवघण ने अपनी धर्म की बहन बना रखी थी, अपने पति संस्तिया के साथ सिन्ध चली गई। वहाँ पर सिन्ध के राजा हमीर सुमरा ने उसके रूप को देखकर उसे अपने अन्तःपुर में रखने का यत्न किया। जेसल ने अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखकर व्रत का बहाना करके राजा से छः मास का समय मांगा और उधर अपने धर्म के भाई नवघण को मदद के लिये आने को लिख भेजा, "हे भाई, तुम्हारे न होते हुए जो बात नहीं हो सकती थी वह तुम्हारे होते हुए हो रही है। इसलिए हे नई सोरठ के स्वामी नवघण ! अपने मन में विचार करो।" इस पर रा' नवघण ने बड़ी भारी सेना

नाराज हुआ और फिर प्रतिज्ञा कि 'मैं उस भाट के गाल काट डालूँगा।'

राव नवघन बीमार पड़ा और वह अपनी प्रतिज्ञाओं में से एक भी परी न कर पाया था कि मौत आ पहुंची। उसने अपने चारों पुत्रों को अपने पास बुलाया और कहा कि उनमें से जो कोई उसके चारों कामों को पूरा करने की प्रतिज्ञा करेगा वही गद्दी पर बैठेगा। सबसे बड़ा कुमार रायघन था उसने भोंयेरा के गढ़ को नष्ट करने की प्रतिज्ञा की। राव ने उसे चार परगने दिए, इसकी शाखा के वंशज रायजादा कहलाते हैं। दूसरा कुँवर शेरसिंह था। उसने हंसराज माहीड़ा का वध करने की प्रतिज्ञा की। उसको भी कुछ गांव मिले और वह सरवैया राजपूतों की शाखा का आदि-पुरुष हुआ। तीसरा कुमार चन्द्रसिंह अम्बाजी का भक्त

लेकर सिन्ध पर चढ़ाई कर दी और सुमरा राजपूतों को परास्त करके अपनी बहन को छुड़ा लाया।

इसके बाद नवघण का पुत्र (८) रा' खँगार (प्रथम) हुआ जिसने १०४४ से १०६७ तक राज्य किया। उसके पुत्र (६) रा' नवघण (द्वितीय) ने १०६७ से १०६८ ई० तक राज्य किया। इसी ने पाटण का दरवाजा तोड़ने व चारण के गाल फाड़ने आदि की प्रतिज्ञा की थी। इसके चार लड़के थे (१) रायघण उपनाम भीम जिसको गाँफ व भडली ग्राम मिले—इसके वंशज रायज़ादा कहलाए। (२) शेरसिंह या शत्रुसाल, इसको धंधुका मिला और इसके वंशज सरवैया कहलाए। (३) चंद्रसिंह उपनाम देवघण इसको ओशम चौरासी मिली और इसके वंशज अपनी पूर्व शाखा चूडासमा के नाम से ही प्रसिद्ध रहे और (४) रा' खँगार (द्वितीय) हुआ जो सौराष्ट्र का १० (वां) यादव राजा हुआ। इसने १०६८ ई० से १११५ ई० अथवा १६ वर्ष तक राज्य किया। इसी का वध करके सिद्धराज ने सज्जन नामक मंत्री को जूनागढ़ का शासक नियुक्त किया था।

था और इसलिए हाथ में उनकी चूड़ी (१) पहनता था। उसने अपने भाइयों की प्रतिज्ञा के अतिरिक्त पट्टण का द्वार तोड़ने की प्रतिज्ञा की परन्तु चारण के गाल काटने की बात उसने स्वीकार नहीं की क्योंकि वह इसको अपकीर्ति करने वाला काम समझता था। उसे भी कुछ गांव मिले और वह चूड़ासमा राजपूतों का पूर्वज हुआ। सबसे छोटे कुमार खँगार ने चारों काम अकेले ही पूर्ण करने का भार अपने शिर पर लिया इसलिए राव नवघन ने अपने जीवनकाल में ही उसे जूनागढ़ की गद्दी पर बिठा दिया और इसके थोड़े दिन बाद ही वह मर गया।

राव खँगार ने अपनी पहली ही सांग्रामिक चढाई में भोंयरा के किले को तोड़कर वहां के राजा को मार डाला। इसके पश्चात् उसने हंसराज माहीड़ा का वध किया और तदुपरान्त जब सिद्धराज मालवे गया हुआ था तो उसने एक फौज लेकर पट्टण पर चढाई कर दी और पूर्वीय दरवाजे को तोड़ डाला। वापस लौटते समय मार्ग में कालड़ी के देवड़ा राजपूत की पुत्री राणक देवड़ी (देवी) को जिसका विवाह सिद्धराज से होने वाला था, हर लाया और उससे विवाह कर लिया। जब वह इतने पराक्रम कर चुका तो उसी चारण ने उसकी प्रशंसा की। इस पर खँगार ने हीरों और मोतियों से उसके मुँह को इतना भर दिया कि सभा के सभी लोग चिल्ला उठे 'चारण के गाल फट गये, फट गए' यह सुन कर खँगार बोला 'इसके गाल काटने का यही प्रकार है, तलवार से ऐसा नहीं किया जा सकता था।'

---

(१) देवी का भक्त होने के कारण चूड़ी पहनता था इसलिए वह चन्द्रचूड़ कहलाने लगा और उसके वंशज चूड़ासमा कहलाए।

इसके बाद सिद्धराज ने जूनागढ़ पर चढ़ाई की और बारह वर्ष तक लड़ता रहा परन्तु सफल न हुआ। अन्त में, खँगार के भानजे देसल और वीसल दोनों ही खँगार से नाराज होकर सिद्धराज से जा मिले और उसको एक गुप्त मार्ग बतला दिया जिसमें होकर वह सेना सहित किले में घुस गया। सिद्धराज ने खँगार को मार डाला और राणकदेवी को बढ़वान ले गया। वहाँ जाकर रानी सती हो गई और सिद्धराज ने देसल और वीसल को उनके नाक काटकर छोड़ दिए।

जिस समय सिद्धराज ने राणक देवी को पकड़ा तब उसे यह बात मालूम नहीं थी कि उसका पति मर चुका है। वह तो यह समझी हुइ थी कि वह भी सिद्धराज का बन्दी था। बढ़वान पहुँचने पर सिद्धराज ने उससे कहा 'तेरा पति मार डाला गया है' तू मेरे साथ विवाह कर ले(१)।" रानी ने उसके अन्तःपुर में प्रवेश करने से इन्कार किया और कहा 'मुझे सत चढ़ गया है—मुझे मेरे पति का शव दे दो, अन्यथा मैं तुम्हें शाप दे दूँगी।' सिद्धराज डर गया और उसने खँगार का शव दिलवा दिया। फिर उससे पूछा "मैंने जो अपराध किया है उसका क्या प्रायश्चित्त करूँ ?" राणकदेवी ने कहा, "इस स्थान पर मेरे नाम पर एक देवालय बनवा दो-तुम्हारा राज्य दृढ़ हो जावेगा। परन्तु, तुमने मेरे बच्चों का वध किया है इसलिए मैं शाप देती हूँ कि तुम

---

(१) सिद्धराज ने शायद इंगलैण्ड के रिचार्ड के समान इस प्रकार राणक देवी से अनुनय की होगी, 'हे बानू ! जिसने तुझे तेरे पति से मुक्त किया है उसने तुझे उससे भी अच्छा पति प्राप्त करने में सहायता दी है।' "राजा हेनरी को मैंने मारा है परन्तु ऐसा करने के लिए मुझे तेरी सुन्दरता ने उत्साहित किया है।········ छोटे एडवर्ड के मैंने कटार मारी थी परन्तु, मुझसे यह कार्य तेरे दिव्य मुखमंडल ने करवाया है।" [किंग रिचार्ड तृतीय (१)—२]

निस्सन्तान ही मर जाओगे और तुम्हारे बाद गद्दी पर बैठनेवाला न रहेगा।' ऐसा कहकर वह अपने पति के साथ चिता में जल गई। (१)

सोरठ के लोग अब भी जूनागढ़ के रावों को बहुत याद करते हैं। उनके विषय में वहां एक कहावत भी प्रचलित है जो इस प्रकार है–

'जे सांचे सोरठ गढ्यो, गढ़ियो राव खँगार।
सो सांचो अब टूटिगो, जातो रह्यो लुहार॥'

'सोरठ देश और राव खँगार को जिस सांचे से गढ़ा गया था वह टूट गया और गढ़नेवाला लोहार भी अब नहीं रहा।'

रावों के नगर में नैऋर्त्य कोण से एक मार्ग आता है। यह सड़क मीलों तक खेती बाड़ी से हरे भरे और चित्रोपम प्रदेश में होकर आती है। इस प्रदेश में आमों, इमलियों व अन्य कई प्रकार के सघन विशाल वृक्ष खड़े हैं। सामने ही काले पत्थर की पर्वत-श्रेणी दिखाई देती है जो घनी वृक्षावली से खूब ढकी हुई है। यह पर्वत-श्रेणी उत्तर-पूर्व की ओर लगभग बारह मील तक चली गई है। पर्वत-श्रेणी के मध्य

---

(१) मेवाड़ के इतिहास में लिखा है कि, द्वारका के पास कालीबाव नामक स्थान के परमार राजा की पुत्री ने चित्तौड़ के बप्पा से असिल नामक एक पुत्र को जन्म दिया। उसने सोरठ में भूमि प्राप्त की और वह असिल गेहलोत जाति का पूर्वज एवं संस्थापक हुआ। ऐसा कहते हैं कि उसका पुत्र विजयपाल सिंगराम डाबी के पास से बलपूर्वक खम्भात को लेने के प्रयत्न में मारा गया था। विजयपाल की स्त्रियों में से एक स्त्री की अकाल मृत्यु हुई। इसी स्त्री के गर्भ से असमय में ही सेतू नाम का एक पुत्र हुआ। इस प्रकार अकाल मृत्यु होने पर हिन्दू लोगों का विश्वास है कि मृतक आत्मा चुडैल (एक प्रकार की भूत योनि) हो जाति है, इसीलिए सेतू से जिस शाखा का आरम्भ हुआ वह चूडैल जाति कहलाई। असिल की बारहवीं पीढ़ी में बीज हुआ जिसने अपने मामा गिरनार के राव खँगार से सोमल प्राप्त किया परन्तु बाद में वह जयसिंहदेव के हाथ से मारा गया।

भाग में एक बड़ा नाका है जो 'दुर्गा का प्रवेश द्वार' कहलाता है। इसके आगे ही एक सुन्दर घाटी दिखाई पड़ती है जिसके मुख पर नेमीनाथ का पवित्र पर्वत, गिरनार खड़ा है जिसका निम्न भाग दो नीची पर्वत श्रेणियों से मिला हुआ है। गिरनार पर्वत घाटी के इस प्रवेशद्वार के सुदृढ और स्थूल भाग से बहुत ऊँचा उठा हुआ है और इसका उन्नत श्याम शिखर काले पत्थरों के कारण ऐसा दिखाई देता है मानों इसका ऊपरी अर्द्ध भाग बादलों से ही ढका हुआ है।

इस घाटी के मुखभाग पर ही प्राचीन नगर जूनागढ़ बसा हुआ है। इसके कोट की नीची दीवारें आस पास के घने जंगलों से ढक सी गई हैं। उत्तर पूर्व के कोने में राजपूतों का पुराना गढ़ 'ऊपरकोट' खड़ा है जो कभी राव खँगार और उसकी मन्दभागिनी रानी का निवासस्थान था। इसकी बुर्जों के नीचे होकर बहने वाली सोनरेखा नदी पर किले की छाया निरंतर पड़ती रहती है। यह किला इस देश की किले-बन्दी का एक उत्तम नमूना है।(१) प्राचीन होने के कारण आदरणीय और अपनी विशेष स्थिति के कारण यह अद्भुत दुर्ग, अपनी गहरी खुदी हुई खाई, अनेक बड़ी बड़ी बुर्जों और रन्ध्रयुक्त प्राकारों से, जो इसकी दृढ़ता एवं महानता के सूचक हैं, अवश्य ही दर्शक को प्रभावित किये बिना नहीं रहता यदि श्रीकृष्ण की छाया के समान आज तक वर्तमान यदुकुल की उस रहस्यमयी महिमा की कल्पना में वह न खो जाय जो इस किले से सम्बन्धित है।

---

(१) यह कोट ग्राहरिपु ने, (ग्राह अरिसिंह उपनाम गारित्यो) जिसकी मूलराज के साथ आटकोट के पास लड़ाई हुई थी, बनवाया था।

खँगार के नगर के दरवाजे से ही यात्रियों के पदचिह्नों से बनी हुई एक पगडंडी सोनरेखा नदी के किनारे किनारे, उसके उद्‌गम स्थान, गिरनार के शिखर तक चली गई है। इसी पर्वत की तलहटी में बड़ी बड़ी चट्टानों में होकर न्यायी और उदार अशोक ने भी एक मार्ग बनवाया था। यहां यात्रियों को इसी मार्ग से प्रवेश करना पड़ता है। इसके आगे लगभग एक मील तक एक टेढ़ामेढ़ा चक्करदार मार्ग पर्वत के पश्चिमी ढालू स्कंध के अन्त तक चला गया है। इसी मार्ग से चलते चलते यात्री एक पहाड़ी की तलहटी में आ पहुँचता है। इस पर्वत की बाकी चढ़ाई में खुले हुए काले विशाल और कठोर ग्रेनाइट पत्थर की चट्टानें दिखाई पड़ती हैं, जो अपने ढंग की निराली ही शकल की हैं। इसके शिखर पर पहुँच कर एक समतल भूभाग आता है जिसके चारों ओर कोट खींचकर एक दुर्ग सा बना लिया गया है। यह पहाड़ी के बिलकुल किनारे पर ही स्थित है और यहां पर जैन तीर्थङ्करों के चैत्य बने हुए हैं। इस मैदान से गिरनार के शिखर पर चढ़ने का झाड़ियों में होकर एक बीहड़ मार्ग उस स्थान तक चला गया है जहां अम्बादेवी का मन्दिर है। इस पर्वत की छः अलग अलग चोटियां हैं जिनमें सबसे ऊँची चोटी गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध है और दूसरी कालिका के नाम से। कालिकादेवी के शिखर पर बड़ी बड़ी घोर तांत्रिक क्रियायें होती हैं और यदि यह सत्य है कि कालिका मनुष्य का भक्षण करने वाले अघोरियों से प्रसन्न रहती है तो, इसीलिए वह अघोरेश्वरी माता कहलाती है। इस मैदान से केवल चार ही शिखर स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। ये शिखर गोरखनाथ के देवालय से देखने पर तो अलग अलग दिखाई पड़ते हैं परन्तु थोड़ी ही दूरी पर से ये गिरनार के, शंकु के से आकार वाले, शिखर में विलीन हुए से देख पड़ते

हैं। मैदान में बने हुए नेमीनाथ के मन्दिरों की बनावट के विषय में वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस धर्म के माननेवालों ने, शत्रुञ्जय के समान ही इस स्थान पर भी मन्दिर बनवाकर, इसको भारतवर्ष में अपने धर्म का परम महिमामय स्थान बनाने के लिए धन खर्च करने में कोई कसर नहीं रखी। (१)

राणक देवी का निम्नलिखित वृत्तान्त तूरी नामक घुमन्तू गायकों से प्राप्त हुआ है। जिस प्रकार उच्चवर्ण के हिन्दुओं के साथ प्रसिद्ध भाट चारणों आदि का सम्बन्ध है उसी प्रकार ढेढ आदि नीच वर्ण के हिन्दुओं के साथ इन तूरी लोगों का सम्बन्ध होता है। यजमानों से प्राप्त भिक्षा पर ही इन लोगों का निर्वाह होता है और इसके बदले में ये आधी गद्य और आधी पद्यमय लोक-कथाएं सारंगी पर गा गा कर सुनाते हैं। इस प्रकार मनोविनोद करते हुए ये लोग देश भर में घूमते रहते हैं।

सिन्ध देश में पावर लोगों का राज्य है। (२) वहां का शेर पावर नामक राजा था। उसके मूलनक्षत्र में एक पुत्री उत्पन्न हुई। ज्यौतिषियों ने राजा से कहा कि इस नक्षत्र में पैदा होने वाली लड़की का जिसके

---

(१) देखिये बंगाल एशियाटिक सोसायटी जर्नल ७, पृ० ८५५।

(२) पावर कच्छ में है। शेर पावर (शेर पँवार) उस समय थोड़े से गाँवों का ग्रासिया (सरदार) था। जब लाखा जाड़ाणी ने लाखियार वियरो को अपनी राजधानी बनाया उस समय शेर पावर वहाँ का राजा कहलाता हो, ऐसा सम्भव है। अंग्रेजी मूल में 'रोर' लिखा है यह 'शे' को 'रो' पढ़ने की भूल के कारण हुआ है।

साथ विवाह होता है वह अपना राज्य खो देता है। यह बात सुनकर राजा बहुत दुखी हुआ और उसने अपनी लड़की को जंगल में भिजवा दिया। वहां से हणमतिया नामक कुम्हार उसको ले गया और उसका पालन पोषण किया। वह लड़की इतनी सुन्दरी थी कि लाखाफूलाणी(१) ने भी उसके साथ विवाह करने का सन्देश भेजा। कुम्हार ने उत्तर दिया, "इस विवाह से पूर्व अपने जाति के लोगों से पूछ लेना मेरे लिए आवश्यक है।" इस पर लाखाने उसको बहुत डराया धमकाया तब वह वहां से भाग कर सोरठ देश में मजेवड़ी चला गया तथा वहीं अपने कुटुम्ब सहित रहने लगा।

एक समय पट्टण के राजा सिद्धराज जयसिंह के चार दरबारी भाट, लाला भाट, भंगड भाट, चञ्च भाट और डगल भाट विदेश-भ्रमण करते हुए मजेवड़ी जा पहुँचे और वहाँ उन्होंने हणमतिया कुम्हार की सुन्दर पुत्री को देखा। जिस मार्ग से वह निकल जाती थी वहीं उसके गुलाबी चरण-चिह्न अंकित हो जाते थे। भाटों ने सोचा 'यह रमणी तो सिद्धराज के अन्तःपुर की शोभा बढ़ाने योग्य है, और इस शुभ समाचार को लेकर हम लोग जब पट्टण पहुंचेंगे तो अवश्य ही पुरस्कार मिलेगा।' इस प्रकार विचार करके वे लोग पट्टण पहुंचे और सिद्धराज जयसिंह ने सम्मान पूर्वक उनका स्वागत किया। उस समय उसके सोलह रानियाँ थीं। उसने उन भाटों को सोलह दिन तक अलग अलग रानियों के महल में अपने साथ भोजन करने को निमन्त्रित किया। ज्योंही भाट लोग भोजन करके उठते प्रतिदिन वे एक दूसरे की ओर देख कर गर्दन हिला देते। राजा ने इसका कारण पूछा तो भाटों ने उत्तर दिया, "महाराज! हमने आपकी सोलहों रानियों

(१) सम्भवतः लाखा जाड़ाणी।

को देख लिया परन्तु उनमें से एक में भी पद्मिनी (१) स्त्री के सम्पूर्ण लक्षण नहीं मिले।' राजा ने कहा, 'तुम लोग मेरे घरू भाट हो, देश देश में भ्रमण करते हो इसलिए मेरे लिए ऐसी स्त्री तलाश करो जो पद्मिनी के पूर्ण लक्षणों से युक्त हो और ज्योंही तुमको ऐसी स्त्री मिले लग्न निश्चित करके विवाह पक्का कर दो।'

भाट लोग पद्मिनी स्त्री की खोज में निकले, बहुत से देशों में घूमे फिरे परन्तु सफल न हुए। अन्त में उन्होंने सोरठ में मजेवड़ी जाने का ही निश्चय किया। उधर, जब से ये लोग पहले मजेवड़ी आकर गये थे तब से हडमतिया अपने मन में सशंक हो रहा था कि सिद्धराज के भाटों ने इस लड़की को देख लिया है इसलिए कोई न कोई आपत्ति आने वाली है। अतः वह उस लड़की को एक तहखाने में छुपा कर रखने लगा। भाटों ने मजेवड़ी पहुंचते ही कुम्हार से कहा, 'अपनी पुत्री की सगाई पट्टण के राजा से कर दो।'' कुम्हार ने उत्तर दिया "मेरे तो कोई लड़की ही नहीं है।'' भाटों ने फिर कहा, "हमने उसे अपनी आंखों देख लिया है, तुम उसकी सगाई न करोगे तो भी सिद्धराज उसे न छोड़ेगा। फिर, तुम्हारा ऐसा भाग्य कहां कि तुम एक साधारण कुम्हार होकर पट्टण के महाराजा सिद्धराज के श्वसुर बनो।'' इस प्रकार कुछ धमकी और कुछ लालच देकर उन्होंने कुम्हार को सगाई करने के लिए राजी कर लिया और दो तीन महीने बाद का ही लग्न निश्चित किया। इसके पश्चात् वे पट्टण पहुंचे और राजा को पूरा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने कहा "मैं कुम्हार की लड़की से शादी नहीं करूँगा क्यों कि

---

(१) स्त्रियाँ चार जाति की होती हैं—पद्मिनी, चित्रिणी, हस्तिनी और शंखिनी। इनमें पद्मिनी सबसे उत्तम होती है।

ऐसा करने से मेरे कुल की प्रतिष्ठा भंग हो जायगी ।" भाटों
उत्तर दिया—

"आंगण आंबो मोरियो, साख पड़ी घर बार ।
देवे उपाई देवड़ी, नहीं जाते कुम्हार ।।"

'एक मनुष्य के घर आम का पेड़ लगा हुआ है और उसका प
दूसरे के घर जा पड़ा । इसी प्रकार देवड़ी परमात्मा की पैदा की हुई
वह कुम्हार की लड़की नहीं हो सकती ।'

यह बात समझकर तथा उनके मुँह से देवड़ी के रूप एवं गुणों
प्रशंसा सुनकर राजा विवाह करने को तैयार हो गया और मंडप र
कर उसने गणेशजी को निमन्त्रित कर दिया ।

इसी समय, जब यह सब कुछ हो रहा था, जूनागढ़ में चूड़ास
वंश का राव खँगार राज्य करता था जिसकी बहन का विवाह सिद्धरा
के किसी निकट सम्बन्धी से हुआ था । उस समय रा' खँगार की बह
अपने दोनों पुत्रों देसल और बीसल सहित जूनागढ़ में ही रहती थी
एक दिन देवल ने अपने मामा से कहा, "अपने राज्य में मजेवड़ी ना
का एक नया गांव बसा है, मैं उसे देखने जाता हूँ ।" इस प्रकार आ
प्राप्त करके अपने भाई बीसल को साथ लेकर वह मजेवड़ी गया
वहां कुम्हार की लड़की की सुन्दरता का हाल सुनकर वे वापस जूनाग
आये और राव खँगार से पूरा वृत्तान्त कह सुनाया । उन्होंने कह
"अपने प्रान्त में एक कुम्हार के ऐसी सुन्दर लड़की है जो आप
दरबार को शोभित करने लायक है । सिद्धराज के घरू भाट उसक
देखने के लिए वहाँ आये थे और राजा के साथ उसकी शादी

दिन नियत कर गये हैं। यदि पट्टण का राजा अपने देश में से ऐसी सुन्दरी को ले जावेगा तो तुम्हारी क्या शोभा रहेगी ?' यह सुन कर चूडासमा ने देवल से कहा, "मेरा खांडा ले जाओ और उस सुन्दरी को यहां मेरे दरबार में ले आओ।" देवल तलवार लेकर गया और कुम्हार से कहा, 'अपनी लड़की की शादी राव खँगार के खांडे से कर दो।' कुम्हार ने कहा, 'लड़की की सगाई तो पट्टण के राजा सिद्धराज जयसिंह से हो चुकी है, थोड़े दिन बाद ही वहां से बरात आने वाली है। यदि मैं अपनी लड़की राव खँगार को ब्याह दूँ तो वह (सिद्धराज) मुझे अवश्य ही मार डालेगा।' देवल ने उत्तर दिया, "मैं उस लड़की को जबरदस्ती ले जाऊँगा–तुम्हें कोई नुकसान नहीं होगा।" कुम्हार ने फिर कहा, 'यदि तुम ऐसा करोगे तो पट्टण का राजा गिरनार को जड़मूल से उखाड़ देगा और इसका एक एक पत्थर बिखेर देगा, इसलिए जिस कन्या की सगाई सिद्धराज से हो चुकी है उसके विषय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं।'

'क्या तुम उस जयसिंह को नहीं जानते हो जिसने धार नगर को हिला दिया था—जो चीज उसकी हो चुकी है उस पर खँगार को हाथ नहीं डालना चाहिये।'

यह सुन कर देसल ने नाक चढ़ा कर उत्तर दिया:—

'सोरठ के अधिपति ने गढ़ गिरनार में बावन हजार घोड़े इकट्ठे कर रखे हैं। उस सोरठ के धनी को किसका डर है ? रा' खँगार के पास अक्षौहिणी(१) दल है।"

---

(१) बावन हजार बाँधिया, घोड़ा गढ़ गिरनार।
क्यम हठे सोरठधणी, बेहण दल खँगार॥

(क) अक्षौहिणी सेना में २१,८७० हाथी, इतने ही रथ, ६५,६१० घोड़े और १,०६,३५० पैदल होते हैं।

अन्त में यही हुआ कि देवल उस लड़की को जबरदस्ती राव खँगार के पास ले गया। जूनागढ़ पहुँच कर जब राणक देवी रथ से उतरी और पहले पहल पोलि (दरवाजे) में घुसी तो अचानक उसके पैर के एक पत्थर की ठोकर लगी और खून की धार बहने लगी। उसने निःश्वास डालकर कहा, 'भाई, यह तो अच्छा शकुन नहीं हुआ, इससे किसी घोर आपत्ति के आ जाने की सम्भावना है।'

"पहले पहल पोलि में प्रवेश करते ही ठोकर लग गई। या तो राणकदेवी को रँडापा मिलेगा अथवा सोरठ देश ऊजड़ हो जायेगा।"(२)

इसके पश्चात् बड़ी धूमधाम से राव खँगार ने उसके साथ विवाह कर लिया और तीन दिन तक लगातार गिरनार नगर के निवासियों को भोजन कराया। उसी समय पट्टण के सौ बागरे* भी मिट्टी के बरतन बेचने के लिए वहां आये हुए थे और नगर के उत्तरी दरवाजे के बाहर ठहरे हुए थे। आये हुए अन्य और लोगों के साथ उनको भी जीमन के लिए निमन्त्रित किया गया। उन्होंने पूछा, 'आज राजा के यहां क्या बात है जो हमको निमन्त्रित किया गया है ?' नौकरों ने उत्तर दिया—

"सोरठ सिंहलद्वीप की, सुकुमारी परमार।
बेटी राजा शेर की, परण्यो राव खँगार॥"

---

(२) प्रथम पोली पेसतां, थयो ठबको नें ठेस।
रंडापो राणक देवी ने, (के) सूनो सोरठ देश॥

*बागरिया, एक जाति विशेष जो जंगलों में हरिण आदि मार कर निर्वाह करते हैं।

इसीलिए आज तीन दिन से ढेढों (अन्त्यजों) सहित समस्त नगर के लोगों को राजा भोजन करा रहा है। हमको तुम्हें बुलाने भेजा है, चलो।" बागरियों ने सोचा-इस कन्या की सगाई तो अपने राजा सिद्धराज के साथ हुई थी। राव खँगार ने इसके साथ बलपूर्वक विवाह कर लिया है। सिद्धराज सोलंकी है और हम लोग भी सोलंकी कहलाते हैं इसलिए हमको ऐसी दावत में शामिल नहीं होना चाहिए जो उस कन्या के विवाह की खुशी में मनाई जा रही है जिसकी सगाई एक सोलंकी के साथ हो चुकी थी और जिसको यह राव हर लाया है।' यह सोचकर उन्होंने तुरन्त पट्टण पहुँच कर पूरा समाचार कह सुनाने का निश्चय किया। इस प्रकार मनसूबा करके वे लोग भूखे प्यासे ही वहां से रवाना हो गये और पाटणवाड़ा में बघेल ग्राम की सीमा में आकर दम लिया। वहां उन्होंने शिकार पकड़ने के लिए जाल फैलाया। उसी समय राजा के चारों दरबारी भाट भी घोड़ों पर चढ़े हुए उधर आ निकले। उनको देखकर उन बागरियों का पकड़ा हुआ एक रोझ भाग गया। बागरियों ने उनसे कहा, "महाराज आपने यह क्या किया—हम रात दिन चलते हुए जूनागढ़ से आ रहे हैं। आज हमारा सातवां उपवास है। आपने हमारे रोझ को क्यों भगा दिया?" भाटों ने पूछा, "क्यों यह, क्या बात है-तुम सात दिन से भूखे क्यों हो?" उन्होंने उत्तर दिया, 'हमारे राजा से जिस कन्या की सगाई हुई थी उसको राव खँगार जबरदस्ती पकड़ कर ले गया।' यह सुन कर भाट लोग बहुत दुखी हुए और तुरन्त घोड़ों पर सवार होकर राजा के पास पट्टण पहुँचे। वहां पहुंच कर सिद्धराज से कहा—

'हम अनाथ और बिना घरबार के हैं और गरीब भाट कहलाते

हैं। हमने राणक देवी को खोज निकाला था। अब, उसको राव खँगार हर ले गया।'

यह सुनकर सिद्धराज ने अपनी सहायता के लिए बाबरा भूत(१) को बुलाया। यह भूत बहुत काल से उसकी सहायता करता आया था। जब वह आया तो सिद्धराज ने उसे अपने साथ राव खँगार से लड़ने के लिए जूनागढ चलने को कहा। इसके बाद राजा तैयार होकर बाघेल पहुँचा और वहीं पर पाँच हजार दो सौ भूतों को साथ लेकर बाबरा भूत उसको मिला। सिद्धराज की आज्ञा से उन भूतों ने एक ही रात में वहां पर एक तालाब तैयार किया।(२) बाघेल से कूच करके सेना

---

(१) बाबरियावाड़ में रहने वाले लोगों का मालिक इसलिए बाबरा कहलाता था।

(२) गुजरात में कोई भी तालाब अथवा धार्मिक इमारत हो वह यदि हिन्दू धर्म से सम्बन्धित हो तो सिद्धराज जयसिंह (उसके लोक प्रसिद्ध नाम सिधराजेसिंग) की बनवाई हुई बतलाई जाती है और यदि वह मुसलमानी धर्म से सम्बन्धित हो तो सुलतान महमूद बेगड़ा की बनवाई हुई बतलाई जाती है और यह कहा जाता है कि ये इमारतें उन्होंने भूतों तथा जिन्नों की मदद से बनवाई थीं। दूसरे देशों के प्रसिद्ध वीर पुरुषों के विषय में भी ऐसी ही बहुत सी बातें प्रचिलित हैं:—

फ्रांस और इंगलैंड दोनों ही नगरों में जितनी प्राचीन इमारतें हैं और जिनके विषय में ठीक २ यह नहीं कहा जा सकता कि कब की बनी हुई हैं उनके विषय में भी सामान्य रीति से यही कह दिया जाता है कि ये प्रसिद्ध योद्धा सीज़र की बनवाई हुई हैं जिसकी पराक्रमपूर्ण कथाओं से इंगलैण्ड का पूर्व इतिहास भरा पड़ा है। लन्दन के प्रसिद्ध टावर के विषय में भी साधारणतया यही कहा जाता है कि इसको भी इसी पराक्रमी वीर ने बनवाया था। शेक्सपीयर के नाटक में रिचार्ड द्वितीय की अभागिनी रानी कहती है "जूलियस सीज़र के अशुभ टावर का यही मार्ग है।"

मुञ्जपुर पहुँची और वहां से जिञ्जूवाड़ा,(१) जहां उन्हें ग्वालों का प्रधान धाँधू मिला जो अपने जाति के लोगों के साथ झोंपड़ों में रहता था। वहां उन्होंने एक किला और एक तालाब बनवाया और आगे चलकर बीरमगांव पहुँचे जहां उन्होंने मानसर नामक तालाब बनवाया। वहां से बढ़वाण पहुँचकर वहां भी एक दुर्ग बंधाया; फिर सायले में पहुँच कर एक किला और एक तालाब का निर्माण करवाया। इसके कुछ दिन बाद वे जूनागढ़ पहुँचे जहां बारह वर्ष तक लड़ाई लड़ते रहे परन्तु राव

"विंडसर कैसिल (किले) के नीचे के मोहल्ले का बैल-टावर (घण्टा-घर) भी जूलियस सीज़र का ही टावर है" परन्तु इतिहास-विषयक अद्भुत-कथाओं में विश्वास करने वाले इस टावर को इस रोमन विजेता का बनवाया हुआ कभी नहीं मान सकते।

"इसी प्रकार फ्रांस देश में भी जो कोई प्राचीन चमत्कारिक वस्तु होती है उसका आरम्भिक सम्बन्ध किसी परी, भूत, अथवा सीजर से स्थापित कर दिया जाता है।" (पैरिस के इतिहास के आधार पर)

(१) चतुर्वेदी मोढ़ ब्राह्मणों के बारहट की बही में लिखा है कि, "सर-खेज़ में रहने वाले मोढ़ ब्राह्मण उपाध्याय भाण ने अपने पिता झूंडा के नाम पर संवत् ११४६ (सन् १०६३ ई०) में सोलंकी राजा कर्ण के आखिरी दिनों में झिञ्झूवाडा गाँव बसाया था और उसके साथ ही ओडूँ, मोलाडूँ, आदरियाँण, जाडियाण, पाडीवाला, रोजीयूँ, सुरेल, फतहपुर, नगवाड़ा, धामाद और भलगाँव नामक ११ गाँव और बसाये—इस प्रकार कुल १२ गाँव बसाये।

"सोलंकी सिद्धराज जयसिंह ने संवत् ११६५ (सन् ११०६ ई०) मिती माह सुदि ४ रविवार को झिञ्झूवाड़े का गढ़ बँधवाने का मुहूर्त निश्चित किया। उसने यह काम उपाध्याय भाण के पुत्र विश्वेश्वर बोहरा को सौंपा और गढ़ के कार्य में सहायक होने के निमित्त माता श्री राजबाई की स्थापना गढ़ के मध्य कोष्ठ में की।"

खँगार के महलों तक न पहुँच सके। मीनलदेवी ने, जो अपने पुत्र के साथ वहीं मौजूद थी, बहुत से मन्त्र जाप आदि करके अनेक युक्तियां कीं परन्तु एक भी सफल न हुई।(२) अन्त में, ऐसा हुआ कि रावं खँगार अपने भानजे देसल से ईर्ष्या करने लगा और उस पर राणक देवी से

इसके अतिरिक्त इस बही में यह भी लिखा है कि, "संवत् १३५४ (सन् १२९८ ई०) में पौस सुदी २१ (११) सोमवार को दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खूनी खिलजी ने झिंझूवाड़ा जीत लिया।"

(२) तुरी गायकों की बात इस प्रकार है कि, किसी कारीगर ने एक लकड़ी की एक सांडनी (ऊँटनी) बनाकर दी उस पर बैठकर सिद्धराज और मयणल्ल देवी राणक देवी के महल पर गए। वहाँ पर उन्हें किवाड़ बन्द मिले। जब उन्होंने दरवाजा खटखटाया तो राणक देवी बोली—

सो०—कवण खटकावे कँवाड़, मेडी१ छे राणक देवनी।
जाणशे रा' खँगार, त्राटक कानज२ तोडशे ॥

मयणल्ल देवी ने कहा—

म्हारो मेढो३ लाडको, ओखो४ गढ़ गिरनार।
मारी रा' खँगार, उतारवी राणक देव ने ॥

इस पर राणक देवी ने उत्तर दिया—

आ मारा गढ हेठ५, केणे तम्बू ताणिया।
सघरो६ म्होरो शेठ, बीजा वर्त्ताऊ७ वाणिया ॥

यह सुनकर मयणल देवी ने कहा—

राणा सव्वे वाणिया, जेसलुं वडडुँह सेठ।
काहु वडिजडु मंडींयउ, अम्मीणां गढ हेठ ॥
वाणियाना बेपार, जाते दाहाडे८ जाणशो।
मारशुं रा' खँगार, उतारशुं राणक देव ने ॥

इस प्रकार विवाद होने के बाद वे उतर आए।

---

१. ऊपर के खंड का मकान। २. ताटंक (गहने) सहित कान तोड़ देगा। ३. लड़का। ४. अधर। ५. नीचे। ६. सुन्दर ७. काम चलाऊ। ८. प्रत्यक्ष में।

घनिष्ठ गुप्त सम्बन्ध होने का दोष लगाया।(१) उसकी माता ने इस बात की सूचना उसको दी। उसने उत्तर दिया—

'ना मैं घोड़ा मारिया, ना लूटयो भंडार।
भोगी न राणक देवड़ी, क्यों रूठै खेंगार?'

"मैंने खँगार के घोड़े नहीं मारे, न भंडार ही लूटा और राणकदेवी से भी कोई सम्बन्ध नहीं किया, फिर वह मुझसे क्यों अप्रसन्न है?"

---

(१) इस विषय में तुरी की बात इस प्रकार है कि, एक बार रा' खँगार ने शराब पी और अपने भानजे को भी पिलाई तथा राणक देवी को पिलाने के लिए देसल को शीशी लेकर भेजा। देसल ने कहा कि, मैं शराब पिए हुए हूँ, मैं नहीं जाता, परन्तु रा' ने इस उचित बात को भी न मान कर उसे आग्रह करके भेज दिया। उसने जाकर शराब का पात्र अपनी मामी को दे दिया और उसने अपने भानजे को हिण्डोले पर बिठाकर शराब पिलाई व खुद ने भी पी। राणक देवी को तो बहुत पीने के कारण शराब चढ़ गई इसलिए वह तो अपने पंलग पर सो गई और बेहोश देसल जब चलने को तैयार हुआ तो अनजान में राणक देवड़ी की खाट पर ही सो रहा। इस प्रकार जब वे दोनों निर्दोष अवस्था में बेहोश होकर गहरी नींद में सो रहे थे तो बहुत देर हो जाने के कारण रा' खँगार स्वयं देसल को देखने आया और दोनों को एक पलंग पर सोते देखकर क्रोध में भर गया। उसने तलवार निकाल कर वार किया और दोनों को एक ही वार में खतम कर देना चाहा परन्तु तलवार पलंग की सांकल पर पड़ी और उन दोनों को जरा भी चोट नहीं आई इसलिए उसने सोचा कि वे निर्दोष थे। फिर और जाँच करने के लिए अपना जमिया (कटार) रानी के बोये हुए चम्पा पर मारा परन्तु वह लगा नहीं। इसके बाद तलवार को म्यान में रखकर अपने ओढने का वस्त्र दोनों को उढ़ाकर और देसल का वस्त्र स्वयं लेकर चला आया। परन्तु इतना होने पर भी उसके मन का सन्देह बना ही रहा इसलिए उसने अपनी बहन से कहा कि, तेरा पुत्र मेरे घर की ओर ताकता है।

मांने उत्तर दिया, " बेटा, राणक देवी की सगाई तुम्हारे पिता के वंश में हुई थी, उसको लाकर तुमने उसका विवाह अपने मामा से करा दिया। तुम्हारी इन सेवाओं को भूलकर वह तुमसे नाराज़ हो गया है अब तुम्हें इस देश में नहीं रहना चाहिए।" इसके कुछ दिन बाद स्वयं खँगार ने भी उसे वहां से चले जाने को कहा। इस पर, देसल अपने भाई वीसल को साथ लेकर रातों रात भाग गया। जब वे किले के दरवाजे पर आये तो दूदा और हमीर नाम के राजपूतों ने, जो पहरे पर थे, उनसे पूछा "तुम कहां जा रहे हो ?' उन्होंने कहा, "महाराज ने मालवा से अफीम की गाडियां मंगवाई हैं, हम उन्हें आगे लेने जा रहे हैं। जब आधीरात को वे गाडियाँ आवें तो तुरन्त दरवाजा खोल देना।' ऐसा कहकर दोनों भाई बाहर आए और सिद्धराज के पास जाकर बोले, 'महाराज ! पहले हमें यह मालूम नहीं था कि आप हमारे काका हैं इसीलिए हमने राणक देवी को लाकर अपने मामा से उसका व्याह करा दिया। अब वह हम पर झूंठे दोष लगाता है इसलिए हम आप के पास आए हैं यदि आप हमारे साथ चलें तो हम राव खँगार को मार कर राणक देवी को आपके आधीन कर दें।"

इसके पश्चात् एक सौ चालीस (१४०) योद्धाओं को बैल गाडियों में छुपाकर वे रवाना हुए। दरवाजे पर आकर दूदा और हमीर से दरवाजा खुलवाया और अन्दर आकर सबसे पहले उन दोनों को ठिकाने लगा दिया फिर राव खँगार के महलों की ओर आगे बढ़कर रणसिंगा बजाया खँगार भी तुरन्त ही लड़ने के लिये निकल आया।

झांपो भांग्यो वेढ़ पड़ी भेड़यो गढ़ गिरनार।
दूदो हमीर मारिया सोरठ ना सिणगार॥

"उन्होंने गढ़ के दरवाजे को तोड़ दिया और गिरनार गढ़ को लूट लिया। ददा और हमीर को मार डाला जो सोरठ के शृंगार थे।

इस अवसर पर दोनों ही ओर के कितने ही वीर मारे गये और अन्त में स्वयं राव खँगार भी काम आया।

इसके बाद देसल सिद्धराज को साथ लेकर राणक देवी के महल पर पहुंचा और कहने लगा "मामी, हम दोनों भाई और मामा खँगार आये हैं, दरवाजा खोलो।" उसने दरवाजा खोल दिया। राणक देवी के दो पुत्र थे। बड़े का नाम माणेरा था और उसकी आयु ११ वर्ष की थी। दूसरा डगायच्यो था, वह पांच वर्ष का था। सिद्धराज ने छोटे बच्चे को राणक देवी से छीन लिया और वहीं उसका वध कर दिया। जब माणेरा को मारने का प्रयत्न करने लगा तो वह उससे हाथ छुड़ा कर अपनी मां के पीछे छुप गया, और हे मां, हे मां, कहकर रोने लगा। तब राणक देवी ने कहा:—

"माणेरा मत रोय, मत·कर राता नैण तू,
कुल में लागै खोय, मरतां माँ न संभालिये ॥"

'हे माणेरा, मत रो, रो रोकर लाल आंखें मत कर। मरते समय मां को याद करने से तेरे कुल को कलङ्क लगेगा।'

सिद्धराज ने आज्ञा दी कि इस कुँवर को न मारा जाय, यदि राणक देवी पट्टण चलने में आनाकानी करेगी तो इसका वध करदिया जायेगा। वास्तव में, इस कुँवर को भी मार दिया गया था परन्तु किस स्थान पर उसका वध किया गया, यह ज्ञात नहीं है।

इसके बाद राणक देवी को किले के बाहर लाए। जब उसने राव खँगार के घोड़े को देखा तो शोकातुर होकर बोली—

"घोडांरा सिरदार, अजूं न फाटयौ कालजो ?
मरतां राव खंगार, जासी तू गुजरात नैं।"

"हे श्रेष्ठ अश्व ! अब तक भी तेरा कलेजा नहीं फटा ? राव खँगार की मृत्यु हो गई है और अब तू गुजरात ले जाया जावेगा।"

फिर राव खंगार के हरिण को देख कर उसने कहा—

कर रे कुरंग विचार, इक दिन खुल्लो घूमतो,
मरतां राव खँगार, भवनां में बंधण बँध्यो।

'अरे हरिण ! विचार कर, कभी तू स्वतंत्र घूमता था। अब राव खँगार के मरने पर तू मकान में बांध कर रक्खा जायगा।'

फिर मोर को बोलते हुए सुनकर कहने लगी—

क्यूं गरजै रे मोर, खोलां में गिरनार की,
कटी कालजै कोर, लखपतियो सुरगां गयो। (१)

'हे मोर ! गिरनार की खोहों में क्यों गरज रहा है ? मेरा हृदय भग्न हो चुका, मेरा लखपतिया तो स्वर्ग सिधार गया।

---

(१) मोर की वाणी का यह शकुन माना जाता है कि प्रिय का मिलन हो, इसलिए कहती है कि, हे मोर, गिरनार की चोटियों पर चढ़कर क्यों गरजता है ? मेरे कलेजे की कोर कट गई, अब प्रिय-मिलन की क्या आशा है

इसके बाद राणक देवी उस स्थान पर आई जहां खँगार की लाश पड़ी हुई थी, उसको देखकर उसने कहा—

स्वामी ! ऊठौ सैन्य लै, खडग(१) धरो खेंगार,
छत्तर(२) सो छायो भलो, जूनौं(३) गढ़ गिरनार ।

जैसे जैसे वह घाटी में नीचे उतरती गई वैसे ही अपने दामोदर कुंड,(४) बगीचे और चम्पा के वृक्ष से विदा लेती गई । उसने पर्वत की ओर देखकर कहा—

ऊंचो गढ़ गिरनार, बादल सूं बातां करै,
मरतां राव खंगार, रंडापो (५) राणक देवड़ी ।

---

(१) खड्ग—तलवार । (२) छत्र । (३) जीर्ण—पुराना ।

(४) तुरी की बात में इतना और है—
दामोदर कुंड पर आकर राणक बोली—
उतर्‌याँ गढ गिरनार, तनडुं आव्युं तलाटिए,
वलतां वीजी वार, दामो कुंड नथी देखवो ।

'गिरिनार गढ़ से उतर कर तलहटी में आ गई हूँ । अब लौटकर दामोदर कुण्ड को देखना न होगा ।'

धारगर बावड़ी के पास आकर कहा—
चंपां ! तुं कां मोरियो, थड मेलुं अंगार,
मोहोरे कलियुं माणतो, मारयो रा' खँगार ।

हे चम्पा ! तू अब क्या फूली है ? तुझ पर अङ्गारे धरूं (ऐसी मन में आती हैं) तेरी एक एक कली का मोहरों (स्वर्ण मुद्राओं) से सम्मान करता था वह राव खँगार मारा गया ।'

(५) वैधव्य ।

कुछ मील चलकर उसने फिर गिरनार की ओर मुड़कर देखा तो ऐसा मालूम हुआ कि मानों वह पर्वत उसके पीछे पीछे बुलाने आ रहा है तब उसने कहा—

"पापी गढ़ गिरनार! मत बैरयां को मान कर,
मरतां राव खंगार, तू भी मिलतो धूल में।" (१)

"हे पापी गिरनार दुर्ग! तू शत्रुओं का मान मत कर, (तेरा स्वामी) राव खँगार मर गया है। उसके साथ ही तुझे भी मिट्टी में मिल जाना चाहिए था।"

जब और भी आगे बढ़ी तो उसे वह पर्वत क्षितिज के उस पार गिरता हुआ सा दिखाई पड़ा। यह देख कर वह कहने लगी—

"मत डूबै आधार! कुण रे चढासी कांगरा?
गया चढ़ावणहार, जीता करसी जातरा"

'हे डूबती के सहारे गिरनार! अब आंखों से ओझल मत हो। तेरे कँगूरे अब कौन चढ़ावेगा? जो चढ़ाते थे वे (राव खँगार) स्वर्ग चले गए। अब जो जीवित रहेंगे वे तेरी यात्रा करेंगे। (उनके लिए तू तीर्थ-स्थान हो गया है।)

---

(१) पइं गरुआ गिरनार, काहू मणि मच्छरु धरिऊ।
मारीतां खँगार, एक्कसिहरू न ढालिऊं ॥

'हे गरबीले गिरनार! तूने मन में क्यों मत्सर धारण किया है? राव खँगार की मृत्यु हो जाने पर तूने अपना एक शिखर भी नहीं गिराया।'

देसल और वीसल ने पहले ही सिद्धराज से यह तय कर लिया था कि राव खँगार को मार कर वह जूनागढ की गद्दी देसल को दे देगा इसलिए जब वह (सिद्धराज) घर को रवाना हुआ तो उन्होंने इस बात की याद दिलाई। सिद्धराज ने पहले तो उनसे कहा, 'ले लो' परन्तु उसने फिर सोचा कि जिस तरह इन्होंने अपने मामा के साथ धोखे का व्यवहार किया है उसी प्रकार किसी न किसी दिन ये मुझे भी धोखा देंगे, इसलिए उसने उन दोनों को वहीं कत्ल कर दिया।

पट्टणवाड़ा पहुंच कर सिद्धराज ने राणकदेवी को शांति पहुँचाने के लिए कितने ही स्थान दिखलाए–परन्तु वह बोली—

"बालूँ पाटण देश, बिन पाणी ढाँढा मरै,
सुन्दर सोरठ देश, धाप धाप कर जल पिवै।"

'उस पट्टण देश के आग लगे, जहां पानी के बिना ढोर प्यासे मरते हैं। मेरा सोरठ देश बड़ा सुन्दर है जहां सब लोग पानी पीकर तृप्त हो जाते हैं।'

अन्त में, वे लोग पट्टण नगर के बाहर आकर पहुँचे और कोट के नीचे ही पड़ाव डाला। राजा ने नगर के बाहर ही शहर के लोगों को निमन्त्रित करके जीमने बुलाया। सभी लोग तड़क भड़क की पोशाकें पहन कर बहुत बड़ी संख्या में वहाँ आ पहुंचे। उन्हें देख कर राणकदेवी को कोई प्रसन्नता न हुई, उसने कहा—

"बालूं पट्टण देश, ओछी ओढ़ै ओढणी,
सुन्दर सोरठ देश, पूरी ओढै ओढणी"

'यह पट्टण देश जल जाय, जहां स्त्रियां छोटी छोटी ओढ़नी ओढ़ती हैं। सोरठ देश बड़ा सुन्दर है जहां महिलाएं लम्बी पूरी लूगड़ियां ओढ़ती हैं।'

एक गुजराती स्त्री ने उसके पास आकर कहा, "तुम्हारे तो सिद्धराज जैसा समर्थ पति है।" तब उसने कहा, "मेरे पति को तो मैं इस स्थिति में छोड़कर आई हूँ—

"धीमी फरकै मूंछडी, उज्जल चमकै दन्त,
ओछी ओढणवालियों !, एड़ो देख्यो कन्त।

'हे छोटी ओढ़नी ओढ़नेवाली (पाटणीं) स्त्रियो ! मैं अपने पति को ऐसी अवस्था में देखकर आई हूँ कि उसकी मूंछें धीरे धीरे फरक रही हैं और उजले उजले दांत चमक रहे हैं।'

फिर उस स्त्री ने पूछा, "तुम्हारी आंखों का आंसू नहीं सूखता, यह किस प्रकार बन्द हो ?" उसने उत्तर दिया—

"मेरे आंसुओं की धारा से कुए क्यों न भर जावें-माणेरा की मृत्यु से मेरे शरीर में आंसुओं की नदियां उमड़ी पड़ रही हैं।"(१)

इस प्रकार राणकदेवी को किसी भी बात से शान्ति न हुई। सिद्धराज ने उसके साथ बहुत आदरपूर्ण व्यवहार किया और उससे पूछा कि उसका मन कहां रहने का था ? इस पर उसने बढ़वाण जाना

---

(१) पायणने पडते, कोहो तो कूआ भराविए।
माणेरो मरते, शरीरमां सरणां बहे॥

चाहा। सिद्धराज स्वयं उसको पहुंचाने गया। भोगावा(१) नदी के किनारे पर एक चिता तैयार कराई गई और राणकदेवी ने उस पर अपना आसन जमाया। सिद्धराज ने उसको जीवित रखने का अन्तिम प्रयत्न करते हुए कहा "यदि तुम सच्ची सती हो तो बिना आग लगाए ही चिता जल उठेगी।" यह सुनकर राणकदेवी घुटने टेक कर बैठ गई और सूर्य की प्रार्थना करने लगी–फिर उठकर बोली –

'विदा नगर बढ़वाण, भोगावा सरिता बहै,
भोगी राव खेंगार, अब भोगै भोगावा नदी।' (२)

---

(१) जेसल मोडि म वाह, वलि वलि विरूपं भावइह।
नइ जिम नवा प्रवाह, नवघण विणु आवइ नहि॥

इसका भावार्थ यह है कि, हे नदि, जिस प्रकार मैं अपना देश छोड़कर स्वामी के बिना विरूप हो गई हूँ उसी प्रकार तू भी नवीन मेघ के बिना दुर्बल होती जा रही है और उसके बिना अच्छी नहीं लगती। जिस प्रकार तूने तेरे पर्वत रूपी स्थान का त्याग किया है उसी प्रकार मैंने भी किया है इसलिए अपने दोनों की दशा समान है।

गुजराती अनुवाद में उक्त पद्य का भावार्थ ऊपर दिया है परन्तु स्पष्ट अर्थ इस प्रकार है—

'अरे जेसल! मेरी बांह मत मरोड़। मैं पति वियोग में विरूप हो गई हूँ। नवघन (नये बादल अथवा राव नवघन) के बिना नदी में प्रवाह नहीं आ सकता।'

(२) यही भाव प्रबन्ध चिन्तामणि नामक संस्कृत ग्रन्थ में भी है जो सन् १३०५ ई० में रचा गया था। यह ग्रन्थ बाद में जैन भंडार में रख दिया गया था इसलिए यह संभव नहीं प्रतीत होता कि यह 'तुरी' जैसे लोगों के हाथ लगा हो परन्तु फिर भी तुरी लोगों में एक से सुनकर दूसरे ने इसकी आवृत्ति की है इसलिए यह उल्लेखनीय है। देखिए इस प्रकरण का पहला सोरठा।

जहां भोगावा नदी बहती है उस बढवाण नगर से अब विदा लेती हूँ। मेरे शरीर का उपभोग या तो राव खँगार ने किया अथवा अब भोगावा नदी करे।

फिर उस समय इतनी गरम हवा चली कि चिता अपने आप जल उठी। तब राणक देवी ने कहा—

धन धन ! ताती वाय, चाली, माटी परजलै,
ऊभो पट्टणराय, सोरठणीरो सत लखै।

'मैं धन्य हूँ कि गरम हवा चलने लग गई और इससे मिट्टी (रेत अथवा मृत शरीर) प्रज्वलित हो गई। पट्टण का राजा खड़ा खड़ा सोरठनी के सतीत्व की परीक्षा कर रहा है'।

उस समय सिद्धराज ने अपनी पगड़ी राणकदेवी पर फेंक दी परन्तु उसने वापस लौटा दी और कहा, "यदि दूसरे जन्म में तुम मेरे पति होना चाहते हो तो मेरे साथ जल मरो।" परन्तु सिद्धराज की हिम्मत न पड़ी।

जिस स्थान पर राणकदेवी सती हुई थी उसी स्थान पर सिद्धराज ने एक देवालय बनवाया। सम्पूर्ण सोरठ उसके अधिकार में आ गया परन्तु सती राणकदेवी के चरणों के चिन्ह तो गिरनार पर बने हुए राव खँगार के महलों ही को प्राप्त हुए थे।

वर्द्धमानपुर अथवा बढ़वाण आजकल झाला राजपूतों का मुख्य स्थान है। यह नगर सोरठ ही में है परन्तु सीमा से अधिक दूर नहीं है और कपास उपजने वाले सपाट प्रदेश में बसा हुआ है। इतिहासकारों

ने इसको बहुत प्राचीन नगर लिखा है और यह सिद्ध हो चुका है कि यह वनराज की राजधानी से पहले का बसा हुआ है–

'वल्हे ओ' बढवाण, पाछै पाटणपुर बस्यो !

भोगावा नदी की उत्तरी शाखा नगर की बुर्जों के नीचे होकर बहती है। बह कर समुद्र में जा मिलना तो दूर रहा, यह शाखा वर्षा ऋतु के सिवाय लीमडी के पास होकर बहने वाली दक्षिण शाखा में भी नहीं मिल पाती और बीच ही में साबरमती के मुख भाग पर खारी सपाट में विलीन हो जाती है। बढ़वाण के पुराने कोट में अब भी कुछ समकोण बुर्जें खड़ी हैं। ये बुर्जें ही अब उस प्राचीन कोट के बचे खुचे चिन्ह हैं। आज कल इसके चारों ओर बस्ती खूब बढ़ गई है और राणकदेवी सती का स्थान जो पहले कहीं भोगावा नदी के किनारे पर रहा होगा, अब कोट के अन्दर आ गया है। इस मन्दिर का अब तो शिखर मात्र बच रहा है जिस पर बहुत सजावट का कार्य हो रहा है, और इसकी बनावट मोढेरा के मन्दिर की बनावट से बहुत मिलती हुई है। आसपास के गुम्बजदार मंडप बिलकुल नष्ट हो चुके हैं ? खँगार की दुःखिनी स्त्री की एक टूटी फूटी मूर्ति अब भी निज-मन्दिर में विद्यमान है और वार त्यौहार के दिन, बढ़वाण दरबार की उन रानियों के साथ, जो झालावंश के राजाओं के साथ सती होकर स्वर्ग को चली गई हैं और अपने पातिव्रत को अमर कर गई हैं तथा जिनके मन्दिर भी पास ही में बने हुए हैं, इसकी भी पूजा होती है; मूर्ति को सौभाग्य की पोशाक पहनाई जाती है, मुकुट धारण कराया जाता है, चूंदड़ी उढ़ाई जाती है और इसका सभी प्रकार का राजोचित शृङ्गार किया जाता है।

प्रकरण १०

सिद्धराज

राव खँगार की मृत्यु के बाद सिद्धराज ने सोरठ का कार्यभार सज्जन नामक सुभट पर छोड़ दिया था। यह सज्जन वनराज के सखा जाम्बा अथवा चम्पा का वंशज था। मेरुतुंग ने लिखा है कि इस कर्मचारी ने राज्य की तीन वर्ष की आय गिरनार पर बने हुये नेमीनाथ के मन्दिर के पुनर्निर्माण में खर्च कर दी। जब सिद्धराज ने हिसाब मांगा तो उसने इतना सन्तोषपूर्ण उत्तर दिया कि राजा ने प्रसन्न होकर उसको उसी स्थान पर नियत रक्खा और मुख्यतया शत्रुञ्जय और उज्जयन्त के पवित्र स्थानों को भी उसी के आधीन कर दिया। (१) इसके थोड़े ही दिनों बाद देवपट्टण के श्रीसोमेश्वर भगवान्

---

(१) कुमारपालप्रबन्ध में लिखा है कि कर्णदेव ने सौराष्ट्र मण्डल को अपने आधीन करके वामनस्थली (वनस्थली) जाकर सज्जन को वहाँ का दण्डनायक नियुक्त किया और उसी की आज्ञा से सज्जन ने सौराष्ट्र की तीन वर्ष की आय श्रीनेमीनाथ देवालय के जीर्णोद्धार में खर्च की थी। विजय-यात्रा करते करते सिद्धराज जब सौराष्ट्र पहुँचा तो उस समय सज्जन का पुत्र परशुराम यहाँ का दण्डाधिप था। जब सिद्धराज ने उससे तीन वर्ष की आय माँगी तो वह राजा को रैवताचल पर्वत पर ले गया और वहाँ कर्णविहार को दिखा

की यात्रा करके लौटते हुए सिद्धराज ने इन दोनों पवित्र पर्वतों की भी यात्रा की और ऋषभदेव की पूजा आदि के खर्च के लिए बारह गांव प्रदान किए। उस समय यद्यपि ईर्ष्यालु ब्राह्मणों ने उसे मना किया परन्तु उसने उनकी बात न मानी।

सिद्धराज के राज्यकाल में धार्मिक मतभेद और विवाद बहुत चलते थे। यह विवाद ब्राह्मणों और जैनधर्मावलम्बियों में ही चलता हो, ऐसी बात नहीं है–वरन् विशेषतया जैनधर्म के अन्तर्गत ही दिगम्बर और श्वेताम्बर नामक प्रतिस्पर्द्धी पक्षों में भी बहुत मतभेद रहता था। इनमें से पहले पक्ष के अनुयायी साधु, नग्नावस्था में रहते हैं और दिशाओं रूपी वस्त्र ही धारण करते हैं अतएव दिगम्बर कहलाते हैं और दूसरे पक्ष के लोग श्वेत वस्त्र पहनते हैं इसलिए श्वेताम्बर कहलाते हैं।

दिगम्बर मत का कुमुदचन्द्र नामक एक साधु था। वह चौरासी सभाओं में अपने प्रतिपक्षियों को पराजित करके कर्णाट देश से धार्मिक दिग्विजय करने एवं कीर्ति प्राप्त करने के लिए गुजरात आया

कर कहा–"इस प्रासाद को बँधवाने में ही मेरे पिता ने सौराष्ट्र की आय खर्च की है; यदि आपको इसका पुण्य लेना है तो यह आपके समक्ष है ही और यदि आप धन ही चाहते हैं तो चलिए अभी साहूकारों से चूकती रकम दिलवा देता हूँ।" यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, "सज्जन ने बहुत अच्छा काम किया है–तुम इसको पूर्ण करो।" सज्जन ने श्री नेमीश्वर का चैत्य छः महीने में तैयार कराया था और वह कलश चढ़ाने वाला ही था कि ज्येष्ठ शुक्ला ५ को उसके शिर में बड़े जोर का दर्द हुआ। ध्वजारोहण आदि का कार्यभार परशुराम पर छोड़ कर आठ दिन बाद ही वह स्वर्ग सिधार गया।

था। अपने नाना का धर्मगुरु जानकर सिद्धराज ने उसका बहुत आदर सत्कार किया और मयणल्ल देवी भी उससे बहुत प्रभावित हुई। कर्णावती का विद्वान् साधु देवसूरि(१) और हेमाचार्य भी श्वेताम्बरों की ओर से कुमुदचन्द्र से विवाद करने के लिए सन्नद्ध हुए। विवाद का दिन निश्चित हुआ। नियत समय पर सिद्धराज आकर राजगद्दी पर विराजमान हो गया और उसके आसपास धर्म के मर्म को जानने वाले विद्वानों ने आसन ग्रहण किए। इसके पश्चात् कुमुदचन्द्र पालकी में बैठकर दरबार में आया। उसके ऊपर श्वेतच्छत्र था, आगे आगे निशान और दिग्विजय का डंका बजता चलता था। उधर देवसूरि और हेमाचार्य भी आ पहुंचे और अपने विपक्षी के सामने ही गद्दी पर बैठ गए। दोनों प्रतिपक्षियों के मत पहले दिन ही लिख लिये गये थे। वह पत्र इस प्रकार सभा में पढ़कर सुनाया गया—

"कुमुदचन्द्र का पक्ष यह है कि केवली त्रिकालदर्शी हैं, और जो कैवल्य अथवा मोक्ष प्राप्त करने के मार्ग पर हैं वह आहार नहीं करता है; जो मनुष्य वस्त्र धारण करते हैं उनका मोक्ष नहीं होता और न स्त्रियों का मोक्ष होता है।"

देवसूरि का कहना है कि केवली आहार कर सकता है और वस्त्र पहनने वाले मनुष्यों एवं स्त्रियों का मोक्ष हो सकता है।"

---

(१) देवसूरि का जन्म संवत् ११३४ (सन् १०७८) में हुआ; संवत् ११५२ (सन् १०९६) में दीक्षा ग्रहण की, संवत् ११७४ (सन् १११८) में सूरि पदवी प्राप्त की और संवत् १२२६ (सन् ११७०) में श्रावण वदि में गुरुवार को उन्होंने निर्वाण लाभ किया।

कुमुदचन्द्र की आधी हार तो पहले ही दिन हो गई। उसके मत-प्रतिपादन के प्रकार से उसके बुद्धिमान् विपक्षियों ने लाभ उठाया और राजमाता से जो सहायता उसको प्राप्त होती उससे वंचित कर दिया। पहले तो मयणल्ल देवी ने, इस विचार से कि उसके पीहर के विद्वान् की विजय हो, अपने आसपास वालों को कुमुदचन्द्र की सहायता करने के लिए आदेश दिया। परन्तु जब हेमाचार्य को यह बात ज्ञात हुई तो वह राजमाता से मिलने गया और उसको समझाया कि दिगम्बरों का अभिप्राय तो यह है कि स्त्रियाँ तो किसी प्रकार का धार्मिक कर्म कर ही नहीं सकतीं। इसी का खण्डन करने के लिए श्वेताम्बर खड़े हुए हैं। जब राजमाता की समझ में यह बात आ गई तो उसने मानव-चरित्र (आचरण) से अनभिज्ञ दिगम्बरों की सहायता करना बंद कर दिया।

दोनों पक्षों ने राजा और चालुक्य वंश की स्तुति करके विवाद आरम्भ किया और अपने अपने पक्ष का समर्थन करने लगे। कुमुदचन्द्र का भाषण संक्षिप्त और कबूतर की सी लड़खड़ाती हुई भाषा में हुआ; परन्तु, देवसूरि के भाषण की छटा संसार का प्रलय कर देने वाले एवं समुद्र की लहरों को आन्दोलित कर देने वाले वायु के प्रवाह के समान थी। अन्त में, कर्णाट देश के साधु को मान लेना पड़ा कि वह देवसूरि आचार्य से पराजित हो गया। पराजित होने के कारण उसका वहाँ रहना अपशकुन समझा गया और वह तुरन्त ही नगर के अशुभ द्वार से बाहर निकाल दिया गया।(१) उधर श्वेताम्बर पक्ष के समर्थकों

---

(१) दरवाजों के विषय में शुभ और अशुभ होने की भावना दूसरे देशों में भी मिलती है। जैरिमीटेलर ने लिखा है कि, "नगर के अशुभ द्वार

का सिद्धराज ने बहुत सम्मान किया और हाथ पकड़कर स्वयं उनको महावीर स्वामी का दर्शन कराने के लिए ले गया। उस समय चँवर, छत्र, सूर्यमुखी पंखे आदि राज चिन्ह उनकी सवारी के साथ थे और उनकी विजय का शङ्खनाद रणविजय के शंखनाद के समान गूंज रहा था। उसी समय राजा ने सूरि को परांतीज और देहग्राम के बीच के चाला ग्राम एवं ग्यारह दूसरे गाँव भेट किये। सूरि ने उन गाँवों को लेने में बहुत आनाकानी की परन्तु अन्त में उन्हें स्वीकार करना पड़ा।

उस समय यद्यपि जैन लोगों में बहुत से अन्तरङ्ग झगड़े चल रहे थे परन्तु अन्य धर्मों के प्रति अपने आदर भाव प्रकट करने की रीति उन्होंने अपना रक्खी थी। कहते हैं कि, सिद्धराज ने भिन्न भिन्न देशों में से भिन्न भिन्न मतों के आचार्यों को बुलाकर पूछा कि सब से उत्तम देवता कौन है ? सब से उत्तम शास्त्र अथवा ज्ञान का भण्डार कौन सा है ? और सब से उत्तम मत कौन सा है जो आसानी से पाला जा सके ?" प्रत्येक धर्माचार्य ने अपने मत की प्रशंसा और अन्य मतों की निन्दा की। इस से राजा के मन को सन्तोष न हुआ और उसके चित्त की दशा अनिश्चय एवं संदेह में दोलायमान रही। अन्त में, उसे सन्तोषप्रद उत्तर हेमाचार्य से मिला। इस साधु ने राजा से एक कहानी कही, "एक मनुष्य को वश में करने के लिये उसकी स्त्री ने उसे एक प्रकार का रस पिलाया जिससे वह बैल बन गया। परन्तु, संयोग

से वही लोग निकाले जाते हैं जो कुकर्मी होते हैं और जिनको फाँसी आदि का दण्ड दिया जाता है। ऐसे दरवाजों को, जिनसे पवित्र और निर्मल चरित्र वाले मनुष्य बाहर नहीं जाते, प्लूटार्क ने जिज्ञासु और सदसद्वार्ता जानने वाले लोगों के कर्णरन्ध्रों के सदृश बताया है।

से चरता चरता वह एक ऐसी जड़ी चर गया जिसमें दुर्गा के प्रभाव से मनुष्यत्व प्रदान करने की शक्ति आ गई थी, इससे वह फिर मनुष्य हो गया।' हेमाचार्य ने कहा कि जिस प्रकार उस जड़ी के लाभ को न जानते हुए भी वह बैल उसको चर गया और उसको अभीष्ट लाभ हुआ इसी प्रकार इस कलियुग में धर्म की महिमा को न जानते हुए भी यदि स्वधर्माचरण करे तो मनुष्य को मोक्ष मिल सकता है। यह बात सर्वथा सत्य है।"

किसी भी धर्म की निन्दा न करना एवं उसमें बाधा न देना, इसी नीति से, जिसको वह राजनैतिक कारणों से भी मानता था, प्रेरित होकर सिद्धराज ने इस उत्तर पर बहुत प्रसन्नता प्रकट की।

इस विषय में सन्देह नहीं है कि अणहिलवाड़ा की स्थापना से लेकर उसके नाश तक के समय में शैव मत एवं जैन मत दोनों ही साथ साथ प्रचलित रहे। कभी एक मत जोर पकड़ता था तो कभी दूसरा। सिद्धराज की सोमेश्वर यात्रा व उसके बनवाए हुए श्रीस्थल के मन्दिरों के जीर्णोद्धार का आधार लेकर कितने ही लोग कहते हैं कि वह प्राचीन शैव मत का अनुयायी था परन्तु उसके विषय में जो और और बातें प्रचलित हैं उनसे सिद्ध होता है कि वह धर्मान्ध नहीं था। परन्तु, इसके विपरीत प्रबन्धचिन्तामणिकार एक और ही कहानी लिखता है जिसको यहां लिखने की आवश्यकता नहीं है और इसी के आधार पर सिद्ध करता है कि, 'उसी दिन से सिद्धराज पूर्वजन्म के पाप पुण्य में विश्वास करने लगा।' यह हिन्दू धर्म का एक बहुत प्राचीन और मुख्य सिद्धान्त है, परन्तु उपर्युक्त बात से पता चलता है कि कुछ समय के लिये सिद्धराज इससे विरोधी विचार रखने लगा होगा।

मूलराज सोलंकी ने सिंहपुर अथवा सीहोर नगर औदीच्य ब्राह्मणों को दान में दे दिया था, यह बात पहले लिखी जा चुकी है। सिद्धराज ने इसी दान का नया लेख करके दिया और बालाक तथा भाल देश में ब्राह्मणों को एक सौ(१) गांव और दिए। थोड़े ही समय बाद सीहोर तथा उसके आसपास के प्रदेशों को भयंकर जंगली जानवरों की बहुतायत के कारण भयानक समझकर ब्राह्मणों ने उस देश को छोड़ दिया और गुजरात में आकर बसने के लिए सिद्धराज से आज्ञा मांगी। सिद्धराज ने उनको सहर्ष आज्ञा देदी और साबरमती के किनारे आशावली(२) नामक गांव भी उनको प्रदान कर दिया। इसके अतिरिक्त उसने वह ज़कात (कर) भी माफ कर दी जो सीहोर से बाहर जाने वाले अनाज पर ली जाती थी।

जैन ग्रन्थकारों ने लिखा है कि एक बार सिद्धराज के दरबार में यवनों के कार्यकर्त्ता आए थे। उनके सामने दरबार में एक चमत्कारी अभिनय(३) हुआ जिसमें यह दिखाया गया कि लंका के राजा

---

(१) मेरुतुंग ने गाँवों की संख्या १०१ लिखी है।

(२) आसाम्बली।

(३) द्व्याश्रय में लिखा है कि सिद्धराज ने केदार का मार्ग बँधवाया, सिद्धपुर में रुद्रमहालय अथवा रुद्रमाल की स्थापना की और जैन चैत्य भी बनवाया। उसने सोमेश्वर की पैदल यात्रा की; वहाँ पर जब ध्यान लगाकर बैठा तो स्वयं शिवजी ने उसे दर्शन दिए और सुवर्ण-सिद्धि तथा सिद्ध-पद प्रदान किए। उसने उसी समय पुत्र के लिए भी याचना की परन्तु शिवजी ने कहा कि, 'तेरा भतीजा कुमारपाल तेरा क्रमानुयायी होगा।' इसके बाद वह गिरनार गया। हेमचन्द्राचार्य के कथनानुसार गिरनार के मार्ग में कल्पजीवी विभीषण के साथ उसकी भेंट हुई और वह भी उसके साथ गिरनार गया था।

विभीषण के प्रतिनिधि, सोलंकी वंश के शृंगार, सिद्धराज से इस प्रकार प्रार्थना कर रहे हैं 'आप राम के अवतार हैं और हमारे स्वामी हैं।' इस अभिनय से यवन प्रतिनिधि डर गये और अन्त में, उन लोगों को उचित शिरोपाव आदि देकर राजा ने विदा किया।

प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है सिद्धराज ने म्लेच्छ लोगों पर अपना प्रभाव जमाने के लिए वेषधारियों (नटों) को बुलाकर अपना रहस्य समझाया और राजसभा में नाटक खेलने की आज्ञा दी। इसके बाद इन्द्रसभा का सा ठाठ सजाकर वह नाटक देखने के लिए बैठा। नाटक शुरू हुआ; शुरू में बहुत से अन्य खेल दिखाने के बाद स्वर्ण की सी कान्ति धारण करने वाले दो राक्षसों ने मस्तक पर स्वर्ण की ईंटें लिए हुए प्रवेश किया और उन दोनों ईंटों को सिद्धराज के चरणों में भेट करके दण्डवत की। फिर, हाथ जोड़कर बोले 'हम लंका के स्वामी विभीषण के पास से आए हैं, उन्होंने देवपूजा के अनन्तर जब अपने इष्टदेव श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान किया तो (उन्हें) ऐसा भान हुआ कि उनके इष्टदेव ने चालुक्यवंश में सिद्धराज के रूप में अवतार धारण किया है। इसलिए, हमें आपके पास भेज कर यह प्रार्थना की है कि, 'यदि आज्ञा हो तो मैं सेवा में उपस्थित हो जाऊँ, अथवा यदि प्रभु की कृपा हो तो कभी यहीं पधार कर मुझे दर्शन दें।' इस पर कुछ विचार करके सिद्धराज ने कहा, 'उनसे कहना कि, जब हमारी इच्छा होगी तब वहीं आकर हम उनको दर्शन देंगे।' ऐसा कहकर उपहार के रूप में उसने आपने गले का इकहरा हार उतार कर उनको दे दिया। हार लेकर विदा होते हुए उन राक्षसों ने कहा, 'यदि किसीं समय हमारी आवश्यकता पड़े तो याद करते ही हम लोग सेवा में उपस्थित हो जावेंगे।' यह कहकर राक्षस तो चले गए और म्लेच्छों के दूत बहुत प्रभावित हुए। वे भी सिद्धराज द्वारा विदाई में दी हुई पोशाकें लेकर अपने स्वामियों के पास लौटने को रवाना हो गए।

द्व्याश्रय में लिखा है कि, "सिद्धराज ने गिरनार, रैवताचल अथवा ऊर्ज्जयन्त की यात्रा लंकाधीश विभीषण के साथ पैदल की थी। वहाँ पर

जैसलमेर के इतिहास में लिखा है कि वहाँ के राजा लाँजा विजयराय को, जब वह राजा नहीं हुआ था तब ही, सिद्धराज सोलंकी ने अपनी लड़की ब्याह दी थी।(१) विदा के समय उसकी सास ने तिलक करके कहा, "पुत्र, जिस राजा की सत्ता आजकल बलवती होती जा रही है उसके राज्य और हमारे राज्य की उत्तरी सीमा के बीच में तुम प्रतिहार होना।"

इन सब घटनाओं के सन् संवत् के विषय में केवल इतना ही लेख मिलता है कि लांजा विजयराय का पिता दुसाज संवत् ११०० अथवा सन् १०४४ ई० में गद्दी पर बैठा था। यह समय सिद्धराज के राज्यभिषेक

उसने नेमिनाथ की पूजा करके विभीषण को तो विदा कर दिया और स्वयं पद-यात्रा करता हुआ शत्रुंजय पर्वत पर गया, जहाँ ऋषभदेव की पूजा करके नीचे आया। नीचे आकर उसने ब्राह्मणों को दान दिया, सिंहपुर अथया सीहोर की स्थापना करके उन्हें दे दिया तथा उसके साथ ही उनके गुजारे के लिए दूसरे गाँव भी प्रदान किए। इसके बाद अणहिलपुर आकर उसने सहस्रलिङ्ग तालाब बनवाया जिसके किनारे पर एक सौ आठ शिवालय, शक्ति के मन्दिर तथा सत्रशालाएं या मठ आदि बनवाए और दश अवतारों की प्रतिमाएं बनवाकर 'दशावतारी' की स्थापना की।

(१) कीर्तिकौमुदी में लिखा है कि शाकम्भरी के राजा अर्णोराज के साथ हुई लड़ाई के बाद में सिद्धराज ने अपनी लड़की का विवाह उस के साथ कर दिया था; परन्तु, ऐसा प्रतीत होता है कि यह भूल है, क्योंकि अर्णोराज के साथ तो कुमारपाल की बहन देवल देवी ब्याही गई थी। यह वृत्तान्त चतुर्विंशति प्रबन्ध 'में विस्तार सहित लिखा है। सिद्धराज के कोई कुँवरी हुई होगी तो उसका लांजा विजयराज के साथ विवाह होना अधिक संभव है (देखिए गुजराती चतुर्विंशति प्रबन्ध पृ० ९८)

से ५० वर्ष पहले का था। विजयराय(१) का जन्म उसके पिता की वृद्धा वस्था में हुआ बताते हैं इसलिए सिद्धराज की कन्या और विजयराय क समकालीन होना हम मान्य करते हैं।

यद्यपि सिद्धराज के राज्यकाल में मुसलमानों ने गुजरात प कोई आक्रमण नहीं किया परन्तु उनकी शक्ति इतनी बढ़ी हुई थी वि उनके राजदूत उसके दरबार में आते थे। अणहिलवाड़ा की रानी ने उनके विरूद्ध उत्तर की ओर जैसलमेर की भाटी रियासत कायम करने की जो उत्सुकता प्रकट की उसका कारण भी और क्या हो सकता है। फरिश्ता ने लिखा है कि सुल्तान मसाऊद तृतीय (१०६८ ई० से १११ ई० तक) के समय में हाजिब तोघान तुगीन नामक उसका एव सरदार, जो लाहोर का अध्यक्ष (गवर्नर) था, एक सेना लेकर गंग के पार चला आया और इतना बढ़ा चला गया कि उस समय तव महमूद के अतिरिक्त कोई मुसलमान आक्रमणकारी इतना न बढ़ सका था। धन-सम्पन्न नगरों और मन्दिरों में से सम्पत्ति लूटकर वह

---

(१) नीचे की टिप्पणी से विदित होता है कि दुसाज संवत् ११५५ (ई० स० १०६६) में गद्दी पर बैठा और सिद्धराज १०६४ ई० में इसलिए ये दोनों समकालीन प्रमाणित होते हैं परन्तु मि० फार्बस् ने जे सम्वत् ११०० ऊपर दिया हैं उसके अनुसार ५५ वर्ष का अन्तर पड़ता है।

श्री आदिनारायण से ५४ वाँ पुरुष श्रीकृष्णचन्द्र हुए और १३५ वाँ देवेन्द्र हुआ जिसका तीसरा पुत्र नरपत कच्छ के जाडेजों का पूर्वज था और चौथा पुत्र भूपत जैसलमेर के आधुनिक राजवंश का मूल पुरुष। इन्हीं में से भाटी नामक एक कुँवर ने लाहोर में राज्य स्थापित किया और महापराक्रमी होने के कारण उसके वंशज भाटी राजपूत कहलाए। कुछ पीढ़ियों बाद राव तणु जी हुआ जिसने संवत् ८८७ वि० में तणोट का कोट बँधवावा और वहीं पर

विजयोल्लास में लाहौर लौटा। उस समय तक गजनी के राजवंश के हाथ से ईरान और तूरान का बहुत सा भाग निकल चुका था इसलिए यह नगर (लाहोर) ही एक प्रकार से राजधानी बन गया था, क्योंकि ये लोग अब इधर ही आकर बस गये थे। सन् १११८ ई० में लाहोर मोहम्मद भिलीम के अधिकार में था। सुलतान अरसलान ने इस नगर को जीत कर अपने कब्जे में लिया था, और भिलीम को यहां का अधिकारी नियुक्त किया था। इस सुलतान की मृत्यु के बाद उसके भाई बैरम का सामना करके इसने नगर पर कब्जा कर लिया, परन्तु अन्त में बैरम ने उसको दबा दिया और फिर उसी (भिलीम) को उसके पद पर नियुक्त करके वह गजनी लौट गया। मोहम्मद भिलीम ने शिवालिक प्रान्त में नागौर के किले को खूब दृढ़ कर लिया और सेना इकट्ठी करके वहीं से हिन्दुस्थान के दूसरे राजाओं को नष्ट करने लगा। अपनी इस सफलता से उत्साहित होकर उसने राजगद्दी पर भी हाथ मारना चाहा परन्तु, मुलतान के स्थान पर सुल्तान बैरमने उसको हराकर विद्रोह को दबा दिया।

मालवा को बल-पूर्वक अपने अधिकार में लेकर सिद्धराज ने वहां की बहुत सी यात्राएं की। इस विषय में मेरुतुंग ने कितनी ही कथाएं

अपनी राजधानी कायम की। तणूंजी के वंश में ही महारावल श्री सिद्ध देवराज हुआ जिसने पृथक् पृथक् नव गढ़ जीते और इसलिए 'नवगढ़ नरेश' कहलाया। एक बार तणोट के सेठ जशकर्ण को धारा नगर के राजा ने कैद करके उसका बड़ा अपमान किया, इसलिए देवराजजी ने सेना लेकर धारा नगर पर चढ़ाई की और उसको लूट लिया। वहाँ से लौटते समय मार्ग में लोद्रवा के राजा जशभान को जीत लिया। तदनन्तर, इन्होंने संवत् ९०९ की माघ सुदि ५

लिखी हैं। एक बार जब सिद्धराज मालवे गया तो उसके साथ एक विशाल रथ था। यह रथ इतना बड़ा था कि मालवा के पहाड़ी मार्ग में वह नहीं जा सकता था, इसलिए बीच में वाराही नामक गांव में उस रथ को छोड़ दिया। सिद्धराज के आगे चले जाने पर गांव के पट्टलिक (पटेल) ने गांव के एक एक आदमी को बुलाकर उस राजरथ की जिम्मेदारी लेने को कहा परन्तु किसी ने भी अकेले में सम्हाल करना स्वीकार नहीं किया। इस पर पटेल ने उस रथ को तोड़ कर

सोमवार के दिन पुष्य नक्षत्र में अपने नाम पर देवगढ अथवा देवरावल की स्थापना की। इसके बाद संवत् १०३० में मंघजी, १११३ में बाछुजी और ११५५ में महारावल श्री दुसाज हुए। दुसाज के जेसल नामक एक कुँवर हुआ। अपनी वृद्धवस्था में मेवाड़ के राणा के कुटुम्ब में उन्होंने फिर विवाह किया। उस स्त्री से इनके लाँजा विजयराव नामक पुत्र हुआ। दुसाज की मृत्यु हो जाने पर राज्य के भाई बन्धुओं व कर्मचारियों ने मिलकर लाँजा को बाल्यावस्था में ही लोद्रवे की गद्दी पर (संवत् ११७६ में) बिठा दिया और बड़ा लड़का जेसल गद्दी न मिलने के कारण रुष्ट होकर सिन्ध में नगर ठठ्ठे के बादशाह शाहबुद्दीन गोरी की शरण में चला गया। लाँजा विजयराव से सिद्धराज की पुत्री के भोजदेव नामक पुत्र हुआ जिसकी रक्षा के लिए ५०० सोलंकियों का पहरा रहता था।

पहले तो लोद्रवे की गद्दी लेने के लिए जेसल की हिम्मत न पड़ी परन्तु, बाद में ठठ्ठा के लश्कर को पाटण पर चढ़ा कर वहाँ से ५०० सोलंकियों को हटाने की तरकीब सोची। मुसलमानों की मदद से उसने लोद्रवे को घेर लिया और लड़ाई में भोजदेव काम आया। इसके बाद उसने प्रजा को लोद्रवे से अपना सामान हटा ले जाने के लिए दो दिन की मोहलत दी, फिर तीसरे दिन करीमखां के लश्कर को लोद्रवा लूट लेने की छूट मिली।

सोरठाः—गोरी शाहबुद्दीन, भिड़िया रावल भोज दे
नाम उमर रख लीन, बारहसै नव रुद्रपुर (१२०६)

उसके भिन्न भिन्न भाग भिन्न भिन्न मनुष्यों के सुपुर्द कर दिये। जब राजा वापस आया और रथ के लिए पूछा तो उसे सब हाल मालूम हुआ। रथ का नाश होने से दुख तो बहुत हुआ परन्तु उसने गांव के पट्टलिकों को बूच(१) अथवा अज्ञानी का उपनाम देकर ही सन्तोष किया। यह उपनाम बहुत समय तक वाराही के पट्टलिकों के नाम के साथ चलता रहा।

दूसरी बार, मलवा से लौटते समय सिद्धराज ने अणहिलवाड़ा पट्टण के पास ऊँझा नामक गांव में पड़ाव डाला। मेरुतुंग ने लिखा है कि इस गांव के मुखिया का और सिद्धराज के मामा का अवटंक एक ही था। विवाह से पूर्व मयणल्ल देवी ऊँझा के मुखिया, हिमालू के संरक्षण में उसी के घर रही थी। यही किम्वदन्ती मेरुतुंग की ऊपर्युक्त बात का आधार जान पड़ती है। जिस प्रकार सिद्धराज के समय में यह गांव गुजरात के उन्नतिशील गांवों में गिना जाता था उसी प्रकार अब भी गिना जाता है। आज कल यह कुडवा कुनबी

इसी स्थान (लोद्रवा) से पूर्व दिशा में चार कोस के फासले पर गोरहरा नामक स्थान पर संवत् १२१२ के श्रावण सुदि १२ रविवार को जैसलमेर का तोरण बँधवाया। (देखिए, जैसलमेर का इतिहास)

(१) राजस्थानी में 'बूच' मूर्ख या भोले मनुष्य को कहते हैं। जिसका कान कटा हुआ होता है उसे भी 'बूचा' कहते हैं। उन पट्टलिकों ने पालकी या रथ को भग्न कर दिया था इसलिए उनको 'बूच' या 'ब्रूच' की उपाधि दी गई थी।

ऐसा जान पड़ता है कि यह शब्द 'अबोध' अथवा 'अबुद्ध' से बिगड़ कर 'बूच' या 'बुज्झ' रह गया है। 'वष्टि भागुरिरल्लोपः' के अनुसार 'अ' का लोप हो गया है।

जाति के किसानों का मुख्य स्थान है। रात्रि के समय सिद्धराज, महाराष्ट्र से आए हुए सोमनाथ के यात्री का वेष बनाकर, गांव वालों की इथाई (१) पर पहुँचा और उनकी बातचीत में सम्मिलित हुआ। वहां उसने अपने विषय में सभी सद्गुणों, विद्याप्रेम, सेवकों के साथ दयामय बर्ताव, और नीतिकुशलतापूर्ण राज्य-संचालन की प्रशंसा सुनी। ऊँझा के किसानों ने अपने राजा में एक ही कमी पाई और वह यह थी कि "हमारे राजा के कोई पुत्र उसके बाद गद्दी पर बैठने वाला नहीं है, यही हमारा दुर्भाग्य है।" दूसरे दिन प्रातःकाल गांव के मुख्य लोग राजा से भेंट करने के लिए उसके डेरे पर गए। राजा के बाहर आने में अभी देरी थी इसलिए पटेल लोग दरबार के कर्मचारियों के मना करते रहने पर भी राजगद्दी का बिना विचार किए नरम नरम गद्दों (२) पर आराम के साथ इस तरह बैठ गए मानों अपने घर पर ही बैठे हों। उच्चकुल के राजपूत में जो साधारण सादगी होती है अथवा जिस सादगी को दिखाने का वह प्रयत्न करता है, सिद्धराज में उससे भी अधिक स्वाभाविक सादगी थी। इसके अतिरिक्त रात की बातचीत सुन चुकने के बाद तो और भी अधिक शिष्टाचार दिखाना इस अवसर पर उसके लिये उपयुक्त था, इसलिए उसने उन ग्रामीणों को उसी जगह बैठे रहने दिया जहां वे बैठ गए थे। इस राजोचित मर्य्यादा के भंग से दरबारियों को बहुत विस्मय हुआ।

---

(१) गाँव वालों के इकट्ठे होने का स्थान।

(२) प्रबन्धचिन्तामणि मूल में 'पल्यङ्क' शब्द लिखा है जिसका अर्थ पलंग होता है।

एक बार मालवा से लौटते समय मार्ग में सिद्धराज को भीलों ने रोक लिया, जिनका सामना कोई नहीं कर सकता था। उसी समय उसका मन्त्री सांतू गुजरात से सेना लेकर उसकी अगवानी करने आ पहुँचा इसलिए उसी ने उस समय अपने राजा के लिए मार्ग को निर्विघ्न कर दिया।

गुजरात के इस महाराजा के विषय में अधिक लिखने के लिए हमारे पास अब कोई साधन नहीं है इसलिए इसके प्रति लिखे हुए कुछ लेखकों के स्वस्तिवाचन मात्र यहां उद्धृत करते हैं:—

गाथा–सो जयउ कूडच्छरडो(१) तिहुयण, मज्झम्मि जेसल नरिन्दो।(२)
छित्तूण रायवंसं, इक्कं छत्त' कयं जेण ॥ १ ॥

"जिसने समस्त राजवंश को नष्ट करके संसार को एक छत्र के नीचे ला दिया, (ऐसे) तीनों भुवनों के शूरवीरों में मुख्य जयसिंह नरेन्द्र की जय हो॥१॥

महालयो महायात्रा, महास्थानं महासरः
यत् कृतं सिद्धराजेन, क्रियते तन्न केनचित् (३) ॥ २ ॥

"बड़े बड़े प्रासाद, संस्थान, जलाशय आदि, जैसे सिद्धराज ने बनवाए वैसे किसी ने नहीं बनवाये और जैसी यात्राएं उसने कीं वैसी इस पृथ्वी पर कौन करेगा ?

---

(१) बाँसों की टोकरी आदि बनाने वाले। इस पद्य में श्लेषालङ्कार है। जयसिंह और बरुड़ का एक ही प्रकार का काम बताया गया है।

(२) स जयतु कूटबरुडः त्रिभुवनमध्ये जयसिंहनरेन्द्रः
छित्वा राजवंशं एकच्छत्रं कृतं येन।

(३) 'धरिण्यां तत्करोतु कः' ऐसा भी पाठ है।

मात्रयाप्यधिकं किञ्चन्न सहन्ते जिगीषवः
इतीव त्वं धरानाथ ! धारानाथमपाकृथाः ॥२॥(१)

"विजय की इच्छा रखने वाले लोग दूसरे के पास एक मात्रा तक की अधिकता को भी नहीं सह सकते, इसीलिए हे धरानाथ ! आपने धारानाथ को नष्ट कर दिया।"

मानं मुञ्च सरस्वति ! त्रिपथगे ! सौभाग्यभङ्गीं त्यज,
रे कालिंदि ! तवाफला कुटिलता रेवे ! रयस्त्यज्यताम् ।
श्रीसिद्धेशकृपाणपाटितरिपुस्कंधोच्छलच्छोणित–
स्रोतोजातनदी–नवीनवनितारक्ताम्बुधिर्वर्तते ॥ ४ ॥

"हे सरस्वती ! अपने मान को छोड़ दे, हे गंगे ! अपने सौभाग्य के गर्व को त्याग, यमुने ! तुम्हारी कुटिलता (टेढ़ापन) निष्फल हो गई, रेवा ! अपनी गति की शीघ्रता को छोड़ दे–क्योंकि तुम्हारा प्रियतम समुद्र तो अब श्रीसिद्धराज नरेश की तलवार से से जिन शत्रुओं के स्कंध कटे हैं उनमें से निकले हुये खून की नदी रूपी नव-वनिता में रक्त (आसक्त) है।"

सिद्धराज के शरीर की बनावट के विषय में कृष्णाजी ने निम्न-लिखित वृत्तान्त लिखा है–

"उसका रंग गोरा, शरीर दुबला ;परन्तु सुगठित था; उसके बाजू पोंहचों तक काले थे।"

---

(१) यह सिद्ध है कि यह प्रशस्ति का पद्य है।

उसके आचरण के विषय में मेरुतुंग ने लिखा है कि "वह सभी सद्गुणों का भण्डार था, जिस प्रकार युद्ध में शूरवीर था उसी प्रकार दयावान् भी था, वह अपने सेवकों के लिए कल्पतरु था—

'उसका उदार हाथ सभी के लिए खुला हुआ था, अपने मित्रों के लिए मेघ के समान था और शत्रुओं के लिए वह रणक्षेत्र में सिंह के सदृश था।'

उसी ग्रन्थकर्ता ने उसकी कामुकता के विषय में उस पर दोष भी लगाया है और पवित्र ब्राह्मण जाति की स्त्रियों के साथ विषयासक्ति के लिए भला बुरा भी लिखा है। धार्मिक विषयों में उसकी पक्षपात-रहितता के लिए पहले लिखा जा चुका है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह खुशमिजाज था और अपने घरेलू जीवन में भी आलस्य नहीं करता था। ये बातें उसके वेश बदल कर रात्रि के समय घूमने, नाटक खेल तमाशों आदि में सम्मिलित होने की कथाओं से प्रतीत होती हैं। उसमें एक विशेष बात यह थी कि वह कीर्ति का लोभी बहुत था। यह बात उसके युद्ध में प्रशंसनीय पराक्रम दिखाकर यश प्राप्त करने के सतत प्रयत्नों से ही सिद्ध नहीं होती, वरन् कवियों पर कृपा रखने एवं अपने कुल को चिरस्मरणीय बनाने की प्रबल उत्कण्ठा से भी विदित होती है। कृष्णाजी ने लिखा है कि 'उसको पुत्र प्राप्ति की बड़ी अभिलाषा थी और महाकवि बनने की भी प्रबल उत्कण्ठा थी परन्तु उसकी ये दोनों ही इच्छाएं कभी पूर्ण नहीं हुईं। फिर भी उसने अपने वंश का एक इतिहास लिखवाया।' उसका नाम अन्धेरे में न रह जाय इसी इच्छा से प्रेरित होकर उसने गुजरात और सोरठ पर उदारता का हाथ रक्खा और ऐसे भव्य देवालय तथा सरोवर

बँधाए(१) कि उनके खंडहरों को देख कर आज भी साधारण बुद्धि के मनुष्य चकित हो जाते हैं और इतिहास के विद्यार्थी भी विस्मय में भर जाते हैं।(२)

सिद्धराज के आचरण में कितने ही दोष क्यों न हों परन्तु निस्सन्देह वह हिन्दू राजाओं में एक उच्चकोटि का राजा हो गया है। वह परम साहसिक, शूरवीर एवं वीर्यवान् था इसी लिए इतिहासलेखक उसके विषय में लिखते हैं कि वह 'गुर्जर देश का शृङ्गार तथा चालुक्यवंश का दीपक था'। उसके राज्य के विस्तार का अनुमान मात्र ही लगाया जा सकता है, सीमा का वर्णन ठीक ठीक नहीं किया जा सकता। गुजरात प्रधान एवं उसके आस पास का प्रदेश जो उसको वनराज के उत्तराधिकारी पद पर

---

(१) राव साहब महीपतराम रूपराम ने सिद्धराज जयसिंह के प्रसिद्ध कार्यों के विषय में लिखा है कि डभोई का किला और उससे चार चार मील के फासले पर धर्मशालाएं, कपडवंज का कुंड, धोलका का मालव्य सरोवर, रुद्रमहालय व अन्य देवस्थान; रानी की बावडी, सहस्रलिंग सरोवर, सीहोर का कुंड, सायला का किला, दश हजार मन्दिरों वाला दशासहस्त्र, वीरमगाँव का मुन तालाब, दाधरपुर, बढवाण, अनन्तपुर और चुबारी का गढ़, सरधर तालाब, जिंजूवाड़ा, वीरपुर, भदुला, बेसिंगपुर और थान का गढ़; कंडोला और सेजकपुर के महल, देदाद्र का कीर्तिस्तम्भ, जैतपुर और अनन्तपुर के कुंड, ये सब सिद्धराज ने बनवाए थे।

(२) लार्ड बॅकन लिखता है कि सन्तानहीन मनुष्यों ने जो अच्छे अच्छे काम किए हैं अथवा शुभ कार्यों की नींव डाली है इसका कारण यह है कि जब वे अपने शरीर की प्रतिमूर्ति प्राप्त करने में असफल होते हैं तो अपने मनोगत भावों को मूर्त्तरूप देने का प्रयत्न करते हैं।

प्राप्त हुआ था उस पर उसने अपना अधिकार दृढ़ कर लिया था। अचलगढ़ और चन्द्रावती के किले, जो उसके अधीनस्थ पँवारों के हाथ में थे, अणहिलवाड़ा की उत्तरी सीमा के किले थे; मोढेरा और जिंजूवाड़ा पश्चिम में थे; चांपानेर तथा डभोई के किले पूर्व में थे। इनके अतिरिक्त दूसरे दुर्ग जिन पर सिद्धराज की ध्वजा फहराती थी तथा जिन में उसके दुर्गपाल रहते थे, वे और उनके मध्य की उपजाऊ भूमि उस विजयी सिंह (जयसिंह) की पराक्रमपूर्ण धाड़ (हमले) के ही फलस्वरूप प्राप्त हुए थे। मूलराज अथवा भीमदेव प्रथम के हाथ में जितना राज्य था, वह जयसिंह के अधिकार में किसी प्रकार कम न हुआ था, अपितु उसके राज्य की सीमा आबू के उस पार जालोर तक आगे चली गई थी। कच्छ(१) भी इसी राज्य के अन्तर्गत था। हम देख ही चुके हैं कि सोरठ और मालवा उसके अधिकार में

---

(१) मूलराज के हाथों लाखा फूलाणी की मृत्यु के बाद कच्छ चालुक्यों के अधिकार में आ गया। कार्तिक शुक्ला १५ संवत् १०८६ के एक ताम्रपट्ट से प्रमाणित होता है कि भीमदेव के समय तक वह उन्हीं के अधिकार में रहा था। इस ताम्रपट्ट से यह भी विदित होता है कि भीमदेव ने कच्छ-मण्डल के वाणासीक ग्राम से आए हुए आचार्य मंगलशिव के पुत्र अजयपाल को मसूरा नामक ग्राम दिया था। इस मसूरा ग्राम का अब ठीक ठीक स्थान मालूम नहीं होता। सिद्धराज के समय में भी यह उसके अधीनस्थ प्रदेश था, इसका प्रमाण भद्रेसर के एक शिलालेख से मिलता है जो सन् ११३६ (संवत् ११६५ आषाढ बुदि १०) का है। इस लेख से पता चलता है कि उस समय सिद्धराज का प्रधान दादाक था और कच्छ भद्रेश्वर का स्थानिक-शासनकर्ता बड़े राजा आसपाल का पुत्र कुमारपाल था क्योंकि इस शिलालेख की जो ५-६ पंक्तियाँ पढ़ी जा सकी हैं उनसे यही ज्ञात होता है कि राजा ने यह लेख राजा आसपाल के कुँवर कुमारपाल के बनवाए हुए कुमारपालेश्वर के नए मंदिर में और

थे और दक्षिण दिशा में उसका राज्य सुदूर दक्षिण तक फैला हुआ था। मेरुतुंग लिखता है कि वहां उसने कोल्हापुर(१) के राजा को भयभीत कर दिया था। चन्द वरदाई का अनुमान है कि कन्नौज के राजा के साथ उसका युद्ध हुआ था जहां 'उसने अपनी तलवार गङ्गा नदी के जल में धोई थी।' यह भी लिखा है कि उसकी सार्वभौम विजय

ऊदलेश्वर के प्राचीन मन्दिर में औदीच्य ब्राह्मणों को पूजा करने का अधिकार देने के लिए लिखवाया था।

(१) शिलार (शिलाहार) अथवा कोल्हापुर के महामण्डलेश्वर, कल्याण के सोलंकियों के वंशपरंपरागत जमींदार थे। (देखिए रायल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल Vol. VI, पृ० ४, ३३ और ट्रान्जैकशन्स् आफ़ दी बाम्बे लिटररी सोसाइटी, पुस्तक तीसरी पृ० ३६४, नवीन आवृत्ति पृ० ४१३ दक्षिण का प्राचीन इतिहास पृ० १२१–१२५)

उस समय कोल्हापुर में पन्हाला शाखा का राजा भोज (द्वितीय) था जिसके वंश का संक्षिप्त वृत्तान्त इस प्रकार है। "विद्याधर के राजा जीमूतकेतु के पुत्र जीमूतवाहन ने शंखचूड नामक नाग के प्राण बचाए थे। उसके वंशज शिलार अथवा शिलाहार नाम के महामण्डलेश्वर कहलाए। ये ही लोग तगरपुर के अधीश्वर भी कहलाते थे। 'शिलाहाराख्यवंशोऽयं तगरेश्वरभूभृताम्'। इन शिलाहारों के तीन वंश हुए, जिनमें से तीसरे वंश के राजा, कोल्हापुर, मिरजे, और कहाड़ पर राज्य करते थे। कुछ समय बाद उन्होंने दक्षिण में कोंकण तक अपना राज्य बढ़ा लिया। इनकी वंशावली इस प्रकार है—(१) जतिग, (२) नाइम्म, (३) चन्द्रादित्य (चन्द्रराज), (४) जतिग (दूसरा), (५) गौचारक, (गूवल प्रथम, कीर्तिराज और चंद्रादित्य ये तीन भाई थे), (६) मारसिंह, इसके पुत्र गूवल दूसरा, भोज पहला, बेल्लाल और (७) गडरादित्य, इसका पुत्र (८) विजयार्क और (९) भोज दूसरा था। इसके लेख शक संवत् ११०१ से ११२७ तक मिलते हैं। जादव सींधण ने लगभग शक संवत् ११३६ (ई० स० १२१४) में शिलाहार वंश के राजाओं का राज्य छीन लिया।

की धारणा को रोकने के लिए मेवाड़ और अजमेर के राजाओं ने आपस में मित्रता करली थी। प्रसिद्ध चित्तौड़ में एक लेख प्राप्त हुआ है जिसमें लिखा है कि 'उसका अङ्ग जयकोश में मँढा हुआ था और उसके कृत्य पृथ्वी पर गाजते रहते थे।' इस देश के इतिहासकार भी साक्षी देते हैं कि उसके नाम एवं पराक्रम का वर्णन राजपूताने के प्रत्येक राज्य के इतिहास में प्राप्त होता है।

सिद्धराज(१) ने १०९४ ई० से ११४३ ई० तक ४९ वर्ष

---

(१) सिद्धराज वि० सं० ११९९ (११४३ ई०) की कार्तिक शुक्ला ३ को स्वर्गस्थ हुआ। कहते हैं कि जब मयणल्लदेवी सगर्भा थी तब उसे स्वप्न आया कि उसके मुंह में एक सिंह घुस गया था, इसीलिए सिद्धराज का नाम जयसिंह रखा गया। ऐसी भी कल्पना है कि इस स्वप्न की स्मृति को बनाए रखने के लिए ही उसने बाद में सिंह संवत् चलाया होगा।

जो महापराक्रमी राजा होते हैं, प्राय: उनके नाम से संवत्सर चलाए जाते हैं। संवत् ११७० (१११४ ई०) से सिद्धराज जयसिंह के नाम से सिंह संवत् मिती अषाढ़ शुक्ला १ से प्रारम्भ हुआ प्रतीत होता है। सौराष्ट्र के रा' खँगार को जीतकर उसने वहां पर सज्जन (साजन) को दण्डनायक बनाया। इसके बाद ही इस प्रान्त में सिंह संवत्सर का प्रचार हुआ था। सौराष्ट्र की तीन वर्ष की आमदनी खर्च करके साजन ने जो देवालय बँधवाया था वह संवत् ११७६ का है और उस स्थान पर सिंह संवत्सर नहीं लिखा हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि सब व्यवस्था ठीक हो जाने के पश्चात् लगभग छ: वर्ष बाद उसने इस संवत् को प्रचलित किया होगा। सिद्धराज के बाद कुमारपाल हुआ, उसके समय में भी यह संवत् चलता रहा। कुमारपाल ने भी अपना नया संवत् चलाया, ऐसा अभयतिलक सूरि ने संवत् १३१२ में अपने द्व्याश्रय ग्रंथ की पुनरावृत्ति करके उसके २०वें सर्ग में लिखा है। मंगलपुर (आधुनिक मंगरोल) में जो मोढ़ल नाम की बावड़ी है उसमें एक लेख है, जिसमें सिंह संवत् ३२ और

राज्य किया।

विक्रम संवत् १२०२ लिखा है। यह लेख बहुत प्राचीन है, उसको देखकर और उस स्थान पर बावड़ी होने का अनुमान करके ही १३७५ वि० में राव श्रीमहिपाल देव के राज्य में, मोढ़ जाति के ब्राह्मणों ने (बादशाह सलीमशाह के समय में) यह मोढल बावडी बनवाई होगी, ऐसा भावनगर के प्राचीन शोध संग्रह से मालूम होता है।

श्रीसिद्धराज के बाद अद्भुत महिमावाला और पुण्य के कारण जिसका उदय निश्चित हो गया था, ऐसा कुमारपाल राजा राज्य करता था। उसी के समय में गुहिल वंश में महामहिमाशाली, धरामंडन, श्री साहार हुआ जिसका पुत्र चौलुक्यांगनिगूहक (चालुक्यों का अङ्गरक्षक) सहजिग नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके पुत्र पृथ्वी पर बलवान् और सौराष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ हुए, जिनमें से एक सोमराज था। इसीने प्रभास पट्टण में सोमनाथ के देवालय के चौक में मन्दिर बनवा कर अपने पिता की स्मृति में 'सहजिगेश्वर' की स्थापना की थी। सहजिग का दूसरा पुत्र मूलुक था जिसने सहजिगेश्वर की पंचोपचार पूजा के निमित्त मंगलपुर अथवा मंगरोल के दानपत्र पर प्रति दिवस की कितनी ही लागें (कर) लिखी हैं। यह लेख आश्विन बुदी १३ सोमवार वि० सं० १२०२ का लिखा हुआ है और इसके साथ ही सिंह संवत् ३२ लिखा है। जब तक अणहिलवाड़ा की गद्दी का प्रभाव रहा तब तक इस सिंह संवत्सर का प्रचार रहा मालूम होता है। अर्जुनदेव के समय के वेरावल के लेख में विक्रम संवत् १३२०, वल्लभी संवत् ६४५ और सिंह संवत् १५१ लिखा है। चालुक्य महाराजा अर्जुन देव के समय में उसके प्रधान कार्यकर्त्ता राणक मालदेव थे। उन दिनों सोमनाथ पट्टण में पाशुपताचार्य गंड श्री परम वीरभद्र तथा महंश्री अभयसिंह आदि पंचकुल की प्राप्ति के लिए अमीर रुक्नुद्दीन राज्य करता था। वहां पर हरमुज देश के खोजा अबुइब्राहिम के लड़के फीरोज ने किसी कार्य की सिद्ध पर एक मसजिद बनवाई थी जिस पर हि० स० ६६२ लिखा है, यह बात भावनगर के प्राचीन शोध-संग्रह से मालूम होती है। इससे बढकर आश्चर्यजनक बात यह है कि चालुक्यवंश के भोला भीम आदि के ताम्रपट्टों

में केवल विक्रम संवत् ही अंकित मिलता है। यह देखकर, निश्चय नहीं होता कि सिंह संवत्सर सिद्धराज जयसिंह के नाम पर ही प्रचलित हुआ था अथवा किसी दूसरे के नाम पर। सिंह नाम के किसी दूसरे राजा का तलाश करने पर पोरबंदर के एक लेख में वहां के मंडलेश्वर सिंह का नाम मिलता है और कहते हैं कि उसके पराक्रमपूर्ण कार्यों के कारण ही सिंह संवत् चला था। परन्तु, संवत् ११७० में सिद्धराज ने सौराष्ट्र को अपने आधीन कर लिया था और उसके होते हुए कोई दूसरा अपने नाम पर सिंह संवत्सर चला सका हो, यह संभव प्रतीत नहीं होता है। सिद्धराज ने ही ब्राह्मणों को दान देने के लिए एक ग्राम का नाम सिंहपुह रख्वा था इसलिए यह बात और भी अधिक संगत प्रतीत होती है कि उसीने नए संवत् का नाम सिंह संवत् रखा होगा।

प्रकरण ११

कुमारपाल

सिद्धराज के कोई पुत्र नहीं था इसलिए उसके बाद उसका राज्य भीमदेव के पुत्र क्षेमराज के वंश में चला गया। यह क्षेमराज बकुला देवी(१) के पेट से उत्पन्न हुआ था और राजा कर्ण सोलंकी का सौतेला भाई था। क्षेमराज के पौत्र और देवप्रसाद के पुत्र त्रिभुवनपाल के

---

(१) एक पुस्तक में 'बाकुला' ऐसा नाम लिखा है, शायद वह बकुला का अपभ्रंश है। मेरुतुंग ने उसका नाम चउला देवी लिखा है, यह शायद ब और च के पढ़ने में हेरफेर होने के कारण हो गया है। चउला देवी नाम की एक वेश्या पट्टण में रहती थी; वह वेश्या होने पर भी बहु गुणवती थी और धर्म की मर्यादा का पालन करती थी। उसकी शीलमर्यादा कुलवधुओं से भी अधिक मानी जाती थी। भीमराज ने जब उसके गुणों की प्रशंसा सुनी तो अपनी रक्षिता बनाने के अभिप्राय से उसने सवा लाख रुपये की एक कटारी अपने नौकरों के हाथ भेजी। बकुला ने उसको घर में रख लिया। इसके दूसरे ही दिन मूलराज को मालवा-विजय करने के लिए जाना पड़ा और वहाँ दो वर्ष रुकना पड़ा। उसकी अनुपस्थिति में भी वह उसी प्रकार नियमपूर्वक रही, जैसी उसकी प्रशंसा थी, इसलिए राजा उससे बहुत प्रसन्न हुआ और उसको अंतःपुर में रख लिया। इसी चउला देवी के हरिपाल नामक पुत्र हुआ और हरिपाल के क्षेमराज हुआ।

तीन पुत्र व दो पुत्रियां थीं। पुत्रों के नाम महिपाल, कीर्तिपाल और कुमारपाल थे तथा पुत्रियों के नाम प्रेमलदेवी व देवलदेवी थे। प्रेमलदेवी का विवाह जयसिंह के प्रधान सेनापति कान्हदेव के साथ हुआ था और उसकी बहन देवलदेवी कश्मीर के राजा (१) को ब्याही थी।

मेरुतुंग ने लिखा है कि सामुद्रिकशास्त्रवेत्ताओं ने सिद्धराज को पहले ही कह दिया था कि उसके बाद कुमारपाल राजा होगा। सिद्धराज ने इस बात पर विश्वास तो नहीं किया क्योंकि कुमारपाल निम्न कुल में उत्पन्न हुआ था परन्तु फिर भी वह उसको समाप्त कर देने के प्रयत्न में निरन्तर लगा रहता था। कुमारपाल भी उसके डर से भाग गया और साधु का वेष बनाकर कितने ही वर्षों तक देश विदेश में घूमता रहा। फिर, अणहिलवाड़ा लौट कर वह श्री आदिनाथ के उपाश्रय में निवास करने लगा। एक बार सिद्धराज ने अपने पिता कर्ण के श्राद्ध के अवसर पर अर्घ्य पूजा आदि करने के लिये सभी तपस्वियों को निमंत्रित किया और एक एक के चरण

---

(१) रत्नमाला के कर्त्ता कृष्णाजी ने लिखा है :—

(हरिगीतिका के दो चरण)

इक पुत्री प्रेमल नाम सो, जयसिंह सेनापति बरी।
काश्मीर देशाधिप के कर पुत्री देसल कुं धरी ॥

यहाँ इन पंक्तियों के आधार पर ही यह लिखा गया है कि देवलदेवी का विवाह काश्मीर के राजा के साथ हुआ था। परन्तु सच्ची बात यह है कि वह त्रिभुवनपाल की काश्मीर वाली रानी की लड़की थी और भूल से ऐसा लिखा गया है, क्योंकि देवलदेवी का विवाह तो शाकम्भरी के आन्न अथवा अर्णोराज के साथ हुआ था जिसका वृत्तान्त आगे आवेगा।

धोने लगा। ज्योंही उसके हाथ साधु कुमारपाल के कमल के समान चरणों पर पड़े त्योंही ऊर्ध्व रेखा एवं अन्य राजोचित लक्षणों को देख कर वह जान गया कि इस मनुष्य के भाग्य में राज्य लिखा है। उसके मुख के भाव से कुमारपाल भी ताड़ गया कि राजा ने उसे पहचान लिया है, इसलिए वह तुरन्त ही वेष बदल कर अपने गांव देथली (देवस्थली) को चला गया। राजा कर्ण ने जो गांव उसके दादा देवप्रसाद को दिया था यह वही गांव था। उसके पीछे पीछे बहुत से सिपाही भी उसकी खोज में वहीं जा पहुंचे, परन्तु आलिंग (अथवा साजन) नामक एक कुम्हार ने उसको अपने बर्तन पकाने की भट्टी में छुपा लिया। अवसर पाते ही कुमारपाल वहां से भाग निकला परन्तु सिपाही बराबर उसका पीछा करते रहे और एक बार तो उसे पकड़ ही लेते यदि एक किसान (१) जो अपने खेत की रखवाली कर रहा था, उसे खेत की बाड़ बनाने के लिए एकत्रित की हुई कांटेदार झाड़ियों में न छुपा लेता। उसके पदचिन्हों को देखते हुए राजा के आदमी उस खेत में भी आ पहुँचे जहां वह छुपा हुआ था और अच्छी तरह देख भाल करने लगे यहां तक कि बाड़ के ढेर में भी तलवार गड़ाकर उन्होंने खोज करली परन्तु कुमारपाल का पता न चला। जब इस प्रकार अपने शिकार को प्राप्त करने में विफल हुए तो वे वापस लौट गये। दूसरे दिन, किसान ने कुमारपाल को बाड़ में से बाहर निकाला और वह आगे भाग गया। कुछ दूर चल कर जब वह एक पेड़ के नीचे विश्राम करने बैठा तो उसने देखा कि एक चूहा अपने बिल से बाहर आया और एक एक

---

(१) इस किसान का नाम भीमसिंह था। कुमारपाल ने उसे समय आने पर उसके उपकार का बदला चुकाने का वचन दिया।

करके बीस चांदी की मुद्राएं ला कर वहां रख दीं। इस प्रकार वह अपने पूरे खजाने को बाहर ले आया और फिर उसको वापस बिल में रखने लगा।(१) जो कुछ बचा उसको कुमारपाल ने ले लिया और इस दैवप्रदत्त सहायता को प्राप्त कर वह आगे बढ़ा। कुछ दूर चल कर उसने देखा कि एक वैश्य स्त्री(२) अपने दास, दासी, रथ, घोड़े आदि को साथ लेकर सुसराल से पीहर जा रही थी और रास्ते के किनारे ही एक स्थान पर भोजन विश्राम आदि करने के लिए ठहरी हुई थी। कुमारपाल को तीन दिन से भोजन नहीं मिला था और वह भूखा ही यात्रा कर रहा था इसलिए उसने भी भोजन में सम्मिलित होने की प्रार्थना की। उसकी यह प्रार्थना बहुत ही सहृदयता के साथ स्वीकार कर ली गई।

दूर दूर के देशों में यात्रा करता हुआ अन्त में, वह स्तम्भ तीर्थ अथवा खम्भात पहुँचा(३) और वहां भोजन मांगने के लिए उदयन

---

(१) प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि वह चूहा इक्कीस रजत मुद्राएं निकाल कर लाया। फिर वह उन्हें वापस बिल में ले जाने लगा। तब एक तो ले गया परन्तु शेष पर कुमारपाल ने अधिकार कर लिया। जब चूहा बिल के बाहर आया तो अपनी मुद्राओं को न देखकर दुःख के मारे वहीं पछाड़ खाकर मर गया।

(२) यह उदुम्बर ग्राम की रहने वाली थी। इसका नाम देव श्री (श्री देवी) था। इसने कुमारपाल के साथ भाई का सा व्यवहार किया था। उसने भी इसको बहन मानने का वचन दिया।

(३) मार्ग में कुमारपाल को वोसरी नामक मित्र मिला, वह भी उसके साथ हो लिया; गाँवों में से भिक्षा ला लाकर वह उसको खिलाता था। इस

मेह्ता (मंत्री) के घर गया। जब यह मालूम हुआ कि मंत्री तो चैत्यालय में गया है तो कुमारपाल भी वहीं पहुँच गया और उदयन को हेमाचार्य के पास बैठा हुआ देखा। आचार्य ने उसे देखते ही समस्त भू-मण्डल का राजा कह कर सम्बोधित किया। कुमारपाल ने अपनी तात्कालिक गरीबी को देखकर उस भविष्यवाणी को सत्य मानने में संकोच किया, परन्तु जब हेमाचार्य ने उसे फिर विश्वास दिलाया तो उसने उसी समय प्रतिज्ञा की 'यदि यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई तो मैं जैनमत का अवलम्बन करूंगा।'(१) इसके बाद उदयन मन्त्री से धन एवं अन्य आवश्यक वस्तुएं प्राप्त करके कुमारपाल मालवे गया;(२) वहां

प्रकार दोनों मित्र खम्भात (स्तंभ तीर्थ) पहुँचे। वोसरी शैव ब्राह्मण था। (प्रभावक चरित्र–प्रभाचन्द्रकृत)

(१) जब कुमारपाल ने हेमचन्द्राचार्य के कथन की सत्यता पर सन्देह प्रकट किया तो आचार्य ने लिखकर प्रतिज्ञा की—

'११९९ वर्षे कार्तिक वदि २ रवौ हस्तनक्षत्रे यदि भवतः पट्टाभिषेको न भवति तदातः परं निमित्तावलोकसन्यासः।'

यदि कार्तिक कृष्णा २ रविवार को हस्तनक्षत्र में आपका पट्टाभिषेक न हुआ तो इसके आगे से मैं कोई भविष्यवाणी नहीं करूंगा।

इसके अनन्तर कुमारपाल ने भी भविष्यवाणी के सत्य सिद्ध होने की दशा में जैनधर्म स्वीकार करने की प्रतिज्ञा की।

(२) जब कुमारपाल खम्भात ही में था तो सिद्धराज के आदमी उसको पकड़ने आ पहुँचे। वह वापस ही भागकर हेमाचार्य के पास आया और उन्होंने उसको एक तहखाने में छुपा कर ऊपर पेड़ के लकड़े आदि डाल दिये। प्रभावक चरित्र में लिखा है कि ताड़पत्र फैला दिए और कुमारपालचरित्र में लिखा है कि पांडुलिपियाँ उसके ऊपर डाल दीं। राजा के आदमियों ने बहुत कुछ

श्रीकुडंगेश्वर के प्रासाद में निम्नलिखित लेख पढ़कर वह बहुत विस्मित हुआ—

पुण्णे वास सहस्से सयम्मिवरिसाण नवनवइ कलिये
होही कुमार नरिन्दो तुह विक्रमराय सारिच्छो ।

"पवित्र ११६६ वें वर्ष के समाप्त होने पर हे विक्रमराय ! कुमार (पाल) नामक राजा तुम्हारे ही समान होगा।"

मालवे में ही कुमारपाल को समाचार मिला कि सिद्धराज का स्वर्गवास हो गया तो उसने गुजरात जाने का निश्चय किया; परन्तु उसके पास तो पेट पालने का भी पूरा साधन नहीं था इसलिये अणहिलवाड़ा पहुँचने में उसे बहुत सी कठिनाइयां झेलनी पड़ीं।

तलाश किया परन्तु कुमारपाल न मिला और वे निराश होकर लौट गये। वहाँ से कुमारपाल वटपद्रपुर (बडोदरा) गया। वहाँ भूख लगने पर कुलूक नामक बनिये की दूकान पर, पास पैसा न होने कारण, उधार ही भुने हुए चने लेकर खाये। वहाँ से चलकर वह भृगुकच्छ (भडौंच) पहुँचा जहाँ एक मन्दिर की ध्वजा पर बैठे हुए कालीदेवी पक्षी को देखकर एक ज्यौतिषी ने भविष्यवाणी की कि थोड़े ही समय में वह राजा हो जावेगा। इसके बाद वह कोल्हापुर गया, वहाँ एक योगी ने भविष्यवाणी की कि वह गुजरात की गद्दी प्राप्त करेगा और यह कहकर उसको दो मंत्र भी सिखा दिए। वहाँ से चलकर वह कांचीवरम् और फिर कालम्ब पट्टन (कोलम अथवा क्विलोम) पहुँचा। वहाँ के राजा प्रतापसिंह ने उसका अपने बड़े भाई के समान सत्कार किया और उसी सम्मान के साथ उसको नगर में लाया। उसका सम्मान प्रदर्शन करने के लिए राजा ने कुमारपालेश्वर महादेव का एक शिवालय बनवाया तथा उसके नाम का सिक्का भी प्रचलित किया। फिर, राजा से विदा लेकर कुमारपाल चित्रकूट और वहाँ से चित्तौड़ गया; इसके बाद वह उज्जैन चला गया।

एक हलवाई ने दया करके कुमारपाल को कुछ भोजन दिया, उसीसे पेट भर कर वह अपने बहनोई कान्हड़देवी (कान्हदेव) के घर पहुंचा। सिद्धराज ने मृत्यु से पूर्व अपने सभी कर्मचारियों को बुलाया और उनको अपने गले पर हाथ रख कर शपथ खाने को विवश किया कि वे उसके बाद किसी भी दशा में कुमारपाल को गद्दी पर नहीं बिठाएंगे। इन कर्मचारियों में से एक प्रधान कर्मचारी कान्हदेव भी था। यह बात चल ही रही थी कि उसका देहान्त हो गया। कान्हदेव ने भी यह शपथ ग्रहण की थी अथवा नहीं यह तो ठीक २ नहीं कहा जा सकता परन्तु, ज्योंही उसको कुमारपाल के आने का समाचार मिला वह तुरन्त हवेली से बाहर आया और बहुत सम्मान के साथ उसकी अगवानी करके अन्दर ले गया। दूसरे दिन कुछ सशस्त्र सिपाहियों को साथ लेकर वह कुमारपाल को महल में ले गया। अब, राजगद्दी पर कौन बैठे यह बात तय करने के लिए कान्हदेव ने सिद्धराज महान् की गद्दी पर एक के बाद एक, इस प्रकार दो राजकुमारों को बिठाया। संभव है, वे कुमारपाल के भाई महीपाल और कीर्तिपाल हों। परन्तु, पहला तो अपने स्त्रैण वेष के कारण लोगों की नजरों में नहीं जंचा इसलिए रद्द कर दिया गया। दूसरे कुमार को गद्दी पर बैठते ही पूछा गया कि जयसिंह ने जो अट्ठारह परगने (१) छोड़े हैं उन पर किस प्रकार

---

(१) कर्णाटे१ गुर्जरे२ लाटे३ सौराष्ट्रे४ कच्छ५ सैन्धवे६ ।
*उच्चायां७ चैव भम्भेर्यां८ मारवे९ मालवे१० तथा ॥१॥
कौङ्कणे च११ महाराष्ट्रे१२ कीरे१३ जालन्धरे पुनः१४ ।
सपादलक्षे१५ मेवाड़े१६ दीपा१७ भीरा१८ ख्ययोरपि ॥२॥
(कुमारपाल प्रबन्ध)

(*) उच्च-मुल्तान के नैऋत्य कोण से दक्षिण में ७० माइल पर पंचनद

राज्य करोगे ?' तो उसने जवाब दिया 'आप लोग जैसी सलाह देंगे उसी के अनुसार कार्य करूंगा।' सिद्धराज के शौर्यपूर्ण शब्दों को सुनने में अभ्यस्त सामन्तों के कानों को यह उत्तर न रुचा, इसलिए वह भी अस्वीकृत कर दिया गया, और अब कुमारपाल को गद्दी पर बिठा कर वही प्रश्न पूछा गया। प्रश्न को सुनते ही एडी से लेकर

के पूर्वीय किनारे पर भावलपुर स्टेट में जहां सतलज नदी सिन्धु नदी से मिलती है उस स्थान का प्राचीन नगर है। आज कल मिठनकोट से आगे जहां पर चिनाब और सिन्धुनद का संगम होता है वह पहले तैमूर और अकबर के समय में यहां से ६० मील ऊपर की ओर उच्च नगर के सामने होता था। इस शताब्दी के आरम्भ से सिन्धु नद ने अपना मार्ग बदलना शुरू कर दिया है और अग्निकोण से दक्षिण की ओर बहती बहती मिठणकोट के पास अपने पुराने मार्ग से जा मिलती है। इस फेरफार के कारण अब उच्च से इसके मार्ग का २० मील का अन्तर पड़ गया है। झेलम और चिनाब के संगम से थोड़ी दूर पर अब भी उच्च नाम की एक जगह है और उत्तरी हिन्दुस्थान में उच्च अथवा ऊंछ नाम से प्रसिद्ध है। उच्च नगर जिसका मुख्य शहर था वह उच्च देश कहलाता था।

८. भम्भुरा—सिन्ध के करांची जिले में एक प्राचीन नगर था। इसके चारों ओर परकोटा था और उसमें प्रसिद्ध देवालय थे जिनको ७११ ई० के हमले में मुसलमानों ने तोड़ डाले थे। आज भी उन स्थानों को यहां के लोग देवल, देबल, अथवा दावल आदि नाम से पुकारते हैं। यह नगर जिस राज्य का मुख्य नगर था वह देश बंबेरा, या भंभेरा, कहलाया।

(१४) जालन्धर-पंजाब देश के अन्तर्गत एक प्रदेश। उस समय यह पंजाब से अलग था। इसका क्षेत्रफल १२,१८१ वर्ग मील गिना जाता है, इसके ईशान कोण में होशियारपुर जिला है, वायव्य कोण में कपूरथला और व्यास नदी है, दक्षिण में सतलज नदी आ गई है और सतलज और व्यास

उसकी लाल आंखों तक क्षात्र तेज प्रदीप्त हो उठा और उसने म्यान से आधी तलवार खींच ली। यह देख कर राजसभा 'धन्य धन्य' के शब्दों से गूंज उठी और कान्हदेव तथा गुजरात के अन्य सरदारों ने कुमारपाल को पञ्चाङ्ग (१) प्रमाण किया। शंखनाद होने लगा और बाजे बजने लगे। इस प्रकार कुमारपाल गुजरात के जयसिंह का योग्य उत्तराधिकारी मान्य हुआ।

नदी के बीच का त्रिकोणाकार भाग जालंधर का दोआबा कहलाता है जो बहुत उपजाऊ है। प्राचीन काल में यह प्रदेश चन्द्रवंशी राजाओं के अधिकार में था। कांगडा पर्वत के आसपास के छोटे छोटे संस्थानों में अब भी इस वंश के लोग हैं और वे महाभारतकाल के सुशर्म चन्द्र के वंशज कहलाते हैं। सुशर्म ने महाभारत की लडाई के बाद मुलतान का राज्य छोड़ कर जालन्धर के दोआबे में काटोच अथवा तैगर्त्त नामक राज्यों की स्थापना की।

सातवीं शताब्दी में ह्युआन्सांग नामक चीनी यात्री भारतवर्ष में आया था। उसके लेख से विदित होता है कि,आजकल के जालंधर प्रदेश में उस समय होशियारपुर, कांगड़ा पर्वत का प्रदेश और आधुनिक चम्बा मंडी और सिरहिन्द के प्रदेश भी सम्मिलित थे।

पद्मपुराण में लिखा है कि जलंधर नामक दैत्य ने इसकी स्थापना की थी।

चीनी यात्री ने लिखा है कि, जालंधर नगर का घेरा दो मील का है, इसके दोनों ओर दो पुराने तालाब हैं। यह गज़नी के इब्राहिम मुसलमान के अधिकार में आ गया था। मुगलों के राज्यकाल में यह सतलज और व्यास नदी के बीच के दोआबे की राजधानी था। इसके अलग अलग विभाग बने हुए हैं और प्रयेक विभाग के चारों ओर पृथक् २ कोट बने हुए हैं।

(१) हाथ, घुटने, शिर और वाणी एवं बुद्धि से पंचाङ्ग प्रणाम किया जाता है।

'हस्तजानुशिरोवाक्यधीभिः पञ्चाङ्ग ईरितः' (प्राणतोषिणी)

सन् ११४३ ई० में कुमारपाल ५० वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा और उसने ३१ वर्ष तक राज्य किया।(१) उसकी वयस्कता एवं देशाटन से प्राप्त अनुभवशीलता के कारण उसमें और उसके मन्त्रियों में कुछ मनमुटाव हो गया था इसलिए उसने उनको अधिकारच्युत कर दिया था। इसका बदला लेने के लिए उन लोगों ने उसको मार डालने का षड्यंत्र किया और रात के समय वह जिस दरवाजे से नगर में आने वाला था उस पर कुछ हमलावरों को नियुक्त भी कर दिया, परन्तु पूर्व जन्म के पुण्य से उसको इस षड्यन्त्र की बात विदित हो गयी इसलिए वह उस दरवाजे से न जाकर दूसरे दरवाजे से अन्दर गया और शत्रुओं का षड्यन्त्र विफल हुआ। इसके बाद कुमारपाल ने षड्यन्त्रकारियों को मरवा डाला।

---

(१) राजवंशावली में लिखा है कि, कुमारपाल मार्गशीर्ष शुक्ला ११ संवत् ११९९ को गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठने के बाद उसके आश्रितों को जो उपहार मिले उनका वर्णन कुमारपालचरितम् के आधार पर इस प्रकार है:—

गद्दी पर बैठते ही कुमारपाल ने अपनी रानी भूपालादेवी को पटरानी बनाई और खम्भात में सहायता करने के कारण उदयन को प्रधान मंत्री बनाया। उदयन के पुत्र बाहड़ अथवा वागभट को मुख्य सभासद् अथवा महामात्य नियुक्त किया। आलिंग को महाप्रधान नियुक्त करके चित्तौड़गढ़ के पास सात सौ ग्राम बख्शीश में दिए। भीमसिंह ने उसको कांटों की बाड़ के नीचे छुपाया था इसलिए उसको अङ्गरक्षक व सेना का मुखिया नियुक्त किया। देवि श्री (श्रीदेवी) से राज्यतिलक करा कर उसे देवयो (प्रबन्ध के अनुसार धोलका अथवा धवलंक) ग्राम दिया। बडोदरा के जिस कुलूक बनिए ने उसे चने दिये थे उसे वटपद्र अथवा बडोदरा प्रदान किया। कुमारपाल ने अपने मुख्य साथी वोसरी को लाट मंडल दिया और उसे दक्षिण गुजरात का सूबादार नियुक्त किया।

इसके कुछ ही दिनों बाद कान्हदेव, जो उसका बहनोई था और जिसने उसको गद्दी पर बिठाया था, अभिमान में भरकर उसके कुल व उसकी पूर्वस्थिति के विषय में अयोग्य बातें कह कर राजाका अपमान करने लगा। कुमारपाल ने उसको बहुत समझाया परन्तु उसने और भी उत्तेजित होकर उत्तर दिया और उसका अनुशासन न मानने का निश्चय प्रकट किया। इस पर राजा ने उसको भी मृत्यु-दण्ड दिया। उसके इस कार्य का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और उसी दिन से उसके सामन्तों को उसकी आज्ञा न मानने में भय का अनुभव होने लगा—

"इस दीपक को पहले मैंने ही प्रदीप्त किया था इसलिए यह मुझको नहीं जलावेगा, इस भ्रम से यदि कोई अपनी अँगुलियों से दीपक को स्पर्श करे तो वह जलाए बिना नहीं रहेगा; यही हाल राजा का है।"(१)

अब, कुमारपाल ने पुराने आश्रयदाता उदयन मन्त्री के पुत्र वाग्भट्ट-देव को अपना महामात्य बनाया और संकट में रक्षा करने वाले आलिङ्ग कुम्हार(२) के उपकार का भी बदला चुकाया। उदयन का दूसरा पुत्र चाहड़ था, वह सिद्धराज का बहुत प्रीतिपात्र था इसलिए उसने कुमारपाल

---

(१) आदौ मयैवायमदीपि नूनं न तद्दहेन्मामवहेलितोऽपि।
इति भ्रमादङ्गुलिपर्वणापि स्पृश्येत नो दीप इवावनीपः॥
(प्र० चि० पृ० ७६)

(१) इस कुम्हार को सम्मान देने के लिए राजा ने उसे महाप्रधान पद और सात सौ गांवों की उपजवाला चित्रकूट (चित्तौड़) प्रदेश दिया।

'आलिगकुलालाय सप्तशतीग्राममिता विचित्रा चित्रकूटपट्टिकाऽददे। [प्रबन्ध चिन्तामणि, ४.८०]

की सेवा में रहना अस्वीकार कर दिया और नागौर (अजमेर) के राजा आन्न(१) अथवा मेरुतुंग के लेखानुसार वीसलदेव चौहान के पौत्र आनाक राजा के यहां जाकर नौकरी करली। चाहड़ की प्रेरणा से आन्न राजा ने गुजरात पर चढ़ाई करने का मनसूबा किया, और, 'वहां के बहुत से सामन्त मेरे पक्ष में लड़ने के लिए आ जावेंगे,' इसी आशा से वह एक बड़ी फौज लेकर गुजरात की सीमा पर आ पहुंचा। इधर सोलंकी राजा ने भी शत्रु का सामना करने के लिए चतुरंगिणी सेना इकट्ठी की और देश को सम्पूर्ण शत्रुओं से निर्भय करनेके लिए अथवा ग्रन्थकर्ता के शब्दों में 'निष्कण्टक' करने के लिए वह आन्न की सेना से जा भिड़ा। लड़ाई शुरू हुई ही थी कि बहुत से गुजरात के सामन्त राजा का पक्ष छोड़ कर विपक्ष में जाने लगे। इससे चाहड़ की चाल प्रकट हो गई। जब कुमारपाल ने अपनी सेना को तितर बितर होते देखा तो उसने अपने महावत को आज्ञा दी कि नागौर के राजा के शिर पर छत्र है, इस निशानी को ध्यान में रख कर हाथी को आगे बढ़ाओ जिससे मुझे शत्रु से आमने सामने लड़ने का अवसर मिले।' इस आज्ञा के अनुसार महावत ने भीड़ में होकर हाथी को उधर बढ़ाया जिधर नागौर का राजा युद्ध कर रहा था। यह देखकर चाहड़ दोनों राजाओं के बीच में आ गया और कुमारपाल का वध करने के अभिप्राय से अपने हाथी पर से उसके हाथी पर कूदने लगा कि कुमारपाल के महावत ने अंकुश लगा कर हाथी को पीछे हटा लिया इसलिए वह (चाहड़) नीचे गिर पड़ा और

---

(१) सपादलक्ष का राजा। [हेमचन्द्राचार्य]

उसको राजा के सिपाहियों ने घेर लिया। इधर कुमारपाल ने 'सम्हल' इस शब्द के द्वारा ललकार कर नागौर के राजा पर एक तीर छोड़ा जिसके लगते ही वह नीचे आ गिरा। इतने ही में गुजरात के घुड़-सवार 'जय जय' शब्द करते हुए आगे बढ़े और तुरन्त ही शत्रु की सेना को नष्ट कर दिया।

कुमारपाल के राज्यकाल के आरम्भ में जो लड़ाइयां हुई थीं उनके विषय में द्व्याश्रय का कर्ता इस प्रकार लिखता है:—

'आन्न(१) नामक राजा एक लाख गांवों का स्वामी था। वह यद्यपि जयसिंह का मांडलिक था, परन्तु, उसने विचार किया कि जयसिंह तो

---

(१) सपादलक्ष देश अथवा सवा लाख ग्रामों के देश का राजा आन्न, आनक, अन्न अथवा अर्णोराज, जिसको चतुर्विंशति प्रबन्ध में शाकम्भरीश्वर चाहमान वंशज आनाक राजा लिखा है, और कुमारपालचरित्र के आधार पर टॉड ने जिसका नाम पूरणपाल लिखा है तथा गुजराती कुमारपालरासा में भी जिसको पूरणपाल ही लिखा है, कुमारपाल का बहनोई था। कुमारपाल की बहन देवल देवी का विवाह उसके साथ हुआ था। द्व्याश्रय के कर्त्ता को छोड़कर उपर्युक्त सभी ग्रन्थकारों ने तथा कुमारपालप्रबन्ध के रचयिता ने लिखा है कि, एक बार राजा आन्न देवल देवी के साथ चौपड़ खेल रहा था। एक गोट (शारी) मर रही थी, उसको बताकर राजा ने कहा, 'मुंडक्या(१) को मारो।' रानी ने इस व्यंग को समझकर कहा, "मेरे साथ ऐसी हँसी न करें।" तब राजा बार बार इसी वाक्य को दोहराने लगा। इस पर रानी ने रोष करके कहा, 'जंगडक! (जंगली) जीभ सम्भाल कर नहीं बोलते? गुजरात की भूमि पर बसने वाले कान्तिमान् देहधारी, मधुरभाषी और पृथ्वी पर देवतारूप साधु पुरुषों की और

---

(१) मुंडक्या, मोड़ा, फ़कीर (एक अपमान सूचक शब्द) जो संभवतः यहाँ गुजरात के जैन साधुओं के लिए राजा ने प्रयुक्त किया।

मर गया है, गुजरात का राज्य नया है और कुमारपाल कमजोर है इसलिए अब प्रसिद्धि प्राप्त करने का अवसर आ गया है। इसी धारणा से प्रेरित होकर वह उज्जैन के राजा बल्लाल एवं अन्य पश्चिमी गुजरात के राजों के साथ किसी को भय दिखाकर तथा किसी से प्रतिज्ञा करके सम्बन्ध बढ़ाने लगा। कुमारपाल के चरों ने आकर

तुम्हारे देश में बसने वाले जंगली, कौपीन (लंगोटी) लगाए फिरने वाले, कटु बोलने वाले और राक्षसों के जैसे भयंकर जोगियों की क्या बराबरी हो सकती है ? यदि तुमको मेरे सामने इस तरह बोलते हुए शर्म नहीं आती तो मेरे भाई राज-राक्षस कुमारपाल से तो डरना चाहिए।" यह सुनकर राजा को भी क्रोध आ गया और उसने देवल देवी के लात मार कर कहा, 'जा, तेरे भाई से जो कुछ कहना हो सो कह।' रानी ने भी प्रतिज्ञा करके कहा, 'यदि तुम्हारी जीभ न कढ़वालूँ तो मुझे शुद्ध राजपुत्री मत कहना।' यह कहकर वह अपने परिवार सहित पाटण चली आई और पूरा हाल सुनाकर अपने भाई को अपनी प्रतिज्ञा के विषय में भी निवेदन किया। कुमारपाल ने बहन से कहा, 'उस दुष्ट की जीभ निकालकर मैं तेरी प्रतिज्ञा को पूरी करूँगा।' इसके बाद कुमार-पाल ने अपने चतुर सलाहकारों को आन्न का हाल जानने के लिए भेजा। उन्होंने वहाँ पहुँचकर किसी तरह आन्न की ताम्बूलवाहिनी परिचारिका (दासी) को अपने पक्ष में मिला लिया। दासी ने उन्हें सूचना दी कि आज ही आधी रात के समय राजा ने व्याघ्रराज को बुलाकर इस प्रकार कहा है, 'तुम मेरे पीढ़ियों के नौकर हो, यदि गुजरात जाकर तुम कुमारपाल को मार डालोगे तो तुम्हें तीन लाख सुवर्ण मुद्राएं इनाम में दूंगा। इस आज्ञा के अनुसार व्याघ्रराज गुजरात के लिए रवाना हो गया है।' उधर कुमारपाल के मंत्री ने तुरन्त एक दूत को गुजरात भेज कर पहरातियों को कहला दिया कि, यदि कोई नया आदमी देखने में आवे तो उससे सावधान रहना। कुमारपाल, कर्णमेरुप्रासाद में पूजा करने गया हुआ था उसी समय आन्न का पहला आदमी दिखाई दिया; उसे मल्लों ने पकड़ लिया और उसके पास जो गुप्त कटारी थी उसे छीनकर भगा दिया।

समाचार दिया कि आन्न राजा सेना लेकर गुजरात की पश्चिमी सीमा पर चढ़ आया है, उसके साथ जो राजा हैं उनमें से बहुत से विदेशी भाषाओं के जानने वाले हैं और कंथग्राम (कंथकोट) का राजा तथा

कुमारपाल ने युद्ध की तैयारी की और विविध प्रकार के पार्ष्णिरक्षक और नगर रक्षक नियुक्त करके आन्न पर चढ़ाई कर दी। रास्ते में चन्द्रावती नगर आया, वहाँ का राजा विक्रमसिंह कुमारपाल को वह्नियन्त्र की सहायता से धोखा देने के लिए तैयार हुआ। परन्तु उसे सफलता नहीं हुई इसलिए उसे अपने साथ लेकर कुमारपाल ने शाकम्भरी के पास ही एक जंगल में पड़ाव डाला। आन्न ने कटु वचन कहे थे इसलिए उसने दूत के हाथ निम्नलिखित कविता उसके पास भेजी—

> रे रे भेक, गलद्विवेककटुकं किं रारटीत्युत्कटे
> गत्वा क्वापि गभीरकूपकुहरे त्वं तिष्ठ निर्जीववत्।
> सर्पोऽयं स्वमुखप्रसृत्वरविषज्ज्वालाकरालो महान्
> जिह्वालस्तव कालवत्कवलनाकांक्षी यदाऽजग्मिवान्।

भावार्थ;—हे विवेकरहित मेंढक, तू इस तरह कटु वचन क्यों बोलता है ? कहीं गंभीर कुए के कोने में जाकर चुपचाप बैठ जा, क्योंकि जिसके मुख से विष की ज्वालाएं निकल रही हैं ऐसा कराल सर्प तुझे खाने की इच्छा से जिह्वा निकाले हुए तेरे काल के समान आ पहुँचा है।

इस कविता के मर्म को समझ कर आन्न ने उसी दूत के हाथ यह उत्तर भेजा—

> रे रे सर्प, विमुच्य दर्पमसमं किं स्फारफूत्कारतो
> विश्वं भीषयसे क्वचित् कुरु बिले स्थानं चिरं नन्दितुम्।
> नोचेत्प्रौढगरुत्स्फुरत्तरमरुद्व्याधूतपृथ्वीधर-
> स्तार्क्ष्यो भक्षयितुं समेति झटिति त्वामेष विद्वेषवान्।

भावार्थ:—हे सर्प, तू इस प्रकार के असाधारण गर्व को छोड़ दे, इस प्रकार फुंकार मार मार कर संसार को क्यों डराता है ? यदि चिरकाल तक

अणहिलवाड़ा का सेनापति चाहड़, ये दोनों भी उनके साथ मिल गए हैं। उन्होंने यह भी कहा कि गुजरात और मालवा, इन दोनों देशों में आने जाने वाले व्यापारियों से राजा ने गुजरात की

आनन्द से रहना चाहता है तो किसी बिल में जाकर आश्रय ले, क्योंकि अपने विशाल पंखों की फड़फड़ाहट के पवन से पर्वतों को भी हिलाता डुलाता हुआ तेरा शत्रु गरुड़ शीघ्र ही आने वाला है।

चतुर्विंशतिप्रबन्ध में लिखा है कि सिद्धराज के बाद जब गद्दी पर उसकी पादुकाओं का पूजन होता था उस समय मालवा के राजपुत्र चाहड़ ने प्रधान के पास जाकर गद्दी प्राप्त करने के लिए इच्छा प्रकट की परन्तु वह उसे न मिल सकी इसलिए वह नाराज होकर आन्न के पास जाकर नौकरी करने लगा। कुमारपाल प्रबन्ध में इस व्यक्ति का नाम चारभट लिखा है। प्रबन्ध-चिन्तामणि में लिखा है कि सिद्धराज का प्रतिपन्न पुत्र चाहड कुमारपाल की आज्ञा में नहीं रहता था; वह सपादलक्ष की सेवा में जाकर रहा और आन्न को गुजरात पर चढ़ा कर लाया। कुमारपाल भी चतुरंगिणी सेना लेकर उसके सामने गया।

अर्णोराज ने चारभट से कहा, जिसको जीतना कठिन काम है ऐसे कुमारपाल को परास्त करने का सुगम उपाय कौन सा है?' चारभट ने कहा, 'कुमारपाल कृपण और अकृतज्ञ है इसलिए दुलिया, केल्हाण नेल्हाण आदि सामन्त उससे असन्तुष्ट हैं, मैं उन्हें लालच देकर फोड़ लूंगा। फिर, जब मैं देवगज हाथी पर सवार होकर कुमारपाल के सामने जाऊंगा तो उसका हाथी डरकर भग जावेगा।' इसके बाद उसने द्रव्य देकर कुमारपाल के सामन्तों को अपनी तरफ मिला लिया। युद्ध में जब कुमारपाल ने अपने सामन्तों को उदास पाया तो अपने महावत श्यामल से इसका कारण पूछा। श्यामल ने सब रहस्य का पता लगाकर राजा को सतर्क किया। चाहड़ ने चउलिंग महावत को अपनी ओर मिलाया था परन्तु युद्ध में कुमारपाल के हाथी को श्यामल चला रहा था। आन्न को यह बात मालूम न थी परन्तु जब युद्ध में कुमारपाल का हाथी

परिस्थिति का पूरा हाल मलूम कर लिया है और उसने मालवा के राजा बल्लाल के साथ ठहराव भी कर लिया है कि आन्न राजा के चढ़ाई करते ही वह तुरन्त गुजरात के पूर्व भाग पर हमला करने के लिए तैयार रहे । यह समाचार सुनकर कुमारपाल बहुत कुपित हुआ ।(१)

कलह–पंचानन पीछे हटा तो चाहड़ ने हमला करके महावत को मार डाला । उसी समय कुमारपाल छलांग मार कर आन्न के हाथी के गंडस्थल पर जा चढ़ा औह उसको (आन्न को) नीचे पटक कर छाती पर चढ़ बैठा । वह बोला, "रे, बकवादी, वाचाल, मूढ़, अधर्मी, पिशाच ! 'मार, मुण्डी को मार' इस तरह जो तू ने अपनी बहन से वचन कहे थे उनको याद कर । मैं अभी अपनी बहन की प्रतिज्ञा पूरी करता हूँ और तेरी जीभ का छेदन करता हूँ ।" आन्न कुछ न बोला परन्तु उसकी आंखें कह रही थीं "बचाओ, मैं तुम्हारी शरण में हूँ ।" उसकी दीन दशा देखकर कुमारपाल को दया आ गई इसलिए उसे छोड़ दिया और आज्ञा दी कि, 'तुम्हारे देश में ऐसी टोपी पहनी जावे जिसके दोनों तरफ दो जीभें निकली हुई हों और वह पीछे की तरफ बँधी हुई रहे । इस प्रकार तेरी जीभ बँध जाने से मेरी बहन की प्रतिज्ञा पूरी हो जावेगी ।' इसके बाद कुमारपाल ने आन्न को लकड़ी के पींजड़े में बन्द करके तीन दिन तक अपनी सेना में रखा और फिर शाकम्भरी का राज्य वापस लौटा दिया । पाटण लौटकर उसने अपनी बहन को सब समाचार कह सुनाया और वापस सुसराल लौट जाने की प्रार्थना की । परन्तु उस स्वाभिमानिनी ने वहाँ जाने से इन्कार कर दिया और स्तंभनपुर में तपस्या करते हुए जीवन बिता दिया ।

(१) द्व्याश्रय के आधार पर विशेष वृत्तान्त की टीका लिखने वाले अभयतिलकगणी के अभिप्राय के अनुसार गुजराती अनुवाद में जो फेरफार आवश्यक था वह किया गया है । इस सम्बन्ध में विशेष वृत्तान्त नीचे लिखे अनुसार है—

शरावती नदी जो ईशान से नैऋर्त्य की ओर बहती है उसके पूर्व और

कुमारपाल के साथ भी बहुत से राजा आ मिले जिनमें प्रसिद्ध घुड़सवार कोळी व चारों ओर से एकत्रित हुए जङ्गली जाति के लोग

दक्षिण की ओर के देश 'पूर्व के देश' कहलाते हैं और इसके पश्चिम उत्तर के देश 'उत्तर के देश' कहलाते हैं।

सपादलक्ष देश गुजरात के उत्तर में गिना जाता है और गुजरात को सपादलक्ष देश से पश्चिम में। अवन्ती को गुजरात व सपादलक्ष देश से पूर्व में माना जाता है।

सपादलक्ष का राजा आन्न, जयसिंह के स्वर्गस्थ होने के बाद मदोन्मत्त हो गया था और उसने बिना कारण ही गड़बड़ी फैलाना शुरू कर दिया था। नैकेती, शाकल, काएव, दाक्ष, चैडकीय, काशीय आदि स्थानों के गुप्तचरों द्वारा कुमारपाल की खोज खबर लेने लगा और उसके गुप्तचर कांडाग्न, पिपल, कच्छ, इंदुवक्र आदि स्थानों में भी घूमने लगे।

आन्न, केवल मंगलालङ्कार जो ग्रैवेयक के बने होते थे, पहनता था और बहुत समय तक मसाले में डालकर रखे हुए लोहे की तलवार जो कौक्षेयक कहलाती थी कमर में बाँधे रहता था। इस प्रकार वह अपने आपको रावण से भी बढ़कर शक्तिशाली समझता था। कुमारपाल का एक गुप्तचर शत्रुओं की आंखें बचाकर अपने स्वामी के पास पहुँचा और निवेदन किया कि, बहुत समय से शत्रुता रखने वाला आन्न सेना सहित अपने देश की सीमा के पास पहुँचने वाला है। कन्थकोट के पास ही जो अरएयक और विश्वरूप देश हैं वहां के राजा भी हमारे विरुद्ध उससे मिल गए हैं और हाथी पर चढ़कर इन्द्र की बराबरी करने वाला चाहड़ भी अपने घुड़सवारों सहित कल ही उसके पास जाने वाला है। पूर्वमद्र, अपरेषुकामशमी, गोमती नदी के प्रदेश, गोष्ट्रया, तैकया ग्राम, पूर्वीय देश वाहिक, रोमक, यकृल्लोम, पहंचर, और सूरसेन के राजालोग भी आन्न के पक्ष में हैं और अवन्ती के गोनर्द ग्राम का राजा गोनर्दीय भी कुमारपाल के विरुद्ध आन्न से मिल गया है।

व्रज, आह्वाजाल, भद्र और नापितवस्तु के राजा भी आन्न के पक्ष

भी थे। उसके करद प्रदेश कच्छ के लोग भी सिन्ध प्रान्त के लोगों

में हो गए हैं। अवन्ती के बल्लाल के साथ काकण्टक, पाटलीपुत्र, और मल्लवास्त के राजा लोग भी आन्न से आ मिले।

ऊपर लिखे राजाओं के अतिरिक्त निम्नलिखित भी आन्न के साथ थे। उत्तरदेश के राजा, शिवहार नदी के आसपास के राजा। ग्रामेयक (अर्थात् सत्य बोलने वाले) अग्राम्य (अर्थात् असत्य बोलने में निपुण) अर्थात् सत्यासत्य बोलने में निपुण, और कात्रेयक (धर्म, अर्थ, काम तीनों में कुत्सित् इच्छा रखने वाले) देशों के राजा। कुण्डथा और कुण्या (इन दोनों नामों को कितने ही तो गांवों के नाम बताते हैं और कितने ही दो नदियों के नाम बताते हैं) के रहने वाले राजा भी आन्न के साथ थे।

आन्न की सेना का जमाव इस प्रकार था कि, पौरस अथवा मुखभाग का सेनापति वल्हि देश का राजा वल्हायन था और पृष्ठभाग का अधिकारी उर्दि देश का अधिपति उर्दायन था तथा पर्दिदेश का राजा भी उसके साथ था।

कुमारपाल के सहायक इस प्रकार थे—

युगन्धर की पैदल सेना, पुरुदेश के अश्वारोही, साल्वदेश के पैदल, और गुजरात के पास वाले मय्यड जाति के क्षत्रियों के नाद्रह देश का राजा।

राष्ट्रीय जाति के राजपूतों (राठौड़ ?) का राजा, जो पडौसी था वह नान्दीपुर,सांकाश्यपुर और फाल्गुनीवह देश का भृत्य राजा बल्लाल पर चढ़ा। इतने ही में काक नामक ब्राह्मण सेनापति ने जो कुमारपाल का।दण्डपति कहलाता था, वातानुप्रस्थपुर के राजा के साथ चढ़ाई कर दी।

कुमारपाल ने जब चढाई की तब उसके साथ ऐरावत, अभिसार, दर्वस्थली धूम, त्रिगर्त और अभिसारगर्त के राजाओं ने भी चढ़ाई की थी।

सौवीर प्रान्त के कुल नामक ग्राम के उत्तम अश्वरोही भी कुमारपाल के साथ थे।

चढाई के समय चक्रवर्त्त देश के राजा ने कुमारपाल पर छत्र कर रखा था।

के साथ उसीके झण्डे के नीचे आ गए।(१) ज्योंही वह आबू की ओर आगे बढ़ा मृगचर्म की पोशाकें पहने हुए पहाड़ी लोग भी उसकी सहायता करने के लिए आ पहुंचे। आबू का पँवार राजा विक्रमसिंह भी जालंधर (जालौर) की सेना लेकर अपने स्वामी कुमारपाल के साथ हो गया। कुमारपाल की पहुँच का समाचार मिलते ही आन्न राजा अपने मन्त्रियों के परामर्श के विरुद्ध लड़ाई चालू रखने को तैयार हुआ। वह अच्छी तरह तैयारी भी न कर पाया था कि रणवाद्य सुनाई पड़ा और सामने ही पहाड़ की तलहटी में गुजराती सेना आगे बढ़ती दिखाई

उत्तम बैलों के साथ कच्छवासी और उत्तम घोड़ों के साथ सिन्धुवासी भी उसके साथ चले।

इश्वाकु, शृगालगर्त्त, आश्वत्थिक, कटर्तक, दाद्दिह्द, दाद्दिकन्था और आयमुख के राजा भी अपनी अपनी सेनाओं सहित कुमारपाल से आ मिले।

दाद्दि नगर से पूर्व और पश्चिम की तरफ के प्रदेश के राजा, वाहिक ग्राम के भृत्य और दाद्दि तथा पलद से पश्चिम की ओर के गांवों के सुभट तथा अन्य मृगचर्म, कंबल और दूसरे पार्वतीय देशोचित वेष वाले लोग भी उसके साथ थे।

जहाँ पर कूकण और पर्ण देश के लोग बसते हैं ऐसी अर्बुदभूमि (आबू) का राजा विक्रमसिंह कुमारपाल का भृत्य गिना जाता था, वह भी गह देश के पैदलों सहित तैयार हो गया। चंद्रावती नगरी के परमार राजा विक्रमसिंह ने इसका देश छीनकर इसके भतीजे अशोबल को दे दिया था और कुमारपाल के उमराव यशोधवलने बल्लालसेन को मार डाला था। (देखो धार राज्य का हिन्दी इतिहास।) यशोधवल विक्रमादित्य का भतीजा होता था।

(१) कच्छ का जाम लाखा जाड़ाणी और सिंध का जाम गाहोजी जाड़ाणी के लश्कर भी साथ थे।

दी। उस समय राजा के सिर पर श्वेत छत्र शोभित था और सूर्य का पूर्ण प्रकाश उस पर पड़ रहा था। आन्न के योद्धाओं ने कुमारपाल की सेना पर बाणवृष्टि की और नागौर के राजा ने स्वयं अपने हाथ में धनुष सम्हाला, परन्तु, छत्रधारी राजाओं की अध्यक्षता में होते हुए भी उत्तर की ओर वाली सेना गुजराती सेना के आगे न ठहर सकी और तितर बितर हो गई। अब, स्वयं आन्न राजा आगे बढ़ा और सिद्धराज के उत्तराधिकारी कुमारपाल से उसकी मुठभेड़ हुई। कुमारपाल ने कहा, 'यदि तू ऐसा योद्धा था तो तूने जयसिंह के आगे क्यों सिर झुका लिया था? इससे अवश्य ही तेरी बुद्धिमानी प्रमाणित होती है परन्तु, यदि अब मैं तुझे पराजित न करूं तो जयसिंह की कीर्ति में कालिख लगती है।" इसके बाद दोनों राजाओं में लड़ाई होने लगी और दोनों सेनाओं में भी घमासान युद्ध छिड़ गया। गुजरात की सेना का अध्यक्ष आहड़(१) था और मारवाड़ी सेना मन्त्री गोविन्दराज की अध्यक्षता में थी। अन्त में, एक बाण के लगते ही आन्न राजा भूमि पर आ गिरा और उसके सामन्तों ने कुमारपाल के आगे आत्मसमर्पण कर दिया।

इस प्रकार आन्न राजा पर घातक वार करने के बाद भी गुजरात का राजा कुछ दिन रणक्षेत्र में ठहरा रहा। आन्न राजा ने हाथी और घोड़े कुमारपाल को भेट किए और अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ

---

(१) उदयन के एक लड़के का नाम आस्थलदेव था, इसी का अपभ्रंश आहड़ है परन्तु इस स्थान पर आहड न होकर चाहड़ हो तो कोई आश्चर्य नहीं। द्व्याश्रय में लिखा है कि चालुक्य के भृत्य (चाहड़ आदि) आन्न की ओर जा मिले और आन्न के भृत्य (गोविन्दराज आदि) चालुक्य की तरफ जा मिले (द्वयाश्रय भा० पृ० ३०३)

करने की इच्छा प्रकट की। राजा ने कहा 'तुमने रणक्षेत्र में घायल पड़े हुए सिपाहियों का वध किया है इसलिए तुम्हारा अपराध अक्षम्य है।' अन्त में, उसने पराजित राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली और अणहिलपुर लौट गया।

इसके बाद तुरन्त ही आन्न राजा का कुल पुरोहित अपने स्वामी की कन्या जल्हणा को लेकर वनराज के नगर में आया और शास्त्रोक्त विधि के अधुसार उसका विवाह कुमारपाल के साथ कर दिया।

जब यह विवाहोत्सव हो ही रहा था तब समाचार मिला कि जिस समय कुमारपाल आन्न राजा का सामना करने लिए रवाना हुआ था उसी समय उज्जैन के राजा बल्लाल(१) से युद्ध करने के लिए उसने

---

(१) इस विषय में द्व्याश्रय में विस्तारपूर्वक लिखा है कि शिवि नाम का व्यक्ति ऐसी कितनी ही जातियों का नेता था जिनकी अर्थ और काम प्राप्ति मात्र ही वृत्ति है और जिनकी कमाई और आजीविका अनियमित रूप से चलती है। वे लोग टोलियां बनाकर इधर उधर घूमते रहते हैं। एक बार शिवि ने अचानक आकर कुमारपाल से कहा, "आपने मालवा (अवन्ति) के बल्लाल पर जिस दण्डनेता काक को चढ़ाकर भेजा है मैं उसका प्रीतिपात्र हूँ। जिस समय आप आन्न पर चढ़ाई करने गए और काक को बल्लाल पर चढ़ाई करने भेजा उस समय उसके साथ गोपाल ब्राह्मण के वंशज गौपालि, राजन् क्षत्रिय के वंशज राजन्य, काँची जाति के काञ्च्य, युधाना के अपत्य यौधेय और और शुभ्र के वंशज शौभ्रेय आदि शस्त्रजीवी लोग थे। जब बल्लाल को काक की चढ़ाई का हाल मालूम हुआ तो वह भी उसका सामना करने के लिए आगे बढ़ा। उस समय उसके साथ रक्षस्, पर्शु, दामनि, उलपि, श्रीमत्, और श्रेमत नाम के शस्त्रोपजीवी वंशों के लोग थे जो क्रमशः राक्षस, पार्शव, दामनेय, औलपेय, श्रौमत और श्रैमत कहलाते हैं।

शामीवत्य (शमीवत् शाखा) आभिजित्य (अभिजित् शाखा) और शैखावत्य (शिखावत् शाखा) लोगों के द्वारा बल्लाल ने हमारे विजय और

विजय और कृष्ण नामक दो सामन्तों को भेजे थे, वे उज्जैन के राजा से मिल गए हैं और गुजरात प्रान्त में आ पहुँचे हैं तथा अणहिलपुर की ओर बढ़े चले आ रहे हैं। जिस प्रकार यशोवर्मा को जीत कर

कृष्ण नामक विश्वासपात्र सामन्तों को अपनी ओर मिला लिया। शालावत्य, और्ण-वत्य और वैदभृत्य शाखा के लोगों की प्रेरणा से वे बल्लाल से जा मिले और हमारी सेना का रास्ता रोककर खड़े हो गए। दूसरे राजाओं की सहायता से उन्होंने अपनी सेना पर दण्ड, मुसल और खड्ग से हमला किया। हमारे कितने ही सुभट रुक गए और आगे नहीं बढ़ सके इसलिए कृष्णभूम, पाण्डुभूम और द्रिभूम आदि अपने नायक गण आड़े रास्ते से ऊपर चढ़े, अतः शत्रु के बाणों की वर्षा से फैले हुए अन्धकार के सम्पर्क से मूर्छा रूपी अन्धकार में पड़ने वाले सैनिकों को देखकर हमारे बहुत से सैनिक घबराकर पर्वतादि के ऐसे स्थानों में चले गए जहाँ मनुष्यों का आना जाना नहीं हो सकता। इस प्रसंग को देख कर साम, अनुसाम और प्रतिसाम नीति के प्रयोग में निपुण तथा ज्ञातानुरहस्य अर्थात् चरों (गुप्तचरों) द्वारा जान लिया है शत्रु का रहस्य जिसने ऐसे, काक सेनापति ने अपनी तरफ के राजाओं से यों कहना आरम्भ किया, "जो अवलोम (अर्थात् शत्रु के प्रतिकूल) और अवसाम (अर्थात् शत्रु के प्रति) साम का प्रयोग नहीं करता है ऐसे मेरे स्वामी कुमारपाल ने मेरे जिस ब्रह्मवर्चस् अर्थात् ब्रह्मतेज की स्तुति की है उसको धिक्कार है; और तुम्हारे जिस राजवर्चस् (क्षात्र तेज) और हस्तिवर्चस् की प्रशंसा की है उसे भी धिक्कार है। हे राजाओं, जो तुमने दृढ़ शरीररक्षक कवच धारण कर रखे हैं उन्हें भी धिक्कार है। जब हमारी तुम्हारी उपस्थिति में ही शत्रु इस प्रकार हमारे घर में घुस रहे हैं जैसे हमारा अस्तित्व ही न हो तो फिर बताओ राजा ने हमारा किस लिए पोषण किया है ?"

इस प्रकार काक ने प्रत्येक राजा को फटकारा। तब वे सब अपने प्रतिवर्म के आदर की रक्षा करने के लिए अध्याजिकर्म अर्थात् युद्धकर्म में तत्पर हुए और जिन लोगों से उपनदि, उपगिरि, अन्तर्नद और अन्तर्गिरि व्याप्त हो रहे थे

जयसिंह ने यश प्राप्त किया था उसी प्रकार बल्लाल को जीत कर कीर्ति प्राप्त करने का निश्चय कुमारपाल ने किया। अपनी सेना एकत्रित

ऐसे आग्रहायणी अर्थात् मार्गशीर्ष के महिने मैं पूर्णिमा के दिन आकाश मे फैले हुए बादलों के कारण म्लान हुए तारों के समान कांतिवाले अपने अपने भटों को उन्होंने वापस बुलाया।

उपपौर्णमास के दिन जिस प्रकार समुद्र गर्जन करता है उसी प्रकार गर्जन करते हुए बलिष्ठ राजा लोग शत्रु पर टूट पड़े। 'यह रणभूमि पंचनद अथवा सप्तगोदावरी के समान स्वर्ग में पहुँचने का साधन तीर्थ है' इस प्रकार कहता हुआ शरद् पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसी कान्ति धारण करने वाला दण्डनेता काक भी रणस्थल में कूद पड़ा।

जिस प्रकार शरद् ऋतु में पूर्ण चन्द्रमा, और शिकारी-कुत्तों के समूह के बीच में शिकारी शोभित होता है उसी प्रकार वह दण्डपति सेना के बीच मे सुशोभित हो रहा था।

शत्रु-पक्ष में जो बालक अथवा वृद्ध उसकी दृष्टि में आता था उसको तो वह जीवित छोड़ देता था परन्तु जो जवान योद्धा उसके सामने आ जाता था वह प्राणों से हाथ धो बैठता था।

अस्त्रों से लदी हुई बैल गाडियों के चलने से जो रज उड़ रही थी उससे ऐसा घटाटोप छाया हुआ था कि उसमें बहुत सी सेना इस प्रकार समा गई जैसे मृत्यु के मुख में धोरी बैल समा जाता है।

शुद्ध क्षत्रिय के वंश में उत्पन्न हुए सुभटों में से, जो मालवा को छोड़कर भाग रहे थे, जो वृद्ध थे, जो बालक थे अथवा जो नपुंसक थे उन पर प्रहार नहीं किया; बहुत से वीर जो जाति से ब्राह्मण तो नहीं थे परन्तु अपनी जान बचाने के लिए ऋक्साम अथवा ऋग् युजुर्वेद का गान करने लगे, कितने ही ने गायों और बैलों की तरह मुंह में घास ले लिया। इनके अतिरिक्त जिनके पैरों से लेकर उरु तक मर्म स्थान पर चोट लगी थी अथवा जिनकी आंखों

करके वह मालवा के राजा का सामना करने के लिए रवाना हुआ और

और भ्रकुटियों पर घाव हो गए थे ऐसे लोग रात दिन चलते चलते पीड़ित हो गए और अपने अपने स्त्री और वाहन आदि को छोड़ छोड़ कर जैसे अवसर मिला वैसे ही भाग निकले।

दिन में जिस प्रकार सूर्य शोभित होता है तथा रात दिन जलता हुआ अग्नि जिस प्रकार शोभा पाता है उसी प्रकार जाज्वल्यमान तथा जिसका बल अवाङ्मनसगोचर है ऐसे बल्लाल ने भी दूसरी ओर से चढ़ाई की। हमारे सैनिकों को केवल ग्वालिया समझने वाले बल्लाल ने चमड़ा, हड्डी और मांस के पार निकल जाने वाले तीर चलाए और जो दो दिनों में भी नहीं तोड़ा जा सकता था ऐसे राजाओं के चक्र को तोड़ कर काष्ठ और पाषाण की तरह उन लोगों को दूर फेंकता हुआ वह आपका शत्रु बल्लाल दण्डनायक काक के समीप जा पहुँचा।

उस समय काक ने अपने पक्ष के योद्धाओं को तिरस्कारपूर्वक कहा, "अरे, दो दो तीन तीन अञ्जली मोहरों का मासिक वेतन पाने वाले सुभटो! तुम्हारी आयुष्य अभी दोगुनी बाकी है अथवा तिगुनी, यह तुमही जानते हो, अब तुम इस तरह क्या देखते हो? दो दो तीन तीन अञ्जली रुपए भर वेतन पाने वाले बहादुरो, मैंने तुमसे हाथ जोड़कर जो प्रार्थना की थी क्या वह यों ही व्यर्थ जावेगी?"

इस प्रकार फटकारने पर अपने सुभटों ने शत्रुओं से भी अधिक भयंकर युद्ध किया और दो नावों जैसा व्यूह रचाने वाले हमारे सैनिकों ने शत्रु के नौका व्यूह को अर्द्धनाव जैसा कर दिया। उसकी रक्षा करने में अवन्ती के बड़े बड़े पुरुष मारे गए।

इतने ही में गुर्जरी सेना के ब्राह्मणों के समक्ष पांच राजाओं ने बल्लाल को उसके हाथी से नीचे गिरा लिया और ब्राह्मण काक दूसरे बहुत से उग्र ब्राह्मणों द्वारा बल्लाल के वध को रोके रोके इससे पहले ही उन्होंने उसका काम तमाम कर दिया। इसके बाद शिकार करने के पश्चात् जिस प्रकार शिकारी

उसको युद्ध में हरा कर हाथी पर से मार गिराया।

अपने बाघ जैसे कुत्तों के साथ चलता है उसी प्रकार वह अपने योद्धाओं के साथ रवाना हुआ।

यह समाचार सुनकर कुमारपाल ने दूत को पारितोषिक दिया और प्रसन्न होता हुआ जल्दी से वापस चला गया।

इस प्रकार द्व्याश्रय काव्य में तो दण्डनायक काक की अध्यक्षता में ब्राह्मण भटों के हाथों बल्लाल के वध का वर्णन है परन्तु अन्य कतिपय काव्यों और शिलालेखों में बल्लाल-वध का श्रेय स्वयं कुमारपाल को दिया गया है; जैसे, कीर्तिकौमुदी में लिखा है:—

'युद्ध में बड़े प्रेम से कुमारपाल ने राजा बल्लाल और मल्लिकार्जुन के मस्तकों को इस प्रकार ग्रहण किए जैसे कि वे जयश्री के स्तन ही हों।'

गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज से प्रकाशित 'वसन्त-विलास' में भी कुमारपाल द्वारा वल्लाल पर विजय प्राप्त करने का वर्णन है।

'भावनगर-इन्सक्रिप्शन्स्' नामक पुस्तक के पृष्ठ १८६ पर उद्धृत प्रशस्ति में भी कुमारपाल को 'बल्लाल रूपी हाथी के मस्तक पर कूद पड़ने वाला सिंह' लिखा है।

एपिग्राफिया इण्डिका खण्ड १ के पृ० ३०२ में प्रकाशित बड़नगर प्रशस्ति के श्लो० १५ से विदित होता है कि चौलुक्याधिपति (कुमारपाल) ने मालवा के अधिपति का मस्तक भगवती दुर्गा को कमल के समान अर्पण किया था जो उसके द्वार पर लटका रहता था। यह मालवनरेश बल्लाल ही हो सकता है।

इन उद्धरणों से यह तो स्पष्ट है कि कुमारपाल ने मालवा प्रदेश को जीत लिया था। बल्लाल-वध विषयक जो वर्णन द्व्याश्रय काव्य में लिखा है उसे केवल कवि-कल्पना ही मान कर नहीं छोड़ देना चाहिए। दण्डनायक काक अवश्य ही एक महान् तेजस्वी, विद्वान् और पराक्रमी व्यक्ति हुआ था क्योंकि

इतिहासकार के उपर्युक्त लेख की पुष्टि, आबू पर्वत पर तेजपाल के मन्दिर में प्राप्त एक लेख से होती है, जिसमें लिखा है कि अचलेश्वर और चन्द्रावती के राजा का नाम यशोधवल(१) था। 'उसको जब यह मालूम हुआ कि चालुक्यराज कुमारपाल युद्ध करने के लिए आ रहा है तो वह मालवा के राजा बल्लाल के पास दौड़कर गया।' नाँदोल में एक जैन-पुस्तकालय है जिसमें एक ताम्रपट्ट मिला है, जो ११५७ ई० का है। उसके लेख से विदित होता है कि जिस समय

उसका उल्लेख कुमारपाल के इस समसामयिक महाकाव्य में हुआ है। अन्य प्रशस्तियों आदि में राजा का वैशिष्टय-वर्णन मात्र अभीष्ट रहा है।]

(१) राजकालनिर्णय में लिखा है कि आबू के वशिष्ठ द्वारा निर्मित होमकुंड में से परमार उत्पन्न हुआ। उसके धूमराज, धूमराज के धन्धुक, उसके ध्रुवभट आदि हुए। इसी के वंश में विक्रम संवत् ३०० पूर्व मुधन्वा हुआ और वि० सं० २० पूर्व भर्तृहरि। उसके बाद वीर विक्रमादित्य गन्धर्वसेन हुए। इनकी ४० वीं पीढी में रवपालजी हुआ जो सिन्ध के ठठ नगर में वि० सं० ८६५ में राज्य करता था। इसकी १४ वीं पीढी में वहीं पर दामोजी हुआ जिसके पुत्र जसराज ने ठठ नगर से आकर गुजरात में गबरगढ़ को अपनी राजधानी बनाया। जसराज का पुत्र केदारसिंह वि० सं० ११२५ में था। उसने गबरगढ़ से हटाकर तरसंगम में अपनी गद्दी स्थापित की। केदारसिंह का पुत्र जसपाल हुआ जिसके कान्हडदेव प्रथम हुआ। कान्हडदेव ने अचलेश्वर चन्द्रावती में वि० सं० ११३० में अपनी गद्दी स्थापित की। उसका पुत्र ढुण्ढराज हुआ और उसके बाद कान्हडदेव दूसरा। फिर विक्रमसिंह, रामदेव और यशोधवल हुए। कुमारपालप्रबन्ध (पृ० १०३) में लिखा है कि, कुमारपाल ने विक्रमसिंह को राजसभा में बुलाकर बहुत से सामन्तों के सामने उसका अपमान किया और कैदखाने में डाल दिया तथा उसके स्थान पर उसके भतीजे यशोधवल को राजा बनाया। इससे विदित होता है कि यशोधवल तो कुमारपाल के पक्ष में ही था अतः उसका बल्लाल के पक्ष में जाना संभव प्रतीत नहीं होता। संभवतः

"राजाधिराज, प्रख्यात, राजकुल का शृंगार, महाशूरवीर, जिसने अपने शस्त्रबल से शाकम्भरी के राजा को पराजित किया था" ऐसा कुमारपालदेव श्रीमंत अणहिलपुर की गद्दी पर विराजता था उस समय महाप्रधान चाहड़देव उसका मंत्री था।' इस ताम्रपट्ट में लिखे हुए मन्त्री के नाम के विषय में कुछ गड़बड़ी है, क्योंकि मेरुतुंग लिखता है कि चाहड़ उदयन मन्त्री का सौतेला भाई था।(१) द्व्याश्रय का

वस्तुपाल के लेख के ३५ वें श्लोक को गलत समझ लेने के कारण ही यह बात लिखी गई प्रतीत होती है। वह श्लोक इस प्रकार है—

रोदःकन्दरवर्तिकीर्तिलहरीलिप्तामृतांशुद्युते-
रप्रद्युम्नवशो यशोधवल इत्यासीत्तनूजस्ततः।
यश्चौलुक्यकुमारपालनृपतिप्रत्यर्थितामागतम्
मत्वा सत्वरमेव मालवपतिं बल्लालमालब्धवान् ॥

भावार्थ—ब्रह्माण्ड में फैली हुई कीर्तिलहरियों से व्याप्त चन्द्रमा के समान कान्तिवाले (रामदेव) से कामदेव के वश में न होने वाला (बहुत सुन्दर) यशोधवल नाम का पुत्र हुआ जिसने, यह जानकर कि चौलुक्यराज कुमारपाल से मालवा के राजा बल्लाल ने शत्रुता करली है, उसको (बल्लाल को) मार डाला।

(१) प्रबन्धचिन्तामणि से ज्ञात होता है कि उदयन के पृथक् २ स्त्रियों से चार पुत्र थे। 'तस्यापरमातृकाश्चत्वारः सुताः वाहड़देव, आम्बड़, बोहड़, सोलाक नामानोऽभूवन्' अर्थात् अलग अलग माताओं से चार पुत्र थे जिनके नाम, बाहड़देव, आम्बड़, बोहड़ और सोलाक थे। यहां पर जहां बोहड़ लिखा है दूसरी प्रति में "चाहड़" होगा इसीलिये अंग्रेजी रासमाला में चाहड़ को उदयन का सौतेला भाई लिखा है, वास्तव में वह उसका पुत्र था।

प्रबंधचिन्तामणि की एक प्रति में (१) आस्थडदेव (२) आम्बड़देव, (३) बाहड़ और (४) सोल्ला लिखा है, एक प्रति में सोलदेव भट लिखा है।

लेखक कहता है कि चाहड़ आन्न राजा से मिला था परन्तु, मेरुतुंग लिखता है कि उदयन के पुत्र वाहड़ ने ऐसा काम किया था। आगे चल कर विदित होगा कि वाहड़ ने फिर अपना अधिकार प्राप्त कर लिया था और कुमारपाल ने उसको पुनः नियुक्त कर दिया था। इससे

कुमारपाल प्रबन्ध में एक स्थान पर (पृ० ६६) बाहड़, आम्बड चाहड़ और सोला नामक चार पुत्र हुए, ऐसा लिखा है। दूसरे स्थान पर लिखा है कि कुमारपाल ने उदयन को अपना महामात्य बनाया और उसके पुत्र वाग्भट्ट को सर्वराजकार्यभार में उसका सहायक नियुक्त किया।

यह वाग्भट्ट विद्वान् था। उसने वाग्भटालंकार नामक एक अलंकार-ग्रंथ रचा है। इस ग्रंथ के चतुर्थपरिच्छेद की समाप्ति पर उसने लिखा है:—

बभंडसुत्तिसंपुडमुत्तिअ मणिणो पहासमूहव्वं,
सिरि वाहुड़त्ति तणउ आसि बुहो तस्स सोमस्स।
(ब्रह्माण्डशुक्तिसम्पुटमौक्तिकमणेः प्रभासमूह इव।
श्रीवाहड इति तनय आसीद् बुधस्तस्य सोमस्य ॥)

अर्थात् ब्रह्माण्ड रूपी सीप के मोती, (मणि) से जैसे प्रभासमूह और सोम अर्थात् चन्द्रमा से जैसे बुध, उसी प्रकार सोम (उदयन) से बाहड नामक विद्वान् पुत्र हुआ। यह संकरालंकार का उदारहण है। ब्रह्माण्ड रूपी सींप का मोतीमणी यह रूपक, उसका मानों प्रभासमूह यह उत्प्रेक्षा, प्रभासमूह वही हुआ सोम, अर्थात् चन्द्रमा उसका पुत्र, बुध वैसा ही उदयन सोम का बुध, अर्थात् बुद्धिशाली पुत्र बाहड, इसमें श्लेष और जाति अलंकार हुए। इस प्रकार इस पद्य में ४ अलंकारों का संमिश्रण है।

[गुजराती अनुवाद में संवत् १८४४ और १८४८ की जीववर्धन सूरिकृत टीका की हस्तप्रतियों का उल्लेख है। उनमें वाहड़ व बाहड़ पाठ है इस ग्रन्थ की सिंहदेव सूरि रचित टीका काव्यमाला ग्रन्थाङ्क ४८ के रूप में छप चुकी है। राजस्थान पुरातत्व मन्दिर जयपुर में ग्रन्थ संख्या ७१६१ पर एक सटीक पंचपाठ प्रति उपलब्ध है जो अपेक्षाकृत प्राचीन है और १६ वीं शती से अर्वाचीन नहीं है। उपर्युक्त गाथा का पाठ उसी से लिया गया है।]

विदित होता है कि जिस तिथि को यह लेख लिखा गया था उससे पहले वाहड़ ने विद्रोह किया होगा और उस समय शायद चाहड़ मन्त्री के पद पर कार्य कर रहा होगा।

सिद्धराज के राज्य का वृत्तान्त लिखते समय जिस लेख का प्रसंग आया है वह चित्तौड़ के लाखण मन्दिर में मिलता है। इसमें ११५१ ई०(१) सन् की तिथि लिखी है और कुमारपाल सोलंकी के विषय में इस प्रकार लिखा है-'कैसा था वह-कि जिसने अपनी विलक्षण प्रतिभा के प्रताप से समस्त शत्रुओं को जीत लिया था; पृथ्वी पर अन्य राजाओं ने जिसकी आज्ञा शिरोधार्य की थी; जिसने शाकम्भरी के राजा को अपने चरणों में झुका लिया, जो स्वयं शस्त्र धारण करके शिवालक तक चढ़ाई करता चला गया और बड़े बड़े गढ़पतियों-यहाँ तक कि शालपुरा(२) में भी लोगों को उसके आगे झुकना पड़ा।"

मेरुतुंग लिखता है कि इन घटनाओं के कुछ ही दिनों बाद

उदयन के बाद महामात्य होने वाला यह वाग्भट्ट वाहड या बाहड था और उदयन के मरणावसर की इच्छानुसार जिसको दंडनायक बनाया गया था वह आम्रभट्ट आम्बड, अथवा अम्बड़ था। तीसरा चाहड़ और चौथा सोलदेव भट—सालाक अथवा सोला था।

(१) टॉड कृत वैस्टर्न इन्डिया सं० १२०७ (ई० सन् ११३१) लिखा है, वह भूल है।

(२) सपादलक्ष के राजा पर चढ़ाई करके कुमारपाल ने 'सालिपुर' नामक ग्राम में अपना शिविर लगाया था। यह स्थान कहीं चित्तौड़ के पास रहा होगा (देखिए, एपिग्राफिआ इण्डिका भा० २, पृ० ४२१-२४)

एक बार सोलंकी राजा कुमारपाल अपने दरबार में बैठा था और आने जाने वाले लोगों से मुलाकात कर रहा था; उसी समय कुछ मंगण (मागध) लोग भी दरबार में आए और कोंकण के राजा मल्लिकार्जुन को 'राजपितामह'(१) कह कर उसका कीर्तिगान करने लगे। यह सुनकर कुमारपाल बहुत क्षुब्ध हुआ और कोंकण के घमण्डी राजा(२) को जो अपने आप को चतुरंगी(३) राजा कहता था, नष्ट करने के लिए किसी सामन्त को खोजने लगा। उदयन मन्त्री के पुत्र अम्बड अथवा आम्रभट्ट नामक योद्धा ने इस कार्य को पूरा करने का बीड़ा उठाया और तुरन्त ही एक सेना की अध्यक्षता प्राप्त करके वह कोंकण के लिए रवाना हो गया। बड़ी कठिनाई के बाद उसने कालविनी(४) नदी को पार किया और दूसरी पार जाकर डेरा डाला। मल्लिकार्जुन ने वहीं आकर उस पर हमला कर दिया और उसको हराकर भगा दिया। इस प्रकार परास्त सेनापति ने लौट कर राजधानी के पास ही पड़ाव डाला। उसने काला तम्बू तनवाया, काली पोशाक पहनी और काला ही छत्र धारण किया। इस काले डेरे को देखकर राजा ने तलाश करवाया कि यह किसका लश्कर है ? जब उसको समाचार मिला कि अम्बड़ इस

---

(१) कोल्हापुर का महामंडलेश्वर। देखिए टिप्पणी पृ० १०६

(२) समुद्र से घिरे हुए शतानन्द नगर में महानन्द नामक राजा राज्य करता था उसका पुत्र मल्लिकार्जुन कोंकण के शिलाहारवंश का था। इस वंश के तीन ताम्रपत्रों में इन राजाओं के दूसरे पद के साथ राजपितामह पद भी जुड़ा हुआ देखने में आता है। (इण्डिअन एन्टक्वेरी भाग ६ पृ० ३५ व ३८)

(३) चतुर्दिग्विजयी।

(४) चीखली और बलसाड़ तालुके में बहने वाली कावेरी नदी। दक्षिण की कावेरी नदी से इसे भिन्न समझना चाहिए।

प्रकार कोंकण के राजा से हारकर वापस आ गया है तो उसने मन्त्री को मानभंग के लिए बहुत कुछ दिलासा दिया और उसका आदर सत्कार करके अधिक बलवान् योद्धाओं की एक दूसरी सेना साथ देकर पुनः कोंकण विजय करने के लिए भेजा।

दूसरी बार अम्बड़ ने कालविणी नदी पर पहुँचकर सेतु बँधवाया और सावधानी से सेना को उस पार उतार कर पहले हमला करने का अवसर प्राप्त किया। इस दूसरे युद्ध में गुजरात की सेना ने विजय प्राप्त की और मल्लिकार्जुन(१) अम्बड़ की तलवार से मारा गया।(२) अम्बड़ ने राजधानी में लूट मचाकर अधिकार कर लिया और सोलंकी राजा की दुहाई फिरवाकर अणहिलवाड़ा लौट आया। भरे हुए दरबार में आकर उसने अपने स्वामी कुमारपाल के चरणों पर शिर रख दिया और कोंकण के राजा मल्लिकार्जुन का मस्तक भेंट किया। इसके साथ ही उसने सोना, मोती, जवाहरात, बहुमूल्य धातु के बने हुए बर्तन, हाथी, और सिक्के आदि भी, जो उसको लूट में प्राप्त हुए थे, भेट किए।(३) राजा ने दरबार में उसका बहुत सम्मान किया और

---

(१) राव रतिराम दुर्गाराम दवे ने इन्डियन एन्टीक्वैरी भाग १२ पृ० १५० में लिखा है कि उत्तर कोंकण के शिलारवंश का १७ वां राजा मल्लिकार्जुन था। उसका एक शिलालेख रत्नागिरि जिले के चिपलूण नामक स्थान में शाक संवत् १०७८ का और दूसरा वसई में १०८२ का मिलता है।

(२) जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी, १९१३, पृ० २७४–५ में लिखा है कि मल्लिकार्जुन का वध कुमारपाल के सभासद् सोमेश्वर चौहान ने किया था।

(३) शृंगारकोटी साड़ी, माणक से जड़ा हुआ पछेवड़ा (पट)

मण्डलेश्वर मल्लिकार्जुन की 'राजपितामह' वाली उपाधि भी उसको प्रदान की। (ई० ११६१)

कुमारपाल के अब आगे आने वाले इतिहास में आचार्य हेमचन्द्र(१) की बहुत प्रधानता है। कहते हैं कि 'जिस प्रकार चन्द्रमा की कान्ति से समुद्र की लहरें आकर्षित होती हैं उसी प्रकार उनकी वाणी सुनकर राजा आनन्द-लहरियों में निमग्न हो जाता था(२) इसलिए ऐसे

पापक्षय हार, संयोगसिद्धि (विषापहार) सिप्रा, बत्तीस स्वर्णकुंभ, छै सेर मोतियों का भार, चतुर्दंतहस्ति, १२० पातरें (दासियां) और १४ करोड सोनैया (स्वर्णमुद्रायें)

> शाटीं शृंगारकोट्याख्यां पटं माणिक्यनामकं,
> पापक्षयकरं हारं मुक्ताशुक्तिं विषापहाम ॥
> हैमान् द्वात्रिंशत् कुम्भान् मनुभारान् प्रमाणतः,
> पणमूटकांस्तु मुक्तानां स्वर्णकोटीश्चतुर्दश ॥
> विंशं शतं च पात्राणां चतुर्दन्तं च दन्तिनां
> श्वेतं सेदुकनामानं दत्वा नव्य नवग्रहम् ॥
> (जिनमण्डनगणिकृत कुमारपालप्रबन्ध–पृ० ३६)

(१) इन्होंने मनुष्य की स्तुति न करने का नियम ले रखा था परन्तु आम्बड का बखान किये बिना इनसे नहीं रहा गया। उन्होंने उसके प्रति लिखा है:—

> "किं कृतेन न यत्र त्वं यत्र त्वं किमसौ कलिः
> कलौ चेद् भवतो जन्म, कलिरस्तु कृतेन किम्"।

उस कृतयुग से हमें क्या, जिसमें तुम नहीं; जहाँ तुम हो वहां कलियुग कहाँ है ? यदि कलियुग में ही तुम्हारा जन्म है तो सदा कलियुग ही रहे।

(२) श्री हेमचन्द्रसूरीणामपूर्वं वचनामृतम्।
> जीवातुर्विश्वजीवानां राजचित्तावनिस्थितम् ॥१॥
> (प्रभावकचरित पृ० १८३)

महापुरुष के विषय में जो थोड़ा बहुत वृत्तान्त बढ़वाण के साधु से प्राप्त हुआ है उसको यहाँ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। उनके माता पिता का नाम चाचिंग और पाहिणी था। वे मोढ़ जाति के बनिये थे और सोरठ तथा गुजरात की दक्षिणी सीमा पर अर्द्धाष्टम देश में धुंधुका ग्राम के रहने वाले थे। उनके पिता कट्टर हिन्दू धर्म को मानने वाले थे और माता मानों जैनधर्म की साक्षात् देवी थी। उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम चङ्गदेव (१) रखा गया। जब वह बालक आठ वर्ष का हुआ तब उसी प्रदेश में भ्रमण करते हुए देवचन्द्राचार्य धुंधुका ग्राम में आ पहुँचे। चाचिङ्ग उस समय घर पर नहीं थे। बालक की आकृति देखकर आचार्य ने बहुत आश्चर्य किया और उसकी माता से आग्रह किया कि वह प्रारम्भ से ही उसको जैन धर्म में दीक्षित करावे। यह कहकर वे उस बालक को अपने संरक्षण में रखने के लिए कर्णावती ले गए, जहाँ उनका उपासरा था।

जब चाचिङ्ग विदेश से घर लौटे तो चंगदेव का वृत्तान्त सुनकर बहुत दुखी हुए। उन्होंने सौगन्ध खाई कि 'जब तक मैं अपने पुत्र का मुख न देख लूँगा तब तक भोजन नहीं करूँगा।' धर्माचार्य का नाम पता ज्ञात करके

---

(१) चामुण्डा उसकी कुलदेवी थी, और गणेश उसका कुलदेव था इसलिए इन दोनों नामों के पहले अक्षर 'च' और 'ग' लिए गये। इसको सार्थक करने के लिए 'चंग' के साथ देव लगाकर "चंगदेव" नाम रक्खा गया। चंगदेव का जन्म सं० ११४५ (सन् १०८९) में कार्तिक शुक्ला १५ को हुआ था। सं० ११५४ (सं० १०९४ ई०) में दीक्षा ली और देवमुनि, ऐसा नाम करण किया गया। सं० ११६६ में 'सूरि' पद प्राप्त किया और सं० १२२९ (११७३ ई०) में ८४ वर्ष की अवस्था में स्वर्ग सिधार गये।

वे कर्णावती को रवाना हुए। वहाँ पहुँचकर वे अपने पुत्र को वापस लेने के लिए देवचन्द्र के उपासरे में गए। उस समय चंगदेव उदयन मन्त्री के घर थे, जिसने चाचिंग के पुत्र को जैन धर्म में दीक्षित कराने का कार्यभार अपने ऊपर ले लिया था। वह इसमें सफल भी हुआ। इस प्रकार चंगदेव ने जैन धर्म की दीक्षा ली और उसका नाम हेमचन्द्र पड़ा। थोड़े ही समय में समस्त हिन्दू तथा जैन शास्त्रों के ज्ञाता होकर हेमचन्द्र ने प्रसिद्धि प्राप्त कर ली और अपने गुरु से 'सूरि' की पदवी प्राप्त की।

हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि, जिनदेव-स्तोत्र (जिस पर १२९२ ई० में लिखी हुई एक टीका प्राप्त होती है), पवित्र योगशास्त्र, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, त्रिंशतिवीतरागस्तोत्र और द्व्याश्रय आदि अनेक ग्रन्थ(१) लिखे हैं। जब कुमारपाल अपनी सेना सहित

---

(१) कुमारपालप्रबोध के अभिप्राय के अनुसार—परम धार्मिक होने के कारण कुमारपाल राजर्षि कहलाता था। उसने २१ ज्ञान-भंडार स्थापित किये जिनमें उसके गुरु हेमाचार्य के रचे हुए ग्रंथों को लिखने के लिए ६०० लेखक काम करते थे। उस समय विशेषकर तालपत्र पर पुस्तकें लिखी जाती थीं। एक बार राजा लेखकशाला का निरीक्षण करने के लिए गया और वहां पर लेखकों को कागज पर लिखते देख कर उसे खेद हुआ उसने यह नियम किया कि जब तक लेखकशाला में तालपत्र आकर न पहुंच जावेंगे तब तक भोजन नहीं करूंगा। इस चमत्कारी रीति से उसने अपने बाग में से तालपत्र मंगवाकर लेखकों को दिये और फिर पारण किया। हेमाचार्य के रचे हुए ग्रंथों में से हैमव्याकरण और हैमकोष समस्त भारत में बहुत प्रसिद्ध है। हैमव्याकरण के ८ सूत्राध्याय हैं। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में ६३ शलाका पुरुषों के चरित्र हैं (२४ तीर्थंकर, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण,

मालवे में था तभी हेमाचार्य उसके पास पहुँचे थे क्योंकि उनकी माता

---

६ वासुदेव, १२ चक्रवर्ती)। कुमारपाल इस ग्रंथ को सुनहरी व रूपहरी अक्षरों में सुन्दर लिखवाकर अपने महल में ले गया और रात को जागरण कराकर प्रातः-काल पट्टगज पर पधराकर इस पुस्तक को बड़ी धूम-धाम से महोत्सव मनाता हुआ धर्मशाला में लाया और वहां पर विधिपूर्वक पूजन करके हेमाचार्य के मुख से उसका श्रवण किया। इसी प्रकार योगशास्त्र, विंशति वीतरागस्तवन, ११ अंग, १२ उपांग, की भी एक एक प्रति स्वर्णादि अक्षरों में लिखवाकर उसने उपर्युक्त विधि से उनका श्रवण किया था।

कलिकाल सर्वज्ञ हेमाचार्य रचित ग्रंथों की सूची इस प्रकार है :—

क्लृप्तं व्याकरणं नवं विरचितं छन्दो नवं द्वयाश्रया—
ऽलङ्कारौ प्रथितौ नवौ प्रकटितं श्रीयोगशास्त्रं नवम्।
तर्कः संजनितो नवो जिनवरादीनां चरित्रं नवं
बद्धं येन न केन केन विधिना मोहः कृतो दूरतः॥"

(१) अध्यात्मोपनिषद् (योगशास्त्र) (२) योगानुशासन (बारह प्रकरणों में १२ हजार श्लोकों का पूरा ग्रंथ) (३) अनेकार्थसंग्रह (निर्णयसागर प्रेस द्वारा अभिधानसंग्रह के दूसरे अंक में प्रकाशित) (४) अनेकार्थकोष (५) अभि-धान चिंतामणी (हैमीनाम माला, निर्णयसागर द्वारा प्रकाशित) (६) अभिधान-चिन्तामणि परिशिष्ट (निर्णयसागर से प्रकाशित) (७) अलंकारचूडामणि-काव्यानुशासनवृत्ति (अलंकार का ग्रन्थ) (८) उणादिसूत्र वृत्ति, उणादिसूत्र विवरण, छंदोनुशासन वृत्ति (९) देशी नाममाला रत्नावली किंवा देशी शब्द संग्रहवृत्ति (बम्बई संस्कृत माला अंक २७) (१०) धातुपाठ और वृत्ति, धातु पारायण और वृत्ति, धातुमाला निघंटुशेष (११) बलाबलसूत्र बृहद् वृत्ति, विभ्रमसूत्र (हेमचन्द्र का रचित है वा नहीं ?) (१२) सिद्ध हेमशब्दानुशासन बृहद्वृत्ति और लघुवृत्ति, शेषसंग्रहमाला और शेषसंग्रह सारोद्धार (१३) लिंगानुशासन, लिंगानुशासन वृत्ति और लिंगानुशासन विवरण (१४) त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित्र, परिशिष्ट पर्व, (१५) हेमन्यायार्थमंजूषा—मंजूषिका (१६)

के मरणोत्सव(१) के समय कुछ शैवों ने मार धाड़ की थी, इसलिए उन्होंने सोचा कि 'या तो अपना राज्य हो अथवा राजा अपने वश में हो, तब काम चल सकता है।'(२) उदयन मन्त्री ने आचार्य का राजा से परिचय कराया और राजा ने भी खम्भातवाली भविष्यवाणी तथा अपनी प्रतिज्ञा को याद करके उनका बहुत आदर सत्कार किया और स्वस्थ मन से उनसे बातें करने लगा। राजा पर हेमचन्द्र के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर उनके पास रहने वाले ब्राह्मण बहुत डरे, और उन्होंने उस समय उन पर बहुत से अपवाद भी लगाए। उनमें से शायद सबसे बड़ा भारी अपवाद यह था कि वे सूर्य का पूजन नहीं करते थे। हेमचन्द्र राजनीति जानते थे और अपने विपक्षियों के धर्म पर आक्षेप करने व उसका विरोध करने की अपेक्षा अपने धर्म की विशालता प्रमाणित करने की अधिक इच्छा रखते थे इसलिए उन्होंने ऐसा उत्तर

संस्कृत द्व्याश्रय, और वृत्ति (इतिहास और व्याकरण साथ साथ सिखाने के लिए रचा हुआ ग्रंथ) (१६) प्राकृत द्व्याश्रय और वृत्ति (इतिहास और व्याकरण का ग्रंथ) (१७) महावीरद्वात्रिंशिका (लघुजैन काव्यमाला में प्रकाशित) (१६) हेमवादानुशासन, वीतराग स्तोत्र ? पांडव-चरित्र ? (२०) जातिव्यावृत्ति (न्याय) ? (२१) उपदेशमाला ? (२२) अन्यदर्शन वादविवाद ? (२३) गणपाठ ?

(१) जब कोई स्त्री अथवा पुरुष मरता है तो भक्तजन शोक न मनाकर उत्सव मनाते हुए मुर्दे को ले जाते हैं।

(२) आपण पइ प्रभु होइअं, कई प्रभु कीजइ हत्थि।
कज्ज करिवा माणुसह, बीजउ मागु न अत्थि॥
(प्र. चि. पृ. १३२)

दिया कि जिससे क्षत्रियों के महान् देवता, सूर्य में उनकी आस्था होने की बात राजा के समझ में आ गई। उन्होंने उत्तर दिया "इस तेज के महिमावान् भंडार (सूर्य) को मैं निरन्तर अपने हृदय में रखता हूँ(१), और इसके अस्त होने पर मुझे इतना दुःख होता है कि मैं भोजन नहीं करता हूँ।"(२) उन्होंने अपने इस नीतिपूर्ण कथन के प्रमाण जैन तथा हिन्दू दोनों ही शास्त्रों में से दिए। इसी प्रकार जब एक बार कुमारपाल ने पूछा कि 'तुम सोच कर मुझे कोई ऐसा धर्म-कार्य बताओ कि जिसमें मैं धन खर्च करूँ' तो उस समय उन्होंने समुद्र की लहरों की चपेट से भग्न हुए देवपट्टण-स्थित सोमेश्वर के (काष्ठमय) देवालय का जीर्णोद्धार कराने की सलाह दी।(३)

---

(१) सौरपंथ के विषय में देखो टिप्पणी पृ० १४-१५ (पूर्वार्द्ध में)

(२) यह अणाथमी व्रत कहलाता है।

श्री हेमचन्द्राचार्य का कहा हुआ श्लोक इस प्रकार है :—

'अधाम धामधामार्कं वयमेव हृदिस्थितम्।
यस्यास्तव्यसने ज्ञाते त्यजामो भोजनं यतः ॥'

(३) भावनगर के प्राकृत और संस्कृत लेखों की अंग्रेजी पुस्तक पृ० १८६ में भावबृहस्पति को यह कार्य सौंपने के विषय में लेख है।

अस्ति श्रीमति कान्यकुब्जविषये वाराणसी विश्रुता
पुर्यस्यामधिदेवता कुलगृहं धर्मस्य मोक्षस्य च।
तस्यामीश्वरशासनाद् द्विजपतेर्गेहे स्वजन्मग्रहम्
चक्रे पाशुपतव्रतं च विदधे नंदीश्वरः सर्ववित् ॥५॥

भावार्थ—कान्यकुब्ज देश में वाराणसी नाम की विख्यात पुरी है, वह अधिदेवता (विश्वनाथ) का निवासस्थान और धर्म तथा मोक्ष का धाम है।

द्व्याश्रय में इस जीर्णोद्धार का वर्णन मिलता है और राजपूताना के इतिहास लेखक को भी देवपट्टण में देवकाली के मन्दिर में इस विषय का एक लेख मिला था। यह लेख पहले सोमेश्वर के मंदिर

वहां पर महादेवजी की आज्ञा से (भाव बृहस्पति के रूप में एक उत्तम ब्राह्मण के घर नन्दीश्वर ने अवतार लिया। (क्योंकि शिवजी ने जीर्णोद्धार कराने की आज्ञा नन्दीश्वर को ही दी थी) उस विद्वान् ब्राह्मण ने महादेव जी से दीक्षा ली और फिर वह तपोनिधि तीर्थयात्रा करने व राजाओं को दीक्षा देने के लिए तथा धर्मस्थलों की रक्षा करने के लिए काशी से रवाना हुआ। वह फिरता फिरता धारा नगरी में जा पहुंचा।

यद्यन्मालवकान्यकुब्जविषयेऽवन्त्यां सुतप्तं तपो
नीताः शिष्यपदं प्रमारपतयः सम्यङ्मठाः पालिताः।
प्रीतः श्रीजयसिंहदेवनृपतिर्भ्रातृत्वमात्यन्तिकम्
तेनैवास्य जगत्त्रयोपरिलसत्यद्यापि धीजृम्भितम् ॥८॥

भावार्थ—वहाँ से वह यात्रा करता हुआ मालव, कान्यकुब्ज, और अवन्ती देश में गया, जहाँ तप किया और परमार राजाओं को अपना शिष्य बनाया तथा मठों का भली प्रकार रक्षण किया। उस समय अवन्ती में जयसिंह देव राजा राज्य करता था जिसने प्रसन्न होकर उससे अत्यन्त भ्रातृभाव स्थापित किया। इसीलिए आज भी तीनों लोकों में उसकी बुद्धि की प्रशंसा फैली हुई है।

'जब चक्रवर्ती सिद्धराज जयसिंह स्वर्ग गया तब उसकी गद्दी पर अति प्रतापशाली और राजा बल्लाद (ल) तथा अन्य जंगली राजाओं रूपी हाथियों के मस्तकों पर आघात करने में सिंह के समान कुमारपाल बैठा। राजा कुमारपाल तीनों लोकों में कल्पतरु के समान था। उसके समय में भाव (विद्वान्) बृहस्पति ने उससे देवपट्टण के जीर्ण देवालयों का उद्धार करने के लिए प्रार्थना की। इस पर कुमारपाल ने प्रसन्न होकर गार्गेय वंशोत्पन्न भावबृहस्पति को सर्वेश गण्डेश्वर की पदवी दी और तुष्टिदान में आभूषण तथा राजमुद्रा (मोहर)

में था; इसमें वलभी संवत् ८५० (विक्रम संवत् १२२५ व ११६६ ई०) खुदा हुआ है और निम्नलिखित वृत्तान्त लिखा है:—

"कन्नौज का ब्राह्मण भाव वृहस्पति यात्रा करने के लिये काशी से निकला और अवन्ती तथा धारा नगरी में आकर पहुँचा। उस समय

दी। भाववृहस्पति ने कैलास जैसा विशाल महादेव का प्रासाद तैयार कराया और राजा ने इससे प्रसन्न होकर उसकी वंशपरम्परा के लिए गंडत्व (श्रेष्ठता) का पद दिया।

स्वमर्यादां विनिर्म्माय स्थानकोद्धारहेतवे।
पंचोत्तरां पंचशतीमार्याणां योऽभ्यपूजयत् ॥२३॥
देवस्य दक्षिणे भागे उत्तरस्यां तथा दिशि।
विधाय विषमं दुर्गं प्रावर्द्धयत यः पुरम् ॥२४॥

मर्यादापूर्वक स्थानों का जीर्णोद्धार कराने के लिये ५०५ आर्यपुरुषों (ब्राह्मणों) का वरण (पूजन) किया। देवमन्दिर के दक्षिणी और उत्तरी भाग में कोट बँधवाकर नगर का विस्तार किया।

गौर्या भीमेश्वरस्याथ तथा देवकपर्दिनः।
सिद्धेश्वरादिदेवानां यो हेमकलशान् दधौ ॥२५॥
नृपशालां च यश्चक्रे सरस्वत्याश्च कूपिकां।
महानसस्य शुद्ध्यर्थं सुस्नापनजलाय च ॥२६॥
कपर्दिनः पुरोभागे सुस्तम्भां पट्टशालिकां।
रौप्यप्रणालं देवस्य मण्डुकासनमेव च ॥२७॥
पापमोचनदेवस्य प्रासादं जीर्णमुद्धृतम्।
तत्र त्रीन् पुरुषांश्चक्रे नद्यां सोपानमेव च ॥२८॥
येनाऽक्रियन्त बहुशो ब्राह्मणानां महागृहाः।
विष्णुपूजनवृत्तीनां यः प्रोद्धारमचीकरत् ॥२९॥

वहाँ जयसिंहदेव राज्य करता था। परमार राजा तथा उसके कुटुम्ब के सभी लोगों ने उसको गुरु करके माना और राजा ने उसको 'भाव' कह कर सम्बोधन किया।"

नवीननगरस्यान्तः सोमनाथस्य चाध्वनि।
निर्मिते वापिके द्वे च तत्रैवापरचण्डिका ॥३०॥ युग्मम्
गंडेनाकृत वापिकेयममला स्फारप्रमाणामृत-
प्रख्या स्वादुजला सहेलविलसद्युत्कारकोलाहलैः॥
भ्राम्यद्भूरितरारघट्टघटिकामुक्ताम्बुधाराशतै-
र्या पीतं घटयोनिनापि हसतीवाम्भोनिधिं लङ्घ्यते ॥३१॥
शशिभूषणदेवस्य चण्डिकां सन्निधिस्थितां।
यो नवीनां पुनश्चक्रे स्वश्रेयोराशिलिप्सया ॥३२॥

उपर्युक्त श्लोकों में गंड बृहस्पति ने जो जो कार्य किये उनका वर्णन है-

एतस्याऽभवदिंदुसुन्दरमुखी पत्नी प्रसिद्धान्वया
गौरीव त्रिपुरद्विषो विजयिनी लक्ष्मी मुरारेरिव।
श्रीगंगेव सरस्वतीव यमुनेवेहाग्रकीर्त्या गिरा
कान्त्या सोढलसम्भवा भुवि महादेवीति या विश्रुता ॥३५॥

जैसे महादेवजी की पार्वती और विष्णु की लक्ष्मी, इसी प्रकार कीर्ति में गंगा जैसी, वाणी में सरस्वती के समान और कान्ति में यमुना के सदृश, सोढल वंश में उत्पन्न हुई संसार में महादेवी के नाम से विख्यात उसकी पत्नी हुई।

सिद्धाश्चत्वारस्ते दशरथसमेनास्य पुत्रोपमानाः॥
आद्यस्तेषामभवदपरादित्य नामा ततोभूद्रत्नादि।
त्य .... हे ॥
अन्यः सोमेश्वर इति कृती भास्करश्चापरोभू-
देते रामादिभिरुपमिताः सत्यसौभ्रात्रयुक्ताः निः...
द्रवं विनिहिता बाहवः श्रीमुरारेः ॥३८॥

स्वर्गारोहण के समय सिद्धराज जयसिंह चक्रवती राजा था। उसके बाद कुमारपाल उसकी गद्दी पर बैठा और भाव वृहस्पति उसका प्रधान मन्त्री हुआ। कुमारपाल तीनों लोकों में कल्पतरु के समान था। उसने अपनी राजमुद्रा, भण्डार और सब कुछ वृहस्पति के अधिकार में दे दिए और आज्ञा दी कि 'देवपट्टण का देवालय गिर गया है, जाओ, और उसका जीर्णोद्धार कराओ।' भाव वृहस्पति ने देवालय का जीर्णोद्धार करवा कर उसको कैलास के समान सुन्दर बनवा दिया और पृथ्वीपति [राजा] को अपना काम दिखाने के लिए बुलाया। राजा उसके कार्य को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और गुरु की प्रशंसा करने लगा। उसने कहा, "मेरा हृदय बहुत प्रसन्न हुआ है। मेरे राज्य में जो मुख्य स्थान है वह मैं तुम्हें व तुम्हारे पुत्र को देता हूँ।"

इस मंदिर का जीर्णोद्धार (१) कराने के लिए एक समिति नियुक्त की गई थी। जब इसकी नींव रखी गई तो समिति ने कुमारपाल

दशरथ की तरह उसके चार पुत्र हुये जिनमें पहला अपरादित्य, दूसरा रत्नादित्य, तीसरा सोमेश्वर और चौथा भास्कर था।

(१) पाटन में जो वलभी संवत् ८५० (वि सं. १२२५, ई.सं ११६६) का भद्रकाली का लेख है उससे विदित होता है कि सोम अर्थात् चन्द्रमा ने इस मन्दिर को सोने का बनाया था, फिर रावण ने इसको रूपा (चांदी) का बनवाया, भीमदेव ने इसका जीर्णोद्धार कराकर रत्न जड़वाए और फिर कुमारपाल ने इसका जीर्णोद्धार कराकर इसको सोने का सुमेरु पर्वत जैसा बना दिया।

शेख सैयद अपनी ४७ वर्ष की अवस्था में सन् १२६६ ई० में हिन्दुस्थान की यात्रा करने के लिए आया था। उस समय वह पाटण भी गया था।

के पास शुभ समाचार भेजा। राजा ने वह पत्र हेमाचार्य को दिखाया और पूछा कि 'अब ऐसा उपाय बतलाओ कि जिससे यह कार्य निर्विघ्न समाप्त हो जावे।' इस पर सूरि ने मन्दिर के शिखर पर ध्वजा चढ़ने तक मांसाहार अथवा स्त्री-प्रसंग का त्याग करने की सलाह दी। राजा ने इस बात को स्वीकार किया और महादेव जी की मूर्ति पर जल छोड़ कर कहा "मैं मांसाहार का त्याग करता हूँ।" जब दो वर्ष बीतने पर मन्दिर बनकर तैयार हो गया और कुमारपाल उसका शिखर चढ़ाकर

उसने अपने 'बोस्तों' नामक ग्रन्थ के आठवें भाग के अन्तिम प्रकरण 'हिकायत सफर हिन्दुस्तान और मूर्ति पूजकों की गुमराही' में यहां का हाल लिखा है। वह लिखता है कि "सोमनाथ में मैंने एक हाथीदांत की मूर्ति देखी, वह जड़ाऊ थी और मक्का में जैसी मनात नाम की मूर्ति है वैसी ही विशाल तथा उसी आकृति की यह मूर्ति थी। वह ऐसी थी कि उसके जोड़ की दूसरी मूर्ति देखने में नहीं आई। इस सुन्दर मूर्ति के दर्शन करने के लिए दूर दूर के यात्री आते थे और चीन तथा महाचीन के लोग इसमें बहुत श्रद्धा रखते थे। मेरा एक साथी था, उसने कहा, 'यह मूर्ति चमत्कारिक है और आशीर्वाद देने के लिए हाथ ऊपर उठाती है, यदि तुम्हें चमत्कार देखना है तो आज रात को यहां पर ठहरो।' मैं रात को वहीं पर ठहर गया, मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई पहलवान अन्धकूप में गिर गया हो। जिंध लोग मेरे आसपास पूजन कर रहे थे। उन्होंने हाथ भी नहीं धोये, उन साधुओं को पानी का नाम भी नहीं सुहाता था और उनमें से जंगल में पड़े सड़ते हुए मुर्दे की सी दुर्गन्ध आती थी। सुबह होते ही गांव के तथा बाहर के लोग खचाखच मन्दिर में भर गए और मैं रात के जागरण तथा गुस्से से घबरा गया। उसी समय मूर्ति ने हाथ ऊँचा किया। तब मेरे साथी ने हंसकर कहा, "अब तो तुम्हें विश्वास हो गया होगा कि मैंने सच कहा था।' उसी समय मैं हाथीदांत की मूर्ति के पास गया, उसका चुम्बन किया और उसको मानने के लिए कुछ दिन काफिर बन कर रहा तथा जिंध पुस्तकों की बातें मानकर ब्राह्मण बना। जब मन्दिर के सब लोगों का मुझ पर

ध्वजा फहराने की तैयारी करने लगा, तब उसने आचार्य से कहा 'अब मुझे उस शपथ से मुक्त कर दो।' हेमचन्द्र ने कहा "देखो!

विश्वास हो गया तो एक दिन रात के समय किवाड़ बन्द करके मैं चारों तरफ तलाश करने लगा। तब मैंने देखा कि एक पुजारी हाथ में डोरी लिए हुए एक के पर्दे की आड़ में बैठा हुआ है। जब वह डोरी खींचता था तो मूर्ति का हाथ ऊँचा हो जाता था। मुझे देखकर वह ब्राह्मण बहुत शर्मिन्दा हुआ और भागने लगा परन्तु मैंने उसे पकड़ कर कुए में डाल दिया। जो मनुष्य मेरा साथी बना हुआ था उसको भी मैंने यह समझ कर मार डाला कि पूरा हाल मालूम होने पर वह मुझे जीता न छोड़ेगा। इसके बाद वहाँ से निकलकर यमन व अरब के मुल्कों में होता हुआ मैं यहाँ आ पहुंचा।"

कितने ही लोगों का कहना है कि शेख सैयदी ने जिस मूर्ति के विषय में लिखा है वह सोमनाथ की ही मूर्ति थी परन्तु प्रायः शिव मन्दिरों में तो मूर्तियों की प्रतिष्ठा न होकर लिंग की प्रतिष्ठा होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त वर्णन किसी जैन मन्दिर का है क्योंकि शेख सादी ने जिस जिंध अथवा जिन्द शब्द का प्रयोग किया है वह 'जिन' का अपभ्रंश मालूम होता है। पुजारियों का वर्णन करते हुए भी उसने लिखा है कि उनमें गंध आती थी और उन्हें पानी अच्छा नहीं लगता था यह बात भी उन्हीं (जिन, जैन) लोगों के लिए लागू पड़ती है।

कुमारपाल के बाद लगभग एक सौ वर्ष तक इस मन्दिर में कोई परिवर्तन नहीं हुआ जान पड़ता परन्तु, जब सन् १२९७ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने भाई अलफखाँ और प्रधान मन्त्री नुसरत खाँ को गुजरात विजय करने के लिए भेजा तब उस मूर्ति को आघात पहुंचा। इस घटना के एक सौ वर्ष बाद मुजफ्फर शाह प्रथम ने पाटण पर चढ़ाई की और हिन्दुओं के समस्त देवालयों को नष्ट करके उनकी जगह मसजिदें बनवादीं अथवा उनका आकार ही बदल दिया। उसके बाद १४१३ ई० में फरिश्ता के लेखनुसार, अहमद शाह प्रथम ने जूनागढ़ के रा' पर चढ़ाई की और उस समय उसने सोमपुर के देवालय

तुमने इस व्रत का पालन किया है इसीलिए तुम महादेव के सम्मुख खड़े होने योग्य हुए हो, जब तुम यात्रा करके वापस लौटोगे तब इस प्रतिज्ञा को छोड़ने का अवसर आवेगा।" ब्राह्मणों ने राजा को समझाया कि हेमचन्द्र सोमनाथ को नहीं मानते, इसलिए यात्रा में राजसंघ के साथ चलने की आज्ञा इनको भी होनी चाहिए, इससे सब

को नष्ट किया और वहाँ से बहुत सा धन लूट कर ले गया। फिर, महमूद बेगड़ा ने (१४५९–१५१३ ई०) इस देवालय को तोड़ कर इसके स्थान पर मसजिद बनवाई। अन्तिम आक्रमण मुजफ्फर द्वितीय का हुआ जान पड़ता है १५१३–१५२६ ई०)। इन बातों से पता चलता है कि मुसलमान लोग मन्दिर और मूर्तियाँ तोड़ जाते थे और हिन्दुओं द्वारा उनमें पुनः स्थापना की जाती थी। बाद में बहुत से देवालयों का बाहरी आकार मस्जिद का सा बनवाया जाने लगा, इसका कारण यह जान पड़ता है कि वे लोग उनको मुसलमानी इमारत समझ कर नुक़सान नहीं पहुँचाते थे।

कुमारपाल के बाद, सरस जीर्णोद्धार, जूनागढ़ के चूडासमा रा' चौथे खँगार (सं० १२७९–१३३३ में) ने कराया जिसका वृतान्त गिरनार पर मिले हुए दो लेखों से ज्ञात होता है।

मेरठ की तवारीख से विदित होता है कि मुसलमानों ने सोमनाथ के मन्दिर को तोड़फोड़ कर मसजिद के आकार का बना दिया था और वह बिलकुल खंडहर मात्र रह गया था। संवत् १८४० (१७८३ ई०) तक, जब न्यामत खाँ के बाद शेखमियाँ गद्दी पर बैठा था, उसका जीर्णोद्धार नहीं हुआ था। होल्कर मल्हार राव बहादुर की महागुणवती रानी अहल्याबाई ने इसको फिर से बनवाया। अहल्याबाई (१७६५–१७९५ ई०) ने अपने पौत्र मल्हार राव की मृत्यु के बाद में सारा राजकाज अपने हाथ में लिया था। उसने सोमनाथ के मन्दिर के जीर्णोद्धार के अतिरिक्त जगन्नाथ, नासिक, इलोरा, नीमार, महेश्वर, द्वारका गया, केदारनाथ, रामेश्वर आदि पवित्र स्थानों का भी पुनर्निर्माण कराया था।

कुछ विदित हो जावेगा।" राजा ने इस सलाह को मानकर इसके अनुसार ही कार्य किया। हेमचन्द्र ने तत्काल उत्तर दिया, "भूखे मनुष्य को भोजन करने के लिए आग्रह करने की आवश्यकता नहीं है। साधु का तो जीवन ही यात्रा है, इसमें राजाज्ञा की आवश्यकता ही क्या है ?" यह तय हुआ कि धीरे-धीरे पैदल यात्रा करते हुए, शत्रुञ्जय और गिरनार के देवस्थानों के दर्शन करते हुए आचार्य, कुमारपाल से देवपट्टण में आकर मिलेंगे। अन्त में, राजा अपने संघ के साथ आगे बढ़ता हुआ सोमेश्वर के नगर के पास आ पहुँचा। श्री वृहस्पति भी, जो इस काम की देख रेख के लिए नियुक्त थे, राजा को उस स्थान पर लिवा ले जाने को आ पहुंचे, जहां उन्होंने राजसंघ के ठहरने का प्रबन्ध कर रक्खा था। उधर हेमचन्द्र भी संघ में आ मिले और अब राजा ने बहुत आनन्द और राजसी ठाठ बाट के साथ गाजे बाजे सहित नगर में प्रवेश किया। फिर, सोमेश्वर के मन्दिर की पैड़ियों पर चढ़कर महादेव जी को साष्टांग दण्डवत की। हेमचन्द्र और वृहस्पति ने भी देवालय के दरवाजे में खड़े होकर कहा, "इस भव्य देवालय में निश्चय ही कैलाशवासी महादेव विराजमान हैं।" फिर मन्दिर में प्रवेश करके शिवलिंग (१) का विधिपूर्वक पूजन कर चुकने के बाद वे बोले, "हे

नर्मदा नदी के तट पर अहल्याबाई की पुत्री मुक्ता बाई अपने पति यशवन्तराव पाँशिया के साथ सती हुई थी। उसके स्मारक में उन्होंने महेश्वर में एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया था। इसके ३० वर्ष बाद गायकवाड़ सरकार के दीवान विठ्ठलराव देवाजी ने, जिनको काठियावाड़ का सूबेदार नियुक्त किया गया था, वहां पर अपना बड़ा नक्कारखाना व धर्मशाला बनवाये

(१) कुमारपालप्रबन्ध में इस स्तुति के श्लोक इस प्रकार लिखे हैं—

भगवन् ! तुम्हारा कोई भी स्थान हो, कोई भी काल हो, तुम्हारे कुछ भी नाम हों और कैसी भी प्रकृति हो, परन्तु तुम्हारी स्थिति है। तुम वह हो जिसमें पाप-कर्म नहीं है, जिसमें कर्म के फलस्वरूप पाप नहीं है, तुम एक ईश्वर हो, मैं तुमको प्रणाम करता हूँ। जिसने, माया के उन बन्धनों को तोड़ दिया है जो संसार में आवागमन के बीजस्वरूप हैं, मैं उस परमात्मा को नमस्कार करता हूँ, चाहे वह ब्रह्मा हो, चाहे विष्णु हो अथवा शिव हो।" जब हेमाचार्य इस प्रकार प्रार्थना कर रहे थे तब राजा व उसके समस्त कर्मचारी आश्चर्यचकित एवं निश्चेष्ट होकर खड़े रहे। प्रार्थना समाप्त करके हेमाचार्य ने शिवजी को साष्टांग प्रणाम किया। फिर बृहस्पति के निर्देशानुसार राजा ने श्रद्धापूर्वक शिवजी का

आर्या—भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥१॥

भव अर्थात् पुनर्जन्म के अंकुर उत्पन्न करने वाले रागादि (कारण) जिसके नष्ट हो गए हैं ऐसे ब्रह्मा, विष्णु, हर अथवा जिन (नाम से सम्बोधित) भगवान्) को नमस्कार है। ॥१॥

रथोद्धतावृत्तम्—यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया ।
वीतदोषकलुषः सचेद् भवानेक एव भगवन्नमोऽस्तुते ॥२॥

जिस किसी भी समय में, जो कोई भी आप, जिस किसी भी नाम से सम्बोधित हो, ऐसे दोषादि कालुष्य से रहित भगवान् आप एक ही हो ! आपको नमस्कार है ॥२॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्—त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितम्
साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं साङ्गुलि ।
रागद्वेषभयामयान्तकजरालोलत्वलोभादयो
नालं यत्पदलङ्घनाय स महादेवो मया वन्द्यते ॥३॥

पूजन किया, अपना तुलादान किया तथा हाथी आदि दान में दिए और इसके बाद शिवजी की कपूर से आरती उतारी। जब यह सब कुछ हो चुका तो सबको बाहर जाने की आज्ञा देकर कुमारपाल और हेमाचार्य मन्दिर के निजमण्डप में बैठे और दरवाजा बन्द करवा दिया।

कुमारपाल ने हेमाचार्य से कहा,—"संसार में जितने धर्म हैं, उनमें से मैं एक ही ऐसे धर्म का पालन करना चाहता हूँ जिसमें मेरा पूर्ण विश्वास हो जावे। आज, सोमेश्वर के समान और कोई देवता नहीं है, मेरे समान राजा नहीं है और तुम्हारे समान कोई साधु नहीं है। मेरे सौभाग्य से इन तीनों का संयोग हुआ है, इसलिए इन महादेव के समक्ष तुम मुझे ऐसा देवता बताओ जिसकी उपासना से मुझे मुक्ति प्राप्त हो।"

अलोक अर्थात् जहां जीव की गति नहीं है ऐसे आकाश सहित तीनों लोक (भूर्भुवः स्वः अथवा स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) और तीनों काल (भूत, वर्तमान् और भविष्यत्) जिसके द्वारा अंगुलियों सहित करतल की रेखाओं के समान (उजाले) में स्पष्ट पर्यवेक्षित हैं, और राग, द्वेष, भय, आमय (रोग), अन्तक (काल) जरा (बुढापा), लोलत्व (चञ्चलता) और लोभ आदि भी जिसके पदका उल्लङ्घन करने में समर्थ नहीं हैं उस महादेव की मैं वन्दना करता हूँ ॥३॥

स्रग्धरावृत्तम्:—यो विश्वं वेद वेद्यं जननजलनिधेर्भङ्गिनः पारदृश्वा
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलङ्कं यदीयं ।
तं वन्द्यं साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषन्तम् ।
बुद्धं वा वर्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥४॥

जो जानने योग्य सभी वस्तु (जगत्) को जानता है, जो विश्व की उत्पत्ति

हेमाचार्य ने उत्तर दिया, "पुराणों में जो बातें लिखी हैं उन पर इस समय विचार करने का अवसर नहीं है। मैं तुम्हें इसी समय महा-महिमामय भगवान् शिवजी का साक्षात् दर्शन कराता हूँ और जो कुछ सत्य है वह तुम उन्हीं के मुख से सुन लोगे। इसमें सन्देह नहीं है कि भगवान् यहीं छुपे हुए हैं, धर्माचार्यों ने जो रीति बताई है उसी के अनु-सार अचल ध्यान करने से तुमको और मुझको दोनों ही को उनका दर्शन हो सकता है। लो, मैं ध्यान करता हूँ और तुम इस अगर से धूप जलाते रहो। जब तक स्वयं त्रिनेत्र शिव प्रकट होकर बन्द न करें तब तक निरन्तर इस काम में लगे रहना।" इस प्रकार वे दोनों अपने काम में लग गए और मन्दिर का निज-मण्डप धूप की धुआं से इतना भर गया कि दरवाजे और तीनों कोनों में जो दीपक रखे हुए थे उनका प्रकाश भी मन्द पड़ गया। अचानक सूर्य के प्रकाश के समान तेजः पुञ्ज फैलता हुआ दिखाई दिया। राजा चौंक उठा और उसने प्रकाश-पुञ्ज की चकाचौंध से घबड़ाकर दोनों हाथों से आंखों को ढ़क कर, धीरे-धीरे देखने का प्रयत्न किया। उसी क्षण, उसने देखा कि जलहरी में वर्तमान पवित्र शिवलिंग से एक योगी की आकृति प्रकट हो रही है, जिसके शिर पर जटा है, अनुपम शोभा है, और तपे हुए सोने के समान जिसकी कान्ति है, जिसकी ओर मृत्युलोक के निवासी दुर्बल मानव के लिए सीधा देखना अशक्य है। राजा ने अपने हाथों

रुपी समुद्र की रचना का पारदृश्वा है (अर्थात् इससे पहले की स्थिति को भी जाननेवाला है) जिसके वचन में पहले और बाद में कही हुई बात में विरोध नहीं है, वह वचन अनुपम और निष्कलंक है, जो साधु पुरुषों द्वारा वन्द्य है, सब गुणों का निधान है और जिसके दोष रूपी शत्रु ध्वस्त (नष्ट) हो गये हैं ऐसे बुध, वर्द्धमान, ब्रह्मा, विष्णु अथवा शिव की वन्दना करता हूं ॥ ४ ॥

से स्पर्श करके देखा कि साक्षात् भगवान् शरीर धारण करके उसके समक्ष विद्यमान हैं। अत्यन्त भक्ति के साथ साष्टाङ्ग प्रणाम करके वह इस प्रकार प्रार्थना करने लगा, "हे जगत्पते ! आपका दर्शन करने से मेरी आंखों को उनकी इष्ट वस्तु प्राप्त हुई, अब कुछ आदेश प्रदान कीजिये जिससे मेरे कर्णयुगल भी कृतार्थ हों।" घनघोर रात्रि के पश्चात फैलते हुए प्रातःकालीन तेज के समान भगवान् का मुखमण्डल आलोकित हो उठा और इस प्रकार वचन-माधुरी निःस्यन्दित हुई–"राजन् ! यह साधु समस्त देवताओं का अवतार है, यह निष्कपट है और सम्पूर्ण देवत्व इसके हस्तगत मोती के समान है। यह त्रिकालज्ञ है और इसका बताया हुआ मार्ग निश्चय ही तुम्हारे लिए मुक्तिप्रद होगा।" यह कह कर भगवान अन्तर्धान हो गए। राजा उनके अन्तर्हित होने पर पश्चात्ताप कर ही रहा था कि साधु हेमचन्द्र भी ध्यान मुक्त होकर श्वास लेने लगे। अपने इष्टदेव के कहे हुए वचनों का स्मरण करते हुए, राजा ने अपने राजत्व का अभिमान छोड़कर धर्मगुरु के आगे मस्तक झुका दिया और उनसे प्रार्थना करने लगा कि 'जो कुछ मेरे करने योग्य हो वही आज्ञा कीजिए। फिर उसी स्थान पर हेमचन्द्र ने राजा से आमरण मद्यमांस का त्याग करने की प्रतिज्ञा कराई।

इतिहासकार लिखते हैं, और लेखों में भी लिखा है, कि बृहस्पति ब्राह्मण को सोमेश्वर के मन्दिर का अधिकारी नियुक्त किया गया था, परन्तु कुछ दिन बाद, जब राजा पर हेमचन्द्र का पूर्ण प्रभाव जम गया तो, कुछ समय के लिए उसको जैनधर्म की निन्दा करने के अपराध में पृथक् कर दिया गया था। फिर, जब उसने बहुत नम्रतापूर्वक आचार्य की विनती की और उन्होंने कुमारपाल से कहा सुना तो वह पुनः अपने स्थान पर नियुक्त कर दिया गया।

इसके बाद अणहिलपुर लौट कर आचार्य ने राजा को भी जिनदेव के मुख से निकली हुई वाणी का ज्ञान कराया और उसको अर्हन्त के अनुयायियों में सर्वश्रेष्ठ ठहराया। आचार्य की आज्ञा के अनुसार उसने, गुजरात के अट्ठारह परगनों में, जहां उसकी दुहाई फिरती थी, चौदह वर्ष के लिए, जीवहिंसा बन्द करवा दी। द्वयाश्रय में लिखा है कि(१)

---

१. द्वयाश्रय के बीसवें सर्ग में लिखा है कि एक दिन कुमारपाल मार्ग में एक मनुष्य को पाँच छः बकरों को खींचकर ले जाते हुए देखा। उसने पूछा, "इन मरे हुए से बकरों को कहाँ ले जाते हो ?" उसने उत्तर दिया "कसाई के घर ले जाकर इनके कुछ पैसे खड़े करूंगा और कुछ दिन के लिए अपना दारिद्रय टालूंगा।" इस पर कुमारपाल ने मांसाहार की बहुत निन्दा की और अपने मन में कहा कि, मेरे ही दुर्विवेक से आज ये लोग हिंसा में प्रवृत्त हो रहे हैं। उसने उस मनुष्य को तो जाने दिया और तुरन्त ही अधिकारियों को कह कर यह आज्ञा जारी करवाई कि, जो झूठी प्रतिज्ञा करे उसे शिक्षा देने के लिए दण्ड दो, जो परदारगमन करे उसे और भी अधिक दण्ड दिया जावे और जो जीवहिंसा करे उसे तो और भी अधिक दण्ड मिले, ऐसी हमारी आज्ञा है इसको हमारे राज्य भर में जो त्रिकूटाचल (लंका) तक है, प्रसिद्ध करो। जीवहिंसा बन्द करने से जिन लोगों को नुकसान हो उन्हें तीन तीन वर्ष तक खाने भर का अन्न दे दिया जावे, इसका फल यह हुआ कि शराब पीने की चाल बन्द हो गई और यज्ञों में बकरों की एवजें जौ की आहुति दी जाने लगी।

एक बार रात्रि के समय जब कुमारपाल सो रहा था तो उसने किसी के रोने की आवाज सुनी। यह आवाज कहां से आती थी, इसका तलाश करने के लिए वह स्वयं अकेला ही निकल पड़ा। कुछ दूर जाकर उसने एक सुन्दरी स्त्री को रोते हुए देखा। उसे आश्वासन देकर राजा ने रोने का कारण पूछा। स्त्री ने कहा, "मेरा पति और पुत्र दोनों मर गए हैं, अब मैं इसलिए रोती हूं कि पुत्र न होने के कारण मेरी सम्पत्ति स्वत्वहीन समझी जायगी और राजा उस पर अधिकार कर लेगा। अब मेरा गुजर होने के लिए कोई उपाय नहीं है।" राजा ने उसे

ब्राह्मण लोग अपने यज्ञों में जो जीवों का बलिदान करते थे वह बन्द कर दिया गया और पशुओं के स्थान में अन्न की आहुतियां दी जाने लगीं। पल्ली देश में भी राजा की आज्ञा मानी गई और वहां के योगियों को, जो मृगचर्म से शरीर ढकते थे, बड़ी कठिनाई पड़ी। पांचाल देश के लोगों को भी, जो बड़े भारी जीवहिंसक थे, कुमारपाल के अधि-

---

आश्वासन दिया, राज्य द्वारा उसकी सम्पत्ति न लिए जाने का वचन दिया और धर्मकार्य में अपने धन व जीवन को बिताने की सलाह दी। इसके पश्चात् उसने अपने राज्य में मृतक की सम्पत्ति को न लेने की घोषणा करवा दी जिससे प्रजा बहुत प्रसन्न हुई।

कुमारपाल के क्रमानुयायी अजयपाल देव (१२२६ ई०-१२३२ ई०) के मन्त्री यशपाल रचित 'मोहपराजय' नाटक में भी एक ऐसी ही घटना का वर्णन है। कुबेरनामा निःसन्तान कोट्याधिप श्रेष्ठी की मृत्यु पर उसकी माता दुःख विह्वल हो जाती है। राजा का ध्यान उसकी 'मृतधनापहरण नीति' के प्रति आकर्षित किया गया। वह बहुत उद्विग्न हुआ। उसने कुबेर की माता को आश्वस्त किया और पञ्चकुल (पञ्च महाजनों) के सामने राज्य में निस्सन्तान मृतक की सम्पत्ति ग्रहण न करने की घोषणा करवा दी।

निः शूकैः शकितं न यन्नृपतिभिस्त्यक्तं क्वचित् प्राक्तनैः
पत्न्याः क्षार इव क्षते पतिमृतौ यस्यापहारः किल।
आपाथोधि कुमारपालनृपतिर्देवो रुदत्या धनं
बिभ्राणः सदयः प्रजासु हृदयं मुञ्चत्ययं तत् स्वयम्॥

(मोहपराजय अङ्क ३., गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज में प्रकाशित)

राजा की इस घोषणा से प्रजा में बहुत बड़ा सामाजिक एवं राजनीतिक युग-प्रवर्त्तक सुधार हुआ।

कार में होने के कारण, जीवहिंसा बन्द करनी पड़ी। मांस का व्यापार करने वालों का धन्धा बन्द हो गया और उनकी हानि के बदले में उनको तीन वर्ष की उपज दी गई। एक मात्र काशी के आसपास के लोगों ने जीवों का बलिदान करना जारी रक्खा।

एक दिन किसी ने आकर राजा को समाचार दिया कि केदार के खसराज ने यात्रियों को लूट लिया और इतना ही नहीं, उसने केदारेश्वर के देवालय का जीर्णोद्धार भी नहीं कराया जिससे वह पूर्ण खण्डहर हुआ जा रहा है।' राजा ने खसराज को दोषी ठहराया और अपने मन्त्री

श्री हेमचन्द्राचार्य ने इस अवसर पर राजा की प्रशस्ति में लिखा है:—

न यन्मुक्तं पूर्वै रघुनहुषनाभागभरत—
प्रभृत्युर्वीनाथैः कृतयुगकृतोत्पत्तिभिरपि।
विमुञ्चन् कारुण्यात्तदपि रुदती वित्तमधुना।
कुमारक्ष्मापाल! त्वमसि महतां मस्तकमणिः ॥६६६॥
(प्रभावक–चरित–हेमचन्द्रसूरिचरित)

"रोती हुई (विधवा) के वित्त को कृतयुग में उत्पन्न होने वाले रघु नहुष, नाभाग और भरत आदि राजा भी न छोड़ सके, उसीको हे राजा कुमारपाल करुणावश होकर आपने छोड़ दिया। निश्चय ही आप महापुरुषों के मुकुटमणि है।

एक बार एक दूत ने आकर खबर दी कि खस राजा ने केदार प्रासाद को खण्डहर कर दिया है। इस पर उसने खस राजा को ठीक करके अपने मंत्री वाग्भट्ट के द्वारा सोमनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। अणहिलपुर में उसने श्री पार्श्वनाथ का भव्य चैत्य बनवाया। इसके बाद स्वयं महादेव ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा "मैं तुझ से प्रसन्न हूं और तेरे नगर में रहना चाहता हूं।" इस पर कुमारपाल ने कुमारपालेश्वर महादेव का देवालय बनवाया।

को केदारेश्वर के देवालय का जीर्णोद्धार कराने के लिए भेजा।

एक समय स्वयं महादेव ने स्वप्न में दर्शन देकर आज्ञा दी "मैं तेरी सेवा से बहुत प्रसन्न हुआ हूँ, अब मैंने अणहिलपुर में आकर निवास करने का निश्चय किया है।" इस पर राजा ने उसी नगर में कुमारपालेश्वर महादेव का देवालय बनवाया। इसके अतिरिक्त उसने वहीं पारसनाथ का भी एक मन्दिर बनवाया जिसका नाम कुमारविहार रखा और उसमें मूर्तियों की प्रतिष्ठा की। देवपट्टण में उसने जैन धर्म का एक ऐसा सुन्दर मन्दिर बनवाया कि उसके दर्शन करने के लिए झुण्ड के झुण्ड यात्री उमड़ पड़े।

अब, कुमारपाल ने जैन धर्म की बारहों प्रतिज्ञाएँ ग्रहण कीं। (१)

---

(१) बारह व्रत इस प्रकार हैं—

(१) हिंसात्याग—जीवदया के समान कोई धर्म नहीं है, इसलिए कुमारपाल ने कर्णाटक, गुजरात, कोंकण, राष्ट्र, कीर, जालन्धर, सपादलक्ष, मेवाड़, द्वीप और आभीर आदि अठारह देशों में डोंडी पिटवाकर तथा काशी और गजनी आदि चौदह देशों में धन, विक्रम और मैत्री के बल पर जीव-रक्षा कराई।

(२) असत्य त्याग—झूठ बोलने से सब पापों की अपेक्षा अधिक पाप लगता है।

(३) अदत्त ग्रहण त्याग—जो दूसरे का धन हरण करता है उसे जन्म-जन्मान्तर में दासत्व प्राप्त होता है और दूसरे के घर पर गुलामी करनी पड़ती है। पराया धन हड़पने वाले का दान, शील, और तप तथा पूर्वकृत महापुण्य निष्फल हो जाता है। इसी सिद्धान्त को मानते हुए कुमारपाल ने अपने राज्य में निष्पुत्रों का धन लेने की चाल बन्द करदी और इस प्रकार लगभग बहत्तर लाख की वार्षिक आय का त्याग कर दिया। उसने धाराशास्त्र (कानून)

तीसरी प्रतिज्ञा लेते समय आचार्य ने उसे शिक्षा दी कि जो लोग अपुत्र मर जाते हैं उनका धन लेकर राजकोष में जमा कर लेना महापाप

की पुस्तक में से इस धारा को निकलवा कर अठारह देशों में डिंडोरा पिटवा दिया कि, "पति के मर जाने पर विधवा स्त्री के घाव पर नमक के समान लगने वाले जिस धन-हरण के नियम को पहले के निर्दय राजा लोग नहीं तोड़ सके उसका, प्रजा के प्रति दयार्द्र भाव धारण करने वाला समुद्र–मर्यादित पृथ्वी का राजा, कुमारपाल त्याग करता है ।'

(४) परस्त्रीत्याग और स्वदारसन्तोष–धर्मार्थी पुरुष परस्त्री का त्याग करे, परस्त्रीगमन का फल अपकीर्ति, कुलक्षय और दुर्गति होता है। इस अब्रह्मण्य फल का विचार करके सुज्ञ पुरुष पर-स्त्री पर दृष्टि न डाले।

बारह व्रत लेते समय राजा ने सब से पहले यह व्रत लिया कि 'परस्त्री को माता तथा बहन के समान समझूंगा'। धर्म–प्राप्ति के पहिले उसके अनेक रानियाँ थीं, परन्तु वे सब थोड़ी २ आयुष्य पाकर ही मर गईं, इसलिए जिस समय उसने ये व्रत लिए थे उस समय केवल पटरानी भूपालदेवी ही जीवित थी। राजाने उसी से सन्तोष मानकर फिर दूसरा विवाह नहीं किया।

(५) अपरिमित परिग्रहत्याग और इच्छा परिमाण–धन के पीछे दौड़ने वाला क्रिया-हिंसक जीव क्या पाप से बच सकेगा? धन के संपादन, रक्षण और क्षय से उत्पन्न हुए दुःखानल में कौन नहीं जला? सबसे प्रथम इन बातों पर विचार करके पागलपन से उत्पन्न हुई स्पृहा का त्याग करो, जिससे जीवन में पाप और संताप को स्थान ही न मिले।

तृष्णा से तप्त मनवाले पुरुषों का पद पद पर अपमान होता है। मम्मण को परिग्रह से क्लेश और क्लेश से नरकगति प्राप्त हुई। इस बात का विचार करके धर्म की शोध करनेवाले व सुखार्थी पुरुषों को स्वल्प परिग्रह रखना चाहिए।

है। इस आशय के अनुसार उसने प्रतिज्ञा की कि 'अपनी स्वयं की

कुमारपाल ने सोच समझकर अपने पूर्वजों और अन्य महापुरुषों के मतानुसार नीचे लिखे प्रमाण से परिग्रह का परिमाण निश्चित किया—

छः कोटि सौनैया	एक हजार हाथी
आठ कोटि रुपैया	अस्सी हजार ग्राम
एक हजार तोला महामूल्यवन्त रत्न	पांच सौ घर
अनेक कोटि दूसरे द्रव्य	पाँच सौ अखारे
दो हजार घड़े घी, तेल इत्यादि	पाँच सौ सभा
दो हजार खाँडी धान्य	पाँच सौ गाड़ियां
पांच लाख घोड़े	एक हजार ऊँट

इस प्रकार सामान्य परिग्रह रखा और सेना में ग्यारह सौ हाथी, पचास हजार रथ, ग्यारह लाख घोड़े और अठारह लाख पैदल रखे।

(६) दिग्गमनत्याग— दशों दिशाओं में गमन करने की मर्यादा बाँधे, इसको दिग्विरति नामक पहला गुणव्रत कहते हैं। क्या लोहखण्ड के गोले की तरह सब दिशाओं में अनियमित रूप से लुढकने वाला प्रमादी जीव पाप संचय नहीं करेगा? लोभ से पराभव पाया हुआ पुरुष तीनों भुवनों में गमन करने का मनोरथ करे। विवेकी पुरुष सर्वदा और विशेषतः चातुर्मास में जीव-दया के निमित्त सर्व दिशाओं में जाने की निवृत्ति करे।

कुमारपाल ने चौमासे (वर्षा ऋतु) के चार महीनों में पाटण के कोट से बाहर न जाने और साधारणतया नगर में भी देवदर्शन और गुरुवन्दना किए बिना कोई काम न करने का नियम लिया। कठिन प्रसंग आने पर भी उसने इस नियम का त्याग नहीं किया। उसके ऐसा नियम ले लेने की बात चारों ओर फैल गई, यहाँ तक कि गज़नी के गुप्तचरों ने जाकर वहां के दुर्धर शकानिक राजा से भी सब हाल कह सुनाया। गुजरात की समृद्धि पर ललचाकर उसने इधर प्रस्थान कर दिया। गज़नी से आनेवाले गुप्तचरों ने कुमारपाल से भी ये समाचार कह

मेहनत से जो कुछ प्राप्त होगा उसके अतिरिक्त कोई वस्तु ग्रहण नहीं

सुनाए। राजा चिन्तित होकर अमात्य के साथ गुरु के पास गया और कहने लगा, "हे प्रभो, बलवान् तुर्काधिपति ने गज़नी से गुजरात की ओर प्रस्थान कर दिया है; मैंने वर्षा ऋतु में नगर से बाहर पैर न रखने का नियम ले रखा है, अब, कहिए क्या किया जावे?" हेमाचार्य ने कहा, 'चिन्ता न करो, तुम जिस धर्म की आराधना करते हो वही तुम्हारी सहायता करेगा।' थोड़ी ही देर में राजा देखता है कि पलंग सहित गज़नी का राजा उसके सामने आ गया और यों कहने लगा, "हे राजेन्द्र ! मैं यह नहीं जानता था कि आपको देवताओं की इतनी सहायता प्राप्त है, अब मैं सदा के लिए आपसे सन्धि करता हूं।" कुमारपाल ने उसको अपने महल में ले जाकर पूर्ण सत्कार किया और जीवदया की शिक्षा दी। इसके बाद अपने विश्वासपात्र सेवकों के साथ गजनीपति को उसके डेरे में भेज दिया।

(७) भोगोपभोग का परिमाण—अन्न, कुसुम आदि का एक ही वार सेवन किया जा सकता है, उनके सेवन को भोग कहते हैं, और आभूषण, स्त्री आदि जिनका अनेक बार सेवन किया जावे वह उपभोग कहाता है। भोग और उपभोग की मात्रा निश्चित होनी चाहिए, इसको भोगोपभोगमान नाम का दूसरा गुणव्रत कहते हैं। दयालु पुरुष २२ अभक्ष्य और ३२ अनन्तकाय को त्याज्य समझकर उनसे दूर रहे।

कुमारपाल ने मांस, मद्य, माखन आदि २२ अभक्ष्य और ३२ अनंतकाय (कन्दमूल) के लिए रोग आदि महाकष्ट के समय को छोड़ कर बाकी कभी न सेवन करने का नियम लिया।

(८) अनर्थदण्ड का त्याग—आर्त और रौद्र इन दोनों दुष्ट ध्यानों का सेवन करना, हिंसा के उपकरणों को इकट्ठा करना, पापयुक्त आचार का उपदेश करना और प्रमादी होना, ये निरर्थक पाप के कारण होने से अनर्थदण्ड कहलाते हैं। इसका निवारण करना ही अनर्थदण्ड-विस्मरण नाम का तीसरा गुणव्रत कहलाता है। इसलिए विवेकी पुरुष अनर्थदण्ड का त्याग करे।

करूंगा। इस प्रकार की आय ग्रहण करना बन्द कर देने पर उसकी

कुमारपाल ने सर्वत्र सात व्यसनों का निषेध कराया और स्वयं ने भी प्रमाद, क्रीडा, हास्य, उपचार, शरीर का अतिशय सत्कार और विकथा (अर्थात् जिसका धर्म से सम्बन्ध न हो ऐसे देश, स्त्री और भोजन सम्बन्धी वार्ता) आदि का त्याग करके वह निरन्तर जाग्रत धर्मध्यान रूपी अमृतसागर में निमग्न रहा।

(९) सामायिक व्रत—मन, वचन और शरीर से पापयुक्त व्यापार का त्याग और पापरहित व्यापार का सेवन करने वाला पुरुष मुहूर्त मात्र के लिए समता में रहे यह सामायिक नाम का पहला शिक्षाव्रत है।

कुमारपाल ने प्रतिदिन दो सामायिक करने का व्रत लिया था। पिछली रात्रि के सामायिक में वह पहले योगशास्त्र के बारह प्रकाश और वीतराग-स्तवन का पाठ करता था और फिर दूसरा काम करता था। दूसरे सामायिक में वह पोषधशाला में रहता था और उस समय गुरुजी के अतिरिक्त और किसी से बात चीत नहीं करता था।

(१०) देशावकाशिक व्रत—दिग्व्रत में किए हुए परिमाण से दिन तथा रात्रि में कमी करे, इसे पुण्य का कारणभूत देशावकाशिक नामका दूसरा शिक्षाव्रत कहते हैं। जिस प्रकार औषधि शरीर में व्याप्त हुए विष को अंगुली आदि में लाकर छोड़ देती है उसी प्रकार विवेकी पुरुष दिग्व्रत के परिमाण को तथा दूसरे व्रतों के परिमाण को भी नित्य रात दिन कम करे। जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और जीवों की हिंसा आदि को सर्वथा अथवा अंशतः कम करे, राग द्वेष से दूषित असत्य न बोले और विशेषकर गृहकार्य के सम्बन्ध में तो बिल्कुल ही न बोले, धर्म के सम्बन्ध में प्रमाण से बात करे, भोजन अथवा धन में से किसी को दिए बिना ग्रहण न करे। इस प्रकार सभी व्रतों में समझना चाहिए।

(११) पोषधोपवास व्रत—अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वतिथियों में सब प्रकार के आहार, अङ्गसत्कार, अब्रह्म और असावद्य व्यापार का त्याग करे। यह भवरूपी रोग के लिए औषध के समान पोषध नाम का तीसरा शिक्षा-व्रत है।

प्रजा मुक्तकण्ठ से कहने लगी 'यह राजा सत्ययुग के रघु, नहुष और भरत से भी बढ़कर हुआ है।(१)

कुमारपाल पर्वतिथियों में सदा पोषध लेता था और उस दिन उपवास करके रात्रि को बिलकुल नहीं सोता था। वह गुरु की वन्दना में तत्पर रहता, खुले मुँह बात नहीं करता, प्रमार्जन किए विना न चलता, अधिक समयतक कायोत्सर्ग में लगा रहता और दर्भासन पर बैठ कर प्राणायाम करता।

(१२) अतिथि-संविभाग—जो महात्मा तिथियों और पर्वोत्सवों का त्याग करते हैं उनको छोड़कर बाकी के अभ्यागत कहलाते हैं। अतिथियों को न्यायोपार्जित अन्न, वस्त्र, पान, आश्रम आदि का देश काल पात्र के विचारपूर्वक श्रद्धा और सत्कार से दान करना अतिथि-संविभाग नाम का चौथा शिक्षाव्रत कहलाता है।

कुमारपाल ने अपने राज्य में श्रावकों से कर लेना बन्द कर दिया। इस कर से लगभग ७२ लाख रुपये की वार्षिक आमदनी होती थी। प्रत्येक गरीब सधार्मिक आश्रयार्थी को एक हजार दीनार देने के लिए आभड़ सेठ को आज्ञा दी। हेमाचार्य से राज्य में नंगे भूखे श्रावकों की खबर रखने के लिए विनती की। यह सब आज्ञा जारी करने के एक वर्ष बाद इस कार्य में जो खर्चा हुआ उसका हिसाब मंगवाया जो एक करोड़ के लगभग आया। आभड़ सेठ ने इसको लेने से नांही की परन्तु अपने व्रत की रक्षा के निमित्त राजा ने आग्रहपूर्वक यह धन चुकाया और कितने ही वर्षों तक अपने व्रत का इसी प्रकार पालन करता रहा।

(कुमारपालप्रबन्ध पृ० २०१)

(१) बर्नियर ने औरङ्गजेब के पिता द्वारा उसके नाम लिखा हुआ एक पत्र उद्धृत किया है जिसमें लिखा है—'हमारी नौकरी में जो मनुष्य हैं उनमें से जब कोई मर जाता है तो उसके वारिस हम हैं, ऐसा प्रसिद्ध करके पुरानी रीति को चालू रखने की तुम्हारी इच्छा जान पड़ती है। अपने यहाँ ऐसी चाल है कि जब कोई उमराव या कोई धनवान् पुरुष मर जाता है (अथवा कभी कभी तो

इसके बाद सोरठ के राजा समरसी(१) अथवा साउंसर को शिक्षा देने के लिए कुमारपाल ने बढ़वाण में एक सेना इकट्ठी की और उसका

उसका प्राणान्त होने के पहले ही उसके कार्यकर्ताओं और माल-मिल्कियत की सूची बनाकर तुरन्त जब्त कर लेते हैं और उसके कारिन्दों तथा बन्धु-बान्धवों को कैद में डाल देते हैं या मरवा देते हैं। यह रीति अपने लिए लाभदायक तो है परन्तु यह कार्य घातक और न्यायविरुद्ध है, हम इससे ना नहीं कर सकते।"

(२) कुमारपाल ने सौराष्ट्र के समर राजा को पकड़ने के लिए अपने मन्त्री उदयन को सेनापति बनाकर भेजा था। प्रबन्धचिन्तामणि में इस राजा का नाम सुंवर (सुंबर) लिखा है। एक प्रति में सउसर है—कितनी ही जगह संसर अथवा सामर लिखा है। यह नाम गुजरात की प्राचीन मेर जाति के चाचर अथवा छाचर नाम से मिलता हुआ है। अस्तु—आज्ञानुसार उदयन रवाना होकर बढ़वाण आया और फिर सब सामन्तों की राय से आगे बढ़ा। पालीताणा पहुँच कर उसने भक्तिभाव पूर्वक श्री ऋषभदेव का पूजन तथा चैत्यवन्दन किया। पूजन करते समय उसने देखा कि नक्षत्रमाला (दीपमाला) में से एक दीवट उठाकर एक चूहा ले गया और उस काष्ठमय प्रासाद के एक भाग में जा बैठा। मन्दिर के रक्षकों ने यद्यपि चूहे से दीवट छुड़ा ली परन्तु मंत्री की समाधि भंग हो गई। उदयन ने अपने मन में सोचा कि यह जीर्ण काष्ठमय प्रासाद खतरे में है, इसलिए उसने उस प्रासाद को पाषाण का बनवाने का निश्चय किया और जब तक यह कार्य पूर्ण न हो जावे तब तक ब्रह्मचर्य से रहने, एक बार भोजन करने, जमीन पर सोने और ताम्बूल न खाने—इन चार बातों का नियम लिया। इसके बाद शत्रु से लड़ाई होते समय उसके बहुत से सैनिक भाग गये परन्तु रणरसिक उदयन खेत में डटा रहा और शत्रु के प्रहार से जर्जरित हो जाने पर भी अपने बाण से समर राजा का वध किया। फिर ,जब, समर के पुत्र को गद्दी पर बिठा कर उसकी समृद्धि को साथ लेकर लौटने लगा तो शरीर पर लगे हुए घावों की पीड़ा से बेचैन होकर वह मूर्छित हो गया। जब पवन, शीतल जल आदि उपचारों से उसकी चेतना लौटी तो वह करुणापूर्ण स्वर से रुदन करने लगा।

अधिनायक उदयन मंत्री को बनाया। इस लड़ाई में उदयन की हार होते होते बची और वह स्वयं भी बहुत घायल हुआ। अन्त में, शत्रुञ्जय और भडौंच में देवालय बनवाने का काम अपने पुत्रों, वाग्भट्ट (वाहड) और आम्रभट्ट के भरोसे छोड़कर वह चल बसा। शत्रुञ्जय का कार्य वाहड ने ११५५ ई० में पूर्ण किया। उसने वहीं पास ही में एक शहर भी बसाया जो उसी के नाम पर वाहड़पुर (१) कहलाया।

सामन्तों ने इसका कारण पूछा तो उसने कहा "मेरे हृदय में चार शल्य (कांटे) रह जावेंगे, वे ये हैं कि (१) आम्बड (आम्रभट्ट) दण्डनायक हो, (२) श्री शत्रुञ्जय पर पाषाणमय प्रासाद बने (३) श्री गिरनार पर नई पैड़ियां बनाई जावें और (४) चौथा शल्य यह है कि इस समय (मेरे मरते समय) मेरे सामने कोई निर्णायक (तारनेवाला) गुरु नहीं है।' सामन्तों ने कहा कि, 'पहली तीन प्रतिज्ञाएँ तो आपका पुत्र बाहड (वाग्भट्ट, बाहड़) पूर्ण करेगा इसलिए इनकी चिन्ता छोड़ दीजिए।' चौथी बात पूरी करने के लिए वे किसी आदमी को साधु का वेष पहनाकर उसके सामने ले आए। मन्त्री ने उस साधु को गौतमस्वामी के समान मानकर वन्दना की। पापों की निन्दा और पुण्यों की प्रशंसा करते हुए आत्मध्यान में निमग्न हो वह स्वर्ग चला गया।

[कुमारपाल प्रबन्ध गु० भा.पृ. १७९ ; प्रबन्ध-चिन्तामणि हिन्दी अनुवाद पृ० १०४]

(१) बाहड़ ने अपने पिता की इच्छानुसार अपने सौतेले भाई आँबड (आम्रभट्ट, अम्बड) को दण्डनायक (सेनापति) की पदवी दिलाई और स्वयं कुमारपाल की आज्ञा लेकर गिरनार पर गया। वहां पर अम्बिका द्वारा डाले हुए अक्षतों के मार्ग से सुगम पगडण्डी का रास्ता बनवाया और इसमें तरेसठ लाख नांणा (सिक्का विशेष) खर्च किया। फिर कपर्दी मन्त्री को अपना काम सौंप कर, चार हजार सवारों सहित शत्रुञ्जय की तलहटी में जाकर डेरा डाला और बहुत से सूत्रधारों को इकट्ठा किया। बहुत से दूसरे व्यापारी भी इस तीर्थ का उद्धार करने के लिए धन ले लेकर आए और मन्त्री वाग्भट

भडौंच के शकुनिका-विहार बनवाने का भार आम्रभट्ट ने अपने सिर पर लिया। इस कार्य में यद्यपि नगर के किले की दीवारों के नीचे होकर बहने वाली नर्मदा नदी की बाढों ने अचानक आ आकर अनेक बार बाधाएं उपस्थित कीं परन्तु अन्त में उसको पूर्ण सफलता हुई। लगभग उसी समय कुमारपाल ने भी एक नया चैत्य बनवाया था। य चैत्य खम्भात में उस उपासरे के पास बनवाया गया था जहां पहले पहल उसकी भेंट उदयन और हेमाचार्य से हुई थी।

से कहने लगे कि, 'आप अकेले ही इस तीर्थ का उद्धार करने में समर्थ हैं परन्तु इस महापुण्य में सम्मिलित करके हमें भी कृतार्थ कीजिये।' यह कह कर उन्होंने सोने का ढेर लगा दिया। शुभ मुहूर्त देख कर मन्त्री ने जीर्ण काष्ठमय प्रासाद को उतरवा दिया, नींव में विधिपूर्वक वास्तुमूर्ति पधरा कर शिला से ढँकवा दी और फिर दो वर्ष में पाषाणचैत्य बनवा कर तैयार करा दिया। देवप्रासाद में जो विघ्न होगया था उसका कारण ढूँढ निकाल कर, जो बिना प्रदक्षिणा का प्रासाद बनवाये वह निर्वंश जाय, यह जानते हुए भी, उसने पत्थर ढला दिये। इस प्रकार तीन वर्ष में यह तीर्थोद्धार का काम पूरा हुआ। वृद्ध पुरुषों का कहना है कि बाहड ने इस कार्य में दो करोड़ सत्तानवे लाख दम्म खर्च किए थे। मेरुतुंग का मत है कि इस कार्य में एक करोड़ साठ लाख ही दाम खर्च हुए थे।

इसके बाद उसने हेमाचार्य तथा संघ को बुलाकर संवत् १२११ में शनिवार के दिन सोने के दण्डकलश और ध्वजा चढ़ाकर प्रतिष्ठा की तथा देवपूजा के निमित्त २४ ग्राम और २४ बाग पुण्य किए। तलहटी में अपने नाम पर बाहडपुर नगर बसाया और वहां पर श्रीपार्श्वनाथ की प्रतिमा से अलंकृत त्रिभुवनपाल-विहार बँधवाया। उसके इन उदार-कृत्यों से कुमारपाल बहुत प्रसन्न हुआ।

बाहड़पुर के खण्डहर अब भी पालीताना नगर के पूर्व की ओर मौजूद हैं जहां पर टूटे फूटे घरों की ईंटें, जालियां, झरोखों के कटहरे और पट्टियाँ आदि दिखाई देती हैं।

कुमारपाल की अन्तिम चढ़ाई सपादलक्ष (सवालाख गाँवों के) देश पर हुई जान पड़ती है। उदयन का पुत्र, वाहड, (१) इस समय से पूर्व ही राजा की सेवा में आ गया था। उस देश का जानकार होने के

---

(१) प्रबन्धचिन्तामणि में बाहाड (वाहाड) नाम लिखा है, उसी के अनुसार यहां पर भी वही नाम लिखा गया है। कुमारपालप्रबन्ध में ऐसा लिखा है कि, "सपादलक्ष देश के राजा के पास उत्तरासन वस्त्र भेजा गया था परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया इसलिए कुमारपाल उस पर बहुत क्रुद्ध हुआ और अपने मंत्रीपुर चाहड़ को, जो बाहड और अम्बड (आम्रभट्ट) से छोटा था, उस पर चढ़ाई करने के लिए भेजा।" मालवा के राजपुत्र चाहड-कुमार को, जब सिद्धराज की पादुका का पूजन होता था उस समय, गद्दी पर नहीं बिठाया गया था, इसलिए वह नाराज होकर सपादलक्ष के आन्न राजा की सेवा में चला गया, ऐसा चतुर्विंशति प्रबन्ध में लिखा है। "मालवा का राजपुत्र चाहड़कुमार" इस लेख से यह कल्पना होती है कि वह कोई राज-पूत था और अपने बाद गद्दी पर बिठाने के लिए सिद्धराज उसको धर्मपुत्र बनाकर अपने पास रखता था। चाहड़ उदार था। एक बार बहुत से भिक्षुक इकट्ठे होकर उसके पास मांगने के लिए आये। उसने भिक्षुकों को दान देने के लिये कोषाध्यक्ष से रुपया मांगा परन्तु उसने नहीं दिया। इस पर चाहड़ ने कोषाध्यक्ष को मार भगाया और भिक्षुकों को यथेच्छ दान देकर राजी किया। फिर, एक एक उँटनी पर दो दो सुभटों के हिसाब से चौदह सौ सुभटों को साथ लेकर तुरन्त ही बिम्बेरा के पास आ पहुँचा। वहां पर उस दिन ७०० कन्याओं का लग्न था इसलिये उस धर्मकार्य को पूरा करने के निमित्त नगर के चारों ओर रक्षा करने के लिये घेरा डाल कर पडाव जमा दिया। कडवा कुणबी लोग बारह बारह वर्ष में लग्न निश्चित करते हैं इसलिए जब लग्न आता है तो एक साथ बहुत सी कन्याओं का विवाह करना पड़ता है। इस बात से ज्ञात होता है कि उस गांव में कडवा कणबी लोगों की बस्ती ज्यादा थी। आजकल यह गांव बंबेरा अथवा बेबार कहलाता है।

जिस सोनिंग ने ईडर लिया था उसके वंश में आजकल राव राठौड़

कारण, इस बार वही सेनानायक चुना गया। उसने तुरन्त ही बाब्र
नगर के किले को जीत कर नष्ट कर दिया और वहां पर कुमारपाल व

अभयसिंह उमेदसिंह हैं। पहाड़ा नामक डूंगरी की आधी ऊंचाई पर बसे हु
पहाड़ा ग्राम इनके अधिकार में है और यह बारह गांव के ठाकुर कहलाते हैं
इन्हीं बारह गांवों में से बंबेरा भी एक है। बंबेरा लगभग २००-२५० घरों व
बस्ती का गांव है, जिनमें लगभग १५० घर कैडवा कुणबियों के हैं। इस गां
से करीब १॥ मील की दूरी पर शियालियू गांव है वहां भी २५ घर कुणबिय
के हैं। इस प्रकार आसपास में कुल मिला कर इधर की तरफ ४०० घर कैडव
कुणबियों के हैं। इससे विदित होता है कि कुमारपाल के समय में यहां पर इ
लोगों की और भी अधिक बस्ती रही होगी। बंबेरा गांव के आसपास बहुत
घरों के खण्डहर पड़े हुए हैं, दो पुरानी बावड़ियां भी हैं जिनमें से अब तक लो
पानी का उपयोग करते हैं। चार शिव मन्दिर हैं जिनका अधिकांश भाग तो टू
फूट गया है परन्तु निज-मन्दिर अभी बचे हुए हैं, इसलिए उनमें शिवलिं
मौजूद हैं, एक बीस भुजाओं वाली माता की मूर्ति है, इनके अतिरिक्त दो मूर्तिय
वीर की और एक हनुमानजी की भी है।

प्रातः काल होते होते चाहड ने नगर जीत लिया। वहां से उसको सा
करोड़ सोनैया और ग्यारह हजार घोड़े मिले। यह सब वृत्तान्त लिखकर उस
पाटन को भेज दिया और घरट्ट के किले को व नगर को जीत कर सर्वत्र कुमार
पाल का झण्डा फहराकर नये अधिकारियों की नियुक्ति करके ७०० कुशल
शालवी (साड़ी बनाने वाले कारीगरों को) साथ लेकर वापस पाटण आया
कुमारपाल उसके पराक्रम से बहुत प्रसन्न हुआ और उसको 'राज घरट्ट' की पदव
प्रदान की तथा उसके छोटे भाई सोलाक को सामन्त (मन्त्री) सत्रागार का पद दिया

[उक्त लेखमें बाहड और चाहड नामों की गड़बड़ी है। हमारे पास जो
प्रति है उसमें इस प्रकार पाठ है:—

'सपादलक्षं प्रति सैन्ये सज्जीकृते श्री वाग्भटस्यानुजन्मा चाहडनामा मंत्र
दानशौण्डतया भृशं दूषितोऽपि भृशमनुशिष्य भूपतिना सेनापतिश्चक्रे।
[प्र० चि० फार्बस गुजराती सभा ग्रन्थावली अ० १४]

दुहाई फिरवा दी। लौट कर आने पर राजा ने उसे बहुत धन्यवाद दिया परन्तु साथ ही इस चढ़ाई में बहुत अधिक खर्च कर देने के लिए उपालम्भ भी दिया। (२) दिल्ली में फीरोजशाह की लाट पर ११४६ ई० का खुदा हुआ एक लेख मिलता है जिसमें शाकम्भरी के शासक का का नाम विग्रहराज लिखा है। इसी मीनारे पर एक दूसरा नाम वीसल-देव भी लिखा है। अनुवादकों को इस विषय में सन्देह है कि ये दोनों नाम (विग्रहराज और वीसलदेव) एक ही राजा के हैं अथवा दो भिन्न भिन्न राजाओं के हैं। इस विषय में दूसरे प्रमाण मिले विना इसी लेख के आधार पर कुछ भी निर्णय करना असंभव है। वीसलदेव चौहान के क्रमानुयायियों के नाम चन्द बारहट ने लिखे हैं परन्तु उनमें से कोई भी नाम ऐसा नहीं है जो इस लेख में लिखे हुए नामों से समानता रखता हो। हम पहले लिख चुके हैं कि वीसलदेव के पौत्र, आन्न राजा ने कुमारपाल का सामना किया था. इस लिए इस स्थान पर जिस राजा का नाम लिखा है वह या तो उसके (वीसलदेव के) पुत्र जयसिंह

गुजराती अनुवाद की टिप्पणी में 'बाहड़ांम्बडानुजन्मा श्री बाहडनामा मंत्री' पद लिखा है जो समझ में नहीं आता क्यों कि बाहड़ और अम्बड़ का अनुजन्मा चाहड़ था न कि बाहड़। (देखिए कुमारपाल प्रबन्ध भा. पृ. ६६)। अतः जो पाठ हमारी प्रति में है वही ठीक प्रतीत होता है।

कुमारपाल रासो से विदित होता है कि बंबेरी नगर के पास केवल पटोलुं (वस्त्र विशेष) लेने के लिए दूत भेजा गया था परन्तु उसने इनकार कर दिया इसलिए कुमारपाल ने बाहड को सेना लेकर भेजा। बाहड ने उसे परास्त किया और ७००० सात हजार सालवी लाकर पाटण में बसाए।

(२) इसके लिए उसे 'राजघरट्टा' उपाधि दी गई।

का नाम हो अथवा उसके पौत्र आनो वा आनन्ददेव का नाम हो। दोनों नाम तथा 'विग्रहराज' सब एक ही (१) अर्थ को सूचित करते हैं इसलिए एक दूसरे के उपनाम मात्र हो सकते हैं।

प्रबन्धचिन्तामणि में एक वार्ता लिखी है जिसने फीरोजशाह की लाट पर लिखे हुए संशयात्मक लेख पर उपस्थित हुए विवादग्रस्त विषय पर एक आश्चर्यजनक प्रकाश पडता है। ग्रन्थकार लिखता है कि एक समय सपादलक्ष देश के राजा का प्रतिनिधि कुमारपाल के दरबार में आया। राजा ने साम्भर के राजा का कुशल समाचार पूछा। उत्तर में दूत ने कहा, "उसका नाम विश्वल (विश्व को धारण करने वाला) है, उसकी कुशल क्यों न होगी ?" उस समय कुमारपाल का प्रीतिपात्र और विद्वान् मन्त्री कपर्दी पास ही बैठा था, उसने कहा, "शल् अथवा श्वल् धातु का अर्थ 'जल्दी जानेवाला" है, इसलिए विश्वल का अर्थ यह हुआ कि वह वि (पक्षी) के समान जल्दी ही उड़ने वाला (अर्थात् नष्ट हो जाने वाला) है।' जब उस दूत ने लौटकर अपने स्वामी को उसके नाम की उडाई हुई दिल्लगी का हाल कहा तो उसने पण्डितों को बुलाकर विग्रहराज' की उपाधि ग्रहण की। दूसरे वर्ष वही दूत विग्रहराज का प्रतिनिधि होकर फिर कुमारपाल के दरबार में उपस्थित हुआ। इस बार कपर्दी ने 'विग्रहराज' का अर्थ' बिना नाक का शिव और ब्रह्मा (वि=बिना, ग्र=नाक, हर=शिव, अज=ब्रह्मा) बतलाया। अबकी बार राजा ने कपर्दी की हँसी से तंग आकर अपना नाम 'कवि-बान्धव' (कवि का भाई) रख लिया।

---

(१) Asiatic Researches Book, vii p. p. 130
जयसिंह=विजय करने वाला सिंह; आनन्द=खुशी; विग्रह=लडाई

इसके बाद एक बार शत्रुञ्जय की यात्रा करते हुए अपने संघ सहित कुमारपाल ने अणहिलवाडा नगर के बाहर एक मन्दिर के पास ही पड़ाव डाला। अचानक ही उसे समाचार मिला कि डाहल (१) का कर्णराज उस पर चढ़ाई करके आ रहा है। इस अचानक हुई चढ़ाई का हाल सुनकर राजा घबराया और वाग्भट्ट तथा हेमाचार्य से मन्त्रणा करने लगा। हेमाचार्य ने कहा 'शीघ्र ही शुभ समाचार मिलेगा'। इसके बाद तुरन्त ही समाचार मिला कि रात्रि के समय कर्णराज (२) हाथी पर बैठकर रवाना हुआ। मार्ग में उसे उंघाई आ गई। इतने ही में वह हाथी एक पवित्र बड़ के पेड़ के नीचे होकर सरपट दौड़ता हुआ निकला। राजा को उंघाई में कुछ ध्यान नहीं रहा और वह एक डाल से टकराकर नीचे गिर पड़ा और मर गया। इस हमले के डर से मुक्त होकर कुमारपाल ने (३) अपनी यात्रा में आगे प्रस्थान किया। जब वह धुधूका ग्राम में पहुँचा तो उसने वहां हेमाचार्य के जन्म-स्थान

---

(१) चेदि, जबलपुर के आसपास का प्रदेश। यहां का कुलचरी अथवा हैहय।

(२) कलचुरी वंश का गयाकर्ण हो सकता है। इसका एक लेख चेदी संवत् ६०२ (ई० संन् ११५२) का है और इसके पुत्र नरसिंहदेव का लेख चेदी संवत् ६०७ अथवा ई० स० ११५७ का है। गयाकर्ण का मृत्युकाल ११५२ से ११५७ ई० तक का है।

(३) कुमारपालप्रबन्ध में लिखा है कि मार्ग में रात पड़ी और वह निद्रावश हो गया। इतने ही में किसी वृक्ष की शाखाएं उसके गले में लिपट गई, हाथी उसके नीचे से निकल गया और उसका शरीर आधा लटकता रह गया। शाखाएं फांसी की तरह उसके गले में लिपट गई थी इसीलिए सांस रुक जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

पर 'झोलिका विहार (३) नामक चैत्य बनवाया। वहां से वह शत्रुञ्जय को चला और इस पवित्र पर्वत पर पहुंचने के लिए श्रीवाग्भट्ट की मन्त्रणानुसार एक सड़क बनवाने में बहुत सा धन व्यय किया।

उन दिनों अणहिलवाड़ा के दरबार में, पराक्रमी सोलंकीवंश का अंकुर, आनाक अथवा आर्णोराज भी रहता था, जो कुमारपाल की मौसी का पुत्र था। इसने राजा को अपनी सेवाओं से प्रसन्न करके सामन्तपद एवं व्याघ्रपल्ली अथवा बाघेल (बघेरे का नगर) नामक गांव प्राप्त किया था। इसी स्थान पर उसके वंशज बहुत वर्षों तक रहते रहे थे। एक दिन राजा अपने महल के सबसे ऊपर वाले कमरे में पलंग पर लेटा हुआ था और सामन्त अनाक दरवाजे पर पहरा दे रहा था। राजाने किसी को भीतर आते हुए देखकर पूछा, "कौन है ?" आनाक ने आने वाले मनुष्य को रोक कर देखा तो वह उसीका सेवक निकला। वह उसको समाचार पूछने के लिए बाहर लाया। सेवक ने बधाई मांग कर कहा, 'आपके कुंवर का जन्म हुआ है।" नौकर को विदा करके आनाक फिर अपने स्थान पर खड़ा हो गया। पुत्र-जन्म के शुभ समाचार को सुनकर उसका मुख-कमल प्रफुल्लित हो गया और सूर्य के

प्रबन्ध चिन्तामणि के तीर्थ-यात्रा प्रबन्ध में लिखा है कि कर्ण झकोले खाता हुआ हाथी पर बैठा जा रहा था इतने ही में उसकी सुवर्णशृंखला (हमेल) बड़ की डाल में उलझ गई, हाथी निकल गया और उसकी मृत्यु हो गई।

(३) यह सत्तर हाथ ऊंचा था, यहां पर उसने स्नात्र महोत्सव तथा ध्वजारोपण किया। यहां से वलभीपुर की सीमा पर पहुंच कर उसने स्थाप और ईर्ष्यातु नाम की टेकरियों पर दो मन्दिर बनवाए और उनमें क्रमशः ऋषभदेव और महावीर स्वामी की मूर्तियां स्थापित कीं।

समान चमकने लगा।' राजा ने पूछा, "क्या बात है ?' आनाक ने उत्तर दिया, "महाराज ! मेरे यहां कुंवर का जन्म हुआ है ।' यह सुन कर राजा ने विचार करके कहा, "इसके जन्म की बधाई लेकर आने वाले नौकर को किसी द्वारपाल ने नहीं टोका इसलिए मुझे विश्वास है कि तुम्हारा यह पुत्र महागुणवान होगा और गुजरात का राज्य पावेगा; परन्तु, वह सेवक बधाई देने के लिए इस स्थान से उतर कर नीचे गया इसलिए वह कुंवर इस नगर में और इस धवल-गृह में राज्य नहीं करेगा वरन् किसी दूसरे नगर में उसका राज्य होगा।" इस प्रकार इस भाग्यशाली कुंवर का नाम लवणप्रसाद रखा गया और उसके वंशज इतिहास में बाघेला वंश के राजपूत कहलाए।

अब कुमारपाल को राज्य करते तीस वर्ष पूरे हो गये थे और मूलराज के वंश को कच्छ के राजा लाखा फूलाणी की माता(१) का दिया

(१) मेरुतंग ने उसका नाम कामलता लिखा है। कुमारपालप्रबन्ध में कामलदेवी नाम मिलता है और इसीको कच्छ में सोनल नाम की अप्सरा कहते हैं। जब लाखा फूलाणी १२४ वर्ष की अवस्था में आटकोट के पास मूलराज के हाथ से मारा गया था तब लाखा की अप्सरा माँ ने आकर उसको शाप दिया था। कुमारपाल के मन में यह बात बसी हुई थी। वह इस समय तक बहुत अनुभवी हो गया था। हेमाचार्य को वह उपकारकबुद्धि से देखता था और उनके वचन पर श्रद्धा भी रखता था; फिर भी उसने अपनेवंशपरंपरागत शैवधर्म को नहीं छोड़ा था। प्रभासपट्टण में सोमनाथ के देवालय का जीर्णोद्धार उसीने कराया था। हेमचन्द्र ने द्व्याश्रय के अन्तिम सर्ग के १०१ वें श्लोक में लिखा है कि महादेवजी ने कुमारपाल को स्वप्न में दर्शन देकर कहा 'मैं तुम्हारे नगर में आकर रहना चाहता हूं।' इसीलिए उसने कुमारपलेश्वर महादेव का देवालय बनवाया। इसी सर्ग के ६०, ६१ और ६२ आदि श्लोकों से पता चलता है कि जब खस राजा ने केदारेश्वर के प्रासाद को भग्न कर

हुआ शाप भी अपना प्रभाव दिखाने लगा था। इसी के फलस्वरूप राजा को कोढ़ का दुष्ट रोग लग गया। हेमचन्द्र की भी अवस्था अब चौरासी वर्ष की हो गई थी इसलिए उन्होंने अपना अन्त-समय निकट ही जानकर अन्तिम पूजा की और अन्न जल का त्याग कर दिया

दिया तब कुमारपाल ने अपने अमात्य वाग्भट को बुलाकर कहा, "जिस प्रकार तुम्हारी भक्ति मेरे प्रति है उसी प्रकार मेरी भक्ति 'अति उत्तम श्री शम्भु के प्रति हैं। मेरे इष्टदेव खण्डित मन्दिर में पड़े हुए हैं और मैं यहाँ पर सुन्दर महलों में बैठा हुआ हूं, इसके लिए मुझे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। तुम कारीगर, मजदूरों आदि सहित एक अधिकारी को धन देकर वहाँ भेज दो और तुरन्त ही देवालय को ठीक करा दो।" ऐसे श्रद्धालु राजा की देवी पर आस्था होना स्वाभाविक है। राजा को धर्म के विषय में तटस्थ रहना चाहिए। अपने राज्य में प्रचलित विभिन्न मतों व धर्मों के प्रति सम्मान प्रकट करना उसका कर्तव्य है। वह स्वयं किसी भी धर्म का माननेवाला हो, परन्तु इससे दूसरे धर्मवालों को हानि नहीं पहुँचनी चाहिए क्योंकि बहुत से मतों में कितनी ही बातें तो समान होती हैं। जीव-हिंसा करना प्रायः सभी आर्य-धर्मावलम्बियों को बुरा मालूम पड़ता है। धर्म के निमित्त वे भले ही हिंसा करते हों परन्तु सामान्यतया यह उन्हें अच्छा नहीं लगता। इस प्रकार जिन-धर्म पर श्रद्धा रखने वाले कुमारपाल को यह अप्रिय लगती हो तो कोई विशेष बात नहीं है। एक बार नवरात्र के दिनों में कण्टेश्वरी देवी के पुजारियों आदि ने सप्तमी अष्टमी के दिन सदा की भाँति पशु-बलि चढ़ाने के लिए कहा। परन्तु राजाने ऐसा करने की इच्छा प्रकट नहीं की। कुमारपालप्रबन्ध के चतुर्विंशति प्रबन्ध में इस बात का सविस्तार विवेचन किया गया है। इससे विदित होता है कि देवी के बलि चढ़ाने के लिए जितने पशु बँधे हुए थे उन सब जीवित पशुओं को बेच कर उसकी आय में उसने देवी के कर्पूरनैवेद्य आदि का प्रबन्ध कर दिया। इतना होने पर भी उस श्रद्धालु राजा के मन में धुकड़पुकड़ बनी रही। वह ध्यान-मग्न होकर बैठ गया। त्रिशूलधारिणी कण्टेश्वरी देवी ने उसे दर्शन देकर कहा, "हे चौलुक्य! मैं तेरी कुलदेवी कण्टेश्वरी हूँ। तेरे पूर्वज परम्परा से पशु-बलि चढ़ाते

कि जिससे उन्हें यम के आ पहुँचने की खबर पहले ही मिल जाय। राजा ने इस पर बहुत खेद प्रकट किया। तब आचार्य ने कहा, "तुम्हारी आयु के भी छः ही महीने बाकी हैं, तुम्हारे कोई पुत्र नहीं है इस लिए तुम भी जो कुछ करने के काम हैं उन्हें कर डालो।" इस प्रकार

आए हैं। तुम्हें कुलक्रमाचार का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।" यह सुन कर राजा ने कहा, "हे कुलदेवते! विश्ववत्सले! मैं जीवहिंसा नहीं करता हूँ, आपको भी ऐसा नहीं करना चाहिए क्योंकि देवता तो दया से प्रसन्न होते हैं। आप भी मुझे जीव-दया के कार्य में सहायता दीजिये और मैंने जो कर्पूरादि भोग आपके चढ़ाया है उसीसे सन्तुष्ट हो जाइए।" उसके ऐसे वचन सुनकर देवी कुपित हो गई और उसके मस्तक में त्रिशूल मार कर अन्तर्धान हो गई। इस दिव्य घाव से राजा का शरीर लूताग्रस्त हो गया। प्रातः-काल होते ही राजा ने वाग्भट को बुलाकर माता के कोप का पूरा वृत्तान्त कह सुनाया।

वाग्भट्ट ने आत्मरक्षा का विस्तारपूर्वक विवेचन करते हुए कहा कि यदि आत्मरक्षा करने के लिए देवी को पशु भी अर्पण करने पड़ें तो करना ही चाहिएँ। कुमारपाल ने कहा, "मैंने दयामय धर्म का ग्रहण किया है, इसमें किसी प्रकार की न्यूनता न रहे इसीलिए मैंने यह पाप-कर्म नहीं किया और यह न करने के कारण ही मुझे कोढ़ी होना पड़ा। मुझे यह अच्छा नहीं लगता, मैं तो सवेरा होते होते जलकर प्राण छोड दूंगा। तुम चन्दन की चिता तैयार कराओ।" वागभट्ट ने विनय पूर्वक कहा, "इस विषय में पहले हेमाचार्य से सलाह लेनी चाहिए। सहसा साहस करना उचित नहीं है।" हेमचन्द्र ने थोड़ा सा पानी अभिमंत्रित करके राजा को दिया जिसको शरीर पर लेपने व पीने से लूतारोग जाता रहा और राजा का शरीर पहले के समान ही क्रांतिमान हो गया।

दूसरे स्थल पर कुमारपालप्रबन्ध में लिखा है कि एक बार राजा अपने पलंग पर सो रहा था उसी समय काले रंग की क्रूर आकृतिवाली देवी ने प्रकट होकर कहा, "मैं लूना रोग की अधिष्ठात्री देवी हूँ। पूर्व शाप के अनुसार तेरे

अपने राजवंशी शिष्य को उपदेश देकर हेमचन्द्र ने शरीर छोड़ दिया। शोकग्रस्त राजा ने महाचार्य की दाहक्रिया की और उनकी भस्म को परम पवित्र समझ कर उसने व उसके सामन्तों ने ललाट पर लगाई। बहुत दिनों तक राजा शोक में डूबा रहा, उसने राज काज छोड़ दिया

शरीर में प्रवेश करने के लिए आई हूँ।" यह कहकर वह देवी अदृश्य हो गई और राजा को बहुत पीड़ा होने लगी। उसने अनेक उपाय किए परन्तु शान्ति न मिली। हेमचन्द्र ने भी कहा—

"भावो भावी भवत्येव, नान्यथा सोऽमरैरपि ।
पूर्वं कामलादेव्या यच्छापितो मूलभूपतिः ।

इस रोग में औषधिसे काम नहीं चल सकता। जो होनहार है वह होकर ही रहता है, देवताओं में भी इससे विपरीत नहीं होता। कामलादेवी ने जो मूलराज को शाप दिया था यह उसी का विपाक है। परन्तु, इसके निवारण का एक उपाय हो सकता है, वह यह है कि यदि राज्य किसी दूसरे को दे दिया जावे तो राजा रोग से मुक्त हो सकता है। अब, राज्य चाहे मुझे ही दे दिया जावे (ततोऽस्माकमेव राज्यमस्तु) संसार में अभयदान से बढ़ कर कोई दान नहीं है।" इसके पश्चात्—'श्रीगुरुः सर्वसंमतेन राज्ये स्वयमुपविष्टः तत्क्षणमेव राज्ञो व्यथा सूरिशरीरे संक्रान्ता।" श्री हेमाचार्य गुरु सर्व सम्मति से राज्यासन पर बैठे और उसी क्षण राजा की व्यथा ने सूरि के शरीर में प्रवेश किया। यह देखकर राजा को बहुत खेद हुआ। सूरि ने एक पका हुआ कोल्हा मंगाकर उसमें प्रवेश किया और बाहर निकलते समय लूता को उसी में छोड़ दिया। बाद में, उस कोल्हे को गहरे कुए में डलवा दिया।

अजयपाल कैसा था, इस बात का पता तो सबको था ही, इसलिए कुमारपाल के बाद गद्दी पर कौन बैठे, इस झगड़े को निबटाने के लिए ही यह सब योजना की गई थी परन्तु यह पार न पड़ सकी। पहले हेमचन्द्र देवलोक गए, फिर कुमारपाल। ऊपर हमने जहाँ वाग्भट का नाम लिखा है वहां कितने ही उदयन का नाम लिखते हैं परन्तु जो संस्कृत प्रति हमारे देखने में आई है

और ध्यान-मग्न रहने लगा। अन्त में, उसकी आत्मा शरीर-द्वार में से निकल कर स्वर्ग को चली गई।

बढवाण के साधु (मेरुतुंग) ने यह वृत्तान्त लिखा है, परन्तु हेमचन्द्र महाचार्य के मरण के विषय में जैनों और ब्राह्मणों में दूसरी ही अद्भुत दन्तकथाएं प्रचलित हैं।

ब्राह्मणों की बातों में तो प्रचलित है कि राजा कुमारपाल ने मेवाड़ की कुंवरी के साथ विवाह किया था जो सीसोदिणी रानी कहलाती थी। जब राजा ने उसके साथ फेरे लेने के लिए खांडा भेजा था उसी समय उसको विदित हो गया था कि कुमारपाल के यहां यह नियम है कि प्रत्येक रानी को पहले हेमाचार्य के उपासरे में जाकर जैनधर्म की दीक्षा लेनी पड़ती है और फिर महल में घुसने दिया जाता है। इसलिए उसने पट्टण जाने से इनकार किया और यह कहा कि यदि कोई मुझे इस बात का वचन दे कि मुझे हेमाचार्य के उपासरे में नहीं भेजा जावेगा तो मैं पट्टण जाने को तैयार हूँ।' इस पर जयदेव नामक कुमारपाल का घरू भाट जामिन (प्रतिभू) बना और रानी ने अणहिलपुर जाना स्वीकार कर लिया। अणहिलपुर पहुँचने के कुछ दिन बाद हेमाचार्य ने राजा से कहा "सीसोदिणी तो कभी हमारे चैत्य में नहीं आई।' इस पर राजा ने स्वयं रानी से उपासरे में जाने का आग्रह किया परन्तु वह निरन्तर नांहीं करती रही। इसके कुछ दिन बाद रानी बीमार पड़ी और भाट जाति की स्त्रियां उससे मिलने आईं।

उसमें वाग्भट का ही नाम लिखा है। यही ठीक भी मालूम पड़ता है क्योंकि उस समय उदयन की मृत्यु हो चुकी थी और उसकी जगह उसका पुत्र कार्य करता था जो वाग्भट, वाहड अथवा बाहड़ कहलाता था।

उसकी करुणकथा सुनकर उन्होंने बहुत दुःख प्रकट किया। फिर वे अपने में से किसी एक की पोशाक पहना कर उसे चुपचाप अपने घर ले आईं। रात को भाटों ने नगर की दीवार में एक छेद निकाला और उसमें होकर रानी को घर पहुंचाने के लिए बाहर ले आए। जब कुमारपाल को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो दो हजार घोड़े साथ लेकर उसके पीछे चढ़ा और ईडर से पंद्रह मील की दूरी पर उसने उन लोगों को जा पकड़ा। भाट ने रानी से कहा, "ईडर पहुँचने के बाद तो तुम सुरक्षित हो जाओगी। मेरे पास दो सौ घोड़े हैं, जब तक हम में से एक भी मनुष्य जीवित रहेगा तब तक तो कोई भी तुम्हारे हाथ नहीं लगा सकता।' यह कह कर वह तो आक्रमणकारियों की ओर मुड़ गया परन्तु, रानी हिम्मत हार गई और उसने गाड़ी में ही आत्मघात कर लिया। लड़ाई चलती रही और आक्रमणकारी रथ की ओर बढ़ने का प्रयत्न कर ही रहे थे कि दासी ने चिल्लाकर कहा, "अब लड़ना व्यर्थ रानी तो मर चुकी।' यह सुनकर कुमारपाल सेना-सहित वापस लौट गया।

अब, जयदेव भाट ने सोचा कि 'मेरी तो बात ही चली गई, इसलिए जीना व्यर्थ है।' यह सोचकर वह सिद्धपुर आया और वहां से अपनी जाति के लोगों के पास कुंकुमपत्रियां भेजीं, जिनमें लिखा था कि 'अपनी जाति की प्रतिष्ठा चली गई है, इसलिए जो लोग मेरे साथ जल मरने के लिए राजी हों वे तैयार हो जावें।' फिर, एक सांठों (ईख) का ढेर लगवाया और उसमें जो लोग अपनी स्त्रियों सहित मरने को तैयार थे उन्होंने दो दो, और जो अकेले मरना चाहते थे उन्होंने एक एक सांठा निकाल कर ले लिया। इसके बाद उन्होंने चिताएं और

जमोरें (१) बनाईं। पहली जमोर सिद्धपुर में सरस्वती के किनारे बनाई गई, दूसरी पट्टण से एक तीर के फासले पर और तीसरी नगर–द्वार के बिलकुल पास ही बनाई गई थी। प्रत्येक जमोर पर सोलह भाट अपनी अपनी स्त्रियों सहित भस्म हो गए। जयदेव का एक भानजा कन्नौज में था, । उसके पास भी कुंकुमपत्री भेजी गई थी परन्तु उसकी माता ने उसे छुपा ली, क्योंकि वह उसके एक ही पुत्र था। बाद में, जब भाटों के कुलगुरु भाटों की भस्म लेकर उसे बैलों पर लाद कर गंगा में बहा देने के लिए निकले और कन्नौज पहुँचे तो जयदेव के भानजे ने उनसे पूछताछ की और कर मांगा क्योंकि वह वहां के राजा की ओर से राह-दारी का नाकादार था और उसने उन बैलों पर व्यापारी माल लदा हुआ समझा था। उसके पूछताछ करने पर कुलपुरोहितों ने जो कुछ पट्टण में हुआ था वह सब कह सुनाया। अब वह भाट भी अपने कुटुम्ब को लेकर आ गया तथा एक जमोर पर चढ़कर भस्म हो गया। इस घटना के कुछ ही दिन बाद एक स्त्री के पुत्र उत्पन्न हुआ और वह स्त्री उस बालक को कुल-पुरोहित के संरक्षण में छोड़ कर चिता पर जल मरी। पट्टण के परगने में जो भाट हैं वे अपने को उसी बालक के वंशज बतलाते हैं।

ब्राह्मणों और जैनों के पारस्परिक वैमनस्य की इस कथा को सुन कर ही शंकराचार्य अणहिलपुर पट्टण आए थे। इस समय तक वहां जैनों की संख्या एक लाख हो गई थी। एक दिन पालकी में बैठकर राजा बाजार में जा रहा था। वहीं उसे हेमाचार्य का शिष्य मिला। उससे राजाने

---

(१) एक शव के लिए चिता बनाई जाती है, और एक से अधिक शवों के लिए जो चिता तैयार की जाती है वह जमोर कहलाती है।

पूछा, "महाराज, आज कौनसी तिथि है ?" वास्तव में उस दिन अमावास्या थी परन्तु भूल से उस यति के मुख से 'पूर्णिमा' निकल गई। यह बात सुनकर पास ही में एक ब्राह्मण हँस पडा और जैन साधु की हँसी करते हुए बोला, "अरे ! मुण्डी ! तुझे क्या मालूम है ? आज तो अमावास्या है"। घर पहुंच कर कुमारपाल ने हेमाचार्य और ब्राह्मणों के मुखिया दोनों को बुलाया। उधर हेमाचार्य का शिष्य जब उपाश्रय में पहुँचा तो अपनी भूल के कारण बहुत खिन्न और उदास दिखाई पड़ा। आचार्य ने पूछा, "क्या बात हुई ? उदास क्यों हो ?" जब शिष्य ने सब कुछ हाल कह सुनाया तो आचार्य ने कहा, 'कुछ चिन्ता मत करो, सब कुछ ठीक हो जावेगा।' इतने ही में राजा का दूत आ पहुँचा और हेमाचार्य उसके साथ ही महल को रवाना हो गए। राजा ने फिर पूछा, "आज कौनसी तिथि है ?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "आज अमावास्या है।" हेमाचार्य ने कहा, 'नहीं, आज पूर्णिमा है।' ब्राह्मण ने कहा, "शाम होते ही अपने आप निर्णय हो जायगा, यदि पूर्णिमा होगी तो पूर्ण चन्द्रमा दिखाई देगा, और हम सब ब्राह्मण राज्य छोड़कर चले जावेंगे। परन्तु, यदि चन्द्रमा उदित न हुआ तो समस्त जैनों को देश छोड़कर जाना होगा।" हेमाचार्य इस प्रस्ताव को स्वीकर करके घर लौट आए। उन्होंने एक योगिनी को प्रसन्न कर रखा था। उसी (योगिनी) ने ऐसी माया रची कि सबको पूर्व दिशा में उगता हुआ चन्द्रमा दिखाई दिया। अब, इस बात की डोंडी पिट गई कि ब्राह्मण हार गए, और वे देश छोडकर चले जावेंगे। (१)

---

(१) कुमारपालप्रबन्ध में लिखा है कि राजा ने हेमचन्द्र सूरि से पूछा 'आज कौनसी तिथि है ?' उत्तर में सूरि के मुंह से अमावस के बदले

इसी समय भाटों की बात सुनकर शंकराचार्य स्वामी (१) का मन इधर आकृष्ट हुआ था और वे सिद्धपुर चले आए थे। जब ब्राह्मणों ने यह हाल सुना तो यह जानकर कि, 'सुबह तो हम लोगों को नगर छोड़कर जाना ही होगा' रातों रात वे उन्हें पट्टण ले आए। प्रातःकाल होते ही राजा कुमारपाल ने ब्राह्मणों को बुला कर अपने राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी। शंकर स्वामी ने आगे बढ़कर कहा, 'राज्य के बाहर जाने की क्या आवश्यकता है? आज नौ बजे तो समुद्र अपनी मर्य्यादा छोड़कर सारे देश को डुबो ही देगा।" यह सुनकर हेमाचार्य ने जैनमत का अभिप्राय बतलाते हुए राजा से कहा, "नहीं, न तो यह संसार बना है, न नष्ट होगा।" शंकर स्वामी ने कहा, "एक जलघड़ी रख लो और देखो क्या होता है।" अब, तीनों आदमी (राजा, हेमाचार्य, और शंकर स्वामी) घड़ी रखकर उसके पास ही बैठ गए। ज्यों ही नौ बजे, वे महल के ऊपर के खण्ड में चले गए और खिड़की में

पूनम (पूर्णिमा) निकल गया। यह सुनकर देवबोधि (शैव सन्यासी) हँस पड़े और कहने लगे, "लोक में जो अमावास्या है, वह आज भाग्य से पूर्णिमा हो जायेगी।' सूरिने कहा, 'रात होने पर सब मालूम हो जावेगा।' इसके बाद उन्होंने एक घड़ी में चार योजन चलने वाले ऊंटों पर पूर्व दिशा में अपने मनुष्य भेजे। कहते हैं कि हेमाचार्य ने देवताओं से पूर्व-प्राप्त श्रीसिद्धचक्र मन्त्र का प्रयोग किया जिससे पूर्व दिशा में संध्यासमय चन्द्रमा का उदय हुआ और ठीक पश्चिम दिशा में अस्त हुआ। इस चमत्कार को देखने के लिए जिन मनुष्यों को भेजा गया था उन्होंने आकर सब वृत्तान्त निवेदन किया जिससे सब को आश्चर्य हुआ।

(१) आदि शङ्कराचार्य नहीं, वरन् उनके परंपरागत शिष्य देवबोधाचार्य।

से पश्चिम की ओर देखने लगे। उन्होंने देखा कि समुद्र की लहरें वेग से आगे बढ़ रही हैं और इतनी आगे बढ़ आई हैं कि नगर के सब घर डूब गए हैं। दोनों आचार्य और राजा और भी ऊपर के खण्ड में चढ़ते चले गए परन्तु पानी ऊपर आता ही गया। अन्त में, वे सब से ऊपर के सातवें खण्ड में पहुँच गए और वहां से दिखाई दिया कि ऊँचे ऊँचे घर, बड़े बड़े पेड़ और देवालयों के शिखर आदि सब पानी में डूब गए हैं। कुमारपाल ने घबराकर शंकर स्वामी से पूछा, 'क्या अब बचने का कोई उपाय नहीं है?'' उन्होंने कहा, "पश्चिम दिशा से एक नाव बहती हुई आवेगी, वह इस खिड़की के बिलकुल पास में आ जावेगी, हम तीनों में से जो कोई जल्दी से उसमें कूद पड़ेगा वही बच जावेगा।'' अब, तीनों ने अपनी अपनी कमर कस ली और नाव में कूदने की तैयारी करने लगे। दूर से एक नाव आती हुई दिखाई दी। वह खिड़की की ओर आगे आने लगी। शकर स्वामी ने राजा का हाथ पकड़ते हुए कहा, 'हम दोनों कूदने में एक दूसरे की मदद करेंगे।' इतने ही में नाव खिड़की के पास आ पहुंची और राजा कूदने का प्रयत्न करने लगा परन्तु, शंकर स्वामी ने उसे पीछे की ओर खींच लिया और हेमाचार्य एकदम खिड़की से कूद पड़े। समुद्र का चढ़ाव और नाव आदि सब माया के खेल थे। वह (हेमाचार्य) नीचे पत्थरों की फर्श पर गिर पड़े और वहीं मर गए। फिर, जैनधर्म के अनुयायियों की कत्ल आम जारी हुई और कुमारपाल शंकर स्वामी का शिष्य हो गया।

अब, इसी प्रसंग से सम्बद्ध जैन लोगों में जो बात प्रचलित है वह लिखते हैं। इसमें ब्राह्मणों के आचार्य का मुख्य रूप से वर्णन आता है। यह कथा हमको किसी साधारण जगह से प्राप्त नहीं हुई है वरन्

जैनधर्म की पुनमिया (१) शाखा के श्री पूज्य उमेदचन्दजी अथवा उमेद प्रभु सूरि जो पट्टण में हैं उनसे प्राप्त हुई है।

सूरि का कहना है कि, हेमाचार्य के साथ शास्त्रार्थ करके उनको जीतने के लिए एक दण्डी (२) योगी कर्णाटक से आया। वह बहुत दिनों तक (अणहिलवाडा) में रहा और अपनी इच्छा पूर्ण करने का प्रयत्न करता रहा, परन्तु उसके सभी उपाय निष्फल गए। हेमाचार्य के दो मुख्य शिष्य थे, एक का नाम रामचन्द्र था और दूसरे का नाम बालचन्द्र। (३) आचार्य बालचन्द्र से अधिक प्रसन्न नहीं थे। इसी समय

(१) अमावास्या को पूर्णिमा बतला देने के कारण यह शाखा पूनमियां शाखा कहलाई।

(२) शंकराचार्य हाथ में दण्ड रखते थे इसलिए उनका नाम दण्डी पड़ा, यहाँ जैन लोग इस नाम को अपमानसूचक भाव से बोलते हैं।

(३) कुमारपालप्रबन्ध और चतुर्विंशतिप्रबन्ध से विदित होता है कि हेमचन्द्र के शिष्य-वर्ग में दो पक्ष थे। एक पक्ष में रामचन्द्र मुनि था जो बहुत विद्वान् था और जिसने प्रबन्धशत निर्भयभीमव्यायोग आदि पुस्तकों की रचना की थी; वह हेमसूरि का शिष्य था। गुणचन्द्र मुनि जो देवसूरि का शिष्य था और जिसने तत्वप्रकाशिका और हेमविभ्रमसूत्र टीका ग्रन्थ की रचना की थी, वह दूसरे पक्ष में था। बालचन्द्र विरोधी पक्ष में था। उसने कुमारपाल के भतीजे अजयपाल से मैत्री कर ली थी और उसके पास सब गुप्त खबरें पहुंचाता रहता था। एक बार, कुमारपाल, हेमचन्द्र और आहड़ रात के समय इस बात पर विचार करने लगे कि बाद में गद्दी का मालिक कौन हो? हेमचन्द्र ने राजा से कहा, 'प्रतापमल्ल तुम्हारा भानजा है (शायद कुमारी लीला का पुत्र) उसीको गद्दी का उत्तराधिकारी बनाओ, क्योंकि वह धर्म की रक्षा करेगा। अजयपाल दुराशयी, झूठा, और अधर्मी है। राजनीति में कहा है कि धर्मशील, न्यायी, पात्रदाता, गुणानुरागी और प्रजावत्सल राजा होना चाहिए। अजयपाल तुम्हारे बनवाये हुए धर्म-स्थानों को नष्ट करवा देगा।" बालचन्द्र को इस बातचीत का

हेमाचार्य के आदेशानुसार कुमारपाल पारसनाथ का मन्दिर बनवा रहा था और बालचन्द्र इस इमारत के पूरे होने में रोड़े अटकाने के उपाय सोच रहा था। हेमाचार्य ने पारसनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा करने का शुभ मुहूर्त निकाल लिया था और बालचन्द्र को आज्ञा दे दी थी वह ठीक ठीक निश्चित घड़ी का ध्यान रखकर सूचना दे दे। उसने धोखा करके अशुभ वेला में सूचना दे दी जिसका फल यह हुआ कि मन्दिर में आग लग गई और वह नष्ट-प्राय हो गया। इस दुःखदायक समाचार को सुनने से वृद्ध हेमाचार्य के हृदय को बड़ा भारी धक्का लगा। कुमारपाल

पता चल गया और उसने यह सब समाचार अजयपाल को कह सुनाया। इसका फल यह हुआ कि जब कुमारपाल ने प्रतापमल्ल को गद्दी पर बिठाने की योजना की तो राज्य में गड़बड़ी मच गई। कहते हैं कि अजयपाल ने किसी दुष्ट के द्वारा राजा को जहर दिला दिया था। जब राजा को यह ज्ञात हुआ कि उसे जहर दिया गया है तो उसने मल्लिकार्जुन के भण्डार में विष उतारनेवाली औषधि का तलाश कराया, जो आहड ने लाकर रखी थी। परन्तु, मालूम हुआ कि अजयपाल इस औषधि को पहले ही चुराकर ले गया था। प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि ८४ वर्ष की आयु में हेमचन्द्र ने अनशन आरम्भ कर दिया और अन्त समय में जो आराधना एवं क्रिया की जाती है वह करने लगे। कुमारपाल को इससे बहुत दुःख हुआ; तब हेमाचार्य ने कहा, 'राजन्! तुम शोक क्यों करते हो, छः मास में तुम्हारी आयु समाप्त होने वाली है, इसलिए तुम भी अपनी उत्तर-क्रिया कर डालो।" इस प्रकार राजा को बोध देकर हेमाचार्य मर गए। कुमारपाल ने बहुत शोक किया और फिर अपना समय आने पर आचार्य ने जिस प्रकार समझाया था वैसे ही क्रिया आदि करके वह भी समाधिस्थ होकर देवलोक को चला गया। इस वृत्तान्त से पता चलता है कि इन दोनों में से किसी की भी मृत्यु जहर देने के कारण नहीं हुई, वरन् स्वाभाविक रीति से ही उनका देहान्त हुआ था।

ने देवालय को फिर से बनाने की सलाह पूछी, परन्तु धर्माचार्य ने कहा, 'अब पुनः बनवाने से क्या लाभ? तुम्हारी और मेरी जिन्दगी के अब केवल छः महीने ही बाकी हैं, इसके बाद तो हमारी मृत्यु हो ही जावेगी।' (१) यह सुनकर राजा को बहुत आश्चर्य हुआ और उसने अपना मनसूबा छोड़ दिया।

थोड़े समय बाद, हेमाचार्य ने, उस समय रामचन्द्र के अनुपस्थित होने के कारण, बालचन्द्र को किसी श्रावक के घर से भोजन लाने के लिए भेजा। वह भोजन लेकर लौट रहा था कि मार्ग में उसे दण्डी योगी मिला जिसने कहा, "तुम इतने उदास क्यों हो? मैं जानता हूँ कि तुम्हारे गुरु की तुम पर कृपा नहीं है-यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम्हारे गुरु का वशीकरण कर दूँ।" ऐसा कहकर उसने

---

(१) प्रबन्धचिन्तामणिकार का कहना है कि गद्दी पर बैठने के समय कुमारपाल की अवस्था ५० वर्ष की थी। उसने लगभग ३१ वर्ष राज्य किया और सन् ११७४ (संवत् १२३०) में उसकी मृत्यु हुई। कहते हैं, उसकी मृत्यु लूता नाम के रोग से हुई थी। कुमारपालप्रबन्ध में लिखा है कि उसके भतीजे अजयपाल ने उसे कैद कर लिया था और यह भी लिखा है कि कुमारपाल ने ३० वर्ष ८ महीने २६ दिन राज्य किया। उसके राज्यकाल का आरम्भ मार्गशीर्ष सुदि ४ संवत् ११६६ (११४३ ई०) से माना जावे तो उसकी अन्तिम तिथि कार्तिक से आरम्भ होने वाले वर्ष के अनुसार संवत् १२२६ के भाद्रपद में आती है, और यदि गुजराती पंचाङ्ग के अनुसार आषाढ़ में शुरू होने वाले वर्ष से गणना की जावे तो संवत् १२३० के भाद्रपद में आती है। इन दोनों में से कौन सा वर्ष सही है यह विचारणीय है। भिल्सा (भेलसा) के पास उदयपुर में वैशाख शुक्ला ३ संवत् १२२६ के एक लेख में अणहिलवाडा के शासक का नाम अजयपाल लिखा है। इससे विदित होता है कि कुमारपाल की मृत्यु संवत् १२२६ के वैशाख मास से पहले हो चुकी थी (सन् ११७३)। एक प्राचीन

जो दूध बालचन्द्र ले जा रहा था, उसको अपनी अंगुली से हिला दिया और अपने नाखून के नीचे छुपाए हुए जहर को उसमें मिला दिया। लौटकर बालचन्द्र ने हेमाचार्य को वह दूध दिया और वे उसको पीकर मर गए। इस तरह पारसनाथ का मन्दिर कभी पूरा न हुआ और आचार्य की मृत्यु के बाद दण्डी साधु जैनधर्म को हानि पहुँचाने लगा।

पट्टावाली है जिससे विदित होता है कि कार्तिक सुदि ३ से मार्गशीर्ष सुदी ४ संवत् ११६६ तक सिद्धराज की पादुका गद्दी पर रखकर मन्त्रियों ने काम चलाया था। इसके पश्चात् पौष सुदि १२ संवत् १२२६ तक ३० वर्ष १ मास ७ दिन कुमारपाल ने राज्य किया।

कुमारपाल विषयक विशेष वृत्तान्त*

सोमेश्वरकृत कीर्तिकौमुदी के दूसरे सर्ग में लिखा है :—

महीमण्डलमार्तण्डे, तत्र लोकान्तरं गते ।
श्रीमान् कुमारपालोऽथ, राजा रञ्जितवान् प्रजाः ॥४०॥
पृथुप्रभृतिभिः पूर्वैर्गच्छद्भिः पार्थिवैर्दिवम् ।
स्वकीयगुणरत्नानां, यत्र न्यास इवार्पितः ॥४१॥
न केवलं महीपालाः सायकैः समराङ्गणे ।
गुणैर्लोकम्पृणैर्येन, निर्जिताः पूर्वजा अपि ॥४२॥
सुकृतैकरतेर्यस्य, मृतवित्तानि मुञ्चतः ।
देवस्येव नृदेवस्य, युक्ताऽभूदमृतार्थिता ॥४३॥
करवालजलैः स्नातां, वीराणामेव योऽग्रहीत् ।
धौतां बाष्पाम्बुधाराभिर्निर्वीराणां न तु श्रियम् ॥४४॥
शूराणां सम्मुखान्येव, पदानि समरे ददौ ।
यः पुनस्तत्कलत्रेषु, मुखं चक्रे पराङ्मुखम ॥४५॥
हृदि प्रविष्टयद्बाणक्लिष्टेनाघूर्णितं शिरः ।
'जाङ्गल'क्षोणिपालेन, व्याचक्षाणैः परैरपि ॥४६॥
चूडारत्नप्रभाकम्रं नम्रं गर्वादकुर्वतः ।
कणशः 'कुङ्कणेश'स्य यश्चकार शरैः शिरः ॥४७॥

---

* यह वृत्तान्त मूल ग्रन्थ में नहीं है परन्तु गुजराती भाषान्तर में अवश्य है । मूलग्रन्थों के उद्धरण एवं अन्य आवश्यक टिप्पणियां अनुवादक ने दिए हैं ।

रागाद् भूपाल'बल्लाल-मल्लिकार्जुन'योर्मृधे ।
गृहीतौ येन मूर्धानौ, स्तनाविव जयश्रियः ॥४८॥
'दक्षिणक्षितिपं' जित्वा, यो जग्राह द्विपद्वयम् ।
तद्यशोभिः करिष्यामो विश्वं नश्यद्विपद्वयम् ॥४९॥
विहारं कुर्वता वैरिवनिताकुचमण्डलम् ।
महीमण्डलमुद्दण्डविहारं येन निर्ममे ॥५०॥
पादलग्नैर्महीपालैः, पशुभिश्च तृणाननैः ।
यः प्रार्थित इवात्यर्थमहिंसाव्रतमग्रहीत् ॥५१॥

'महीमण्डलमें मार्त्तण्ड के समान सिद्धराज के स्वर्गमन के बाद कुमारपाल गद्दी पर बैठा। वह प्रजारंजितवान् था अर्थात् उसने प्रजा को अपने प्रति अनुरागिणी बना लिया था। पृथु आदि पूर्व राजाओं ने उसमें अपने अपने गुणों की स्थापना की थी। जिस प्रकार उसने अपने बाण से सब राजाओं को जीत लिया था उसी प्रकार लोकप्रिय होने के कारण अपने असाधारण गुणों से अपने पूर्वजों को भी विजित कर लिया था। वह वीतराग का भक्त था और इन्द्र के समान अमृतार्थी था (अर्थात् मृत (मरे हुए) के अर्थ (पैसे) को ग्रहण नहीं करता था। तलवार के पानी से स्नान की हुई शूरवीरों की लक्ष्मी को ही वह अङ्गीकार करता था और बाष्पजलधार (अश्रुजल) से धोई हुई कायर की लक्ष्मी को लेने के लिए मन नहीं करता था। युद्धप्रसंग में शूरों के सामने आगे बढ़ता था परन्तु उनकी स्त्रियों को सदैव पीठ ही दिखलाता था अर्थात् उन पर कुदृष्टि नहीं डालता था। जंगलपति के हृदय में कुमारपाल का बाण पार चला गया था इसलिए वह शीशकारा कहलाने लगा था। कोंकणदेश के राजा (मल्लिकार्जुन) का मस्तक चूडारत्न की प्रभा से चमकता था।

और वह गर्व से किसी को नमस्कार नहीं करता था। कुमारपाल ने उसके ऐसे मस्तक को बाणों से बेध कर टुकड़े टुकड़े कर दिया था। उसने बल्लाल और मल्लिकार्जुन के मस्तकों को युद्ध में बड़े प्रेम से जयश्री के दोनो स्तनों के समान ग्रहण किए। दक्षिण के राजाओं को जीतकर उसने उनसे दो हाथी लिए तथा इस प्रकार विश्व को विपद्-विहीन कर दिया। पैरों में पड़े हुए राजाओं और मुंह में तृण लिए हुए पशुओं की प्रार्थना पर उसने अहिंसाव्रत धारण किया था।

कुमारपालप्रबन्ध में कुमारपाल के दिग्विजय के विषय में इस प्रकार लिखा है।

पूर्व में—कुरु, सूरसेन (मथुरा), कुशार्त, पांचाल, विदेह दशार्ण और मगध आदि देश।

उत्तर—काश्मीर उड्डियान, जालंधर, सपादलक्ष. और पर्वत पर्यन्त देश।

दक्षिण में—लाट, महाराष्ट्र और तिलंग आदि देश।

पश्चिम में—सुराष्ट्र, ब्राह्मणवाहक, पंचनद, सिन्धु और सौवीर देश।

इन सब देशों को जीत कर वह कई करोड़ का धन ले गया। जब दिग्वजय करके अलिहवाडा वापस लौटा उस समय उसके साथ ग्यारह लाख घोडे, ११०० हाथी, पांच हजार रथ, बहत्तर सामन्त और अठारह लाख पैदल सिपाही थे।

श्रीवीरचरित्र में इस दिग्विजय के विषय में लिखा है—

आगङ्गमैन्द्रीमाविन्ध्यं याम्यामासिन्धु पश्चिमाम्।
आतुरुष्कं च कौबेरीं चौलुक्यः साधयिष्यति ॥

पूर्व में गंगा नदी, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में सिन्धु नदी

और उत्तर में तुर्किस्तान तक के देश कुमारपाल जीतेगा।

दूर दूर को देशों में जो शिलालेख मिलते हैं उनसे कुमारपाल के राज्यविस्तार की पुष्टि होती है।

चारभट अथवा जिसका प्रसिद्ध नाम चाहड़ था और जिसको कुमारपाल ने अपना अमात्य बनाया था उसने रंगादिक जिले के सगवाड़ नामक गांव का आधा भाग दान में दिया था। इसका लेख भीलस्मा के पास उदयपुर (ग्वालियर) ग्राम में एक जीर्ण देवालय में मिलता है। यह लेख कुमारपाल के नाम का है और मिती वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) संवत् १२२२ (ई० स० ११६६) का है। उक्त लेख के नीचे ही एक लेख और है जिसका संवत् तो जाता रहा है परन्तु इतना स्पष्ट मालूम होता है कि यह पौष शुक्ला १५ गुरुवार को जब चन्द्रग्रहण पड़ा था तब का लिखा हुआ है। उस समय उदयपुर में कुमारनियुक्त महामात्य श्री जसोधवल' उस सूबे का अधिकारी था और समस्त मुद्रा व्यापार (सिक्का सही आदि) का कार्य करता था। उसने श्रीदेवप्रीत्यर्थ कोई धर्म-कार्य किया था, उसी सम्बन्ध का यह लेख है। इस लेख की कितनी ही पंक्तियां जाती रही हैं इसलिए पूरी विगत तो मालूम नहीं पडती परन्तु भावार्थ यह है कि उस समय वहां पर कुमारपाल का राज्य था। (१)

(प्राचीन गुजरात)।

मारवाड़ में जोधपुर का रतनपुर नामक एक जागीरी गांव है इसके पश्चिमी दरवाजे के बाहर ही एक प्राचीन शिवालय है। इस शिवालय की गुमटी में एक शिलालेख है जिसका संवत् तो ठीक ठीक

---

(१) इन लेखों के लिए देखिए—इण्डियन एण्टीक्वैरी खण्ड १७ पृष्ट ३४१।

नहीं पाया जाता परन्तु वह संवत् ११६६ से १२३० के बीच के समय का है। लेख का भावार्थ इस प्रकार है-

'समस्त—राजावली—विराजित–महाराजाधिराज-परमभट्टारक परमेश्वरनिजभुजविक्रमरणाङ्गणविनिर्जित ·········पार्वतीपतिवरलब्ध प्रौढप्रतापश्रीकुमारपालदेवकल्याणविजयराज्ये ··············· रत्नपुर-चोराशी के महाराज भूपाल श्री रायपाल देव से प्राप्त हुआ है आसन (गद्दी) जिसको, ऐसे श्री पूतपाक्ष देव की महारानी श्री गिरजादेवी ने अमावस पर्व तथा दूसरी श्रेष्ठ तिथियों को प्राणीहिंसा न हो, ऐसा जीवों को अभयदान दिया। इसलिए ग्यारस, चौदस, अमावस, और अन्य श्रेष्ठ तिथियों को जीवहिंसा न हो, ऐसा निश्चय हुआ, क्योंकि यह संसार असार है। उक्त तिथियों में जीवों को छोड़ने के उपलक्ष में उपज होने के लिए भूमिदान भी दिया तथा यह भी निश्चित किया कि इन तिथियों को जो जीवहिंसा करे उस पर ४ द्रम दण्ड किया जावे। नड्डूलपुर (नाडोलपुर) वासी प्राग्भट वंश के शुभंकर नामक धार्मिक सुश्रावक साधु के यतिग और सालिग नाम के दोनों पुत्रों के हस्ताक्षरों से यह जीवहिंसा-निषेधक शासन प्रसिद्ध कराया गया है, स्वहस्त श्रीपूतपाक्ष देवस्य लिखितमिदं पारि लक्ष्मीधरसुत जसपालेन प्रमाणं इति०।' (१)

मारवाड़ में बाड़मेर जिले के नीचे हाथमा के पास किराडु नामक गांव है जो बाड़मेर से लगभग दश गांवों की दूरी पर है। यहां पर एक देवालय के स्तम्भ पर माघ बदि १४ शनिवार सम्वत् १२०६ का कुमारपाल के समय का लेख है जिसका भाव इस प्रकार है-'राजाधिराज परमेश्वर उमापतिवरलब्ध प्रौढप्रतापनिर्जितसकलराजभूपाल श्रीमँत कुमार-

(१) आर्कियालाजिकल सर्वे आफ, इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल, सन् १६०८ई. पृ. ५१-५२

पालदेवविजयराज्ये श्रीमहादेव के हस्तक (हाथ में) श्रीकरणादौ समस्त-मुद्रा-व्यापार (सही मोहर सिक्का आदि) का काम था। ईश्वर की कृपा से श्री किराटद्रूप, लाट और हद प्राप्त हुए इसलिए श्री आलण देव ने महाशिवरात्रि के दिन प्राणियों के लिए अभयदान शासन प्रसिद्ध कराया। इसमें यह निश्चित किया गया था कि सुदी तथा बुदि पक्ष की अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी के दिन इन तीनों नगरों में जो जीव-हिंसा करेगा अथवा करावेगा उसको शिक्षा देने के लिए देहान्तदण्ड दिया जावेगा। कोई पापिष्ठतर जीववध करे तो उससे पांच द्रम दण्ड के लिए जावें। राजकुटुम्ब में से यदि कोई प्राणिवध करे तो उस पर एक द्रम दण्ड किया जावे। (यह कटारी) स्वयं महाराज श्री आल्हणदेव के हाथ की है। महाराज श्री केल्हणदेव की सम्मति है, उनके पुत्र महाराज लि० सांधिविग्रहिक इ० खेलादित्य । श्रीनलद्रपुर (नाडोल) वासी प्राग्वट वंश के शुभंकर नामक श्रावक के पुत्र--पुतिग तथा सालिग ने जो पृथ्वी में धार्मिकता के लिए प्रसिद्ध हैं, दोनों ने प्राणियों के लिए इस अभयदान शासन को प्रसिद्ध किया (भावनगर के संस्कृत तथा प्राकृतिक लेखों की अंग्रेजी पुस्तक पृ० १७२ तथा २०६)। (१)

चित्तौड में ब्रह्मा का मन्दिर है जो लाखन मन्दिर (२) कहलाता है। इस मन्दिर में संवत् १२०७ (ई० स० ११४१) का कुमारपाल का लेख है जिसका महीना और तिथि खुदा हुआ भाग तो टूट गया है परन्तु उसका भावार्थ यह है कि मूलराज से कितनी ही पीढ़ियों पीछे सिद्धराज हुआ और फिर कुमारपाल राजा हुआ जिसने अपने दुर्जय मन

---

(१) इण्डियन एण्टीक्वेरी खण्ड ११, पृष्ट ४४ भी देखिए।

(२) मोकलजी का मन्दिर।

और बलवान् शत्रुओं को अपने वश में किया, जिसकी आज्ञाओं को दूसरे पृथ्वीपतियों ने शिरोधार्य की, शाकम्भरी के राजा को भी जिसके चरणों में मस्तक झुकाना पड़ा, जो सेवालक व शालपुरी तक चढाई करता हुआ चला गया और जिसने उमापति को नमस्कार करके वरदान प्राप्त किया। (१)

---

(१) एपिग्राफिया इण्डिका खण्ड २, पृ० ४२१–२४

इनके अतिरिक्त कुमारपाल से सम्बन्धित कुछ और भी शिलालेख द्रष्टव्य हैं। इनमें से अधिकतर राजस्थान के भूतपूर्व जोधपुर व उदयपुर राज्यों में प्राप्त हैं। कुछ गुजरात में जूनागढ़, काठियावाड़ एवं प्रभासपट्टण में पाये जाते हैं। कतिपय विशिष्ट लेखों की सूची नीचे दी जा रही है।

राजस्थान में—

(१) किराडू के विक्रम संवत् १२०५ व १२१८ के लेख। (अपर अप्रकाशित लेख के लिए देखिए-राजपूताना का इतिहास-गो० ही० ओझा पृ० १८३)

(२) आबू का शिलालेख संवत् १२८७ जिसमें यशोधवल का उल्लेख है। एपिग्राफिआ इण्डिका वाल्यूम ८; पृ० २१०-२११

(३) सुप्रसिद्ध चित्तौड़ का शिलालेख जिसमें चौलुक्य राजाओं की कुमारपाल तक की तालिका मिलती है। संवत् १२०७; एपि० इण्डिका भाग २ पृ. ४२२

(४) पाली (मारवाड़) का विक्रम संवत् १२०९ का लेख (आर्कियालोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल, १९०७–८, पृ० ४४–४५)

(५) भटुंड या भडोंद (मारवाड़) का लेख। (आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल, १९०७–८, पृ० ५१–५२)

(६) नांदोल या नद्रपुर (मारवाड़) के लेख। एपिग्राफिआ इण्डिका वाॅल्यूम ९, पृ० ६२–७९

हेमचन्द्र ने कुमारपाल को सात क्षेत्रों का पोषण करने के लिए उपदेश दिया। (१) जिन-मन्दिर (२) जिन-प्रतिमा (३) जिनागम (४) जिन-साधु (५) जिन-साध्वी (६) श्रावक और (७) श्राविका, ये सात क्षेत्र कहलाते हैं, इनमें न्यायपूर्वक धन का उपयोग करना चाहिए। कुमारपाल ने इसीके अनुसार किया भी।

(१) जिन-मन्दिर बनवाने वाले की सम्यक्त्व-शुद्धि होती है, इससे तीर्थङ्कर पद और ऋद्धि की प्राप्ति होती है इसलिए राजाओं को

---

(७) बाली (मारवाड़) का वि० सं० १२१६ का लेख। (आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल, १९०७-८, पृ० ५४–५५)

(८) जालौर (जावालिपुर) का वि०सं० १२२१ का लेख। (इण्डियन एण्टीक्वेरी भा० ११ पृ० ५४–५५) (?)

(९) नँदलाई का वि०सं० १२२८ का लेख (इन्डियन एन्टीक्वेरी भा० ११ पृ० ४७–४८) (?)

गुजरात (काठियावाड़) में :—

(१) मांगरोल का शिलालेख संवत् १२०२ (भावनगर संस्कृत एण्ड प्राकृत इन्सक्रिप्शन्स, पृ० १५२-१६०)

(२) दोहाद का शिलालेख संवत् १२०२ (इण्डि. एण्टी भा. १०, पृ. १५९)

(३) बड़नगर का लेख संवत् १२०८ (एपिग्राफिआ इण्डिका वॉल्यूम १ न्यूसिरीज पृ. २९३–३०५)

(४) गिरनार के लेख संवत् १२२२–२३ (रिवाइज्ड लिस्ट ऑफ एन्टीक्वेरियन रिमेन्स इन बोम्बे प्रेसीडेन्सी, पृ० ३५९)

(५) जूनागढ़ के लेख (पूना ओरियन्टलिस्ट भाग १ व २, पृ० ३९)

(६) प्रभासपट्टण का वलभी संवत् ८५० का लेख (भावनगर संस्कृत एण्ड प्राकृत इन्सक्रिप्शन्स)

(७) गाला शिलालेख संवत् ११९३ (पूना ओरियण्टलिस, खण्ड १, भा. २, पृ. ४०)

तो ऐसे मन्दिर बनवाकर उनके निर्वाह (प्रबन्ध) के लिए बड़े बड़े भंडार ग्राम, नगर, तालुका और गोधन आदि भी अर्पण करने चाहिए।

नया मन्दिर बनवाने की अपेक्षा जीर्णोद्धार कराने में आठ गुणा पुण्य होता है।

(२) जो लोग हीरा, इन्द्रनील, अंजन, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, रेखाङ्क, कर्केतन, प्रवाल, सोना, चांदी, पत्थर और मिट्टी की जिन-प्रतिमाएं बनवाते हैं वे मनुष्य-लोक तथा देवलोक में महासुख पाते हैं और जो तीर्थङ्करों की प्रतिष्ठा कराते हैं वे तीर्थङ्कर की प्रतिष्ठा पाते हैं। जो एक अङ्गुल से लेकर १०८ अङ्गुल तक की हीरों आदि की प्रतिमा बनवाते हैं वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। ऋषभदेव आदि तीर्थङ्करों की अङ्गुष्ठ-प्रमाण वीरासन वाली मूर्ति बनवानेवालों को स्वर्ग में उत्तम प्रकार की पुष्कल ऋद्धि भोगने के लिए अनुत्तर पद प्राप्त होता है।

(३) जिनागम—जिन शास्त्र—जिन-वचन, जिनागम लिखाने वाले, उनका व्याख्यान करने-वाले, उनकी कथा करने वाले और कथा पढ़वाने वाले देव और मोक्ष गति को प्राप्त करते हैं। कुशास्त्र से उत्पन्न हुए कुसंस्कारों रूपी विष का उच्छेद करने में जिन शास्त्र मंत्र के समान काम करते हैं। धर्म, कृत्या-कृत्य, गम्यागम्य और सारासार का विवेचन करने में जिनागम हेतुभूत हैं।

(४) साधु आदि जो संसार-त्याग की इच्छा रखकर मुक्ति के लिए यत्न करते हैं, उनमें उपदेश देकर लोक को पवित्र करने की शक्ति होने के कारण वे तीर्थ कहलाते हैं। जिनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता ऐसे साधुओं को तीर्थङ्कर भी नमस्कार करते हैं। जिनके द्वारा सत्पुरुषों का कल्याण होता है, जिनकी स्फूर्ति उत्कृष्ट है, जिनमें सब

गुण निवास करते हैं ऐसे साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकी पूजन करने के पात्र हैं।

इस प्रकार इन सात क्षेत्रों में धन खर्चने से पुण्य होता है, ऐसा जानकर कमारपाल ने इस आज्ञा के अनुसार ही कार्य किये।

(१) पाटण में २५ हाथ ऊंचा, ७२ जिनालयों से युक्त और १२५ अंगुल उन्नत श्रीनेमिनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित, अपने पिता के कल्याणार्थ त्रिभुवनपाल विहार बनवाया।

(२) पहले ऊंदर नामक व्यक्ति का द्रव्य अपहरण किया था उसके प्रायश्चित्त में ऊंदर बावड़ी बनवाई।

(३) पहले, रास्ते में जाते समय देवश्री नाम की स्त्री से करबा (जौ की बनी रोटी दही में डाली हुई) लिया था इसलिए उसी स्थान पर करबवसाहिका (बावड़ी) बनवाई।

(४) मांस-भक्षण न करने का नियम लेने से पूर्व किए हुए पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए एक वेदी में आमने सामने सोलह सोलह की पंक्तियों में ३२ प्रासाद बनवाकर उनमें से प्रत्येक में २४ वर्तमान तीर्थङ्कर, ४ विरहमान तीर्थङ्कर तथा रोहिणी, समवसरण, अशोक-वृक्ष और गुरुपादुका की स्थापना की।

(५) खेराला से लगभग ७ मील की दूरी पर टींबा नामक ग्राम के पास तारण नाम का पर्वत है। इस पर्वत की महिमा को शत्रुंजय के समान जानते हुए उसने वहां पर २४ हाथ की ऊंचाई का अजितनाथ-प्रासाद बनवाया और उसमें १०१ अंगुल की ऊंचाई की प्रतिमा की स्थापना की।

(६) स्तम्भतीर्थ (आधुनिक खम्भात) में, जहां पर उसने हेमाचार्य से दीक्षा ली थी उस स्थान पर, आलीग नाम की बस्ती बसाई और श्री महावीर स्वामी की रत्नमय मूर्ति तथा हेमाचार्य की सुवर्णमयी पादुका का स्थापन किया।

(७) वाग्भट, वाहड अथवा वाहड ने, जो उसका मन्त्री था, एक प्रासाद बनवाया था। कुमारपाल ने वहां जाकर वाग्भट से कहा, "यदि तुम यह प्रासाद मुझे दे दो तो मैं इसमें यह २१ अंगुल की श्रीपार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित करूं जो चन्द्रकान्तिमणि की बनी हुई है और जो नेपाल के राजा ने मुझे भेट की है।' मंत्री ने प्रसन्न होकर विनम्र-भाव से कहा, 'इस महाप्रासाद का नाम कुमारविहार हुआ।' इसके पश्चात् इस प्रासाद को २४ जिनालयों से युक्त अष्टापद के समान बनवाया।

इन सब चैत्यों में श्री हेमाचार्य ने महोत्सवपूर्वक अपने हाथ से विधि विधान से प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की थी। पूजा के लिये बड़े बड़े पेड़ों व फूलदार वृक्षों से सुशोभित बाग भी अर्पण किए। फिर अपने आधीन राजाओं के नाम मन्त्री से सही कराकर आज्ञापत्र भेजे कि, तुम लोग जो कर हमें देते हो उस रकम से अपने अपने देश में हिमालय के समान ऊंचे ऊंचे शिखरों वाले विहार बनवाओ। गुजरात, लाट, सौराष्ट्र भंभेरी, कच्छ, सैन्धव, उच्च, जालन्धर, काशी, सपादलक्ष, अन्तर्वेदि (गंगा यमुना के बीच का प्रदेश), मारवाड़ (मरु) मेवाड़ (मेदपाट) मालवा, आभीर, महाराष्ट्र, कर्णाटक और कोकण (कुंकण) इन अठारह देशों में कुमारपाल के बनवाए हुए विहार शोभित हैं।

इस प्रकार कुमारपाल ने १४०० (१४४४) नये विहार बनवाए

और १६,००० का जीर्णोद्धार करवाया। (देखो, कुमारपालप्रबन्धभाषान्तर पृ० २२३-२३७)

Tod's Travels in Western India नामक पुस्तक के पृ० १८२ में एक विचित्र और सन्देहजनक बात लिखी है। वह यह है कि कुमारपाल ने लार नामक जाति को अपने राज्य में से निकाल दिया था। इस लार जाति का दक्षिणी गुजरात के लाट अथवा लाड जाति के बनियों से कोई सम्बन्ध था, यह बात असंभव प्रतीत होती है।

"पूर्व रेखांश ५५-५८ के बीच में लारस्तान नामक प्रदेश है, अखात से उत्तर की ओर कारमान आ गया है, उससे वायव्य कोण में फारस है, ईशान तथा वायव्य कोण में मकरान आ रहा है।

"ईरान के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा इस प्रान्त की उपज कम है इसलिए इसकी स्थिति दुर्बल समझी जाती है। ठेठ ईरान के अखात के किनारे तक इसमें मैदानों और पहाड़ियों की श्रेणी चली गई है। इस भाग में मीठे पानी की इतनी कमी रहती है कि यहां के लोग वर्षा ऋतु में टांके भर लेते हैं और उन्हीं से वर्ष भर काम चलाते हैं। थोड़े बहुत जौ, गेहूँ तथा खजूरों के आधार पर ही उन लोगों का गुजर होता है; यदि इतनी सी भी उपज इस प्रदेश में न होती तो यहां पर कोई भी न बसता।

नौशेरवां का एक शाहजादा लारिस्तान से समुद्री रास्ते होकर सूरत आया, उसके साथ १८,००० मनुष्य थे। वहां के राजा ने उसका खूब सत्कार किया।

Tod's Travels in Western India के पृष्ठ १८३-८४ में कुमारपाल-चरित्र के अनुसार ऐसा लिखा है कि गजनी के खान

ने कुमारपाल पर चढ़ाई की तब ज्यौतिषियों ने बरसात का मौसम देख कर उसे लड़ाई करने से रोक दिया और मन्त्रशास्त्र के बल से सोते हुए खान को उसके पलंग सहित राजा के महल में मंगवा लिया। फिर उन दोनों में घनिष्ठ मित्रता होगई। कुमारपाल रास में लिखा है—

चौपाई—वात हवि परदेशि जसि, मुगल गिजनी आव्यो तसि।
सबल सेन लेइ निज साथ, गज रथ घोड़ा बहु संघात।
आंकस वाजी लेई करी, वाटई मुगल पाटण करी।
आव्या मुगल जाणया जसि, दरवाजा लई भीड्या तसि।
चिंतातुर हुवा जन लोक, पाटण मांहि रह्या सहि फोक।
एक कहि नर खंडी जहि, एक कहि नर मण्डी रहि।
एक कहि कांई थाइसें, एक कहि ए भागी जासे।
एक कहि ए निसन्तराय, एक कहि नृप चढ़ी न जाय।
एक कहि नृप नासि आज, एक कहि चत्रीनी लाज।

मुसलमानों के लश्कर से डर कर लोग उदयन मंत्री के पास गए, उसने उनको धीरज बँधाया और स्वयं हेमाचार्य के पास गया। उन्होंने चक्रेश्वरी देवी का आह्वान किया—

गुरु वचन देवी सज थई, निश भरी मुगल दलमां गई।
आवी जहां सूतो सुलतान, निद्रा देई कीधुं विज्ञान।
प्रहि उगमती जागे जसि, पासि कोई न देखी तसि।
पेखई चत्रीनो परिवार, असुर तब हइड़ि करि विचार।

होश में आने पर बादशाह को बहुत पश्चात्ताप हुआ, परन्तु कुमारपाल ने कहा, "मैं चालुक्यवंशी राजा हूँ, बन्धन में पड़े हुए को नहीं मारता, इसलिए तुम्हें नहीं मारूँगा।' ऐसा कहकर उसने उसका

बहुत सत्कार किया। इससे बादशाह प्रसन्न हुआ और कुमारपाल के साथ मैत्री करके अपना लश्कर वापस ले गया। कुमारपाल का यह कार्य उसके लिए हुए दशवें व्रत के अनुसार हुआ था।

इस ग्रन्थकार ने भाग्य ही से कहीं किसी का विशेष नाम लिखा है। वह तो प्रायः उसकी पदवी अथवा उपाधि लिखकर ही काम चलाता है। इसीलिए इस बात की गड़बड़ी पड़ती है कि यह गजनी का खान कौन था और उसका नाम क्या था? मुसलमान इतिहासकारों में से कोई भी यह नहीं लिखता कि गजनी के अमुक बादशाह ने कुमारपाल के समय में हमला किया था। निर्वासित शाहजादे जलालुद्दीन ने सिन्ध पर चढ़ाई करके उमरकोट के राजा को पकड़ लिया था, इसके विषय में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही ग्रन्थकार एकमत हैं। यदि इसी बात को इस तरह लिख दिया हो कि गजनी के खान ने कुमारपाल पर आक्रमण किया, तो कुछ कहा नहीं जा सकता। कर्नल टॉड ने लिखा है कि मन्त्र-शास्त्र के बल से बादशाह को पाटण में पकड़ मंगवाने की बात पाटण पर अधिकार करने के बाद में जोड़ी गई है। इस वार्ता का उपसंहार भी बड़ा मनोरञ्जक है। कहते हैं कि कुमारपाल की मुसलमानों के साथ इतनी अधिक मैत्री हो गई कि मुसलमानी धर्म के मूल तत्त्वों की ओर भी वह आकृष्ट हो गया था। हेमाचार्य ने इसमें पहल की और यदि वह अपने राज्यकाल के ३३ वें वर्ष में ही जहर देने के कारण न मर जाता तो कुमारपाल हेमचन्द्र के समान मुसलमानी धर्म में परिवर्तित हो जाता। आगे कहते हैं कि दूसरे ही वर्ष हेमाचार्य मर गए और मरते समय उन्होंने, अल्लाह, अल्लाह पुकारते हुए प्राण छोड़े। एक सुप्रसिद्ध महान् जैन आचार्यद्वारा मत-परिवर्तन की बात को छुपाने व उस पर लगाया हुआ आरोप दूर

करने के लिए लोग कहते हैं कि अन्तिम समय में सन्निपात के कारए वे इस प्रकार चिल्लाये थे। परन्तु, उनके मुसलमानी धर्म में मिल जाने की बात इसलिए भी सिद्ध हो जाती है कि मृत्यु के बाद उनकी लाश को जलाने की एवज गाडा गया था।

कुमारपालप्रबन्ध में यह प्रमाणित किया गया है कि हेमाचार्य का अग्निदाह किया गया था। उसमें लिखा है कि, चन्दन, अगर और कपूर आदि उत्तम पदार्थों द्वारा आचार्य की देह को जलाया गया। उनकी भस्म को पवित्र मानकर राजाने तिलक किया और नमस्कार किया। यह देखकर राजा के सामन्तों और दूसरे लोगों ने भी ऐसा ही किया। भस्म के बीत जाने पर लोग वहां से मिट्टी भी खोद ले गए जिससे एक विशाल खड्डा पड़ गया। यह खड्डा पाटण में 'हेमखाड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रकरण १२

अजयपाल–बालमूलराज–भीमदेव (द्वितीय)

आचार्य मेरुतुंग लिखते हैं कि, संवत् १२३० वि० (११७४ ई०) में अजयदेव गद्दी पर बैठा। (१) कृष्णाजी इसी बात को इतनी और बढ़ाकर लिखते हैं कि, "सिद्धराज की गद्दी पर बैठकर कुमारपाल ने तेतीस वर्ष राज्य किया, परन्तु उसके कोई कुंवर नहीं था इसलिए उसका भतीजा, जिसका नाम अजयपाल था, गद्दी पर बैठा और उसने तीन वर्ष राज्य किया।" (२)

द्व्याश्रय के कर्ता का कहना है कि, अजयपाल मरनेवाले राजा (कुमारपाल) के भाई महिपाल का पुत्र था।

कुमारपाल के क्रमानुयायी अजयपाल ने अपने राज्य के आरम्भ में ही, जैन-धर्मानुयायी राजा (कुमारपाल) के बनवाए हुए धार्मिक स्थानों के विरुद्ध घोर लड़ाई शुरू करदी। (३) जैन मतावलम्बी ग्रन्थकारों ने

---

(१) पौष सुदि १२ संवत् १२२६ वि० को गद्दी पर बैठा और फागुण सुदि १२ संवत् १२३२ को मृत्यु होगई, इस प्रकार तीन वर्ष राज्य किया।

(२) सिद्धराय आसन कुंवरपाल, रह्यो वरस एकतीस ज्युं।
इनकुं पुनि नहि पुत्र भो, सुत भ्रात को होईस ज्युं ॥१७॥
तिन नाम हे अजयपाल सो, तिहुं वर्ष राज्यकुले बहु ;

(३) जब अजयपाल पूर्वजों द्वारा निर्मापित मन्दिरों को तुड़वाने लगा तो 'सीलण' नामक एक कौतुकी ने उसका हृदय परिवर्तन करने के लिए एक नाटक का

उसके विषय में लिखा है कि वह भ्रष्ट बुद्धिवाला, पितृधर्मघातक, और नास्तिक था, परन्तु (सनातन) धर्म मानने वालों ने भी उस पर ऐसे ही दोष लगाए हों, ऐसी दन्तकथाएं प्रचलित नहीं हैं। (१) इससे यही

प्रसंग उपस्थित किया। वह एक रोगी का अभिनय करता है और पांच तृण-विनिर्मित देवमन्दिर अपने पुत्रों को भक्ति-भाव-पूर्वक सुरक्षार्थ सौंपता है। उसका अन्त समय आया भी न था कि उसके छोटे पुत्र ने उन मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। तब रोगी पिता ने कहा 'अरे पुत्राधम! श्री अजयदेव ने तो अपने पिता के परलोक-गमन के बाद उनके मन्दिरों को भग्न किया है, तू तो मेरे जीवनकाल में ही इन्हें तोड़ रहा है। अतः तू अधम से भी अधम है।" यह प्रसङ्ग देखकर राजा लज्जित हुआ और जैन-मन्दिरों को तुड़वाना बन्द कर दिया। इसी के परिणाम-स्वरूप कुमारपाल के बनवाए हुए कुछ विहार अब तक विद्यमान हैं। तारिङ्गा-दुर्ग-स्थित अजितनाथ के मन्दिर को अजयपाल के नाम से अङ्कित कर के चतुर (?) लोगों ने बचा लिया।

राजाओं को अपनी सनक में आकर कुकार्यों में प्रवृत्त होने से रोकने के लिए ऐसे दरबारी कवि, चारण और भांड (भाण प्रहसनादि अभिनय करने वाले) आदि रखने की प्रथा थी। ये लोग समयानुकूल कविता, गीत और अभिनय प्रस्तुत करके उनको सत्पथ पर ले आते थे।

(१) सुकृतसंकीर्तन के कर्त्ता अरिसिंह ने लिखा है कि,

"अथोरुधामाऽजयदेवनामा ररक्ष दक्षः क्षितिमक्षतौजाः।
न केऽपि काराकुहरेऽप्यरण्य–देशेऽपि नो यस्य ममुर्द्विषन्तः॥ (२.४४)

सपादलक्षप्रभुणा प्रदत्ता रौक्मी बभौ मण्डपिका सभायाम्।
सेवागतो मेरुरिव स्थिरत्वजितो भृशं यस्य कृशप्रतापः॥ (२.४५)

कुमारपाल के बाद, चतुर और अक्षयबलशाली अजयदेव गद्दी पर बैठा, जिसके शत्रुओं से कारागृह (जेल) और जंगल भरे हुए थे। सपादलक्ष देश के राजा ने उसको एक सोने की मंडपिका भेंट की थी, वह सभा में ऐसी शोभित होती थी कि मानों, जिसकी स्थिरता जीतली गई है और जो इस राजा के सामने मन्दप्रताप

अनुमान लगाया जा सकता है कि इस नवीन राजा के समय में तीर्थङ्करों के पवित्र मत के विरुद्ध, किसी अंश तक, आन्दोलन खड़ा हुआ होगा,

---

हो गया है ऐसा, सुमेरु पर्वत ही उस (अजयपाल) की सेवा में उपस्थित हुआ है।

कीर्तिकौमुदी का कर्त्ता सोमेश्वर देव था जिसने सुरथोत्सव, कर्णामृत-प्रपा और रामशतक आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। यह गुजरात के राजाओं का पुरोहित था। सोमेश्वर के पिता का नाम कुमार था, जिसको अजयपाल ने सूर्य-ग्रहण के अवसर पर बहुत सा सोना और रत्न देना चाहा परन्तु उसने कुछ नहीं लिया। कुमार बटुकेश्वर महादेव का पूजन करता था और उसको प्रसन्न करके उसने लड़ाई में पड़े हुए अजयपाल के गहरे घावों की पीड़ा का निवारण भी किया था, ऐसा सुरथोत्सव में लिखा है। इस लेखक ने अजयपाल को कुमारपाल का पुत्र लिखा है। सम्भव है उसने ऐसा इसलिए लिख दिया हो कि कुमारपाल के बाद वही गद्दी पर बैठा था।

कीर्ति-कौमुदी के द्वितीय सर्ग में लिखा है :—

'भूपालोऽजयपालोऽभूत् कल्पद्रुमसमस्ततः।
चक्रे वसुन्धरा येन, काञ्चनैर[प्य]किञ्चना ॥५२॥
दण्डे मण्डपिका हैमी, सहमत्तैर्मतंगजैः।
दत्वा पादं गले येन जांगलेशादगृह्यत ॥ ५३ ॥
जामदग्न्य इवोद्दाम[धाम]भर्त्सितभास्करः।
क्षत्रास्रक्षालितां धात्रीं श्रोत्रियत्राचकार यः ॥५४॥
दानानि ददतो नित्यं, नित्यं दण्डयतो नृपान्।
नित्यमुद्वहतो नारीर्यस्याऽऽसीत् त्रिगणः समः ॥५५॥

"अजयपाल ने सोने का दान दे दे कर लोगों को धनवान बना दिया था, जांगलेश (कुरु देश के पास वाला प्रदेश के) राजा के मस्तक पर लात मार कर उसने दण्ड में एक स्वर्ण की मण्डपिका और अनेक मदोन्मत्त हाथी लिए थे; उसके परशुराम के समान उद्दाम प्रताप के आगे सूर्य को भी नीचा देखना पड़ता था; उसने पृथ्वी को क्षत्रियों के रुधिर से धोकर

परन्तु साथ ही यह भी कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि अजयपाल ने अपने क्रूर, उन्मत्त और द्वेषी स्वभाव का परिचय अवश्य दिया था। उसने सबसे पहला काम तो यह किया कि, कुमारपाल के प्रीतिपात्र मन्त्री कपर्दी से प्रधान का पद ग्रहण करने के लिए आग्रह किया परन्तु, ऐसा करने में यही धारणा प्रबल रही होगी कि यदि कपर्दी को प्रधान पद दे दिया जावेगा तो वह प्रायः राजा को कुछ न कुछ कहता सुनता रहेगा और इस प्रकार शीघ्र ही उसके विरुद्ध कोई न कोई बहाना मिल जावेगा। उसने काम हाथ में लिया ही था कि उसके विरुद्ध राजा से बराबरी करने का दोष लगाकर उसे तप्त तैल के कडाह में डलवा कर मरवा दिया गया। (१) सौ प्रबन्धों का रचयिता रामचन्द्र

वेदपाठी ब्राह्मणों को दान में दे दी थी: वह धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों पुरुषार्थों का समान भाव से प्रतिदिन सेवन करता था, क्योंकि ब्राह्मणों को दान देकर धर्म को साधता था, राजाओं से दण्ड लेकर अर्थ को साधता था और नवीन स्त्रियों से विवाह करके काम की साधना करता था।

(१) जब कपर्दी से महामात्यपद ग्रहण करने के लिए कहा गया तो उसने उत्तर दिया "प्रातःकाल शकुन देखकर पद ग्रहण करूंगा।" फिर वह शकुन-गृह में गया और वहां दुर्गादेवी से सप्तविध शकुन की याचना करते हुए पुष्पाक्षत आदि से पूजन किया। इसके बाद जब वह नगर में आनन्द मनाता हुआ जा रहा था तो ईशानकोण में गर्जन करता हुआ सांड (आखला) दिखाई पड़ा। उसने इसको शुभ समझा; परन्तु एक मारवाड़ी ने उससे कहा 'यह शकुन तो विपरीत पड़ेगा क्योंकि—

नद्युत्तारेऽध्ववैषम्ये तथा संनिहिते भये।
नारीकार्ये रणे व्याधौ विपरीतः प्रशस्यते॥'

जब मति भ्रष्ट हो जाती है तो प्रतिकूल को भी लोग अनुकूल ही मान लेते हैं, इसलिए उसने उस मारवाड़ी का कहना नहीं माना। फिर जब उसको

नामक जैन अधिकारी उसका दूसरा शिकार था। उसको बहुत यातना दी गई थी, यहां तक कि इस घोर यातना से मुक्त होने के लिए वह अपनी जीभ काटकर मर गया। (१)

मेरुतुंग लिखता है कि उसके सभी सामन्त आम्रभट्ट (राज पितामह) की महानता को न देख सके और अवसर पाकर एक बार उसको नवीन राजा को नमस्कार करने के लिए ले आए। वह जैन-

---

तप्त तैल के कडाह में डाला गया तो उसने दृढता के साथ कहा:—

अर्थिभ्यः कनकस्य दीपकपिशा विश्राणिताः कोटयो
वादेषु प्रतिवादिनां विनिहताः शास्त्रार्थगर्भा गिरः।
उत्खातप्रतिरोपितैर्नृपतिभिः शारैरिव क्रीडितम्
कर्त्तव्यं कृतमर्थिता यदि विधेस्तत्रापि सज्जा वयम्॥

अर्थ—दीपक की लौ के समान पीले रंग की करोड़ों मोहरें अर्थी लोगों को दान में दे चुका, शास्त्रार्थ में प्रतिपक्षियों के सामने शास्त्रगर्भित वाणी की व्याख्या कर चुका, शतरंज के मोहरों के समान राजाओं को उखाड़ कर पुनः स्थापित कर चुका, इतने कर्तव्य कर चुकने बाद अब भी जो कुछ विधाता मुझसे करवाना चाहता है, वही करने के लिए मैं तैयार हूं।'

(१) रामचन्द्र को तपाए हुए गरम गरम तांबे के पटरे पर बिठाकर मारा गया था, उसने यह गाथा कही थीः—

माहि वीढह सचराचरह जिन सिर दिह्ला पाय
तसु अत्थमणु दिणेसरह होउत होइ चितराय॥
(महीपीठे सचराचरे येन श्रीः दत्ता प्रायः।
तस्यास्तमनं दिनेश्वरस्य भवितव्यं भवत्येव चिराय॥)

"जिसने सचराचर पृथ्वीमण्डल को प्रकाश दिया, उस दिनेश्वर सूर्य का (भी) अस्त होना ही है, और बहुत समय के लिए होता भी है।

मतावलम्बी था, इसीलिए अजयपाल उस पर कुपित हुआ था, परन्तु, वह निडर होकर कहने लगा, "मेरा धर्म तो वीतराग है, गुरु हेमाचार्य हैं और राजा कुमारपाल है।" अजयदेव ने क्रोधित होकर कहा, "तू राजद्रोही है।" आम्रभट्ट सच्चा शूरवीर था। वह बिना युद्ध किए ही घातक के आगे सिर झुकाने वाला न था, इसलिए उसने जिनेश्वर की मूर्ति की पूजा करके अपने मनुष्यों को हथियारों से सज्जित किए और घर से निकल कर राज-महलों पर आक्रमण कर दिया। जिस प्रकार हवा के भारी तूफान में रूई के फैलों का ढेर तितर बितर हो जाता है उसी प्रकार राज-द्वार के बाहरी रक्षक उसके वेग के आगे न ठहर सके और सबके सब जी बचाकर भाग निकले। वह तुरन्त ही महल के घटिका-गृह में आ पहुँचा और ज्योंही उसने घातक लोगों के संसर्ग-दोष के कल्मष को धारा-तीर्थ में धो डाला त्योंही स्वर्ग में अप्सराएं, जो युद्ध का कौतुक देख रही थीं, चिल्ला उठीं, "इसको मैं वरूँगी, पहले मैं वरूंगी।" इस प्रकार उदयन का पराक्रमी पुत्र देवलोक को चला गया। उसके मरने पर लोग शोक करने लगे और कहने लगे कि, अन्य मरने वाले योद्धाओं जैसे तो पृथ्वी पर फिर पैदा हो सकते हैं, परन्तु उदयन के पुत्र के मर जाने से तो पृथ्वी पण्डितों से शून्य होगई। (१)

---

(१) श्रीमान् आम्रभट, जिन्होंने राजपितामह की उपाधि प्राप्त की थी, का प्रताप न सह सकने वाले सामन्तों ने अवसर पाकर उसको अजयपाल के दरबार में नमस्कार करने के लिए बुलाया,। उसने कहा, "इस जन्म में तो मैं देवबुद्धि से श्री वीतराग जिनेन्द्र को, गुरुबुद्धि से श्री हेमाचार्य को और स्वामी-बुद्धि से कुमारपाल को ही नमस्कार करता हूँ।"

अजयदेव का राज्यकाल जितना ही उपद्रवों और रक्तपात से भरा हुआ था उतना ही अचिरस्थायी भी था। पुराण में लिखा है कि:—

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ।
अत्युत्कटैः पुण्यपापैरिहैव फलमश्नुते ॥

'तीन वर्ष, तीन मास, तीन पक्ष, अथवा तीन दिन में, किसी के बड़े भारी पाप तथा पुण्य का फल इसी लोक में मिल जाता है।' इसी के अनुसार ऐसी घटना हुई कि जब अजयपाल को राज्य करते हुए तीन वर्ष हो गए तो एक दिन विजयपाल नामक एक द्वारपाल ने उसके कलेजे में छुरी भोंक दी और "देव स्थानों को तुड़वाने वाले उस पापी को कीड़ों ने खा डाला तथा नरक की ओर पहुंचाने वाला वह दुष्ट आंखों से

आम्रभट की प्रशंसा में निम्न लिखित पद्य है, जिसका भावार्थ ऊपर दिया गया है:—

वरं भट्टैर्भाव्यं वरमपि च खिड्गैर्धनकृते
वरं वेश्याचार्यैर्वरमपि महाकूटनिपुणैः ।
दिवं याते दैवादुदयनसुते दानजलधौ
न विद्वद्भिर्भाव्यं कथमपि बुधैर्भूमिवलये ॥

धन प्राप्ति के लिए भाट, वेश्यागामी, वेश्याचार्य और कूटनीति-निपुण होना अच्छा, परन्तु दान के समुद्र उदयन—पुत्र (आम्रभट) की मृत्यु हो जाने पर चतुर मनुष्यों को इस पृथ्वी-मण्डल पर विद्वान् नहीं होना चाहिये अर्थात् अब विद्वानों का सम्मान करने वाला नहीं रहा।

इस प्रकार जैन कार्यकर्ताओं को दूर करके अजयपाल ने सोमेश्वर को अपने महामात्य पद पर नियुक्त किया था। यह बात उदयपुर के एक लेख से विदित होती है जो इस प्रकार है—

"सवंत् १२२९ वैसाख शुदि ३ सोमे अद्येह श्रीमदणहिल्लपट्टके समस्तराजावलिविराजितमहाराजाधिराजपरमेश्वरअजयपालदेवकल्याण विजयराज्ये तत्पादपद्मोपजीविनि महामात्यश्रीसोमेश्वरे श्रीकरणादौ।"

ओझल हो गया।"(१)

अजयपाल (२) के बाद मूलराज (द्वितीय) अथवा बाल मूलराज सन् ११७७ ई० में गद्दी पर बैठा और उसने दो वर्ष (सन् ११७९ ई०) तक राज्य किया। मेरुतुंग ने जो कुछ थोड़ा सा वृत्तान्त उसके विषय में लिखा है वह पूर्णरुप में यहां उद्धृत करते हैं:—' उसकी माता नायकी

---

(१) 'इति पुराणोक्तप्रामाण्यात् स कुपतिर्वयजलदेवनाम्ना प्रतीहारेण क्षुरिकया हतो धर्मस्थानपातनपातकी कृमिभिर्भक्ष्यमाणः प्रत्यहं नरकमनुभूय परोक्षतां प्रपेदे। सं० १२३० पूर्वमजयदेवेन वर्ष ३ राज्यं कृतम्।" (प्र० चि.४, पृ० १५९)

(२) डाक्टर बूलर के लेख संग्रह में अंक ५-६-७ के लेखों में पृष्ठ ७०, ७५ और ८४ में तथा इण्डियन एण्टीक्वेरी के भाग ६ के पृ० १९९-२०० और २०१ में अजयपाल के विषय में निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं:—

महाराजाधिराज-परमेश्वर-परम-भट्टारक — हेला-करदीकृत-सपादलक्ष क्ष्मापाल-श्रीअजयदेव ॥५॥

परमेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरममाहेश्वरहेलाकरदीकृतसपादलक्ष-क्ष्मापालश्रीअजयपालदेव ॥६॥

परमेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरममाहेश्वरप्रबलबाहुदण्डरूपकन्दर्प-हेलाकरदीकृतसपादलक्षक्ष्मापालश्रीअजयपालदेव ॥७॥

अंक ८-९ और १० के लेखों में 'परम' के स्थान पर 'महा' शब्द लिखा है, केवल इतना ही अन्तर है।

इस राजा के दिए हुए ताम्रपट्टों में 'परममाहेश्वर' और 'महामाहेश्वर' की उपाधि मिलती है, इससे विदित होता है कि जैन-धर्म का नाश करके पुनः शैव-धर्म का प्रचार करने का प्रयत्न इसके राज्यकाल में हुआ था, और इसीलिए जैन ग्रन्थकारों ने इसके विषय में बहुत थोड़ा वृत्तान्त लिखा है और वह भी इसकी निन्दा से भरा हुआ है।

देवी, परमर्दिराज (१) की पुत्री थी उसने बालक राजा को अपनी गोद में लिए हुए गाडराघट्ट नामक पहाड़ी पर युद्ध किया। वर्षा एवं प्रतिकूल ऋतु ने उसकी सदाशयता में सहायता पहुंचाई इसीलिए उसने म्लेच्छराज (२) को परास्त कर दिया।

---

(१) सातवें प्रकरण की टिप्पणियों में पृ० २३५ पर जेजाहुति अथवा महोबा के चन्देल राजों की तालिका दी गई है, उसमें १८ वीं संख्या पर परमददेव (परमर्दिदेव) का नाम है। यह परमर्दिदेव संवत् १२२२, (१२२४) अथवा सन् ११६५ ई० से १२०३ तक था। इस राजा के सिक्के व लेख भी प्राप्त होते हैं। नायकी देवी इस राजा की पुत्री होगी अथवा कादम्बकुल के राजा परमर्दि अथवा शिवचित्त की, जिसने ११४७ ई० ११७५ ई० तक राज्य किया था। जगदेव परमार कथा की टिप्पणी में पृ० २४७ में लिखा है कि जगदेव परमर्दिराज के दरबार में गया था। यह परमर्दिराज कुन्तल का राजा था, परन्तु इसका समय बहुत पीछे रह जाता है। कल्याण के कलचुर्य राजा कृष्ण का पुत्र जोगम, उसका पुत्र परमर्दी अथवा परमादी ११२८ ई० में था। इसका पुत्र त्रिभुवनमल्ल अथवा विज्जल ११४५–११६७ ई० में था। संभव है यह उसकी बहन हो।

(२) यह म्लेच्छराज मोहम्मद गोरी (शाहबुद्दीन) जान पड़ता है। इस मूलराज को बालार्क्क अथवा बालमूलराज लिखा है। डाक्टर बूलर ने चालुक्यों के विषय में ११ लेख प्रकाशित किए हैं जिनमें से तीन इसके विषय में हैं—

लेख अंक ३ (संवत् १२६३ श्रावण शुदि २ रवौ.)

"परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वराहवपराभूतदुर्ज्जयगर्ज्जनकाधिराजश्रीमूलराजदेवपादानुध्यात."

लेख अंक ४ (संवत् १२८० पौष शुद ३ भौमे.)

"महाराजाधिराजपरमपरमेश्वरपरमभट्टारकउमापतिवरलब्धप्रसादप्रौढप्रतापबालार्क्कआहवपराभूतदुर्ज्जयगर्ज्जनकाधिराजश्रीमूलराजदेवपादानुध्यात,"

मूलराज (दूसरा) अजयपाल का पुत्र था। आबू पर्वत पर अचलेश्वर का एक देवालय है, उसमें एक लेख (१) है, जिसमें लिखा है कि "उसके (कुमारपाल के) बाद अजयपाल ने राज्य किया, उसका पुत्र मूलराज (२) था, उसका छोटा भाई प्रसिद्ध भीम (३) आजकल भूमिभार को धारण करता है।"

लेख अंक ५ (संवत् १२८३ श्रावण शुद १५.)

"परमेश्वरपरमभट्टारकम्लेच्छतमनिचयच्छन्न(मही)वलयप्रद्योतनबालार्क्क-महाराजाधिराजश्रीमूलराजदेवपादानुध्यात"

रासा वालों ने लिखा है कि मूलराज (द्वितीय) का मुसलमानों से झगड़ा हुआ था। इस बात की पुष्टि उक्त लेख से भी होती है। लेख में लिखा है कि, 'जिसको जीतना कठिन है, ऐसे गर्ज्जन के राजा को युद्ध में हराया है जिसने, ऐसा मूलराज राजा था'

(१) एशियाटिक रिसर्चेज भाग १६ पृ० २८८।

(२) मिस्टर विल्सन ने इस लेख का अनुवाद करते समय यह नोट लिखा है कि "'अनुजन्मा' शब्द का अर्थ साधारणतया 'पीछे जन्म लेने वाला' (भाई) होता है, संभवतः इसका अर्थ पुत्र भी हो सकता है, परन्तु पहले अर्थ (छोटाभाई) को ठीक मान लेने के लिए बहुत से कारण मौजूद हैं।" जब मूलराज बचपन ही में मर गया था तब भीमदेव द्वितीय पूर्ण वयस्क था, ऐसा ज्ञात होता है। इसलिए उसको अजयपाल का भाई मान लेना ही अधिक संगत होगा। मि० विल्सन का अभिप्राय अगले पैरे में और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है—जहां लिखा है कि "भीम, अजयपाल के पुत्र मूल का छोटा भाई।'

(३) अजयपाल का पुत्र मूलराज था, और नीचे लिखे प्रमाणों से तो यह विदित होता है कि भीम भी उसका पुत्र था, परन्तु उसके कार्यों को देखकर बहुत से लोग ऐसा मानते हैं कि वह (भीम) अजयपाल का छोटा भाई था। यह बात बहुत ध्यान देने योग्य है, परन्तु इसका कोई प्रमाण अब तक नहीं मिल सका है।

बढ़वाण के साधु मेरुतुंग ने जिन म्लेच्छों के विषय में लिखा है वे मुसलमान थे जिन्होंने महमूद गजनी के हमलों के बाद एक सौ

जूनागढ़ के अधीनस्थ प्रभासपट्टण के बड़े दरवाजे पर भीमदेव का संवत् १२७३ वि० का एक लेख है जिसमें लिखा है:—

> आखण्डलप्राङ्गणिके च तस्मिन् भुवं बभाराजयदेवभूपः ।
> उच्छारयन् भूपतरूप्रकाण्डान्नुवाप यो नैगमधर्मवृक्षान् ॥२१॥
> यत्खड्गधाराजलमग्ननानानृपेन्द्रविक्रान्तियशः प्रशस्तिः ।
> बभ्राज तत्पुष्करमालिकेव श्रीमूलराजस्तदनूदियाय ॥२२॥
> तस्यानुजन्मा जयति क्षितीशः श्रीभीमदेवः प्रथितप्रतापः ।
> अकारि सोमेश्वरमण्डपोऽयं येनात्र मेघध्वनिनामधेयः ॥२३॥

जब कुमारपाल इन्द्रलोक को चला गया तो अजयदेव ने पृथ्वी का भार धारण किया, इस अजयदेव ने प्रकाण्ड भूप रूपी पेड़ों को उखाड़ कर वेदरूपी वृक्षों को बोया ॥२१॥

जिसकी खड्गधारा के जल में निमग्न होने वाले अनेक राजों के पराक्रम से उत्पन्न हुई यशःप्रशस्ति उसकी (अजयपाल की) पुष्पमालिका के समान शोभित होती थी । उसके बाद मूलराज का उदय हुआ ॥२२॥

उसका अनुजन्मा (पीछे जन्म लेने वाला) अर्थात् उसका छोटा भाई श्री भीमदेव जिसका प्रताप विख्याति को प्राप्त हो गया है, राजगद्दी पर बैठा । इसने मेघध्वनि नामक सोमेश्वर का मण्डप बनवाया ॥२३॥

सुकृतसंकीर्त्तन के तीसरे सर्ग में लिखा है:—

> तदङ्गजो दिग्गजदन्तिशय्याविश्रान्तकीर्तिः किल मूलराजः ॥
> तुरक्कशीर्षाणि शिशुर्जयश्रीलताफलानीव लसन्नगृह्णात् ॥४५॥

उसका (अजयपाल का) अंगज (पुत्र), दिग्गजों के दाँतों रूपी शय्या पर विश्राम किया है कीर्ति ने जिसकी ऐसा, मूलराज हुआ, (अर्थात् दिग्दिगन्तों में जिसका यश फैला हुआ था) जिसने बचपन में खेल ही खेल में जयलक्ष्मी रूपी

वर्ष पीछे फिर अणहिलवाड़ा की सीमा पर चढ़ाई की थी । फरिश्ता

लता के फूल समझकर तुर्कों के मस्तकों को ग्रहण कर लिया था । (अर्थात् जिसने मुसलमानों के मस्तकों को काट डाला था ।)

यस्मिन् सदौच्चैः शिरसि प्रतीची महीभृति स्फारबलाम्बुराशौ ।
अस्तं समस्तारियशःशशाङ्कप्रतापचण्डद्युतिमण्डलाभ्याम् ॥ ४६ ॥

जिसकी सेना का विस्तार समुद्र के विस्तार के समान था ऐसा, पश्चिम दिशा का राजा, राजशिरोमणि मूलराज शत्रुओं के यश रूपी चन्द्रमा और अपने प्रतापरूपी सूर्य-मण्डल के साथ अस्त हो गया ।

श्रीभीमदेवोऽस्ति निरर्गलोग्रभुजार्गलग्रस्तसमस्तशत्रुः ।
बिभ्रत्करे भूवलयं पयोधिवेलामिलन्मौक्तिकमस्य बन्धुः ॥ ४७ ॥

उसका भाई भीमदेव है, जिसने अपनी निरर्गल उग्र भुजाओं रूपी अर्गला से समस्त शत्रुओं को बाँध लिया है और जिसने, जहां पर मोती प्राप्त होते हैं ऐसी, समुद्र-वेला-पर्यन्त पृथ्वी को अपने हाथ में ले लिया है ।

आजन्मसद्म द्युसदां मदेकक्षणप्रदानात् क्षयमेष मागात् ।
इति स्मरन् यः कनकानि दातुमुन्मूलयामास न हेमशैलम् ॥४०॥

यह (सुमेरु पर्वत) शुरू से ही देवताओं का निवास स्थान रहा है और मेरे दान कर देने से एक ही क्षण में समाप्त हो जावेगा' इसी विचार से जिसने (भीमदेव ने) सुमेरु पर्वत को नहीं तोड़ा (अर्थात् अपर्याप्त समझ कर रहने दिया) ।

यद्दानमश्रावि सदानुभूतमेवार्थिभिर्गीतिषु खेचरीणाम् ।
विलासहेमाद्रिसुमेरुपादाधियाचकानां स्वगृहोपकण्ठे ॥४६॥

जिसके (भीमदेव के) विलास के लिए बने हुए सोने के क्रीडा पर्वत पर, अपने घर सुमेरु शिखर की भ्रान्ति से उतर कर आई हुई अप्सराओं की गीतियों में, उसके निरन्तर होते रहने वाले दान के विषय में याचक लोग सदा ही चर्चा सुनते रहते थे ।

कीर्तिकौमुदी के द्वितीय सर्ग में लिखा है किः—

"धृतपार्थिवनेपथ्ये निष्क्रान्तेऽत्र शतक्रतौ ।
जयन्ताभिनयं चक्रे मूलराजस्तदङ्गजः ॥५६॥

लिखता है कि ११७८ ई० में, मोहम्मद शाहबुद्दीन गोरी गजनी से

चापलादिव बालेन रिङ्खता समराङ्गणे ।
तुरुष्काधिपतेर्येन विप्रकीर्णा वरूथिनी ॥ ५७ ॥
यच्छिन्नम्लेच्छकङ्कालस्थमुच्चैर्विलोकयन् ।
पितुः प्रालेयशैलस्य न स्मरत्यर्बुदाचलः ।''।५८ ॥

इन्द्र ने अजयपाल का रूप धारण किया था, राज्य-भूमि रूपी रंगभूमि पर अपना कार्य करके वह तो चला गया और उसके पुत्र मूलराज ने जयन्त का अभिनय किया । रणभूमि में क्रीडा करते हुए ही उसने (मूलराज ने) तुर्कराज की सेना को तितर बितर कर दिया । जिसके (मूलराज के) द्वारा मारे गये म्लेच्छों के कंकाल (अस्थिपञ्जर) के ढेर को देखकर अर्बुदाचल (आबू पहाड़) अपने पिता हिमालय को भी भूल गया ।

द्रुतमुन्मीलिते तत्र धात्रा कल्पद्रुमाङ्कुरे ।
उज्जगामानुजन्मास्य श्रीभीम इति भूपतिः ॥५९॥
भीमसेनेन भीमोऽयं भूपतिर्न कदाचन ॥
बकापकारिणा तुल्यो राजहंसदमक्षमः ॥ ६० ॥
मन्त्रिभिर्माण्डलीकैश्च बलवद्भिः शनैः शनैः
बालस्य भूमिपालस्य तस्य राज्यं व्यभज्यत ॥६१॥

कल्पद्रुम के अंकुर रूपी मूलराज को विधाता ने शीघ्र ही उखाड़ लिया, इसलिए उसका अनुजन्मा (छोटा भाई) श्री भीम राजा हुआ ।

राजहंसों का (राजा रूपी हंसों का) दमन करने में समर्थ यह भीमराज बक (राक्षस अथवा बगुला) के अपकार (नाश) करने वाले भीमसेन के बराबर कभी भी नहीं हो सकता (अर्थात् उससे बढकर है क्योंकि उसने तो बक को ही नष्ट किया था और इसने राजहंसों का दमन किया है) ।

बलवान् मन्त्रियों और माण्डलिकों ने धीरे धीरे उस बालक राजा के राज्य को बांट लिया था ॥ ६१ ॥

रवाना होकर ऊच्च और मुल्तान के रेतीले मैदानों के रास्ते से गुजरात पहुँचा था। (१)"राजा भीमदेव (महमूद गजनवी का सामना करने वाले

---

(१) इस समय का मुसलमानों का इतिहास जानना भी आवश्यक है इसलिए हमें जो कुछ उसका हाल प्राप्त हुआ है उसे यहां विस्तारपूर्वक लिखते हैं:—

गोरीवंश का अलाउद्दीन जहांसोज, गजनी को पैमाल करके फीरोजकोह के तख्त पर बैठा था। उस समय उसके दो भतीजे थे, गयासुद्दीन-मुहम्मद शाम और मौजुद्दीन मुहम्मद शाम उर्फ शाहबुद्दीन जो सुलतान वहाबुद्दीन शाम का शाहजादा था और जिसको उसने वैरिस्तान के किले में कैद कर रखा था और उसके गुजारे के लिए वार्षिक रकम बांध रखी थी।

सुल्तान अलाउद्दीन के बाद शाहजादा सुलतान सैफुद्दीन गद्दी पर बैठा। इस सुलतान ने अपने दोनों चचेरे भाइयों को कैद से छोड़ दिया। शाहजादा गयासुद्दीन तो फीरोजकोह में ही बादशाह सैफुद्दीन की सेवा में रहने लगा और शाहबुद्दीन (मौजुद्दीन) अपने चाचा फखरुद्दीन मसूद की सेवा में आमियान चला गया।

सैफुद्दीन की त्रासदायक मृत्यु के बाद गोर के तख्त पर गयासुद्दीन बैठा। जब यह बात फखरुद्दीन ने सुनी तो उसने अपने भतीजे शाहबुद्दीन से कहा 'तुम्हारे भाई के शिर पर तो बोझा आ पड़ा है, अब तुम्हारा क्या कर्तव्य है ?" उसने अपने काका को सादर नमस्कार किया और तुरन्त ही फीरोजकोह के लिए रवाना हो गया। वहां पहुंचकर उसने अपने भाई को नमस्कार किया और एक वर्ष तक वहीं उसकी सेवा में रहा। फिर एक बार किसी बात में अपना अपमान समझकर वह सीजिस्तान में मलिक शमशुद्दीन के पास चला गया और एक जाड़े भर वहीं रहा। इसके बाद उसको वापस बुलाने के लिए हलकारे भेजे गए। वापस आकर पहुंचते ही उसको उजूरान और ईस्तिया (हिरात और गजनी के बीच का पहाड़ी गोर प्रदेश) के मुल्क सौंप दिये गए। इसी समय गयासुद्दीन ने गर्मशीर पर अपनी सत्ता स्थापित करली और वहां के सबसे बड़े शहर तकीनाबाद को अपने भाई के आधीन कर दिया। इतने ही में उधर गजनी के लश्कर और उसके नेता ने विद्रोह कर दिया इसलिए वह

गुजरात के राजा ब्रह्मदेव (भीमदेव ?) का वंशज) सेना लेकर मुसलमानों का सामना करने के लिए आया और बहुत मारकाट के बाद उनको

वहां बारह वर्ष तक रहा और खुशरूशाह व खुशरू मलिक के हाथ में से देश छीन लिया परन्तु शाहीदीन तकीनाबाद से कभी कभी हमला करके हैरान करता रहा।

अन्त में, सन् ११७३ ई० (५६८ हि० स०) में गयासुद्दीन ने गज़नी को जीत लिया और अपने भाई शाहबुद्दीन को वहां की गद्दी पर बिठाकर वापस गोर लौट गया। इस शाहजादे ने गज़नी को स्वाधीन करने के दो वर्ष बाद ही गुर्दज जीत लिया और तीसरे वर्ष (हि० स० ५७१, ई० स० ११७५) अपनी फौज लेकर मुलतान तक जा पहुंचा और कर्मातिन (करामन) के लोगों से उनका देश हस्तगत कर लिया। इसके बाद उसने भाटिया लोगों से उच्च को ले लिया और वहां तथा मुल्तान में अली करमाज को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करके गजनी लौट गया।

इन सब घटनाओं का समय फरिश्ता ने ५७२ हिं० स० लिखा है और यह भी लिखा है कि सुलतान ने उच्च के चारों ओर घेरा डाल दिया था इसलिऐ वहां का राजा किले में जाकर रहने लगा। परन्तु सुल्तान इस बात को जानता था कि किले को ले लेना कोई आसान बात न थी इसलिये उसने युक्ति से ही काम निकालने की सोची। उसको किसी तरह इस बात का पता चल गया था कि राजा पर रानी का बहुत प्रभाव है, इसलिए उसने रानी को ही अपनी ओर मिला लेने का निश्चय किया। उसने अपने आदमी रानी के पास भेजे और कहलाया 'यदि तुम्हारी मदद से नगर मेरे कब्जे में आ जावेगा तो मैं तुम्हें राजरानी बनाऊँगा।' शाहबुद्दीन का दबदबा देखकर रानी उसके फुसलाने में आ गई और सोचा कि यह यहां से विजय किए बिना नहीं लौटेगा। उसने उत्तर भिजवाया "मैं तो आपकी सेवा के योग्य नहीं हूं, परन्तु यदि आप मेरे मालमते को न छेड़ें तो मेरी अत्यन्त रूपवती पुत्री को आपकी भेंट कर सकती हूं और राजा को मरवाने का उपाय भी कर सकती हूं।" शाहबुद्दीन ने इस प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया और कुछ ही दिनों बाद रानी ने राजा को मरवा दिया तथा उच्च नगर

(मुसलमानों को) हरा दिया। लौटते समय गजनी पहुंचने से पहले उनको बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । इस समय तक

सुल्तान के कब्जे में आ गया । इसके बाद अपनी प्रतिज्ञानुसार उसने राजकुमारी को मुसलमानी धर्म में बदलकर उसके साथ निकाह किया और गजनी भेज दिया। राजकुमारी की माताने पुत्री के वियोग में तुरन्त ही प्राण छोड़ दिए और दो वर्ष बाद उसकी पुत्री भी मर गई । इस प्रकार उन दोनों को ही बादशाह की मुलाकात से कोई फल प्राप्त नहीं हुआ ।

इसी वर्ष, संकरान (शंकरान, सेनकरान) के लोगों ने भी धोखा करके बहुत उपद्रव मचाया इसलिए शाहबुद्दीन ने उन पर चढ़ाई करदी और उनमें से बहुतों को तलवार के घाट उतार दिया ।

कुरान में लिखा है कि, संकरान के लोग अपने देश के लिए लड़े थे, इसीलिए कितने ही लेखकों ने उन्हें गाजी लिखा है । उन्होंने कुछ काज़ियों की अध्यक्षता में विद्रोह खड़ा किया था इसीलिए शाहबुद्दीन को कितने ही राजनैतिक कारणों से उन्हें भी दण्ड देना पड़ा ।

इस उपद्रव को दबाने के बाद (हि० स० ५७४, ई० स० ११७८) उसने ऊच्च और मुल्तान होते हुए थरपाकर मार्ग से अणहिलवाड़ा (नहरवाल) पर चढ़ाई की । उस समय वहां का राजा भीमदेव बालक था (तबकाते नासरी) । फरिश्ता लिखता है कि, उस समय गुजरात की हकूमत वीरमदेव के वंशज भीमदेव के हाथ में थी ।

(यह लड़ाई सन् ११७८ में हुई थी, उस समय बालमूलराज गुजरात का राजा था और भीमदेव उसकी ओर से राजकाज चलाता था। ऐसा जान पड़ता है कि उसकी मृत्युके बाद ११७९ई० में भीम गद्दी पर बैठा था ।) भीमदेव ने सुल्तान को हरा दिया और बहुत से मुसलमान मारे गए । सुल्तान बहुत कठिनाई से गज़नी पहुंचा और फिर वहां से ५७५ हि० स० में पेशावर चला गया । खुलासा तवारीख का लेखक लिखता है कि यह घटनां हि० सन् ५७७ की है ।

"प्रख्यात भीमदेव" गद्दी पर नहीं बैठा था वरन् अपनी भाभी और बालक राजपुत्र की ओर से एक सच्चे राजभक्त शूरवीर की भांति राजकाज चला रहा था।

वह कहता है कि, गुजरात फतह करने के इरादे से सुलतान ऊच्च और मुलतान होता हुआ थरपारकर के मार्ग से आया और सामने ही भीमदेव फौज लेकर उसका सामना करने के लिए तैयार मिला। दोनों दलों में घमासान युद्ध हुआ परन्तु, इस समय सुल्तान का लश्कर बहुत दूर चलकर आया था और मार्ग में बहुत सी कठिनाइयां भोगनी पड़ीं थीं इसलिए काफी थका हुआ और पस्त था। उधर भीमदेव के सैनिक ताजा और बेपरवाह थे इसलिए तीरों, तलवारों और बन्दूकों से उन्होंने बहुत से मुसलमानों को ज़ख्मी कर दिया। इस प्रकार अनायास ही भीमदेव की विजय हो गई और सुल्तान का बहुत नुकसान हुआ तथा वह इस संकट से प्राण बचाकर गज़नी भाग गया।

'जब सुल्तान महमूद गज़नवी ने देवपट्टण पर चढ़ाई की थी उस समय जूनागढ़ के स्वधर्मरक्षक राजा मंडलिक ने अणहिलवाड़ा के राजा भीमदेव प्रथम का साथ दिया था, ऐसा सोरठ के इतिहासकार रणछोड़जी दीवान ने लिखा है, परन्तु, सर बेली अपने गुजरात के इतिहास में लिखते हैं कि, यह बात मोहम्मद शाह (शाहबुद्दीन गोरी) के हमले के समय लागू पड़ती है। हमको ऐसा जान पड़ता है कि महमूद गज़नवी के हमले के समय भीमदेव प्रथम था और गोरी की चढ़ाई के समय भीमदेव द्वितीय था। नामसाम्य के कारण रणछोड़जी ने मोह-म्मद गोरी के समय की घटना को गजनवी के समय में लागू करके लिख दिया है। वे लिखते हैं कि, "मुसलमानों पर हिन्दू लोग बिजली के समान टूट पड़े; वायु के समान वेग धारण करके, बन्दरों के समान कूद फांद करते हुए और बाल-मृगों के समान कुलांचें भरते हुए वे मुसलमानों के पीछे दौड़ पड़े। मुसलमानों में से कितने ही तो हिन्दुओं की तलवारों से मारे गये और कितनों ही के मस्तक राजपूतों की गदा से चकनाचूर हो गए। राजा का सौभाग्य सूर्य उच्च स्थिति पर पहुंच गया, मुहम्मदशाह अपना जी बचाकर भाग खड़ा हुआ, परन्तु उसके लश्कर में से बहुत से स्त्री पुरुष पकड़ लिए गये।

अजयपाल का छोटा भाई भीमदेव (द्वितीय) अथवा जिसको भोला भीम भी कहते हैं, ११७९ ई० में गद्दी पर बैठा (१) और ३६ वर्ष राज्य किया। मेरुतुंग लिखता है कि, उसके राज्यकाल में मालवा के

मुसलमानों के धर्मशास्त्र में लिखा है कि, तुर्क, अफगान और मुगल स्त्रियां जब तक क्वांरी रहती हैं तब तक पवित्र समझी जाती हैं। इसी के अनुसार ऐसी स्त्रियों के साथ विवाह कर लेने में कोई आपत्ति नहीं समझी गई। जो दूसरी स्त्रियां थीं उनको जुलाब आदि देकर शुद्ध कर लीं गई और उन्हीं के धर्मशास्त्रानुसार जो भलीं थीं उनका भलों के साथ और जो दुष्टा थीं उनका दुष्टों के साथ विवाह कर दिया गया। जो इज्जतदार मनुष्य थे उनकी दाढ़ियां मुंडवाकर उनको शेखावतों में मिला लिया गया और शेखावतों को वाढेल जाति के राजपूतों में शामिल कर लिया गया। जो नीच श्रेणी के थे उनको कोली, खांट, बावरिया और मेर जाति के लोगों में मिला लिया गया। शादी, जन्म, मरण आदि की रस्मों के विषय में इन्हें आज्ञा दे दी गई कि वे अपने ही रीत रिवाज मानें परन्तु और लोगों से अलग रहें। इसमें कहां तक सत्य है, यह परमेश्वर ही जानता है।

(१) भीम देव (द्वितीय) ने ३६ वर्ष राज्य किया, इस हिसाब से उसके राज्य-काल का अन्त १२१५ ई० में ही होता है, परन्तु यह बात गलत है। मेरुतुंग के लेखानुसार उसने ६३ वर्ष राज्य किया और उसके दिए हुए ताम्रपट्टों से भी यही बात सिद्ध होती है। आबू के १२३१ ई० के लेख में भीमदेव को 'राजाधिराज' लिखा है और इसी लेख का आधार मि० फार्बस ने इस पुस्तक में लिया है, शायद ६३ के अंकों को उलट पुलट पढ लेने के कारण भूल से ६३ के स्थान ३६ पर लिख दिए हैं। मेरुतुंग ने प्रबन्धचिन्तामणि में स्पष्ट लिखा है कि, "संवत् १२३५ पूर्व वर्ष ६३ श्री भीमदेवेन राज्यं कृतं" अर्थात् संवत् १२३५ वि० से ६३ वर्ष पर्यन्त संवत् १२९८ (ई० सं० १२४१-४२) तक भीमदेव ने राज्य किया। मेरुतुंग के लिखे अनुसार भीमदेव के ताम्रपट्ट मिलते आते हैं। उसका अन्तिम ताम्रपट्ट (जो डा० बूलर के प्रकाशित किए हुए ११ ताम्रपट्टों में से ९ वां है) संवत् १२९५ वि० का है। उसके बाद में सं १२९८

राजा श्री सोहड़देव ने गुजरात को नष्ट करने के लिए चढ़ाई की थी परन्तु भीम ने उसको धमकी दी कि, 'राजा-मार्त्तण्ड (सूर्य) जो सूर्य-वंश को कान्ति प्रदान करता है, केवल पूर्व दिशा में ही प्रदीप्त होता है, वही सूर्य जब पश्चिम दिशा में पहुँचता है तो कान्तिहीन हो जाता है।"(१) इस धमकी को सुनकर सोहड़देव वापस लौट गया। मेरुतुंग ने लिखा है कि बाद में उसके पुत्र अर्जुनदेव ने गुजरात को लूटा था। इस कथन की पुष्टि मालवा के अर्जुनदेव के एक लेख (२) से हो

वि० (१२४१-४२ ई०) का ताम्रपट्ट राजा त्रिभुवनपाल का मिलता है। इस लिए भीमदेव ने संवत् १२९८ वि० (१२४१-४२ ई०) तक राज्य किया।

गुजराती अनुवादक ने लिखा हैं कि, 'हमारे पास एक पट्टावली है जिसके अनुसार बाल मूलराज ने संवत् १२३२ की फाल्गुण कृष्णा १२ से १२३४ वि० की चैत्र शुक्ला १४ तक २ वर्ष और १ महीने राज्य किया उसके बाद सं० १२३४ की चैत्र सुदि १४ से उसके भाई भोले भीम ने राज्य करना आरम्भ किया।'

विचारश्रेणी में लिखा है—

"ततस्तदेवोप श्री भीमदेव राज्या इति राजावली"

इसमें तथा हमारे पास एक दूसरा जैनपत्र है, जिसमें लिखा है कि भीम देव संवत् १२३५ में गद्दी पर बैठा, इससे इस बात में सन्देह नहीं कि सन् ११७९ ई० में भीमदेव राज्य करता था क्योंकि अणहिलवाडा के बालमेर के पास केरालू नामक एक ऊजड़ ग्राम है, वहां के ११७९ ई० (संवत् १२३५) के एक लेख से विदित होता है कि वह प्रख्यात विजयी भीमदेव के राज्यकाल में लिखा गया था।'

(१) "प्रतापो राजमार्त्तण्ड पूर्वस्यामेव राजते।
स एव विलयं याति पश्चिमाशावलम्बिनः॥" प्र. चि. पृ. १५९

(२) बंगाल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल ५ वां पृष्ठ ३८०।

जाती है जो सन् १२१० ई० का लिखा हुआ है और जिसमें लिखा है कि 'सुभटवर्म (सोहड़देव) ने, जो अर्जुनदेव का पिता था, अपना क्रोधायमान् पराक्रम दिखलाने के लिए गुजरात नगर पर गर्जन किया,' और अर्जुन राज ने जो बालक ही था, खेल ही खेल में जयसिंह राज (१) को भगा दिया। १२१० ई० का ही एक और लेख है जिसमें बालमूलराज के क्रमानुयायी भीमदेव (द्वितीय) के दिये हुए दान का वर्णन है और उसमें लिखा है कि 'भीमदेव दूसरा सिद्धराजदेव और नारायण का अवतार है (२)।

गुजरात के इतिहास-लेखकों ने भीमदेव (द्वितीय) विषय में बहुत थोड़ा वर्णन लिखा है परन्तु इस कमी को मुसलमान इतिहासकारों और उसके प्रतिस्पर्द्धी चौहानों के इतिहासलेखक चन्द बारहठ(३) ने पूरी कर दी है। चन्द के सुन्दर चित्रोपम काव्य में अणहिलवाड़ा के भोला परन्तु वीर भीमदेव का स्थान गौण नहीं है। अब आगे लिखे जा रहे वृत्तान्त का आधार यही उपर्युक्त इतिहास है।

---

(१) मालवा विजय करने वाले अणहिलवाडा के राजा के बाद में होने वाले राजा (जयन्तसिंह ?) के विषय में यह बात लागू हो सकती है।

(२) संवत् १२८० का लेख जयसिंह देव का है उसमें 'नारायणावतार-श्री भीमदेव' ऐसा लिखा है (देखिए—डाक्टर बूलर द्वारा प्रकाशित लेख नं० ११)।

(३) फार्बस साहब ने पृथ्वीराज रासो के कर्त्ता चन्द को बारहठ (Bharot Chund) लिखा है, यह भूल है। गुजराती अनुवादक भी यथावत् बारहठ ही लिखते हैं। वास्तव में चन्द भाट विरदाई था, बारहठ चारण नहीं था। अतः पुस्तक में जहां जहां बारहठ लिखा गया है वहां वरदाई पढ़ना चाहिए।

बारहठ चन्द ने लिखा है कि, जब अनंगपाल (१) दिल्ली में राज्य करता था उसी समय कमधज अथवा राठौड़ राजा विजयपाल ने उस पर चढ़ाई करने की तैयारी की। उस समय सांभर में आनन्ददेव का पुत्र सोमेश्वर देव राज्य करता था। जब उसने सुना कि कमधजों और तँवरों में युद्ध होने वाला है तो क्षत्रिय होने के नाते घर बैठे रहना उचित न समझा। "मैं आन्नराज के कुल की कीर्ति को बढाऊंगा, अथवा कैलास या इन्द्रासन को प्राप्त करूंगा" यह कहकर उसने रणभेरी बजाई और कमधज के विरुद्ध दिल्लीश्वर की सहायता के लिए रवाना हुआ। सोमेश और अनंगपाल श्वेत छत्र धारण करके विजयपाल (१) का सामना करने के लिए आगे बढ़े। लड़ाई में सोमेश्वर ने विजयपाल को घायल किया और वह भाग गया। शक्तिशाली कमधज को पराजित करने के कारण दिल्ली में सोमेश्वर का यशोगान होने लगा और

---

(१) तंवर वंश में अनंगपाल नाम के तीन राजा हुए हैं, उनमें से यह तीसरा अनंगपाल था जिसको आईने अकबरी में आकपाल लिखा है। इसने सन् ११२८ ई० से ११४६ ई० तक २१ वर्ष २ महीने और १६ दिन राज्य किया। दिल्ली की राजवंशावलि में इसका अंक १६ वां है।

(२) कन्नोज के राठौड़ राजों की राजावलि में विजयपाल का नाम नहीं मिलता है, परन्तु पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि यह जयचंद्र का पिता था। Coins of Mediaeval India के पृष्ठ ८४-८७ में चंद्रदेव (१०५०) के पुत्र मदनपाल का समय १०८० से १११५ ई० लिखा है और गोविन्दचन्द्र का समय १११५ से ११६५ ई० तक लिखा है।

अजय चन्द्र (जयचन्द) का समय ११६५ से ११९३ ई० तक का है; अब बीच में विजयचन्द्र या बिजयपाल नामक व्यक्ति के लिए कोई अवकाश ही नहीं रहता। राजकाल निर्णय के पृ० १३ में जयचन्द्र के पिता का नाम विजयचन्द्र राठौड लिखा है, परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं दिया है इसलिए यह बात

अनंगपाल ने उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करके दृढ़-सम्बन्ध स्थापित कर लिया। इसके बाद पूर्ण आदर सहित उसकी विदाई की और सोमेश भी विजय-दुन्दुभि बजाता हुआ अजमेर लौट गया।

ऐसा मालूम होता है कि अनंगपाल के कोई पुत्र न था। उसकी दोनों पुत्रियों में से एक कमलादेवी तो अजमेर के सोमेश्वर को व्याही थी और दूसरी का विवाह कन्नौज के राजा जयचन्द राठौड़ के साथ हुआ जो अनंगपाल की भूआ के लड़के विजयपाल का पुत्र था। तँवर कुँवरी के पेट से सोमेश्वर के पुत्र सुप्रसिद्ध पृथ्वीराज ने जन्म लिया, जिसने दिल्ली और अजमेर की गद्दी को एक कर दिया था और जिसने मुसलमानों के साथ अपूर्व युद्ध करते हुए शारीत्याग किया था। चंद वरदाई लिखता है कि, कन्नौज, अणहिलपुर और गजनी में यमदूतों ने पृथ्वीराज के जन्म के समाचार प्रसिद्ध किए। पृथ्वीराज के पृथा नाम की एक बहन थी, जिसका विवाह उसके पिता सोमेश्वर ने चित्तौड़ के रावल समरसिंह (१) के साथ किया था।

विश्वास योग्य नहीं समझी जा सकती है। विजयचन्द्र अथवा विजयपाल के स्थान पर यदि गोविन्दचन्द्र लिखा होता तो रासो की बात मानने योग्य समझी जा सकती थी।

(१) राजा गुहसेन अथवा गुहिल का समय ५३९ ई० से ५६९ ई० तक का है। गोहिल अथवा गेलोटी राजपूत, जो आजकल शिशोदिया कहलाते हैं और जो राजपूताना और काठियावाड़ में राज्य करते हैं, इसी गुहिल राजा के वंशज हैं। इस गुहसेन राजा का बड़ा पुत्र धरसेन (द्वितीय) अपने पिता के बाद वलभीपुर की गद्दी पर बैठा और उसके छोटे भाई गुहादित्य को ईडर का राज्य मिला। इसी के वंशज ईडर से चित्तौड (मेवाड़) चले गये थे और वहीं पर अब तक राज्य करते रहे हैं। गुहादित्य की कुछ पीढ़ियों बाद बप अथवा बप्पा हुआ जिसने मेवाड़ में चित्तौड की गद्दी प्राप्त की थी।

उन दिनों राजा भोला भीम गुजरात में, अणहिलपुर का शृङ्गार था। वह अगाध समुद्र के समान बलवान् और अजेय चतुरंगिणी सेना का स्वामी था, त्रैलोक्य उस चालुक्यराय की शरण में था और बड़े बड़े

"भावनगर के प्राचीन शोध संग्रह" से एक दूसरा ही अभिप्राय विदित होता है। वह इस प्रकार है कि, जब वलभी के सातवें राजा शिलादित्य की मृत्यु हुई उस समय उसकी सगर्भा स्त्री पुष्पवती आरासुर में अम्बा भवानी की यात्रा करने गई हुई थी। जब उसने पति की मृत्यु का समाचार सुना तो वह वहीं ठहर गई। एक गुफा में उसने पुत्र को जन्म दिया इसलिए उस बालक का नाम गुहादित्य पड़ा। इसके बाद रानी ने अपने पुत्र को राजोचित शिक्षा मिले, इस अभिप्राय से एक योग्य ब्राह्मण को सौंप दिया और स्वयं सती हो गई। गुहादित्य, जब बड़ा हुआ तो भांडरे के भीलों का राजा हुआ। वह ब्राह्मण के कुल में पला था इसलिए ब्राह्मण धर्म का ही पालन करता था। उसका पुत्र बप्पा हुआ, वह भी ब्राह्मण धर्म का ही पालन करने लगा और हारीत मुनि की सेवा करने लगा। इन हारीत मुनि ने एकलिंग भगवान् शंकर को प्रसन्न करके उनसे एक सोने का कड़ा प्राप्त किया था। बप्पा की सेवाओं से प्रसन्न होकर वही कड़ा उसको देने लगे, तब बप्पा ने कहा, "महाराज! सोने का कड़ा तो क्षत्रियों को शोभा देता है।" इस पर हारीत मुनि ने उसको क्षात्रतेज प्रदान किया और उसने अपना ब्रह्मत्व मुनि को भेंट कर दिया तथा उनसे स्वर्ण कटक एवं क्षात्रतेज प्राप्त किया। गोहिल कुल के पूर्वज पहले ब्राह्मण कुल को आनन्द देने वाले थे, इस आशय का किसी कवि का श्लोक महाराणा कुम्भकर्ण ने अपने एकलिंग-माहात्म्य में उद्धृत किया है—

आनन्दपुरसमागतविप्रकुलनन्दनो महीदेवः ।
जयति श्रीगुहदत्तः प्रभवः श्रीगुहिलवंशस्य ॥

आनन्दपुर (बढवाण) से आए हुए, ब्राह्मण कुल को आनन्द देने वाले, श्री गुहिलवंश में उत्पन्न हुए, श्री गुहिलदत्त राजा की जय हो।

नीचे लिखे अनुसार समरसिंह बप्पारावल की २६ वीं पीढ़ी में हुआ था। देखो, अचलेश्वर, आबू पर अचलगढ़ के पास वाले मठ का लेख (संवत् १३४२, ई० स० १२८५) मार्गशीर्ष शुक्ला १ (भावनगर प्राचीन शोध संग्रह पृ० ५२)

गढपति उसकी सेवा में रहते थे। सिन्ध के जहाजों पर उसका अधिकार था और धारा की धरती में उसकी फौजी छावनी थी।

इस वंशावली में दिए हुए पुरुषों के नाम पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र के क्रम से ही नहीं दिए गए हैं अपितु कहीं कहीं भाई भतीजों के नाम भी आ गए हैं:—

[इस विषय में ओझाजीकृत 'राजपूताने का इतिहास' भा.१पृ. ३९४—४०० देखें]

अमरसिंह शेवडा नामक एक जैन साधु उसकी (भीमदेव की) सेवा में रहता था, वह मन्त्रों द्वारा स्त्री, पुरुष और देवताओं को वश में करना जानता था। पारकर (१) के यादव और सोढा उसके वश में थे। उसने ब्राह्मणों के घरों को भस्म करके उन्हें देश से निष्कासित कर दिया था। मालव में पल्ली प्रदेश और आबू की पहाड़ियों पर वह घूमता फिरता था।

उन दिनों आबू पर जैतसी परमार राज्य करता था। (२)उसके सलख नामका एक पुत्र और इच्छनकुमारी नाम की एक पुत्री थी जो इतनी रूपवती थी कि उसके रूप की सर्वत्र चर्चा और प्रशंसा होती थी। भीमदेव ने उससे विवाह करने की इच्छा की। आबू, परमार राजा और इच्छनी के विषय में जब कोई बात करता तो वह बहुत मन लगाकर सुनता और इस बात का विचार न करता कि कहने वाले ने सच कहा था या झूठ। उसका रोग इतना बढ़ गया था कि उसे सपने भी इच्छनकुमारी के ही आने लगे। अन्त में, इच्छनकुमारी की मांग करने के लिए उसने अमरसिंह को आबू भेजा।

परन्तु, उसकी सगाई पहले ही चौहानपुत्र के साथ हो चुकी थी। जब भीमदेव के प्रतिनिधि को यह बात मालूम हुई तो उसने कहा, "हे पर्वतपति ! भोला वीर चालुक्य इच्छनकुमारी की बातको सुनकर उसे भूल नहीं सकता है, वह तुमसे तुम्हारी कन्या की मांग करता है, यदि तुम इसे अस्वीकार करोगे और अपनी कन्या का विवाह चौहान के साथ कर दोगे तो वह तुमको आबू के परकोटे से बाहर निकाल देगा। उसके

(१) पारकर के यादव समा, कच्छ के जाड़ेजों के भाई-बन्धु।

(२) पृथ्वीराज चौहान (११७९ ई०–११९२ ई०) के समयमें तो आबू का राजा धारावर्ष (११६३–१२१९ ई०) था जिसके अनेक शिलालेख मिलते हैं।

लिए परमारों से युद्ध करना उतना ही सरल है जितना कि अर्जुन के लिए किसी तुच्छ से युद्ध करना।' जैतसी ने भीमदेव के प्रधान की बातें बहुत शान्ति के साथ सुनी और उसको पांच दिन तक बहुत आदर सत्कार के साथ अपने दरबार में रक्खा, तदनन्तर अपने मन्त्रियों के साथ सलाह की कि, क्या उत्तर देना चाहिए। अन्त में, जैतसी का पुत्र तलवार लेकर खड़ा हो गया और कहने लगा, "यदि भीमदेव मेरा राज्य मांगता तो मैं उसे सहर्ष दे देता परन्तु, उसने जैनमत को अपना लिया है, वह दगाबाज है, वह वशीकरण करता है और भुरकी डालता है; इन्हीं उपायों के द्वारा उसने इतनी पृथ्वी प्राप्त करली है, परन्तु उसे उत्तर दिशा वाले शत्रु का ज्ञान नहीं है।" जैतसी ने भी कहा, "मरुदेश में नौ लाख योद्धा बसते हैं, आबू के नीचे अठारह राजगद्दियाँ हैं और साम्भरपति मेरे साथ है, यदि ये सब मिलकर भी मेरी रक्षा न कर सके तो जिसने माता के पेट में परीक्षित की रक्षा की थी, जिसने जलते हुए जङ्गल में से छोटे छोटे बच्चों को बचाया था, जिसने अपने मामा का वध करके माता पिता की रक्षा की थी, जिसने गोवर्धन को उठाकर व्रज को बचाया था वही गोकुल का स्वामी श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करेगा।" यही उत्तर देकर उसने भीमदेव के प्रधान को विदा किया।

जैतसी ने अपने पांच सम्बन्धियों के हाथ में आबू की रक्षा का भार सौंप दिया और फिर अपने पुत्र से कहा 'अब अपने को चौहान से सहायता मांगनी चाहिए।' ऐसा कहकर सोमेश्वर के पुत्र के साथ जल्दी से जल्दी इच्छनकुमारी का विवाह हो जाने के विषय में एक पत्र अपने हाथ से इस प्रकार लिखा, 'सलख की बहन और जैत की पुत्री को भोला भीम मांगता है और कहता है कि, या तो इच्छनकुमारी का विवाह

उसके साथ करदें अन्यथा वह आबू को ऊजड कर देगा । क्या सिंह का भाग गीदड़ के हाथ पड़ जायगा ? वह मेरे राज्य में लूट करता है, ग्वालिये नित्य उसको शिकायतें लाते हैं, मेरी प्रजा दिनों दिन गरीब होती जा रही है ।" चौहान ने परमार का स्वागत किया । पृथ्वीराज ने दिल्ली कहला भेजा, "मैं भीम का सामना करने के लिए सलख के साथ जाता हूं ।" सोमेश्वर का पुत्र घर से निकला, वह सलख परमार के साथ उसके घर जाने को तैयार हुआ ।

जब भोलाभीम ने ये बातें सुनी तो मानों उसके मुंह पर थप्पड़ पड़ा । उसने अपने मन्त्रियों को बुलाकर तैयार होने की आज्ञा दी और रणदुन्दुभि बजा दी । "ऐसा कौन है जो चालुक्य के शत्रु को शरण देकर सोते हुए सिंह को जगाता है, पृथ्वी को धारण करने वाले मणि-धर सर्प के मस्तक पर से मणि लेने का प्रयास करता है, जानबूझ कर यम के मुंह में अपना हाथ देता है ?" ऐसा कहते हुए शौर्य से उसका शरीर प्रकम्पित होने लगा, उसने कच्छ और सोरठ में आज्ञा पत्र भेजे । धूल के बादल आकाश में छा गए, चारों ओर से बड़ी बड़ी सेनाएं आकर एकत्रित होने लगीं । गिरनार का राजा, लोहाणा कटारी, वीरदेव बाघेला, राम परमार, पीरम का राजा, राणिङ्ग झाला, सोढ़ा शार्ङ्गदेव और गंगदाभी आदि सभी शूरवीर उपस्थित हुए । अमरसिंह शेवडा और जैन मन्त्रीश्वर चाचिंग तो वहां थे ही । अब, भोलाभीम ने आबू पहुँचकर गढ़ को चारों ओर से घेर लिया । कितने ही दिनों तक चालुक्य और परमार की सेनाओं में युद्ध होता रहा । अन्त में सलख और उसका पिता जैत पीछे हट गये, परन्तु, ज्यों ज्यों वे पीछे हटते गए भूमि को रक्त से लाल करते गए । भीम आगे बढ़ा और अचलेश्वर पर उसका अधिकार हो गया । परमार मरुदेश की ओर भाग गये । गढ़

चालुक्यों के हाथ में आगया और भीम जयध्वजा फहराता हुआ आबू के शिखर पर चढ़ गया।

इसी समय इन राजपूतों का एक और सामान्य शत्रु इनके शिर पर मेघ के समान गर्जन कर रहा था। वह इनके आपसी झगड़ों की ताक ही लगाए बैठा था। यह शाहबुद्दीन गोरी था। वह कहता था कि, यह पृथ्वी न हिन्दुओं की है न म्लेच्छों की है, जिसकी तलवार में जोर है वही इसका स्वामी है।" उस समय भीमदेव के पास कुछ बुद्धिमान् सलाहकार थे और यदि वह उनकी सीख मान लेता तो भारत-वर्ष की ऐसी दुर्दशा कदापि न होती। परन्तु भोले अथवा पागल भीम ने अपना नाम सार्थक करते हुए उनमें से एक की भी न सुनी। पीरम के गोहिल सामन्त ने कहा, "लड़ाई बन्द कर देनी चाहिए, परमार का कोई बड़ा अपराध नहीं है, यदि वह सिंह की सी कमरवाली इच्छनी को भेट करदे तो बस यही पर्य्याप्त है। हमें इसी के लिए प्रयत्न सोचने चाहिए।" राणिङ्गझाला ने कहा "युद्ध के समय हमें युद्ध की ही बात सोचनी चाहिए, व्यर्थ बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए, हां, इस बात का विचार करना चाहिए कि शाह से दुश्मनी न बंध जावे।" वीरदेव बाघेला ने कहा, "हमें चौहान से पारस्परिक समझौता कर लेना चाहिए और मिलकर शाह का सामना करना चाहिए। उसको हराने से हमारे राज्य का विस्तार और कीर्ति का प्रसार होगा।" अमरसिंह ने धीरे से कान में कहा, "तुम लोग जो कुछ कहते हो वह सब सही है, परन्तु राजा को इनमें से एक भी बात अच्छी न लगेगी।" उधर राजा स्वयं अपने झगड़े को चालू रखने का निश्चय किए बैठा था। वह कहता था "यदि राजपूत ने एक बार अपमान सहन कर लिया तो कोई भी उसका

अपमान करने की हिम्मत कर बैठेगा, हजारों दोषों का पाप उसके शिर पर मँढ जावेगा, वह नरक में पड़ेगा, और कोई भी उसका उद्धार न कर सकेगा ? राजपूत तो अपनी तलवार ही के बल पर संसार के आवागमन से मुक्ति प्राप्त कर सकता है, यही उसके भाग्य का विधान है। हिन्दुओं में परमार और चोहान, दो ही बड़े लडाकू समझे जाते हैं, जब मैं चौहानों को निःशेष कर दूंगा तभी गोरी से मुकाबला करूंगा।" इस प्रकार भीम ने इस सम्बन्ध में दृढ संकल्प व्यक्त किया और रणभेरी बजा दी।

इधर चौहान पर दोनों ओर से आक्रमण हुआ और साम्भर के राजा की दशा गोरी और गुर्जर के बीच में ढोल के समान हो गई; वह दोनों ओर से पिटने लगा। अपने हिन्दू शत्रुओं के विरुद्ध तो वह भवानी से इस प्रकार प्रार्थना करने लगा—"हे दुर्गे! जैन धर्म ने चारों ओर अधिकार कर लिया है, अब तू इन विश्वासघातकों को वश में करले, अब राजाओं का कोई मान नहीं रहा है, सामन्तों की सत्यता नष्ट हो चुकी है, जहां वेद ध्वनि गूंजती थी और चण्डीपाठ से वायुमंडल मुखरित होता था, वहां अब जैनों की अपवित्र बातों का प्रचार होता है। हे चामुण्डे! अपनी शक्तिशालिनी तलवार को ग्रहण कर और रक्षा कर, हे काली! महाप्रलयकालीन यमदूतों का रूप धारण करके इन जैनों का नाश करदे, तू पापों पर विजय प्राप्त करने वाली है, देवताओं का रक्षण करने वाली है और दानवों का दमन करनेवाली है, इसलिए इनका नाश करदे। तेरी जय हो! जय हो!" रात्रि के समय स्वयं चंद बारहठ ने गुजरात की सेना पर आक्रमण किया। यद्यपि उस समय चालुक्यों की सेना लोहे के दुर्ग की दीवारों के समान दृढ़ थी, चारों ओर हाथी खड़े थे और जाडेजा को परास्त करने वाले

तथा कच्छ और पाञ्चाल को लूटने वाले वीर झालों का कड़ा पहरा भी लगा हुआ था, परन्तु दुर्गा के प्रताप से चन्द की पूर्ण विजय हुई। उस समय रात्रि के अन्धकार में ऐसी गड़बड़ी मची कि भीम के योद्धा आपस में ही एक दूसरे को मारने लगे और यद्यपि स्वयं राजा ने भी उस युद्ध में भाग लिया तथा उसके हाथी के मर जाने व तलवार के टूट जाने पर भी एक मात्र कटार से बराबर लड़ता रहा परन्तु अन्त में उसका बड़ा भारी नुकसान हुआ और उसको पीछे हटना ही पड़ा।

इसके बाद भीम की गतिविधि पर दृष्टि रखने के लिए थोड़ी सी फौज को छोड़कर और सेना का बड़ा भाग अपने साथ लेकर चौहान सुल्तान से मुकाबला करने के लिए आगे बढ़ा और उसको भी युद्ध में परास्त किया।

भीमदेव के काका का नाम सारङ्गदेव था। जब वह मरा तो उसके सात लड़के थे, जिनके नाम, प्रतापसिंह, अमरसिंह, गोकुलदास, गोविन्द हरिसिंह. श्याम और भगवान थे। ये सब के सब वीर योद्धा थे और इन्होंने महाबली राणिङ्ग झाला का बध किया था। किसी अज्ञात कारण वश भीमदेव इनसे अप्रसन्न हो गया था इसलिए ये लोग सोरठ की पहाड़ियों में रहते थे और यादवों के देश में लूटपाट करके अपना निर्वाह क.ते थे। धीरे धीरे ये लोग इतने बली हो गए कि भीमदेव को इन पर चढ़ाई करनी पड़ी। राजा का डेरा एक नदी के किनारे पर लगा हुआ था और उसका हाथी नदी में स्नान कर रहा था, इतने ही में प्रताप और अमरसिंह ने आकर उस हाथी और उसके महावत को मार डाला। इस अपमान से भीमदेव के तन बदन में आग लग गई। पहले तो उसने इनको पकड़ लेने का ही विचार किया था परन्तु, अब तो उसने

उनको पकड़ कर मार डालने में भी कोई दोष न समझा। जब भाइयों को उसके इस मनसूबे की खबर मिली तो उन्हें गुजरात छोड़कर भागने के अतिरिक्त और कुछ न सूझा और वे युवक पृथ्वीराज की शरण में चले गए। पृथ्वीराज ने उनका बहुत आदर सत्कार किया और उनको गावों के पट्टे तथा शिरोपाव आदि दिए।

एक बार सोमेश्वर का पुत्र, पृथ्वीराज दरबार में अपने सिंहासन पर विराजमान था और सामन्तों के मध्य तारागण के बीच में नवीन चन्द्रमा के समान शोभित हो रहा था। उसी समय प्रतापसिंह सोलंकी और उसके भाई भी राजा को नमस्कार करने के लिए दरबार में उपस्थित हुए। राजसभा में, उस समय महाभारत का प्रसंग चल रहा था और चौहानों के पराक्रम का गुणगान हो रहा था। कहते हैं कि उसी समय प्रतापसिंह ने अपनी मूंछ पर हाथ रखा और पृथ्वीराज के चाचा कन्ह चौहान ने इसको प्रत्यक्ष अपमान समझकर बहुत क्रोध किया तथा तलवार खींचकर प्रतापसिंह के शरीर के दो टुकड़े कर डाले। सोलंकी के मरते ही उसके भाई अमरसिंह और उसके साथियों में भी उत्तेजना फैल गई और बदला लेने के लिए वे सभा-भवन में घुस गए। पृथ्वी-राज उठ कर महल में चला गया और युद्ध की दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी। जिस प्रकार दीपक पर पतंगे टूट टूट कर पड़ते हैं उसी प्रकार सोलंकी वीर कन्ह पर आक्रमण करने लगे। एक प्रहर तक तलवार और यमदंत (१) (कटारी) की मारामार चलती रही, लाशों पर लाशें पड़ने लगी। अन्त में एक एक करके प्रतापसिंह के सभी भाई सूर्यमंडल को बेध कर स्वर्ग चले गए। इस प्रकार विधाता के समान कुपित,

---

(१) इसको जमदन्त या जम्बिया कहते हैं।

सोमेश्वर के भाई, कन्ह ने भीम के सातों भाइयों को यमलोक पहुंचा कर अपना क्रोध शान्त किया।

पृथ्वीराज ने जब यह समाचार सुना तो उसने कन्ह को बहुत कुछ कहा सुना, "तुमने यह क्या किया ? सब लोग कहेंगे कि चौहानों ने चालुक्यों को घर बुलाकर मार डाला।" तीन दिन तक अजमेर नगर में हड़ताल रही और चारों ओर 'शोक ! शोक !' का शब्द छा गया। शहर की गलियों में खून की नदियां बह चलीं। चन्द वरदाई ने कीर्ति-गान किया, "धन्य ! धन्य !! चालुक्य ! तुम्हारे माता पिता धन्य हैं, तुमने स्वप्न में भी युद्ध से भागने का विचार नहीं किया।"

जिस प्रकार पवन के द्वारा गन्ध चारों ओर फैल जाती है उसी प्रकार यह समाचार भी शीघ्र ही देश देशान्तर में जा पहुँचा। जब भीम-देव चालुक्य ने सुना कि सारङ्गदेव के पुत्र मारे गए हैं तो वह क्रोध और शोक से उबल पड़ा। उसने चौहान को बदले के लिए चुनौती भेजी और उसने भी इस आमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसके बाद भीम ने अपने सामन्तों को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा दी, परन्तु उसके प्रधान वीरदेव ने वर्षाऋतु के बाद हमला करने की सलाह दी। भीमदेव ने इस बात को मान लिया और शरद् ऋतु में चढाई करने का विचार किया। बात की बात में समय निकल गया और राजा का क्रोध स्वतः कम पड़ गया।

चंद बारहट यहीं से गुजरात के विषय में लिखना बन्द कर देता है और यह वर्णन करने लगता है कि किस प्रकार अनङ्गपाल तपस्या करने के लिए बदरिकाश्रम चला जाता है और पृथ्वीराज गद्दी पर आसीन होता है। यह युवक राजा गोरी के शाह को अनेक बार परास्त

करता है, फिर कन्नौज के शक्तिशाली शासक जयचन्द को हराकर वह उसकी वागदत्ता देवगिरि की राजकुमारी शशिव्रता को हर लाता है। इसके अतिरिक्त उसने इस राजपूत रोलैन्डो (१) के अन्यान्य पराक्रम-पूर्ण कार्यों का भी विस्तृत वर्णन किया है। इस विवरण के अनन्तर कवि पुनः भीमदेव को ग्रहण करके उसके और चौहानों के अनेक झगड़ों के कारणों का वर्णन करता है। पाठकों को इस राजपूत-काव्य की शैली से परिचित कराने के लिए इस स्थल से हम प्रायः चन्द कवि का ही अनुसरण करते हुए लिखेंगे।

महामहिमशाली दुर्दमनीय और भीम-पराक्रम गुजरात नरेश चालुक्य भीमदेव के हृदय में सांभर का सोमेश्वर सदैव चुभता रहता था और दिल्लीपति पृथ्वीराज अंगारे के समान जलन पैदा करता था। उसने अपने मंत्रियों को बुलाया और चतुरंगिणी सेना तैयार की। वह कहने लगा, "अब, मैं शत्रुओं को कुचल डालूंगा और समस्त पृथ्वी पर एक छत्र राज्य करूँगा।" फिर, उस चालुक्य ने वीर झाला राणकदेव को बुलाया और मानों वह आग ही से तपाया गया हो इस प्रकार

---

(१) रोलैण्डो अथवा रोलाण्ड (Roland), आठवीं शताब्दी में होने वाले फ्रांस के प्रख्यात राजा शार्लमन (Charlemagne) का प्रसिद्ध सामन्त एवं भतीजा था। वह बहुत नेक, वीर, एवं स्वामिभक्त था। उसके पराक्रमपूर्ण कार्यों का वर्णन योरप की प्रसिद्ध वीररसपूर्ण पुस्तक 'दी सांग्स् आफ रोलाण्ड' में किया गया है। इस पुस्तक की रचना १०६६ ई० से १०६४ ई० के बीच में हुई थी। स्पेन-विजय के लिए जब शार्लमन ने चढ़ाई की थी तब रोलांड' उसके साथ था। वापस लौटते समय उन लोगों पर सरैसनों (मुसलमानों) ने अचानक आक्रमण कर दिया, उसी हमले में रोलैण्डो मारा गया था। यह सन् ७७८ ई० की बात है। [दी न्यू स्टैण्डर्ड एन्साइक्लोपीडिया पृ० १०६६]

आवेश की गर्मी में आकर अपना हृदय उसके आगे खोलकर रख दिया। उसने सभी अच्छे अच्छे योद्धाओं को निमन्त्रित किया और उनसे कहा, "अब हम लोगों को जल्दी चढ़ाई करनी चाहिए और जिस प्रकार जवान हाथी पृथ्वी पर से धूल को उलीच देता है उसी प्रकार चौहान के राज्य को नष्ट कर देना चाहिए, जिस प्रकार भील लोग चूहों के बिलों को नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार हम लोगों को सांभर देश को नष्ट कर देना चाहिए।" कनककुमार, राणिकराज, चौरासिम [चूडासमा] जयसिंह, वीर धवलांगदेव, और सारंगमकवाणा आदि सभी योद्धागण निमन्त्रित किए गए थे। पिछले झगड़े की याद करते हुए उसने कहा, "भीम और काठी युद्ध में बहुत वीरता दिखाते हैं, चलो हम वीरों की तरह बदला लेंगे, रणघोप मेरे हृदय को आनन्द से भर रहा है। जहां पर मधुमक्खियों के छत्ते लगे हुए हैं ऐसी गुफा में गर्मी, जाड़ा और बरसात सहते हुए तपस्या करके तपस्वी लोग कितने ही वर्षों में जिस मुक्ति को प्राप्त करते हैं उसको हम लोग क्षण भर में प्राप्त कर लेंगे।' भीम ने फिर अपने साथियों को इस प्रकार उत्तेजित किया "जिस प्रकार राहु चन्द्रमा से लड़ा था उसी प्रकार हम चौहानों से युद्ध करेंगे। हमें जीवन का मोह छोड़कर युद्ध करना है, तभी तो पृथ्वी हमारे हाथ में आवेगी, निर्भय होकर सती के द्वारा फेंके हुए अक्षतों के समान जो अपने जीवन को (अभोग्य) समझता है वही पृथ्वी का स्वामी होता है।

जिस प्रकार छोटे छोटे सोते आ आ कर नदी में मिलते हैं उसी प्रकार भिन्न भिन्न राजों की सेनाएँ इकट्ठी होने लगीं। इन योद्धाओं के साथ बहुत से हाथी और हवा से बातें करने वाले घोड़े थे। हाथियों की

चिंघाड ऐसी मालूम होती थी मानों समुद्र गरज रहा हो अथवा बादल गड़गड़ा रहा हो। सूर्यास्त के समय जिस प्रकार समुद्र प्रसन्न दिखाई देता है उसी प्रकार योद्धागण भी हर्षातिरेक से युक्त थे, उन्हें अपने घरों और जागीरों की चिन्ता न थी, वे तो ब्रह्म के ध्यान में निमग्न थे। जिस प्रकार सती अपने पति के साथ प्राण देने को उत्सुक रहती है उसी प्रकार ये लोग भी युद्ध में अपने स्वामी का साथ देने के लिए तत्पर हो रहे थे। जिस प्रकार क्षितिज से उठ उठ कर बादल इकट्ठे होते हैं उसी प्रकार यह विशाल सेना भी निरन्तर बढ़ती जा रही थी। भीम के सिर पर छत्र था, वह युद्धनद का जल पीने के लिये तृषार्त था। हाथों में धनुषबाण लिए हुए, काजल के समान काली भयंकर आकृतिवाले भील लोग उसकी सेना के आगे चल रहे थे। उनके पीछे पीछे हाथियों की कतार चल रही थी, जिनकी चिंघाड से पर्वत और जंगल गूंज उठे थे। उनके गले की छोटी घंटियां और कमर पर लटकते हुए बड़े बड़े घण्टे निरन्तर बजते जा रहे थे और दूर से देखने पर तो वे ऐसे दिखाई पडते थे मानों पहाड़ के पहाड़ ही उलटते चले आ रहे हों। वे मार्ग में पेड़ों को तोड़ते व उखाड़ते जाते थे, उनकी दन्तपंक्ति सारसों की पंक्ति के समान चमकती थी और उनके चलने से पृथ्वी कम्पायमान हो रही थी। हाथियों के पीछे पीछे ढालों व तलवारों से सुसज्जित पैदल सिपाहियों की पंक्तियां चल रहीं थी। योद्धाओं के इस विशाल समूह को देखकर यह संदेह होता था कि मानों अपनी मर्य्यादा को छोडकर समुद्र ही बढ़ा चला आ रहा हो। इस सेना के दबदबे से स्वर्ग, मृत्यु और पाताल, तीनों लोक कांपने लगे थे।

ज्योंही सोमेश्वर की सीमा में सेना पहुँची कि उस देश के निवासी घर बार छोड़कर भाग गये और सेना ने लूट मचा दी। अपनी प्रजा की

पुकार सुनकर सोम घोड़े पर चढ़कर उसी प्रकार शीघ्र तैयार हो गया जिस प्रकार सती अपने पति के साथ जाने को तैयार हो जाती है। मूर्तिमान् क्रोध के समान पृथ्वीराज को तो उसने दिल्ली में ही रहने दिया और दूसरे सामन्तों को अपने साथ लिया जिनमें खींचीराव प्रसंग जाम यादव, देवराज, शत्रुओं का संहार करने वाला भानु भाटी, उद्दीग-बाहु, बलीभद्र, और कैमास मुख्य थे। इसके बाद, स्नान, ध्यान, पुण्य दान करके अपने इष्टदेव की माला फेर कर, प्रातःकालीन प्रकाश को देखकर खिले हुए कमल के समान प्रसन्न-मुख, सोम ने असंख्य सेना साथ लेकर युद्ध के लिए प्रस्थान किया। कन्हदेव चौहान और युद्ध में पर्वत के सनान अचल रहने वाला जयसिंहदेव उसके साथ थे। पृथ्वी डोलने लगी, भार के मारे शेषनाग का मस्तक झुकने लगा। चालुक्य-राज भी आ पहुंचा, साम्भरपति उसका सामना करने को तैयार हुआ और रणवाद्य बजने लगे। सोम की सेना को देखकर शत्रुओं का कलेजा आधा रह गया।

अब, दोनों सेनाओं में युद्ध शुरू हुआ। सोम भी उत्साही था और भीम भी रणक्षेत्र में पीठ दिखाना न जानता था। दोनों ओर के सिपाहियों की ढालें इधर उधर हिलती हुई ऐसी शोभित होती थीं मानों तम्बाकू के नये नये पत्ते पवन से प्रकम्पित हो रहे हों। कन्ह ने युद्ध आरम्भ किया, नौबतें बजनें लगी, तलवारें खडकने लगीं, भयंकर मार काट जारी हुई और तीन घण्टे तक कन्ह पर तीरों और तलवारों की निरन्तर वर्षा होती रही। अन्त में बिजली के समान चमकती हुई तलवार को फिराते हुए कन्ह ने ऐसी वीरता दिखाई कि भीम की सेना को पीछे हटना पड़ा। उसने बड़े बड़े घमण्डियों को पकड़ कर जमीन पर पछाड़ दिया जैसे बड़े बड़े वृक्षों को पवन का वेग पृथ्वी पर लिटा

देता है। बहुत से अश्वों की पीठ सूनी हो गई और यमदूतों की भूख को मिटाते हुए उसने भीम की सेना को आधी रखदी। हाथों में खप्पर लेकर डाकिनियां वहां आ पहुंचीं और आनन्द मनाने लगीं, मांसाहारी भूत भी भर पेट भोजन मिलने के कारण तृप्त हो गए।

सोमेश्वर चौहान और भीम में भयंकर युद्ध हुआ। पृथ्वी भय से कांपने लगी और ऐसा मालूम होने लगा मानों दो पहाड़ ही आपस में भिड पड़े हों। लाश पर लाश पडने लगी, खून की नदियां बह चलीं और पृथ्वी रक्त से भींग कर इस प्रकार सिक्त हो गई मानों वर्षा हुई हो। युद्ध के मद में मतवाले योद्धा खून से लथपथ होकर भी शस्त्र लिए लड़ते रहे, प्राणों के साथ प्राण मिलगए और एक भी अप्सरा अविवाहिता न रही। अपने मित्रों की दाहिनी बाजू यादव जाम इस तरह गरज रहा था मानों पृथ्वी का नाश ही कर डालेगा। उधर से, मानों पृथ्वी पर आग लगाता हुआ खंगार उसका सामना करने के लिए आ खड़ा हुआ। प्रतिष्ठा की घाटी में दोनों कूद पड़े और मतवाले सांड़ों की तरह जूझने लगे। जिन हाथियों पर वे प्रहार करते थे, वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों काले पहाडों पर से रक्त के झरने झर रहे हैं। देवता, दानव और नाग उन्हें देखकर आनन्दित हुए, आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी।

बायीं ओर सफेद हाथी पर बैठकर बलीभद्र युद्ध कर रहा था, उसके घोड़े भी सफेद रंग के ही थे, घण्टों और घण्टियों का तुमुलनाद हो रहा था।

अब, स्वयं सोमेश्वर आगे आया और गुजरात के स्वामी की ओर

इस प्रकार देखने लगा मानों मुचकुन्द (१) ही नींद से उठकर देख रहा हो। दोनों राजाओं के बीच इस तरह बाण चल रहे थे मानों बृहस्पति और शुक्र के बीच में मन्त्र-प्रसार हो रहा हो। दोनों ही देश-रक्षक राजा थे, छत्रपति थे, दोनों कवच पहने हुए थे, दोनों के आगे नौबतें बज रहीं थी, दोनों ही बड़े बड़े उपाधि धारी थे, दोनों ही हिन्दू-धर्म की मर्य्यादारूप थे और दोनों ही सच्चे राजपुत्र थे। उस समय रणक्षेत्र

---

(१) जब श्रीकृष्ण ने कंस को मार डाला तो उसके श्वसुर जरासंध ने उनको मथुरा से भगा देने के लिए कितने ही विफल प्रयत्न किये। अन्त में वह अपने साथ कालयवन को लाया जिसने भगवान् कृष्ण को भगा दिया और वे भाग कर सोरठ के गिरनार पर्वत में जा छिपे। कालयवन ने उनका पीछा किया। जब श्रीकृष्ण गिरनार की गुफा में आए तो उन्होंने वहां मुचकुन्द को सोते हुए पाया और बिना कुछ छेड़छाड़ किए ही अपना पीताम्बर उसको उढ़ा दिया। मुचकुन्द ने बड़े भारी प्रयत्न से ऋषियों को प्रसन्न करके यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि जो कोई उसको नींद से जगायेगा वही उसकी दृष्टि पड़ते ही भस्म हो जायगा। श्रीकृष्ण का पीछा करते करते जब कालयवन वहां पहुंचा तो उसने समझा कि पीताम्बर ओढ़े हुए श्रीकृष्ण सो रहे हैं इसलिए उसने तुरन्त एक लात मारी और पीताम्बर खींच लिया। मुचकुन्द की नींद उड़ गई और उसके देखते ही कालयवन जल कर भस्म हो गया। इसके बाद श्रीकृष्ण ने मुचकुन्द को वरदान दिया कि, अगले जन्म में तू मेरा प्रसिद्ध भक्त होगा और मोक्ष प्राप्त करेगा।' यह कथा प्रेमसागर के ५२ वें अध्याय में लिखी है। गुजरात के लोग मानते हैं कि जूनागढ का प्रसिद्ध कवि नरसी महता मुचकुन्द का ही अवतार था। नरसी बड़नगर का नागर ब्राह्मण था। वह अपने कुल में पहला पुरुष था जिसने महादेव की भक्ति छोड़कर श्रीकृष्ण की भक्ति की थी इसीलिए उसको बहुत से दुःख भी भोगने पड़े। यह लगभग ५०० वर्ष पहले हुआ था और इसकी कविता गुजराती भाषा में बहुत लोकप्रिय है। राजस्थान में भी 'नरसी भक्त का माहेरा' भक्त लोग प्रायः सर्वत्र गाते हैं

ऐसा दिखाई पड़ रहा था मानों वर्षाऋतु की घनघोर काली अंधियाली और तूफानी रात्रि में पर्वतों पर दावानल जल रहा हो। रणवाद्य सुनकर महादेव की समाधि टूट गई, वे उठकर तालियां बजाकर नाचने कूदने लगे और अपनी मुण्डमाला को हिलाने लगे, नारद भी आनन्दित हो गए, अप्सराएँ अपने अपने विमानों में बैठकर आकाश में आ पहुँचीं और एक दूसरी से होड़ करने लगी, यक्ष और गन्धर्व भी चकित होकर इस दृश्य को देखने लगे और सोचने लगे कि अब महाप्रलय का समय निकट ही आ पहुँचा है। इस रणयात्रा में प्राणत्याग करने वाले योद्धा सीधे वैकुण्ठ को चले गए। सच्चा शूरवीर सोमेश्वर योद्धा इस युद्ध में खण्ड खण्ड होकर गिर पड़ा। जब उसके सामन्तों ने देखा कि सचमुच ही उनका सरदार लहू लुहान होकर धराशायी हो गया है तो उनमें से बहुतों ने लड़ते लड़ते उसी के साथ इस संसार से मुक्ति प्राप्त की। उस समय वह रणक्षेत्र महाभारत के रणक्षेत्र के समान हो रहा था। सोमेश सोम (चन्द्र) लोक को चला गया और चालुक्य ने अपना हाथ रोक लिया। पृथ्वी जय जयकार के शब्द से गूंज उठी और देवता 'शोक! शोक!!' चिल्ला उठे क्योंकि उन्हें भय हुआ कि सोमेश्वर स्वर्ग में आकर उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण कर लेगा।

जब पृथ्वीराज ने लड़ाई के समाचार सुने तो उसने बची हुई सेना को वापस बुला लिया और अपने पिता के निमित्त षोडश पिण्ड-दान किया। बारह दिन तक उसने पृथ्वी पर शयन किया, एक बार भोजन किया और स्त्रियों के संसर्ग से दूर रहा। उसने ब्राह्मणों को असामान्य दान दक्षिणा दी। सोने से सींग और खुरी मंढी हुई तथा दूसरे आभूषणों से सुसज्जित आठ हजार श्रेष्ठ गौएं उसने ब्राह्मणों

को दान में दे दीं। इस प्रकार षोडश-दान की दूसरी वस्तुएँ भी विप्रों को भेट कीं।

इसके बाद उसने अपने पिता का बदला लेने का निश्चय किया और जब तक बदला न ले ले तब तक पगड़ी न बांधने की प्रतिज्ञा की। उसने बार बार कहा, "भीम चालुक्य को मार कर मैं उसकी अंतडियों में से अपने पिता को निकालूंगा। धिक्कार है उस पुत्र को जो अपने पिता का बदला न ले।" यह कहते हुए राजा की आंखें क्रोध से लाल लाल हो गईं और वह आपे से बाहर हो गया। उसने एक सेना तैयार की और पहले सिंहासन पर बैठ कर फिर युद्ध में जाने का निश्चय किया। अभिषेक का कार्य संपादन करने के लिए पृथ्वीराज ने, राजाओं की रीति भांति को जानने वाले, धार्मिक, यज्ञ और बलि के काम में निपुण, ब्रह्म के समान पापों का नाश करने में कुशल, भूत, वर्तमान, और भविष्य को जानने वाले ब्राह्मणों को बुलवाया। अब, सोमेश के निमित्त प्रायश्चित्त करने के लिए बलि आदि की क्रियाएं ठाटबाट के साथ सम्पादित होने लगीं। शत्रु के देश में जाकर युद्ध में विजयप्राप्ति की कामना से राजा ने विपुल दान दिया, उसने ब्राह्मणों को एक एक हजार मोहरें और एक एक हजार रुपये आदर सहित भेंट किये। निगमबोध नामक स्थान पर, जहां युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ था, पृथ्वीराज का शास्त्रोक्त विधि के अनुसार राजतिलक हुआ। चन्द्रमा के समान (कान्तिमान्) मुखमण्डल वाली मृगनयनी स्त्रियों ने मङ्गलगान किया। उनके कण्ठों में बहुमूल्य हार सुशोभित थे और उनका स्वर कोयल के स्वर के समान मधुर था। 'जय! जय!! पृथ्वीराज! जय!' का शब्द चारों ओर गूँज रहा था। इच्छनी देवी और पृथ्वीराज का गठबन्धन हुआ और वे उस समय शची और पुरन्दर के समान विराजमान हुए।

नगर की भी उस समय ऐसी शोभा हो रही थी मानों इन्द्र ने ही इन्द्रासन ग्रहण किया हो। सामन्तों को धन, हाथी, घोड़े, और रथ प्रदान किए गये। फिर, दरबारियों ने राजा को भेंट की। कन्ह चौहान ने सबसे पहले राजतिलक किया और एक हाथी भेंट किया। उसके बाद निर्डर राठौड़ ने राजतिलक किया और फिर अन्य दरबारियों ने। सफेद घोड़े के बालों के चंवर राजा पर डुलाए जा रहे थे जो ऐसे मालूम होते थे मानों चन्द्रमा के पीछे सूर्य-रश्मियां खेल रही हों, सोने के दण्ड पर श्वेत छत्र उसके शिर पर शोभित था। सुल्तान को कितनी ही बार पकड़ कर छोड़ देने वाले महा शूरवीर पृथ्वीराज की उस समय अनुपम शोभा थी। इसके बाद यज्ञयागादिक से नवग्रह की शान्ति हुई, समस्त प्रजा ने राजा को नमस्कार किया और परम महोत्सव मनाया।

पृथ्वीराज के हृदय में भीम निरन्तर सालता रहता था, शत्रु के प्राण लिए बिना उसकी प्रबल कोपाग्नि शान्त नहीं हो सकती थी। वह अपने सामन्तों के सामने बार बार इन शब्दों को दुहराता था, "भीम ने सोमेश्वर वध किया, हरि! हरि!" परमार ने उसको बहुत समझाया और कहा, "तुम अपने पिता के लिए दुखी मत हो, जिसका शरीर युद्ध में तलवार की धार से कट जाता है उसकी कीर्ति सुरलोक तक फैल जाती है, यही क्षत्रिय का परम धर्म है।" सिन्ध परमार ने कहा "मेरी बात सुनो, गुजरात को ऊजड़ करदो, इससे स्वर्गवासी सोमेश की आत्मा को शान्ति मिलेगी। सुलतान भी तुम्हारे नाम से कांपता है, फिर चालुक्य तो चीज ही क्या है?" पृथ्वीराज ने कहा, "मैंने स्नान करके पिता को पिण्डदान देते समय प्रतिज्ञा की है कि मैं पिता का बदला लूंगा, भीम को कैद करके मैं उससे सोमेश

को मागूँगा, योगिनी, वीर और बैताल आदि को तृप्त करूँगा।" यह कहकर पृथ्वीराज शयन-कक्ष में चला गया। प्रातःकाल होते ही योद्धागण पुनः एकत्रित हुए। राजा ने कन्ह चौहान को बुलाया। जब वह आया तो समस्त दरबारी हाथ जोड़कर खड़े हो गये क्योंकि कन्ह को 'नरव्याघ्र' का पद प्राप्त था। वज्र के समान दृढ शरीर वाला, रातदिन आंखों पर पट्टी बांधे हुए वह सांकलों से जकड़े हुए शेर के समान दिखाई देता था। जाम यादव, बलीभद्र, राजाधिराज कूर्मदेव, चन्द पुण्डीर आतिथेय चौहान जो पाण्डव भीम के सदृश था, युद्धक्षेत्र में अग्नि के समान तेजस्वी लंगरीराय और विजयी गहलोत तथा अन्य सभी छोटे मोटे सामन्तों ने सभा में यथास्थान आसन ग्रहण किए। दयामयी दुर्गादेवी जिस पर प्रसन्न थी, ऐसा चन्द वरदायी भी उपस्थित हुआ। सभी को सम्बोधित करके पृथ्वीराज ने कहा, "मेरे पिता का बदला लेने के लिए आप लोग चलिए, सेना तैयार कीजिए और गुर्जर से युद्ध करने के लिए कटिबद्ध हो जाइये। हमें चालुक्य वंश को जड़ मूल से उखाड़ फेंकना है। सोमेश्वर को पराजित करके भीम ने अपना घट लबालब भर लिया है, अब हमें चालुक्य-वंश को कच्चे बच्चे सहित नष्ट कर देना है। वह यदि घोर से घोर वन में भी जाकर छुपेगा तो हम उसे खोज लेंगे। यदि मैं ऐसा करने में समर्थ न हुआ तो यह समझूंगा कि ब्राह्मणों ने मेरा नाम पृथ्वीराज निरर्थक रखा है।"

पृथ्वीराज के कथन से सभी सामन्त सहमत हुए और 'मुहूर्त देखकर चलने से ही हमारी जय होगी' यह कहकर उन्होंने ज्योतिषराय को बुलाया। ज्यौतिषी ने आकर शकुन का विचार किया। जगज्ज्योति ज्योतिषी ने राजा को उत्साहित करते हुए कहा, "यही घड़ी बहुत शुभ है, तुरन्त रवाना होने से महाराज की जय होगी और वैर का बदला

पूरी तरह लिया जा सकेगा, इस समय ऐसा ही लग्न पड़ा है कि महाराज के हृदय में जो भी बात हो वही पूरी होगी। शत्रु के ग्रह मन्द पड़े हुए हैं। यदि वह देवता भी हो तो उसे इस समय परास्त होना ही पड़ेगा।" यह सुनकर चौहान राजा बहुत प्रसन्न हुआ। जगज्ज्योति ने फिर कहा, "महाराज, आप भीम को परास्त करेंगे और उसे बांध लेंगे। यदि इस शकुन में मेरे कथनानुसार आपका कार्य सिद्ध न हो तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज के बाद मैं ज्योतिष-शास्त्र के अध्ययन का कार्य छोड दूँगा।"

पृथ्वीराज ने अपनी सेना सज्जित की और निश्चित घड़ी आते ही नौबत बजवाई। सेना लेकर वह नगर से बाहर आया और एक उपयुक्त स्थान पर जहां विशाल वृक्ष खड़े हुए थे और जहां पृथ्वी दृढ थी खेमा गाड दिया गया। देवों और दानवों ने जय जयकार किया। प्रातःकाल होते ही चारों ओर सेनाएं आ आकर सांभर में चौहान के चारों ओर जमा होने लगीं। लड़ाई के गीत आरम्भ हुए और पांचों प्रकार के रणवाद्य बजने लगे। गुजरात का नाश करने के लिए सेना लेकर पृथ्वीराज रवाना हुआ। भीम के गुप्तचरों ने जाकर खबर दी कि युद्धशील पृथ्वीराज चौसठ हजार योद्धाओं के साथ गुजरात पर चढाई करके आ रहा है, उसकी सेना समुद्र की उत्ताल तरंगों के समान उमड़ती हुई बढ़ रही है। महादेव के शिर पर जल छोड़कर कन्ह चौहान तथा गोविन्दराव द्वारा की हुई प्रतिज्ञा का हाल भी उन्होंने कह सुनाया और प्रार्थना की, 'महाराज अब अपने को भी तलवार से उसका सामना करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।'

यह समाचार सुनकर भीम बहुत कुपित हुआ। उसके अंग प्रत्यंग शौर्य से फड़क उठे और आंखें लाल हो गईं। उसने तुरन्त ही राज-मन्त्रियों को बुलाकर युद्ध के लिए तैयारियां करने की आज्ञा दी। बात की बात में सभी परगनों में आज्ञा पहुँच गई, बहुत से राजा चढ़ आए, धनुषबाण और शस्त्रास्त्र से सुसज्जित दो हजार सवार तैयार हो गए, कच्छ (१) से तीन हजार जिरहबख्तर से सजे हुए लड़ाई के घोड़े और सुदृढ सवार आ पहुँचे, सोरठ से पन्द्रह सौ सवार आए, काकारेज से अचूक निशानेबाज कोली भी आए। कभी युद्ध में पीठ न दिखाने वाले और सदा युद्ध की इच्छा करनेवाले झालावाड़ के झाला भी आ पहुंचे, जिसकी चढाई का समाचार सुनते ही समस्त देश पलायमान हो जाता था ऐसा कावाधिपति मुकुन्द भी सदलबल चढ़ आया, जिससे शत्रुओं को न दिन में चैन मिलता था न रात को, ऐसा काठियावाड़ का काठी राजा भी आया। इनके अतिरिक्त गुजरात के छोटे मोटे सभी प्रान्तों में से अगणित सेना इकट्ठी हुई।

सांभर के गुप्तचर ने जाकर समाचार दिया, "समुद्र के समान गर्जन करती हुई चालुक्य की सेना तैयार हो गई है, उसमें एक लाख योद्धा और एक हजार हाथी हैं। यह सब मैं अपनी आंखों से देखकर आया हूँ।" यह सुनकर पृथ्वीराज ने कहा, "यदि युद्ध में भीम मेरे सामने पड़ गया तो जिस प्रकार ग्रीष्मऋतु में पवन की सहायता से अग्नि विशाल जंगल को भस्म कर देती है उसी प्रकार मैं इन सब को नष्ट कर दूँगा।"

सांझ हो गई थी, इसलिए जो जहां पर था वहीं पर उसने अपना

---

(१) कच्छ के जाम रायधणजी ने यह लश्कर भेजा था।

डेरा जमा दिया, किसी ने पास तो किसी ने कुछ दूर। कैमास तलवार बांधकर राजा के पास सोया। जिस प्रकार धार्मिक समाधि लगाने वाले को स्वप्न के मोहक दृश्य वश में कर लेते हैं उसी प्रकार वे सब लोग निद्रा के वश में हो गए। कन्ह भी राजा के पास ही था और आबू के सरदार जैत और सुलख, पुण्डीर और दाहिम, चामुण्ड, राजा हमीर, वीर कुम्भ, पहाड़ तंवर, लोहाना, और लङ्गरी राजा भी वहीं उपस्थित थे। इन सबने एक घड़ी रात रहे शिकार के लिए निकलने का निश्चय किया। सामन्त लोग उदास हुए और कहने लगे, "यहां कोई भी जीवित प्राणी नहीं है, इसलिए इस काम में हमें सफलता नहीं मिलेगी।" इतने में एक जानवर की बोली सुनाई दी। कन्ह ने कहा, 'देखो, सुनो, यह जानवर भविष्यवाणी कर रहा है कि कल सुबह यहां पर घोर संग्राम होगा।' सभी सामन्तों ने आश्चर्य किया कि कल सुबह यहां पर लड़ाई कैसे हो सकती है ? कन्ह ने कहा, "सोमेश्वर की मृत्यु के पहले जो शकुन हुआ था वही शकुन भीम को हुआ है, यदि पृथ्वीराज इस अवसर से लाभ उठाए तो स्वयं यम भी उसके सामने नहीं ठहर सकता।"

इस तरह बातें हो ही रही थीं कि सूर्योदय होगया। योद्धाओं ने नारायण को नमस्कार किया और जिस प्रकार सूर्य को देखकर कमल प्रफुल्लित हो जाते हैं उसी प्रकार उनके मन भी प्रसन्न हो गए। इसी समय दूसरा शुभ शकुन हुआ और लगे हाथों तीसरा। सामन्तों ने कहा, 'निश्चय ही आज, एक घण्टे के भीतर भीतर भयानक युद्ध होने वाला है।' पृथ्वीराज ने कहा, "शकुन देखना व्यर्थ है, सच्चे योद्धा के लिए तो युद्ध का दिन ही उत्सव का दिन है। मनुष्य जीवित हो अथवा मरा हुआ, उसकी आत्मा तो हमको दिखाई नहीं देती। कीर्ति मिलती भी है

और चली भी जाती है, यही विधाता का विधान है। जो हारेंगे उन्हें दुर्योधन का पद मिल जावेगा, और जो जीतेंगे वे अपने को पाण्डवों के समान समझ लेंगे, इसलिए शकुनों का विचार करना व्यर्थ ही है। हमें तो महाभारत के समान युद्ध करना है और सुई के अग्र-भाग जितनी भी भूमि नहीं छोड़नी है। शकुनों का कोई अन्त नहीं है, वे तो होते रहते हैं और मिटते रहते हैं–अब, आगे बढ़ना चाहिए।"

राजा की बात सुनकर सामन्त लोग सभी ओर से युद्ध की हुंकार करने लगे। नौबत, रणसिंगा, भेरी आदि रणवाद्य बजने लगे, हाथियों के घण्टों का घोष और सांकलों की खणखणाहट होने लगी; घोड़े हिन-हिनाने लगे और सम्पूर्ण सेना आगे बढ़ने लगी। मुकाम पर मुकाम करते हुए वे पट्टण का नाश करने के लिए तथा जिस प्रकार आकाश से तारे पृथ्वी पर टूट पड़ते हैं उसी प्रकार शत्रु पर टूट पड़ने के लिए आगे बढ़ते चले गये। उनकी संख्या चौसठ हजार थी, उनके भार से शेषनाग भी आकुल हो उठा था। पृथ्वीराज पर चंवर डुल रहे थे, उसने राज-छत्र अपने चाचा कन्ह के ऊपर लगवा दिया और व्यूह का स्वामी बनाकर उसको सबसे आगे रवाना किया। उसके पीछे पीछे वह स्वयं चला। उसके पीछे निड्डर (राठौड़) और फिर परमार चलने लगा। जिस प्रकार कोई ज्योतिषी जन्म-पत्री (१) को आगे आगे ही खोलता जाता है और वापस नहीं समेटता उसी प्रकार अपने जीवन का मोह छोड़कर वे

(१) यहां पर गोल लिपटी हुई जन्मपत्री से तात्पर्य है आजकल तो पुस्तकाकार भी बनाई जाती हैं।

आगे ही आगे बढ़ते चले गए । देवबाहु, शूरवीर चौहान जिससे शत्रु कांपते थे, आगे बढ़ता चला गया।

भीम के देश में भय छा गया। जिस प्रकार छोटे छोटे गांवों और जंगलों में से शिकार के पक्षी छोटी छोटी टुकड़ियों में उड़ जाते हैं उसी प्रकार लोग घर बार छोडकर भागने लगे, रास्तों पर गर्द छा गई। नदी की बाढ़ के समान सेना आगे बढ़ने लगी, धीरे धीरे चलते हुए घोड़े सारसों के सदृश दिखाई देते थे और दौड़ते समय मृगों के समान छलांगें भरते थे। भाले, बरछियां और तलवारें सूर्य के प्रकाश में जग-मगा रही थीं।

बैर के बदले का प्रसंग लेकर पृथ्वीराज ने चन्द बारहठ को भीम के पास आगे भेजा। वह भी जाल, नसैनी, कुदाल, दीपक, और हाथी, का अंकुश साथ लेकर गुजरात की राजधानी में जा पहुंचा। (१) उसके हाथ में एक त्रिशूल भी था। ज्योंही वह चालुक्य के दरबार में पहुंचा, तमाशा देखने वालों की भीड़ लग गई। चन्द ने भोला भीम के पास पहुँच कर घोषणा की "सांभरपति आ पहुँचा है।' भीम ने कहा, "ऐ भाट ! तुम्हारी लाई हुई इन विचित्र वस्तुओं का क्या अर्थ है ? हमें जल्दी बताओ।" चन्द ने उत्तर दिया, "पृथ्वीराज की आज्ञा है कि, यदि तुम पानी में जाकर छुपोगे तो इस जाल से पकड़ लिए जाओगे, यदि आकाश में उड़ोगे तो यह नसैनी मौजूद है, यदि पाताल में चले जाओगे तो इस

---

(१) राजाभोज की सभा में भी एक दक्षिणी भट्टाचार्य इसी प्रकार की सामग्री लेकर पहुंचा था जिसको गांगा नामक तेली ने शास्त्रार्थ में परास्त किया था। इस रोचक कथा के लिए देखिए 'राष्ट्रभाषा, जयपुर अंक ५-६ वर्ष २' में मेरा लेख।

कुदाल से खोदकर निकाल लिए जाओगे, अंधेरे में जाओगे तो यह दीपक मौजूद है, इस अंकुश से तुम्हें वश में किया जाएगा और यह त्रिशूल ही तुम्हारा काम तमाम करेगा। जहां तक सूर्य का प्रकाश पड़ता है वहां तक तुम कहीं भी छुपोगे तो पृथ्वीराज तुम्हारा पीछा करेगा।"

यह सुनकर भीम ने उत्तर दिया, "मुझे जो धमकी देता है मैं उसका वध करता हूँ। मेरा नाम भीम है, मैं भयंकर युद्ध करने वाला हूँ और सभी मनुष्य मुझ से डरते हैं, इसलिए इतना आपे से बाहर मत हो, नम्रता से बात कर और जो कुछ पहले हो चुका है उसकी भी याद कर ले।"

चन्द ने कहा, "यदि कभी कोई चूहा बिल्ली को जीत ले, गिद्ध पवित्र राजहंस के शिर पर नाचले, लड़ाई में हरिण सिंह का मुकाबला कर ले, मेंढक सर्प को निगल जाय तो इसको विधाता के विधान की विचित्रता ही समझनी चाहिए—ऐसी बातें बार बार होंगी, यह सोचना मूर्खता है। क्या पर्वतों पर छाए हुए जंगल को भस्म कर देने वाली दावाग्नि की बराबरी एक छोटा सा दीपक कर सकता है?"

भीम ने कहा, "भाटों के छोकरे तो केवल इस प्रकार गाल बजाना जानते हैं जैसे दैत्य लोग भाई बंटवारा करते समय गाली गलौज और मुक्कामुक्की करते हैं, परन्तु, सोमेश्वर का झगडा तो मरणान्त ही लड़ना पड़ेगा। जा, सांभर के राजा से कह दे कि यहां कोई कायर नहीं है जो तेरी धमकी से डर जावेंगे।"

इस उत्तर को सुनकर चन्द भी कुछ घबराया और उसकी आंखें क्रोध से लाल हो गईं। वह तुरन्त पृथ्वीराज के पास लौट आया और

उसका क्रोध बढ़ाने के लिए जो कुछ हुआ था वह यथावत् कह सुनाया। उसने कहा, 'भोला भीम ने मुझे कहा कि, "जिस तरह सोते हुए सांप को कोई मेंढक उसकी पूँछ पर चढकर जगाता है और छेड़ता है उसी तरह तुम मुझे छेड़ते हो।" गुर्जरनरेश चतुरंगिणी सेना लेकर तुम्हारा सामना करने के लिए आ रहा है. मैंने लौटते समय उसकी सेना को अपनी आंखों से देखा है। मैंने जो कुछ कहा उस पर उसने कोई ध्यान नहीं दिया। मैंने उसको जाल, दीपक और कुदाल भी दिखाई। उसने मुझसे पूछा कि इसमें क्या भेद है? चतुर कैमास, जो प्रधान मन्त्री है, तुम्हारे साथ क्यों नहीं भेजा गया? चामुण्डराय अथवा चतुर कन्ह या स्वयं सांभर का राजा क्यों नहीं आया? मैंने बहुत बार लड़ कर गुजरात के लिए विजय प्राप्त की है, जिन राजों को तुमने जीत लिया है मुझे उनमें कभी मत समझना। मैंने सांभरपति जैसे हजारों राजों को कत्ल कर दिया है।" जब मैंने यह सुना तो भीम से कह दिया 'संभल जाओ, चौहान की चतुरंगिणी सेना आ रही है।"

पृथ्वीराज ने निर्डरराय को अपने पास बुलाया और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, इन सब योद्धाओं में तुम्हीं मुख्य हो, तुम्हारा कुल प्राचीन योद्धाकुल है और तुम भी अपने पूर्वजों के समान ही शूरवीर हो। मुझे विश्वास है कि यदि देवता और दानव भी तुम्हारा सामना करने को आएं तो तुम उन्हें परास्त कर दोगे। तुम्हारा रण-कौशल पाण्डवों के युद्धचातुर्य के समान है। इस धरा का मोह छोड़ दो और अपने सामन्तों को साथ लेकर परमात्मा का ध्यान करते हुए एक-चित्त होकर युद्ध करो।"

निर्डरराय ने उत्तर दिया, "अपने सामन्तों में शत्रुओं को घास की

तरह काट डालने की शक्ति है। हे पृथ्वीराज! स्मरण रखो कि तुम दानव वंश के हो, तुम्हारे ही बल से तुम्हारे योद्धा भी बलशाली हैं। कन्ह को, बचपन, जवानी और बुढ़ापा, इन तीनों ही अवस्थाओं में युद्ध से आनन्द प्राप्त होता है। वह महाबलशाली है, उसे 'नर-व्याघ्र' कहते हैं और वह साक्षात् भीष्म का अवतार है।

यह बात सुनकर पृथ्वीराज ने अपने गले से एक बहुमूल्य मोतियों की माला उतार कर निर्डरराय को भेंट की। वह माला उसके गले में ऐसी शोभित हुई मानों सूर्य-मण्डल गंगा की धार से घिरा हुआ है। इसके बाद शूरवीर निर्डरराय ने युद्ध की नौबत बजवाई और नौबत का शब्द सुनते ही समस्त सेना वीरोचित प्रणाली से एकत्रित हो गई। उस समय निर्डरराय उन योद्धारूपी तारों में ध्रुव के समान प्रकाशमान था।

कन्ह को पृथ्वीराज ने अपना राजकीय अश्व अर्पण किया और बहुत आग्रह के साथ उसे उस घोड़े पर बिठाया। कन्ह ने कहा, 'हे रणपति! मुझे धिक्कार है कि मैंने अभी तक सोमेश्वर के शत्रु का बध नहीं किया और मेरे जीवरूपी हंस को इस शरीर से निकल भागने का मार्ग न मिला।' पृथ्वीराज ने उत्तर दिया, 'एक समय सुग्रीव अपनी पत्नी की रक्षा करने में समर्थ न हुआ, एक बार दुर्योधन कर्ण की रक्षा न कर सका, एक बार स्वयं श्रीराम ने वन में सीता को खो दिया, एक बार पाण्डव द्रौपदी के चीरहरण को न रोक सके—कन्ह! ऐसी बातों पर शोक नहीं करना चाहिए। मैं तुम्हें अपने इष्टदेव के समान मानता हूँ, जिस तरह मोर की आंखों को देखकर सर्प डर जाता है उसी प्रकार तुम्हारे नेत्रों की ज्वाला को देखकर शत्रु भयभीत हो

जाता है।" जब पृथ्वीराज इस प्रकार निडरराय और कन्ह का सम्मान कर रहा था, उसी समय समाचार मिला कि भीम भी भारी फौज लेकर आ पहुंचा है।

उधर जब भीम ने सुना कि अपने पिता का बदला लेने के लिए शत्रु पट्टण के समीप ही आ पहुंचा है तो वह उसी प्रकार क्रोध से भर गया जिस प्रकार पैर से दबा देने पर सांप, नींद से जगा देने पर सिंह कुपित हो जाता है अथवा गरमी के दिनों में जरा सी चिनगारी से पूरे जंगल में अग्नि भभक उठती है। उसने अपने योद्धाओं को बुलाया और सब हाल कह सुनाया। ज्योंही उन लोगों ने यह बात सुनी वे सब संसार का मोह त्याग देनेवाले योगियों के समान दिखाई पड़ने लगे और शीघ्र ही दोनों सेनाएं आमने सामने आ डटीं। दोनों ओर गोलियों की बौछारें होने लगी, अग्नि बाण छूटने लगे और आकाश में आग उड़ती हुई दिखाई देने लगी, दोनों ओर से अश्वारोही आगे बढ़े और तलवारें चमकने लगीं।

भीम ने ऐसी व्यूहरचना की थी कि उसको भेद कर शत्रु नगर तक न पहुंच सके। उधर चौहान की सेना का चक्र भी सहज में टूटने वाला न था। युद्ध शुरु हुआ, कितनों ही का सांगों की मार से भेजा निकल गया, कितने ही तलवार से मारे गए, "मारो मारो" की पुकार होने लगी कितने ही मल्ल-युद्ध कर रहे थे, कितनों ही के शरीर में से बाण आर-पार निकल रहे थे। शिव और काली के आनन्द का ठिकाना न था, काली खप्पर भर भर कर रक्तपान कर रही थी, शिव मुण्डमाला बनाने में व्यस्त थे। जिस प्रकार किसी बड़े नगर की सड़कें यात्रियों से खचाखच भरी रहती हैं उसी प्रकार स्वर्ग के मार्ग में भीड़ लग रही थी, रणमुक्त होकर योद्धागण मुक्ति लूट रहे थे।

जिस प्रकार बादलों में चमाचम बिजली चमकती है उसी तरह कन्ह की तलवार भी चमकने लगी। एक ओर कन्ह चौहान था दूसरी ओर सारङ्गमकवाणा। दोनों ही मतवाले सिंहों की भांति लड़ रहे थे, तलवारें चल रही थीं। अन्त में, सारङ्ग रणमुक्त हुआ और कन्ह विजयी हुआ। हाथियों के समान चिंघाडते हुए योद्धाओं के बीच में मकवाणा गिर गया। उसके गिरते ही सारङ्ग की धरती विधवा हो गई। पृथ्वीराज के योद्धाओं ने गर्जना की, जिससे शत्रुओं के कलेजे दहल गए। कठिन तपश्चर्या के बाद योगियों को जो स्थान प्राप्त होता है वही शूरवीरों ने एक क्षण में प्राप्त कर लिया, अपने धन-दौलत को छाया के समान अस्थिर समझकर वे युद्ध में कूद पड़े, उन्होंने सचाई से तलवार चलाई और एक दूसरे पर टूट पड़े, एक मात्र 'मुक्ति प्राप्त करना' ही उनका लक्ष्य था, उनके सामने जीवन स्वप्न मात्र था। 'आज ही रात को हमें तो मरना है, कल सुबह की कौन जाने ?' यही उनके विचार थे। जिस प्रकार पवन से आग फैलती चली जाती है उसी प्रकार लडाई का वेग बढ़ने लगा।

योद्धा लोग जानते थे कि युद्ध में मरने से उनकी कीर्ति बढ़ेगी, तलवार की धार से उनका शरीररूपी पञ्जर टूट जावेगा तो आत्मारूपी हंस फिर उसमें बद्ध नहीं होगा और पिंजरे का भी कोई मूल्य नहीं रहेगा। लड़ाई का वेग और भी बढ़ा, मनुष्यों के शिरों पर तलवारें निरन्तर बरसने लगीं, कितनी ही जीनें और कवच भी कट गए। जब कायरों के शिर पर तलवार पडती तो वे 'अरे ! अरे !! चिल्लाते परन्तु उनका रोदन रणनौबत के गम्भीर नाद में विलीन हो जाता था। पृथ्वीराज 'शाबास, शाबाश' कह कह कर अपने योद्धाओं का उत्साह बढ़ाता था।

गुजरात की नदी साबरमती के दोनों किनारों पर खून की बाढ आ गई थी और उसके प्रवाह में मनुष्य, हाथी, और घोड़े आदि बहने लगे थे। रणभेरी फिर बजी और आधा घण्टे तक तुमुल युद्ध हुआ, भौंरों के समान सनसनाहट करते हुए बाण हवा में उड़ने लगे। चौहान के बहुत से योद्धा मारे गए और चालुक्य के वीरों की भी पंक्तियां हाथियों की पंक्तियों के समान रणक्षेत्र में लोट गईं। (१)

इस प्रकार पृथ्वीराज ने अपने पिता का बदला लिया। देवियों ने हाथों में प्याले लेकर मन्त्र पढ़े, हिंस्र प्राणियों ने अपनी भूख मिटाई और योद्धाओं के मृत शरीरों से रणक्षेत्र लाल लाल पुष्पों वाले वृक्षों के वन के समान दिखाई पड़ने लगा। जब क्रोध में भरकर पृथ्वीराज ने अपना घोड़ा आगे बढ़ाया तो उसकी टापों से पृथ्वी कम्पित हुई शत्रुओं की सेना इस प्रकार काँपने लगी जैसे पवन के कोप से पीपल के पत्ते कांपते है। इतने बाण चल रहे थे कि हवा में पक्षियों को उड़ने के लिए भी रास्ता न रहा और युद्ध की भयंकरता अधिकाधिक बढ़ती गई। एक दूसरे पर वार करते हुए योद्धा ऐसे मालूम होते थे मानों लोहार घन पर चोटें मार रहे हैं। जिन सामन्तों ने युद्ध में प्राणत्याग किया उन्हीं का जीवन सच्चा (जीवन) था।

अन्त में, चालुक्य की सेना स्वर्ग के मार्ग को छोड़ कर भाग खड़ी हुई, देव और दानव एक साथ बोल उठे, "जो क्षत्रिय सूर्य-मण्डल को भेद कर स्वर्ग को जाता है, वह धन्य है।" घोड़े हिन-हिनाने लगे, तलवारें खडखड़ाने लगीं और योद्धा लोग राजा की दुहाई

---

(१) तात्पर्य यह है कि मृत वीरों का इतना विशाल ढेर लग गया कि देखने पर वह गज-पंक्ति जैसा लगता था।

देकर एक दूसरे को उत्तेजित करने लगे। वामन ने तीन कदम बढाकर एक ही लोक को जीता था परन्तु योद्धा लोग एक ही कदम बढा कर तीनों लोकों को जीत लेते हैं। वे लोग युद्ध की उमंग में उसी प्रकार नाचने कूदने लगे जिस प्रकार रुद्र अपने गणों के साथ नृत्य करते हैं। ज्यों ज्यों चालुक्य की सेना का बल घटता गया त्यों त्यों चौहान की सेना दृढ़ होती गई। यद्यपि बहुत से वीर घायल हो गए थे परन्तु पृथ्वीराज की सेना ध्रुव के समान निश्चल थी। जिस प्रकार झालर पर मोगरे की मार पड़ती है उसी प्रकार शस्त्रों की वर्षा होने लगी परन्तु सेना डिगी नहीं। यह देखकर चौहान ने कहा, "आज मेरी इच्छा पूर्ण करूंगा और गुजरात की धरती को रांड बना दूंगा।" भीम की ओर घूमकर उसने कहा, "आज तुम मेरे हाथ से नहीं बच सकते, मैं तुम्हें वहीं भेज दूंगा जहां सोमेश्वर स्वर्ग में विराजमान है। कन्ह ने भी पास आकर अपने राजा का साहस बढ़ाया। सांभर के राजा ने भीम पर वार किया। जहां पुनर्जन्म का बन्धन था वहीं पर तलवार बैठी और भीम भूमिसात् हुआ। स्वर्ग में देवताओं ने जय जयकार किया। कोलाहल को सुनते ही शिव की समाधि टूट गई। इस दृश्य को देखने के लिए अप्सराएं संभ्रम सहित आगे बढीं और विजयी पृथ्वीराज पर आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। उधर भीमदेव ने स्वर्गीय विमान में बैठ कर सुरलोक को प्रस्थान किया।

फार्बस साहब ने यहां निम्न पद्य का अर्थ ठीक न समझने के कारण भीमदेव के मरण की कल्पना करली है। वास्तव में, भीमदेव की मृत्यु इस युद्ध में नहीं हुई थी, न पृथ्वीराजरासो में ही ऐसा लिखा है। रासो में इस प्रकरण को 'भीमबंध' नाम से लिखा गया है जिसको सम्भवतः 'भीमवध' समझ लिया गया है। इस युद्ध का निर्णायक पद्य नीचे दिया जाता है जिसका तात्पर्य

आनन्द भरे पांचों प्रकार के बाजे बजने लगे, भाट चारण आदि पृथ्वीराज की कीर्ति का गान करने लगे, उसका रोष शान्त हो गया। घायलों की देखभाल होने लगी। इस प्रकार पृथ्वीराज ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लिया।

सन्ध्या काली रात में बदल चुकी थी इसलिए योद्धाओं ने वह वहीं पर काटी, छः सामन्त बुरी तरह घायल हुए थे जिनकी देख भाल होने लगी। सबेरा होते ही कमल खिलने लगे, सूर्योदय होते ही चन्द्रमा और तारे पीले पड़ गए, देव-द्वार खुलने लगे, चोर चकोर और अभि-सारिकांए छुप गई, मन्दिरों में शंखध्वनि होने लगी, पथिकों ने अपना

यह है कि चालुक्य घायल हुआ और पकड़ा गया।

सिलह मद्धि खगधार, बीय उग्यौ ससि सोभै।
कै नवबधु नखछित्त, काम कामिनि रस लोभै॥
मर्म वीर कत्तरी, दिसा दुति तिलक पुव्वा वर।
कै कूंची स्यंगार, सुभग भामिनि संध्या कर॥
सोभंति चन्द की कला नभ, कल कलंक सुब्भै न तन।
ढुंढ्यौ खेत सामंत नृप, बुज्झि राज तामंस मन ॥ ७० ॥

चालुक्य के 'सिलह' अर्थात कवच पर लगी हुई खड्गधार अथवा तलवार की चोट ऐसी शोभित होती थी मानों द्वितीया का चन्द्रमा ही उदित हुआ है, अथवा वह नववधू के नखक्षत के समान है जो कामी और कामिनियों को रसलुब्ध कर देता है, अथवा वह वीररस की कत्ती (कर्त्तरी) का मर्म (रहस्य अर्थात् धार है, या पूर्व दिशा (के भाल) का द्युतिमान् तिलक है अथवा सुन्दरी संध्या भामिनी के हाथ में श्रृङ्गार (पिटारी) की कुञ्जी है। परन्तु, चन्द्रमा की कला तो नभ में शोभित होती है– यह कलंक (रूपी चोट) शरीर पर शोभा नहीं पाती। (ऐसे आघातयुक्त) नृप को सामन्तों ने रणक्षेत्र में ढूंढ निकाला जिससे राजा के मन का तामस अर्थात् क्रोध बुझ गया अथवा शान्त हो गया।'

रास्ता लिया और सभी वृक्षों पर पक्षियों की चहचहाट शुरू हो गई। सामन्तों ने आकर पृथ्वीराज के चरणों में प्रणाम किया, बहुत से योद्धा देवलोक को चले गए, भीम मारा गया, पृथ्वीराज की कीर्ति फैल गई, पृथ्वी का भार हलका हो गया, पन्द्रह सौ घोड़े, पांच सौ हाथी और पांच हजार पैदल खेत रहे।

चन्द बारहठ पृथ्वीराज और उसके सामन्तों का यश गाने लगा, "यह जीवन स्वप्न के समान है, जो कुछ दिखाई देता है वह सब नाशवान है परन्तु, जो सामन्त स्वामिभक्त हैं, वे धन्य हैं, जिन्होंने इस कुवेला में स्वर्ग प्राप्त किया है वे यश के भाजन हैं।"

इसके बाद राजा ने जय-पत्र लिखवाया (अपनी इस जीत का हाल खुदवाया) और दिल्ली के लिए प्रस्थान कर दिया। सांझ होते होते वह अपने सामन्तों सहित नगर में जा पहुँचा, इस प्रकार पृथ्वीराज ने अपने पिता का बदला लिया।

जो कुछ ऊपर लिखा गया है, वह तो चन्द बारहठ के वर्णन के अनुसार है परन्तु, दूसरे इतिहासकार (जो अधिक प्रामाणिक हैं) लिखते हैं कि मुसलमानों के साथ लड़ाई में पृथ्वीराज की हार हुई और वह उसमें मारा गया। भीम उसके बाद भी जीवित रहा और विजेता मुसलमानों के साथ लड़ते लड़ते उसका भी वही परिणाम हुआ जो पृथ्वीराज का हुआ था।

मोहम्मद शाहबुद्दीन गोरी ने गुजरात जीतने का विफल प्रयत्न किया था उसके आठ वर्ष बाद (११८६ ई०) की बात है कि वह (गोरी) धोखे से लाहौर का मालिक बन बैठा और सुलतान खुसरू तथा उसके

कुटुम्ब को कैद करके ज्यूरिस्तान (१) भेज दिया। कुछ दिनों बाद उसने इन सब को कत्ल करवा दिया। इस प्रकार जब महमूद का सम्पूर्ण वंश नष्ट हो गया तो गजनवी वंश का राज्य गोरी वंश के हाथ में आ गया। (२)

अब हिन्दुस्तान के राजपूत राजों पर बादल टूट ही पड़ने वाला

---

(१) (Ghuristan. Elliot and Dawson, ii,281)

(२) हम पहले पढ़ चुके हैं कि सिद्धराज जयसिंह महान् की पुत्री का विवाह लाँजा विजयराय के साथ हुआ था। अणहिलवाड़ा की इस राजकुमारी के पेट से भोजदेव नामक कुंवर पैदा हुआ जो अपने पिता की मृत्यु के बाद लोढ़-वाड़ा की गद्दी पर बैठा, परन्तु उसको वहां से उखाड़ देने के लिए उसका काका जेसल प्रयत्नशील था, इसलिए कुछ समय तक पांच सौ सोलंकी भोज की रक्षा के लिए वहां रहे। जैसलमेर के इतिहास में लिखा है कि "उस समय अणहिल-वाड़ा का राजा तातार से आई फौजों से बार बार युद्ध करता रहता था इसलिए जेसल ने सोचा कि, 'यदि तातार के राजा से मिलकर अणहिवाड़ा पर आक्रमण किया जावे तो यह सोलंकी फौज लोढवाडा से टल सकती है और इसका यही एक मात्र उपाय है।' इस विचार के अनुसार उसने अणहिलवाड़ा पर चढ़ाई करने का निश्चय कर लिया और अपने मुख्य सम्बन्धियों के साथ दो सौ घोड़े लेकर पंचनद की ओर रवाना हुआ। वहां पर गोर के राजा ने तातार के राजा की फौज को हराकर अपना थाना कायम कर दिया था इसलिए वह उससे मिल गया और उसके साथ सिन्ध की प्राचीन राजधानी जालोर चला गया। वहां जाकर उसने अपना विचार प्रकट किया और गोर के राजा के प्रति सदा नमकहलाल रहने की सौगन्द खाई। इसके बाद अपने भतीजे से राज्य छीनने के लिए फौज लेकर रवाना हुआ और सीधा आकर लोढवाड़े के घेरा डाल दिया। अपने राज्य की रक्षा करते करते भोजदेव मारा गया। नागरिकों को दो दिन की अवधि में अपना मालमता लेकर नगर से निकल जाने की आज्ञा हुई और तीसरे दिन गोर की सेना को लूट करने की छुट्टी मिल गई। इस प्रकार लोढवाडा की लूट हुई और लूट का माल लेकर करीमखां बक्कर को रवाना हुआ।

था, इसके पूर्वरूप में चेतावनी के लिए गुजरात पर (हवा के) सपाटे के समान दो हमले हो चुके थे। बहुत समय पहले हुए सोमनाथ के नाश ने ही मुसलमानों की शक्ति को सिद्ध कर दिया था, परन्तु होन-हार के वशीभूत राजपूतों ने इस कटु अनुभव से भी कोई शिक्षा न ली और उस बढ़ती हुई ताकत में रोक लगाने का कोई प्रयत्न न करके आपस ही में भ्रातृघाती युद्ध करते हुए मुसलमानों के मार्ग को और भी सुगम बनाते रहे। गुजरात और मालवा, सांभर दिल्ली और कन्नौज आपस की लड़ाइयों से निर्बल हो चुके थे और इन्हीं पारस्परिक जय-पराजयों के कारण वैमनस्य का विष फैलता रहा जिसका स्थायी परिणाम यह हुआ कि इनमें सच्चा मेल होने की घड़ी कभी आई ही नहीं।

मोहम्मद गोरी का पहला हमला सन् ११६१ ई० में हुआ था। उस अवसर पर स्थानेश्वर और कर्नाल के बीच में तिरौरी नामक स्थान पर पृथ्वीराज ने उससे करारी टक्कर ली थी और दिल्ली के राज-प्रतिनिधि चामुण्डराज की सहायता से मुसलमानों को पूर्णतः पराजित किया था। इसके दो वर्ष बाद (सन् ११६३ ई० में) फिर युद्ध हुआ। उस समय दैव ने दृष्टि फेर ली। दोनों सेनाएं सरस्वती के किनारे मिलीं और बहुत समय तक लड़ाई होती रही परन्तु अन्त में शत्रु की कुशल व्यूहरचना से टक्कर लेते लेते सूर्यास्त के समय राजपूत सेना थक गई और तभी स्वयं मोहम्मद की अध्यक्षता में मुसलमानों के बारह हजार चुने हुए कवचधारी घुड़सवारों ने हल्ला बोल दिया जिससे हिन्दुओं की सेना का कच्चरघाण (नाश) हो गया। चामुण्डराय मारा गया और 'चौहान की विशाल सेना एक बार नींव हिलने पर किसी बड़ी भारी इमारत के समान एक दम धँसक गई और अपने ही खंडहरों में विलीन हो गई।' (१)

---

(१) Reverty का मत है कि फरिश्ता के मूल में ये शब्द नहीं है।

शूरवीर पृथ्वीराज पकड़ लिया गया और वहीं उसका वध कर दिया गया। इसके बाद मोहम्मद स्वयं अजमेर गया और निर्दयता से उसने कत्ल आम जारी कराया। फिर शहरों को लूटता पाटता वह गजनी को रवाना हुआ। गज़नी लौटते समय उसने मलिक कुतुबुद्दीन को अपने प्रतिनिधि के रूप में हिन्दुस्तान में छोड दिया था। मलिक ने थोड़े ही समय में मेरठ के किले और राजनगर योगिनपुर पर कब्जा कर लिया और कुछ समय बाद अपने स्वामी की मृत्यु के उपरान्त स्वयं गद्दी पर बैठ कर उसने हिन्दुस्तान में 'गुलाम वंश' की बादशाही की नींव डाली।

दूसरे ही वर्ष ११६४ ई० में मोहम्मद गोरी फिर हिन्दुस्तान आया और यमुना नदी के किनारे पर जयचन्द को हराकर उसने कन्नौज एवं काशी को अपने अधिकार में कर लिया, तथा वहां पर 'एक हजार से भी अधिक देवालयों की मूर्तियों को तुड़वा कर उनको परमात्मा की सच्ची उपासना (नमाज) के स्थान (मसजिद) में बदल दिया।' राठौड़ राजा ने पवित्र नदी में प्राणत्याग करके हिन्दुओं के मतानुसार अभीष्ट मृत्यु का वरण किया। कन्नौज का विशाल और विचित्र नगर उस समय हिन्दू नगर नहीं रह गया था, परन्तु थोड़े ही वर्षों बाद इस अभागे राजा के पौत्रों ने इस नगर पर फिर राठौडों की ध्वजा फहरा दी। कालान्तर में वही ध्वजा यहां से मरुदेश में जोधपुर के किले (१) पर जा फहराई जहां से इसने निर्भय होकर कुतुबुद्दीन के राज्य–नाश के दृश्य का अपनी आंखों से साक्षात्कार किया।

---

(१) यद्यपि जोधपुर का किला बाद में बना था परन्तु जोधपुर राज्य की राजधानी होने के कारण ऐसा लिख दिया है।

अब, मुसलमानों के हमले का शिकार होने की गुजरात की बारी आई। 'सन् ११६४ ई० में कुतुबद्दीन ने फौज लेकर गुजरात प्रान्त की राजधानी नेहरवाला (अणहिलवाड़ा) पर चढ़ाई की और वहां पर भीमदेव को हराकर अपने स्वामी की दुर्दशा का पूरा पूरा बदला लिया। वह कुछ दिनों तक धनी नगरों को लूटता रहा परन्तु गजनी से वापस लौटने की आज्ञा आने पर उसको अचानक दिल्ली चला जाना पड़ा।'

दूसरी जगह वही मुसलमान इतिहासकार लिखता है कि, 'जब कुतुबुद्दीन ने अणहिलवाड़ा के बाहर आकर डेरा डाला तो भीमदेव का सेनापति जीवणराय उसको देखकर भाग गया। फिर, जब उसका पीछा किया गया तो सामने होकर युद्ध किया परन्तु वह मारा गया और उसकी फौज भाग गई। इस पराजय का समाचार सुनते ही भीमदेव भी अपनी राजधानी छोड़कर भाग गया।'

कुतुबुद्दीन की जीत अवश्य हुई, परन्तु गुजरात पर उसका स्थाई रूप से अधिकार न हो सका और हार होने तथा राजधानी से भगा दिए जानेपर भी भीमदेव की शक्ति में कमी न आई। वही ग्रन्थकार लिखता है कि, "दो वर्ष बाद (सन् ११६६ ई० में) कुतुबुद्दीन को समाचार मिला कि, 'नागौर और नेहरवाला के राजा तथा अन्य हिन्दू राजों ने मेर लोगों के साथ मिल कर मुसलमानों से अजमेर छीन लेने का विचार किया है।' इस समय उसका लश्कर इधर उधर के प्रान्तों में बिखरा हुआ था इसलिए जो कुछ थोड़े बहुत विश्वासपात्र सिपाही थे उन्हें को लेकर यथाशक्ति नेहरवाला की सेना की बढ़ती को रोकने के लिए रवाना हुआ, परन्तु उसकी हार हुई। लडाई में वह कितनी ही बार घोड़े पर से गिर पड़ा और उसके छः घातक घाव लगे, परन्तु बाद में उसके सिपाही उसको बरबस पालकी में डालकर रणक्षेत्र से अजमेर ले गए"।

"मेर लोग इस जीत से बहुत प्रसन्न हुए और गुजराती फौजों के साथ मिलकर अजमेर के आगे अड़ बैठे। जब गजनी में बादशाह ने यह समाचार सुना तो उसने कुतुबुद्दीन की सहायता के लिए मजबूत फौजें भेजीं। जब तक सहायक फौज आकर पहुँची तब तक तो इन लोगों ने अजमेर को पूरी तरह अपने अधिकार में रक्खा और शत्रु को घेरे रहे, परन्तु घावों के ठीक होते ही कुतुबुद्दीन ने घेरा डालने वाली फौज को भगा दिया और नेहरवाला तक उसका पीछा किया। मार्ग में उसने बाली और नांदोल के किले भी हस्तगत कर लिए। इसके बाद उसको खबर मिली कि, वालिन और दाराबरज की सेनाएं नेहरवाला के राजा के साथ मिलकर सिरोही प्रान्त में आबूगढ के पास छावनी डाल कर गुजरात में जाने के मार्ग को रोककर पडी हैं। मार्ग की कठिनाइयों और धरती के ऊबडखाबडपन की परवाह न करते हुए कुतुबुद्दीन आगे बढ़ता चला गया। कहते हैं कि इस प्रसंग में शत्रु के पचास हजार से अधिक मनुष्य मारे गये और बीस हजार कैद कर लिए गये। विजेताओं के हाथ बहुत सा लूट का माल आया। कुछ दिन फौजको आराम देकर कुतुबुद्दीन गुजरात को नष्ट करता हुआ बेरोकटोक आगे बढ़ा। उसने नेहरवाला पर अधिकार कर लिया और एक सरदार को एक मजबूत किलेदार के साथ वहां पर नियुक्त कर दिया। इसके बाद वह अजमेर होता हुआ दिल्ली लौटा और गजनी के राजा की सेवा में बहुत सा सोना, जवाहरात और गुलाम भेजे।"

फरिश्ता के लेखानुसार परमारवंश के धारावर्ष और प्रल्हादनदेव अणहिलवाड़ा के राजा के आश्रित थे और क्रमशः आबू और चन्द्रावती उनके अधिकार में थे। वे कुमारपाल के समसामयिक यशोधवल

के पुत्र थे। ऊपर उल्लिखितलेख में छोटे कुंवर प्रल्हादनदेव (१) के विषय में लिखा है कि वह 'आक्रमणकारी दनुजों (मुसलमानों) से श्रीगुर्जरदेश की रक्षा करने वाला बलवान राजा था।' आबू पर्वत पर एक दूसरा लेख है जिसमें लिखा है कि उस समय प्रल्हादनदेव युवराज था क्योंकि उस समय तक धारावर्ष के पुत्र सोमसिंह का जन्म नहीं हुआ था।

सन् १२०५ ई० में मोहम्मद गोरी मार दिया गया था और तभी से अपनी मृत्यु-पर्यन्त कुतुबुद्दीन ऐबक ने पांच वर्ष तक दिल्ली की बादशाही की। दूसरे भीमदेव के राज्यकाल की अब और कोई उल्लेखनीय घटना नहीं मिलती है। वह १२१५ ई० (२) में मर गया और वही मूलराज चालुक्य के वंश का अन्तिम राजा हुआ। कुतुबुद्दीन ने जो किलेदार और फौज अणहिलवाड़ा में छोड़ी थी वह या तो वापस बुला ली गई अथवा वे लोग वहीं रहते हुए नष्ट हो गए क्योंकि इसके बाद में उनका कोई हाल नहीं मिलता। फरिश्ता ने लिखा है कि भीमदेव (द्वितीय) के मरने के पचास वर्ष बाद गयासुद्दीन बलबन दिल्ली का बादशाह हुआ, उसके मन्त्रियों ने उसे गुजरात और मालवा पर, जो 'कुतुबुद्दीन द्वारा साम्राज्य में मिला लिए गए थे परन्तु तभी से जिन्होंने मुसलमानी सत्ता को ठुकरा रक्खा था,' हमला करने की सलाह दी थी। परन्तु गयासुद्दीन अपने मन्त्रियों की इस सलाह के अनुसार कार्य न कर

---

(१) प्रल्हादनदेव जैसा वीर था वैसा ही विद्वान् भी था। प्रल्हादनपुर अथवा पालनपुर उसीका बसाया हुआ है। संस्कृत में 'पार्थपराक्रम व्यायोग' प्रल्हादन देव की उत्तम कृति प्रसिद्ध है। कहते हैं कि आबू पर अचलेश्वर के स्थापना महोत्सव के अवसर पर यह नाटक खेला गया था। (संस्कृत-साहित्य का इतिहास पृ० ६४७—कृष्णामचारी) हि० अ०

(२) यह सही नहीं है क्योंकि १२४० ई० का उसका ताम्रपत्र मिलता है। टि० पृ० २७२ । पर अन्य सूचनाएं भी देखिए

सका क्योंकि उसको उत्तरीय मुगलतातार साम्राज्य का निरन्तर भय बना रहता था।(१)

---

(१)ऐसा जान पड़ता है कि भीमदेव (द्वितीय) पर बहुत सी आपत्तियां आ पडी थीं इसलिए वह निर्बल हो गया था। कीर्तिकौमुदी में आगे चलकर लिखा है कि, "बलवान् मन्त्रियों और माण्डलिक राजाओं के होते हुए भी उसने बालराजा के राज्य को क्षीण हो जाने दिया।'

सुकृतसंकीर्तन में लिखा है—

सततवितदानक्षीणनिःशेष लक्ष्मीरतिसितरुचिकीर्त्तिर्भीमभूमिभुजङ्गः ।
बलकवलितभूमिमण्डलो मण्डलेशश्चिरमुपचितचिन्ताक्रान्तचित्तान्तरोऽभूत् ।

निरन्तर दान देते रहने से जिसकी लक्ष्मी क्षीण होगई है, बहुत ही शुभ्र कान्तिवाली जिसकी कीर्ति है, जिसने अपने बल से भूमण्डल को वश में कर लिया है, ऐसा मण्डलेश्वर भीम भूपति चिरकाल से बढ़ती हुई चिन्ता के कारण व्यथितचित्त हो गया।

पौष सुदी ३ सोमवार संवत् १२८० का ताम्रपत्र डा० बूलर ने अपनी चालुक्य लेखावलि के पृ० ५८ से ६८ में दिया है, उसमें लिखा है—

'श्रीमदणहिलपुर राजधानी अधिष्ठित अभिनव सिद्धराज श्रीमज्जयन्तसिंहदेव'

इससे ज्ञात होता है कि इस जयन्तसिंह ने भीमदेव (द्वितीय) का राज्य दबा लिया था परन्तु, इसके बाद में संवत् १२८३, १२८८, १२९५ और १२९६ के लेख भीमदेव के ही मिलते हैं। इससे यही जान पडता है कि भीमदेव ने फिर अपने राज्य पर अधिकार प्राप्त कर लिया था।

चैत्र सुदी ६ भौम संवत् १२९८ का लेख इसी पुस्तक में है, उसमें लिखा है—

'श्रीभीमदेवपादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारक-शौर्योदार्य्यगाम्भीर्य्यादिगुणालङ्कृतश्रीत्रिभुवनपालदेवः'

इस लेख से ज्ञात होता है कि भीमदेव (द्वितीय) के बाद त्रिभुवनपालदेव राजा हुआ, परन्तु इस लेख की राजावली में जयन्तसिंह का नाम शामिल नहीं है।

वास्तव में, तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक गुजरात पर मुसलमानों का पूर्ण अधिकार नहीं हुआ था, परन्तु इसके बाद अलाउद्दीन खिलजी

यह त्रिभुवनपाल देव कौन था, इसका पता नहीं चलता परन्तु उसने संवत् १२९८ से १३०० (१२४२ ई० १२४४ ई०) तक राज्य किया था। डाक्टर भाऊदाजी ने एक पट्टावली प्रकाशित की है, उससे मालूम होता है कि भीमदेव के बाद में ६ दिन तक तो उसकी पादुका को गद्दी पर रखकर मन्त्रियों ने राज-काज चलाया, इसके बाद में त्रिभुवनपाल गद्दी पर बैठा उसने २ महीने (वर्ष ?) और १२ दिन तक राज्य किया।

इस समय के ग्रन्थों में कीर्तिकौमुदी, सुरथोत्सव, सुकृतसंकीर्त्तन और चतुर्विंशतिप्रबन्ध के अन्तर्गत वस्तुपालप्रबन्ध, वस्तुपाल-तेजपाल-चरित तथा प्रबन्ध चिन्तामणि हैं।

कीर्ति-कौमुदी का कर्त्ता, सोमेश्वर, चालुक्यों का वंशपरम्परागत पुरोहित था। उसने सुरथोत्सव काव्य की रचना की है, जिसमें, ऐसा मालूम पडता है कि भीमदेव (द्वितीय) के राज्यकाल की अवस्था के आधार पर ही उसने कथानक की कल्पना की है। सुरथ नामक राजा के अमात्य उसके शत्रुओं से मिल जाते हैं और उसका राज्य छिन जाता है। वह भागकर जंगल में चला जाता है और वहीं एक मुनि से उसकी भेंट होती है, जो चण्डीपाठ अथवा सप्तशती में वर्णित भवानी के पराक्रम का वर्णन करके उसे देवी की आराधना करने की सलाह देता है। इसके अनुसार सुरथ तपस्या में लग जाता है और भवानी उससे प्रसन्न होकर दर्शन देती हैं तथा पुनः राज्यप्राप्ति का आशीर्वाद प्रदान करती हैं। इतने ही में उसके स्वामिभक्त अधिकारी कृतघ्न अधिकारियों का नाश करके उसकी तलाश में निकलते हैं और वहीं उससे भेट होते ही बड़ी धूमधाम से उसको राजधानी में ले जाकर फिर गद्दी पर बिठा देते हैं।

इस प्रकार इस काव्य में सुरथ की ओट में भीमदेव की स्थिति का वर्णन किया गया है। भीमदेव के अमात्यों और माण्डलिकों ने भी उसको बहुत धोखा

ने, जिसको गुजरात का प्रत्येक किसान 'खूनी' के नाम से जानता है, इस पर अपना पञ्जा मजबूती से जमा लिया था।

दिया था। जयन्तसिंह ने अणहिलवाड़ा पर कब्जा कर लिया था, परन्तु बाद में उसको निकालकर भीमदेव ने फिर अपनी सत्ता हस्तगत करली ।

कुमारपाल के पिछले प्रकरण में हम पढ़ चुके हैं कि, उसका (कुमारपाल का) मौसेरा भाई आर्णोराज बाघेल में उसके मांडलिक राजा की भांति पूर्ण स्वामिभक्त होकर रहता था। उसके पुत्र लवणप्रसाद के विषय में यह भविष्यवाणी हुई थी कि वह परम प्रतापी होगा। यही लवणप्रसाद भीमदेव के पास राजकाज में पूरा हाथ बंटाता था, धोलका, धुंधका आदि प्रदेश उसके मण्डल में थे, उसका पुत्र वीरधवल भी अपने पिता के साथ रहकर जहां जहां अव्यवस्था होती थी वहीं जाकर ठीक ठीक व्यवस्था कायम करता था। गुर्जरधरा की राज्य-लक्ष्मी ने भीमदेव को स्वप्न में दर्शन देकर वीरधवल को युवराज बनाने की सूचना दी थी। ऐसा मालूम होता है कि उस समय लवणप्रसाद और वीरधवल की बहुत चलने लग गई थी क्योंकि उस समय के अन्तिम ताम्रपत्रों में वीरधवल के पूर्वजों के नाम पर स्थापित आनलेश्वर और सलषणेश्वर देव के धर्म-स्थानों में ग्राम-ग्रास दिये हुए हैं।

वीरधवल ने बहुत सा प्रदेश अपने कब्जे में कर लिया था और कच्छ में आए हुए भद्रेश्वर के भीमसिंह प्रतिहार के साथ गोधा के धुंधुल के साथ, दक्षिण के यादवराज सिंधन के साथ तथा उसी प्रसंग में मारवाड़ से आए हुए चार शत्रु राजों के साथ उसने युद्ध किया था। इस युद्ध में उसने अपना ऐसा पराक्रम दिखाया कि लोगों ने उसको अणहिलवाड़ा के महाराजाधिराज का पद ग्रहण करने के लिए कहा परन्तु भीमदेव के प्रति अपनी कृतज्ञता दिखलाकर उसने यह कह कर कि, "मेरे लिए तो राणक (राणा) ही योग्य पद है,' इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया और आजीवन राणा ही बना रहा। भीमदेव की मृत्यु के बाद त्रिभुवनपाल ने १२९८ से १३०० वि० तक राज्य किया। उसके बाद में वीरधवल का पुत्र वीसलदेव अणहिलवाड़ा की गद्दी पर बैठा।

प्रकरण १३

अणहिलपुर राज्य का सिंहावलोकन

भीमदेव (द्वितीय) की मृत्युपर्यन्त वृत्तान्त लिख चुकने के बाद, हम ऐसे बिन्दु पर आ पहुँचे हैं कि, अब एक बार अणहिलवाड़ा की कथा का पुनरवलोकन कर लेना समुचित होगा। सिद्धराज और कुमारपाल के राज्य की अन्तिम विसृष्टि के उपरान्त बहुत समय तक गुजरात में अराजकता का दृश्य दिखाई देता रहा। मुसलमानों की विजय का काम चालू रहा और ऐसे ऐसे छुट पुट आक्रमण होते रहे कि जिनकी गड़-बड़ी के कारण राज्य की नींव निर्बल पड़ती गई। ऐसे समय में कभी कभी वनराज के नगर में स्थित देवालयों और प्राकार–शिखरों पर समुन्नति की सुनहली आभा दृष्टिगत हो जाती थी परन्तु वह अस्तो-न्मुख सूर्य के अन्तिम प्रभामण्डल के सदृश अचिरस्थायिनी थी; हृदय में धड़कन अवश्य मौजूद थी परन्तु हाथ पैर ठण्डे हो चले थे; कवि के निम्नांकित वाक्यों की सी दशा हो रही थी:—

'जिस प्रकार मृत्यु के किनारे पड़े हुए घायल पशु की ओर गिद्ध ताक लगाए बैठा रहता है उसी प्रकार इस शानशौकत के पीछे महा-विनाश और अव्यवस्था प्रतीक्षा कर रहे थे।'

अब तक जिन ग्रन्थकारों की कृतियों से सहायता लेकर हम लिखते रहे हैं उन पर भी थोड़ा सा प्रकाश डाल देना उचित होगा। रत्नमाला के कर्ता कृष्णाजी ब्राह्मण थे। उनका इससे अधिक कोई

वृत्तान्त नहीं मिलता। उन्होंने भीमदेव (द्वितीय) की मृत्यु के बाद अपना ग्रन्थ लिखा था परन्तु संभवतः उनके ग्रन्थ का रचनाकाल इस घटना के बहुत समय बाद का नहीं है। उनका काव्य उनके पूर्ववर्ती लेखकों के श्रम पर अवलम्बित है, यह बात निम्न छप्पय से विदित होती है–

"छप्पय–ज्यौं दधिमन्थन करत हरत घृत तक्र तजी कैं,
इक्षु पीडि रस ग्रही नहि लह शेष सजी कैं,
रजतें कंचन लेत देत रज दूर ही डारी,
कूकसतें (१) कन लहै, तिलतें तैल निकारी,
सब ग्रन्थ पंथ अवलोकि कैं, सारयुक्त मैं सची,
अस ग्रन्थ एहि अभिधानही, रत्नमालिका शुभ रची।"

द्व्याश्रय का आरम्भ सुप्रसिद्ध हेमाचार्य द्वारा हुआ जान पड़ता है, जिनकी मृत्यु कुमारपाल के राज्य के अन्तिम समय में ११७४ ई० से पूर्व हुई थी। इसके बाद प्रल्हादनपट्टण (पाल्हनपुर) के लेशाजयतिलक नामक जैन साधु ने इसकी अनुपूर्ति की और संवत् १३१२ वि० (१२५६ ई०) की दीपावली को यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। उक्त गणि ने लिखा है कि लक्ष्मीतिलक साधु ने शुद्ध करके इसकी टीका लिखी है।' लेशाजयतिलक अपने को श्री दुर्लभराज के समय में गुजरात भ्रमण करने आए हुए श्रीवर्द्धमान आचार्य की गुरुपरम्परा में नवां पुरुष मानते हैं। इस ग्रन्थ का नाम द्व्याश्रय इसलिये पड़ा कि इसमें

---

(१) खाखला, भाकस, भूसा।

ग्रन्थकार ने संस्कृत भाषा का व्याकरण भी समझाया है और सिद्धराज का वर्णन भी किया है, इस प्रकार इसके दो विषय आश्रय बने हुए हैं। इस दोहरे ग्रन्थ की रचना श्लिष्ट पद्यों में हुई है जिनको दो बार पढ़कर दोनों ओर लगते हुए अर्थ निकाले जा सकते हैं।

प्रबन्धचिन्तामणि ग्रन्थ इससे कुछ पीछे की रचना है। यह वर्द्धमानपुर (आधुनिक बढवाण) में सन् १३०५ ई० अथवा संवत १३६१ की वैशाख शुक्ला १५ को पूरा हुआ और इसके रचयिता वहीं (बढवाण) के प्रसिद्ध जैन धर्म के आचार्य मेरुतुंग थे। श्रीगुणचन्द्र नामक एक दूसरे आचार्य ने इसी नाम का (प्रबन्धचिन्तामणि) ऐसा ही ग्रन्थ लिखा है अथवा, जैसा कि स्वयं मेरुतुंग लिखते हैं, यह भी सम्भव है कि इस ग्रन्थ का आरम्भ ही उन्होंने किया हो। ग्रन्थकर्ता ने अपनी प्रस्तावना में लिखा है कि पुरानी बातों को सुनकर पण्डितों के मन को तृप्ति प्राप्त नहीं होती है, इसलिए मैं अपने ग्रन्थ प्रबन्ध-चिन्तामणि में अब के महाराजाओं की बातों का वर्णन मेरी छोटी सी बुद्धि के अनुसार पूर्ण प्रयत्न के साथ करता हूँ ।"

उपर्युक्त ग्रन्थों के ही मुख्य आधार पर हम अब तक लिखते आए हैं परन्तु, इनमें लिखी हुई बातों को और भी विशद करने, समझने और उनका सम्बन्ध जानने के लिए पुराने लेखों, ताम्रपट्टों, मुसलमान इतिहासकारों के लेखों, चन्द बारहठ के रासो, तथा अन्य भाट चारणों आदि की मौखिक बातों और दन्तकथाओं को भी यथास्थान उद्धृत किया है।

बढवाण और पाल्हनपुर के जैन साधुओं द्वारा रचे हुए ग्रन्थों की शैली में बहुत समानता है। उन्होंने यद्यपि राज-प्रकरण को धर्म

प्रकरण के आगे गौण समझा है, परन्तु दोनों ही विषयों में लगातार सम्बद्धता-पूर्वक लिखने का प्रयत्न न करके केवल वार्ताएं लिखकर सन्तोष कर लिया है। उनके लिखे हुए संक्षिप्त विवरणों की रूपरेखा यद्यपि खण्डित है परन्तु असत्य नहीं है, क्योंकि उनके लिखे हुए वृत्तान्त और सन्दर्भ यथासम्भव अपेक्षाकृत प्रामाणिक ग्रन्थों से तुलना करने पर पूरे खरे उतरे हैं। अतः यह मान लेना उचित ही होगा कि उनके विषय में ज्यों ज्यों अधिक शोध की जावेगी त्यों त्यों हमें अधिकाधिक सत्य की प्राप्ति होगी। यदि हमें यह ज्ञात हो जावे कि द्वयाश्रय में स्वयं हेमचन्द्र का लिखा हुआ कितना भाग है और लेशाजय तथा लक्ष्मी-तिलक ने बिना हेर फेर किए कितना भाग उद्धृत किया है तो दोनों प्रमुख राज्यकालों के विषय में समसामयिक लेखकों के मत प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु, यह प्रत्यक्ष रूप से असंभव है। अतः हम इन जैन-वृत्तान्तों को रचनाकाल के तत्सामयिक रास (परम्पराओं के अभिलेख) मानकर ही सन्तोष कर लेते हैं। ऐसा मान लेने पर भी उनके मूल्य में कोई कमी नहीं आती क्योंकि वे दूसरे साहित्य (१) को समझने और उससे सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होते हैं। इतना ही नहीं, कितनी ही बार तो वे घटना की सत्यता को खोज निकालने में सूत्र का काम भी करते हैं। यद्यपि उनमें वर्णित बहुत सी बातें पूरी छान बीन और स्पष्टीकरण के उपरान्त ही विश्वास करने योग्य निकलती हैं फिर भी उस समय के रीतिरिवाजों, संस्थाओं, मनोभावों और राजकाज के विषय में जो पूरी पूरी सूचनाएं मिलती हैं, उनको मान्यता न देना नितान्त अनुचित है। मुसलमानी आक्रमणों से पूर्व की शताब्दियों के मध्यकालीन भारत-

---

(१) जैनेतर साहित्य।

विषयक बहुत ही थोडी जानकारी हमें प्राप्त है और आधुनिक हिन्दू लोगों के विषय में ठीक ठीक अध्ययन करने के लिए उस काल के अविशिष्ट संस्मरण कितने अधिक उपयोगी हैं, इस बात पर ध्यान देने वाला कोई भी विचारवान् मनुष्य इन वर्णनों का अवमूल्यन करना संगत नहीं समझेगा, ऐसा हमारा मत है।

चन्द बारहठ की कविता अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर, चमत्कारपूर्ण, और मनोरञ्जक है परन्तु इसके विषय में सोच विचार कर ही लिखना उचित होगा। जितने भी चारण भाट आदि कविता-लेखक हुए हैं उन में चन्द की कीर्ति सब से बढकर है। जहां उसकी कविता में सभी प्रकार के दोष पाये जाते हैं वहां सभी प्रसिद्ध गुण भी उपलब्ध हैं। उसे केवल सविवेक आख्याता ही नहीं कहा जा सकता वरन् 'यदि (मदिरा की) लाल घूंट का' आस्वाद करके नहीं तो युद्ध और जातीय प्रतिस्पर्धा की मदिरा पीकर उत्तेजित हुआ, चौहानों का घरू भाट भी अवश्य समझा जा सकता है। उसके पाठ में इतनी गड़बड़ी है कि कहीं कहीं तो कुछ भी समझ में नहीं आता और जहां पर भावार्थ समझ में आता है वहां इस बात का पता चलाना कठिन हो जाता है कि इसमें से चन्द का लिखा हुआ मूल भाग कितना है और उसके अनुवर्तियों ने हेर फेर करके कितना भाग प्रक्षिप्त किया है। ऐसे हेर फेर इतने अधिक हैं कि मूल ग्रन्थ की प्रामाणिकता (१) के विषय में भी संदेह हुए बिना

---

(१) चन्द बारहठ प्रायः चन्द वरदायी के नाम से प्रसिद्ध है। इसका लिखा हुआ मूलकाव्य ४००० पद्यों का बताया जाता है जिसका विस्तार होकर १२४०० पद्यों का हो गया है। [Smith, Early Hist. of India, 3rd.p.387] इस ग्रन्थ के प्रामाणिक संस्करण की अत्यन्त आवश्यकता है परन्तु यह कार्य बहुत कठिन है।

नहीं रहता। हम पहले पढ़ चुके हैं कि चन्द के लिखे अनुसार तो भीमदेव द्वितीय पृथ्वीराज चौहान के हाथ से मारा गया था परन्तु सच बात यह थी कि वह पृथ्वीराज के मरने के बाद भी बहुत वर्षों तक जीवित रहा। दूसरे स्थानों पर चन्द ने गुजरात के जिन जातीय कुटुम्बों के नाम जिन भिन्न भिन्न घटनाओं के आधार पर लिखे हैं, वे घटनाएं दूसरे ग्रन्थकारों के मत से उन जातियों के संस्थापकों के उत्पत्तिकाल से सैंकडों वर्ष पहले ही घट चुकीं थी। चन्द के ग्रन्थ की प्रामाणिकता के विषय में शंका समाधान करते समय, भीम के मृत्युकाल की गड़बड़ी के विषय में तो यह कहा जा सकता है कि उसने अपने राजा और नायक की कीर्ति बढ़ाने की आतुरता में ऐसा लिख दिया है, और अन्य जातियों के विषय में यह उत्तर दिया जा सकता है कि जिस काल के विषय में चन्द ने लिखा है उस समय नहीं तो जिस काल में उसने ग्रन्थ रचा उस समय वे जातियां विद्यमान थीं. परन्तु उसने जो पीरम के गोहिलों का कीर्ति-गान किया है उसके विषय में क्या उत्तर दिया जा सकता है ? क्योंकि चन्द के बाद एक शताब्दी व्यतीत होने से पूर्व गोहिलों का अधिकार पीरम पर हुआ ही नहीं था। हमारी समझ में, इस बात को मानना ही पड़ेगा कि, सम्पूर्ण रासो, जो चन्द का लिखा हुआ माना जाता है, उसका लिखा हुआ नहीं है, और जब यह बात सिद्ध हो जाती है तो यह पता चलाना अत्यन्त कठिन है कि इसका कितना अंश तो स्वयं चन्द का रचा हुआ है और कितना उसके बाद वालों ने कब कब लिखा है।

उपर्युक्त चित्र-लेखकों से हमें अणहिलवाड़ा का जो चित्र प्राप्त होता है उसमें राजा के दरबार का दृश्य मुख्यतम है। उसके आसपास श्वेताम्बर जैन साधु अथवा पुनर्जन्म का बाना पहने हुए ब्राह्मण सुरक्षार्थ

उपस्थित हैं। पास ही, सैक्शन विधेयक द्वारा रचित अनौरस विलियम (१) के सामन्तों के समान, कड़ियों का बना कवच पहने हुए राजपूत योद्धा, अथवा युद्धक्षेत्र में वीर, मन्त्रणा में अति चातुर, व्यवहार में सरल परन्तु क्षत्रियों से भी अधिक क्रोधालु वणिक् मन्त्रीश्वर खड़े दिखाई देते हैं। इस शूरवीर मण्डली के एक ओर गायक और बन्दीजन खड़े हैं, जो स्वयं भी किसी अंश में शूरवीरों की गणना में आ जाते हैं। इनकी एक बाजू, कुछ हटकर शब्द-शूर किसान भेट–स्वरूप में भूमि की उपज लिए टोलियां बनाकर खड़े हैं। उनके पीछे, जिनकी शक्ति में अविश्वास नहीं किया जा सकता और हृदय में आशंका होते हुए भी जिनका पहरा रखना ही पड़ता है ऐसे काजल के समान काले, पहाड़ियों और गुफाओं के मूल निवासी हाथों में धनुषबाण लिए अपनी मंडली बनाए उपस्थित हैं।

स्वयं राजा का चित्र बहुत शानदार है, उसके शिर पर लालरंग का राजछत्र शोभित हो रहा है, मस्तक के पीछे सुनहरी सूर्य (प्रभा) मण्डल दमक रहा है, गले में विलासमय मोतियों का कण्ठा विराजित है और उसके बाजूबंध चमकदार हीरों के बने हुए हैं। यह सब कुछ होते हुए भी उसकी मूर्ति पुरुषत्व से हीन नहीं दिखाई पड़ती। उसकी मांसल भुजाएँ भाले और तलवार से सुशोभित हैं; युद्ध की प्रज्वलित आग से उसकी आंखें अंगारे के समान लाल लाल चमक रही हैं और

(१) सम्भवतः ग्रेटब्रिटेन के विलियम तृतीय से तात्पर्य है जो विलियम द्वितीय और चार्ल्स प्रथम की पुत्री मेरी का पुत्र था। वह पिता की मृत्यु के बाद पैदा हुआ था।

उसके कान जिस प्रकार महलों का गंभीर चौघड़िया (नौबत) सुनने में अभ्यस्त हैं उसी प्रकार युद्ध की प्रचण्ड रणभेरी का निनाद सुनने को भी कम उत्सुक नहीं है। वह रानी का शिशु, क्षत्रिय का पुत्र, अभिषिक्त राजा और 'ढालवाला मनुष्य' है।

सुन्दरियों का चित्र देखेने के लिए हमें दूसरे पट पर दृष्टि डालनी चाहिए। स्वयंवर-मण्डप में अपने मन के मानीते शूरवीर का वरण करती हुई और फिर कामदेव के साथ रति के समान शोभित होती हुई रमणी का रूप हमारे दृष्टिगत होता है। तदनन्तर हम उसे गौरव-मयी माता के रूप में अपने युवा पुत्र का राज्य संचालन करती हुई, अथवा उसके बड़े होने पर अपनी सलाह से उसके द्वारा दया और धर्म के कार्य सम्पादन करवाती हुई देखते हैं; अथवा, दुःख की बात है कि, हमें उसका दूसरा ही रूप देखने को मिलता है। उसकी आंखें क्रोध के मारे विलक्षण प्रकार से लाल हो रही हैं, स्वामी के निर्जीव शरीर को उसने गोद में ले रखा है, रणसिंगे की भीषण ध्वनि और उससे भी कठोर और अस्पष्ट चीत्कार कानों को कष्ट पहुंचा रही है—इसी बीच में चिता की भीषण ज्वाला भभक उठती है और गहरी धुआँ के बादल ऊपर फैल जाते हैं मानों वे इस भयानक दृश्य को स्वर्ग की आँखों से छुपाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

भूमिकर भी हिन्दू समाज के इतिहास का एक मुख्य विषय रहा है। जिन पुस्तकों के आधार पर हम लिखते आ रहे हैं, उनके लेखकों ने इसको संसार का सर्वसाधारण विषय मानकर कोई विशेष चर्चा नहीं की है और न ऐसा करने की आवश्यकता ही समझी है। परन्तु इधर उधर से जो बातें हमारे जानने में अनायास ही आ गई हैं, वे ये हैं कि कभी

तो राजा अपना राजस्व सीधा किसानों से वसूल करता था, कभी कभी उसके प्रतिनिधि बनकर उसके मंत्री कर उगाहते थे, कभी कृषकों से गांव के अधिपति कर ले लेते थे, उनसे राजा अपना भाग ग्रहण करता था। देश में 'ग्राम' अथवा गाँव बसे हुए थे और उनमें रहने वाले लोग कौटुम्बिक (कणबी) अथवा कृषक (किसान) कहलाते थे, गाँव का मुखिया पट्टकील अथवा पटैल कहलाता था। किसान लोग जिस प्रकार आज कल अपने काम में व्यस्त रहते हैं उसी प्रकार उस जमाने में भी रहते थे। जब फसल उग आती तो वे अपने खेतों के चारों ओर काँटेदार झाड़ियों की कच्ची बाड़ लगाते थे और जब फसल और भी बड़ी हो जाती तो वे अपने अपने खेतों में चिड़ियां उडाने में व्यस्त दिखाई देते थे। किसान स्त्रियां भी, आज कल की भांति ही, अपने धान के खेतों की रखवाली करती हुई मधुर गीतों से वायुमण्डल को गुँजा देती थीं। यदि वर्षा कम होती अथवा बिलकुल न होती तो राजा को अपना भाग वसूल करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता था और किसानों को रोक कर कैद किए बिना इस कार्य की सिद्धि नहीं होती थी। कभी कभी तो इतना होने पर भी, किसान अपना हठ न छोड़ते और असहाय बालक की भांति क्रंदन करके राजा के हृदय में दया उत्पन्न करने का प्रयास करते। इसके फलस्वरुप दोनों ही पक्षों की कठिनाइयां बढ़ जातीं और अन्त में, पंच-फैसले पर यह विषय किसी प्रकार तय हो जाता था। आजकल भी देशी राज्यों में कितनी ही जगह यही दशा प्रत्यक्ष देखने में आती है।

देवस्थानों और धर्म-गुरुओं को मुख्यतया राजा की ओर से भूमि प्रदान की जाती थी। इस विषय के बहुत से प्रमाण

सुरक्षित रखे गये हैं। उदाहरणार्थ, सिद्धपुर अथवा सिहोर ब्राह्मणों को और चाली ग्राम जैनों को मिला हुआ था । इस प्रकार दिया हुआ दान 'ग्रास' कहलाता था और संभवतः यह शब्द 'धार्मिक-दान' के अर्थ में प्रयुक्त होता था । जब मूलराज ने अणहिलवाड़ा में त्रिपुरुषप्रासाद नामक शिव-मन्दिर बनवाया तो उसने मन्दिर के अधिकारी को 'ग्रास' प्रदान किया था, और जब कुमारपाल के राज्यकाल में उदयन के पुत्र वाग्भट्ट ने पालीताना के पास वाहड़पुर में राजा के पिता के नाम पर त्रिभुवनपाल-विहार नामक जैन चैत्य बनवाया तो राजा ने मनुष्यों के खाने पीने के प्रबन्ध के लिए जो भूमि प्रदान की थी वह भी 'ग्रास' ही कहलाती थी। भोजराज के दरबार में माघ नामक एक कवि हुआ है, उसने एक ब्राह्मण की दरिद्रता के विषय में अनुरोध करते हुए कहा है कि, 'जो गृहस्थ ग्रास देना भूल जाता है उसका सौभाग्य-सूर्य अस्त हो जाता है ।' यह कार्य 'शासन' के नाम से प्रसिद्ध है ।

राजा के कुटुम्बियों और भाई बन्धुओं को भी जमीनें मिलती थीं जैसे, देथली और बाघेल। कुमारपाल के विषय में यह भी कहा जाता है कि, 'दानियों के अधिपति' सोलंकी राजा ने आलिग नामक कुम्हार को सात सौ गांवों का पट्टा लिखकर दे दिया था। वह कुम्हार अपने नीच कुल के कारण बहुत लज्जित हुआ, और इसी कारण आज तक उसके वंशज 'सगरा' कहलाते हैं। इस दान के विषय में अब कोई पता नहीं चलता है। एक बाघेल को छोड़कर, वंशपरम्परानुगत सैनिक सेनाओं के लिए मिली हुई किसी स्थाई जागीर का भी पता नहीं चलता है। गुजरात में जितने किले हैं वे सब राजा के संनिवेश के लिये बने हुए मालूम होते हैं। पटायतों का उनमें कोई भी दखल नहीं था। जितने भी राजपूतों के ठिकाने हैं, जिनके स्वामी जमीनदार व छोटे

छोटे राजे बने हुए हैं, उनमें से एक के भी इतिहास लेखक के लेख से यह प्रमाणित नहीं होता है कि उन्हें ये जमीनें अणहिलवाड़ा के राजों की दी हुई हैं। हां, झाला राजपूत तो अवश्य कहते हैं कि उनके पास जो भूमि है वह अणहिलवाड़ा के अन्तिम राजा कर्ण (द्वितीय) (१) ने उन्हें प्रदान की थी। हम मूलराज के दरबार में मुकुटधारी राजाओं का तथा अन्य स्थानों पर मंडलेश्वरों एवं प्रान्तपतियों का वर्णन पढ़ चुके हैं—उदाहरणार्थ, कुमारपाल के बहनोई कान्हदेव को ही यह पद प्राप्त था और जब उदयन मन्त्री ने सोरठ के साऊसर पर चढाई की थी तब यह लिखा है कि उसने बढवाण आकर समस्त 'मण्डलेश्वरों' को एकत्रित किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग अलग अलग प्रान्तों के अधिपति थे, इनके अतिरिक्त दूसरे ऐसे माण्डलिक राजों का भी वर्णन मिलता है कि जिनके देश अणहिलवाड़ा के राजाओं के आधीन तो थे परन्तु गुजरात की सीमा में नहीं गिने जाते थे। आबू और गिरनार के राजा तथा कोंकण का अधिपति मल्लिकार्जुन इसी वर्ग में गिने जाते थे।

सामन्तों और सैनिक अफसरों को प्रायः राजकोष से ही वेतन मिलता था। और जैसा कि बाद में दिल्ली के मुगल बादशाहों के जमाने में हुआ करता था, जितने आदमियों पर वे अधिकारी होते थे उसीके

---

(१) सिद्धराज के पिता कर्ण सोलंकी (१०७२-१०९४) से इन्हें १८०० ग्राम मिले थे, कर्ण (द्वितीय) नहीं। इसके विषय में प्रमाण यह है कि पृथ्वीराज की लडाई में झाला थे, ऐसा बहुत सी जगह लिखा हुआ मिलता है। दूसरे कर्ण का समय १२९६—१३०४ ई० है, 'रासो' उससे पहले ११४३ में लिखा गया था इसलिए झालों को उससे पहले होना चाहिए।

अनुसार उनका पद होता था। कहते हैं कि, सिद्धराज ने अपने एक खवास (मुख्य सेवक) को "सौ घोडों का सामन्त पद' दिया था, और जब कुमारपाल ने आन्नराज पर चढ़ाई की थी उस समय के वर्णन में लिखा है कि, 'उसकी सेना में बीस बीस और तीस तीस सिपाहियों के अधिकारी महाभट्ट और एक एक हजार सिपाहियों के अधिकारी भट्टराज मौजूद थे।' इनसे बड़े अधिकारी 'छत्रपति' और 'नौबतधारी' होते थे अर्थात् उन्हें छत्र और नौबत के राज्य-चिन्हों का उपयोग करने का अधिकार मिला हुआ था। इस विषय में यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि इन बड़े बड़े पदों एवं स्वतन्त्र अधिकारों को प्राप्त करने वालों में अधिकतर बनिया जाति के लोग थे, जैसे वनराज का साथी (मित्र) जाम्ब, उसका वंशज सज्जन, जयसिंह का सेवक मुञ्जल, उदयन और उसके पुत्र इत्यादि। जो लोग यदा कदा प्रसंगवश सेवा में उपस्थित होते थे, वे नौकर न कहलाकर प्रायः सहकारी कहलाते थे। ऐसे सरदारों में कल्याण के राजे और सियोजी राठौड़ (१) थे। 'राजपूत' और 'प्यादे' ये दो नाम अलग अलग लिखे गए हैं इससे मालूम होता है कि 'राजपूतों' से घुड़ सवारों का अभिप्राय है।

राजा का सबसे मुख्य कर्तव्य यह होता था कि वह विदेशी हमलों तथा अन्तरङ्ग बखेडों से अपनी प्रजा की रक्षा करे, आस पास के छोटे छोटे राज्यों को अपने अधिकार में लेकर राज्य की वृद्धि करे, और

---

(१) मूलराज और ग्राहरिपु की लड़ाई में कच्छ के लाखा फूलाणी को मारने वाला सियोजी राठौड़ था, यह पहले लिखा जा चुका है, और इसीलिए उसका नाम यहाँ पर सहकारियों में लिखा है परन्तु सियोजी उस समय नहीं था, वह तो १२१२ ई० में हुआ था।

वास्तव में आदर्श राजा विक्रमादित्य (३) का अनुकरण करे, 'जिसने चारों दिशाओं में विजय प्राप्त करके राजमण्डल को अपने आधीन कर लिया था।' इस प्रकार की चढ़ाइयां 'विजय-यात्राएं' कहलाती थी। कभी कभी किन्हीं विशेष और आवश्यक कारणों से भी लडाइयां हुआ करती थीं, जैसे, ग्राहरिपु पर धर्म-विग्रह के कारण चढ़ाई की गई। यशोवर्मा ने सिद्धराज को उत्तेजित किया। परन्तु, फिर भी इन लड़ाइयों का मूल उद्देश्य तो एक ही होता था। जब विजेता के सामने विजित राजा दांतों में तिनका ले आता और कर देना स्वीकार कर लेता तो वह सन्तुष्ट हो जाता और उसके राज्य पर स्थाई रूप से अधिकार न जमाता। जब एक देश पर एक बार आक्रमण हो चुकता और पुनः उस पर हमला करना पड़ता तो यह प्रायः 'मुलुकगीरी' की रीति का होता था। जीत का अर्थ यह होता कि भूमि की वार्षिक उपज में से कोई भाग लेने का अधिकार विजेता को प्राप्त हो जाता था और इस प्रकार का हक आवर्तरूप में चलता रहता था। जिस प्रकार अपने देश के किसानों से राजा अपना भाग लेता था उसी प्रकार दूसरे देशों के राजों से उन पर हमले करके अपना कर वसूल करता था। यह प्रथा बहुत पहले से प्रचलित जान पड़ती है, क्योंकि जब भूवद राजा ने जयशेखर पर चढ़ाई की थी उस समय भी यही रिवाज था। इसीके अनुसार कल्याण के राजा ने भी, अपने अधिकारियों को कर वसूल करने में सहायता मिले इसलिए गुजरात देश के युवक राजा वनराज को अपना 'सेलभृत' बनाकर भेजा था। एक दन्तकथा ऐसी प्रचलित थी कि, गुजरात बहुत दिनों तक गोदावरी के दक्षिण के राजाओं के आधीन करद राज्य की भांति रहा था। यह

(२) प्रबन्धचिन्तामणि।

बात चावडा वंश के अन्तिम समय तक चलती रही और यहां तक कि तैलिप राजा के सेनापति बारप ने जब प्रथम सोलंकी राजा के समय हमला किया था उस समय भी यह प्रसिद्ध थी। इसके बाद वनराज के क्रमानुयायियों ने कच्छ, सोरठ, उत्तर कोंकण, मालवा और जालौर तथा अन्य देशों पर बहुत से हमले किये परन्तु उन पर उनका स्थाई अधिकार न हो सका। यद्यपि मूलराज ने ग्राहरिपुको हरा दिया और लाखा को मार डाला था परन्तु इससे जाड़ेजा और यादव वंश की समाप्ति नहीं हुई। यद्यपि जयसिंह ने यशोवर्मा को जीत कर धार पर अधिकार कर लिया था परन्तु इसके थोड़े ही वर्षों बाद मालवा के अर्जुनदेव ने गुजरात को उच्छिन्न कर दिया, और यद्यपि सपादलक्ष देश में एक बार अणहिलवाड़ा की विजय पताका सगर्व फहराई गई परन्तु अजमेर के नरेशों और वनराज के वंशजों में निरन्तर शत्रुता चलती रही और अन्त में चौहान और सोलंकी, दोनों ही समान रूप से मुसलमान आक्रमणकारियों के शिकार बन गये।

पड़ौस के शक्तिशाली राज्यों के दरबार में अणहिलवाड़ा की ओर से भेजे हुए 'सान्धि-विग्रहिक' रहते थे जिनका काम संधि और युद्ध करवाने का तथा विदेशी मामलों में पूरी जानकारी रखने का था। यही कार्य दूसरे प्रकार से भी होता था। इसके लिए 'स्थानिक पुरुष' अर्थात् उसी देश के मनुष्य (गुप्तचर) रखे जाते थे जिनको सब कुछ हाल मालूम रहता था परन्तु उनका पता किसी को नहीं चल सकता था।

अणहिलवाड़ा के राजा लोग भूमिकर के अतिरिक्त देश से बाहर जाने वाले माल पर 'दाण' और यात्रियों से 'कर' वसूल करते थे। समुद्रगमन और व्यापार के विषय में बहुत कम वृत्तान्त प्राप्त

होता है परन्तु, समुद्री जहाजों, व्यापार तथा समुद्री डाकुओं का हाल आवश्य मिलता है। व्यापारी लोग जो 'व्यवहरिया' कहलाते थे बहुत धनवान् होते थे। और, ऐसा कहते हैं कि, जिसके पास एक करोड़ का धन होता था वह अपने मकान पर 'करोडपति-ध्वजा' (१) फहरा सकता था। योगराज के समय में घोड़ों, हाथियों और दूसरे सामान से लदा हुआ एक जहाज देवपट्टण में आकर उतरा था, सिद्धराज के समय में समुद्री व्यापारी, सांयात्रिक आदि समुद्री डाकुओं के भय से अपना सोना बोरियों में छुपा कर लाते थे। उस समय, उत्तर कोंकण, गुजरात और उसके द्वीप-कल्प भाग के समुद्री किनारे अणहिलवाड़ा के राजाओं के अधिकार में थे। उनमें से स्तम्भतीर्थ और भृगुपुर, ये दोनों बन्दरगाह खम्भात और भडौंच के नाम से प्रसिद्ध हैं, सूर्यपुर से सूरत का अभिप्राय होगा और संभवतः गणदेवी ही गणदाबा (१) कहलाता हो। इनके अतिरिक्त बेट, द्वारका, देवपट्टण, महुवा और गोपीनाथ आदि अन्य स्थानों से भी सौराष्ट्र का समुद्री किनारा भरा हुआ था।

जैन और ब्राह्मण उस समय के प्रचलित धर्म थे। इनमें निरन्तर बढ़ाचढ़ी चलती रहती थी और बारी बारी से एक दूसरे को दबाते रहते

---

(१) ऐसा रिवाज था कि एक लाख से लेकर निन्यान्वे लाख तक जिसके घर में जितने रुपये होते थे वह उतने ही दीवे जलाता था। सिद्धराज ने एक मनुष्य के घर पर ६६ दिवे जलते देख कर पूछताछ की तो मालूम हुआ कि वह ६६ लाख का आसामी था, इस पर राजा ने उसे अपने राजकोष से ४ लाख रुपये और देकर करोडपति बना दिया। इसके बाद उस मनुष्य को दीवे न जलाकर केवल एक ध्वजा ही फहरानी पड़ती थी।

(१) यह गणदेवी नहीं वरन् कच्छ के बागड़ परगने का कंथकोट किला है।

थे। पहले राजा के समय में जैन धर्म की प्रबलता थी, इसका कारण यह हो सकता है कि राजा के बाल्यकाल में उसका संरक्षण इसी धर्म में हुआ था और उसकी माता का भी प्रभाव था क्योंकि वह इसी धर्म में दीक्षिता हो चुकी थी। वनराज और उसके क्रमानुयायी तो शैव धर्म को ही मानते रहे परन्तु जब से सिद्धराज ने अर्हन्त का मत सुना और कुमारपाल ने इसको स्वीकृत कर लिया तब से स्थिति में कुछ परिवर्तन हो गया और उसी काल से जहां तक हम आ पहुंचे हैं वहां तक, अजयपाल के अल्पकालीन राज्य को छोडकर, इस राज्य में जैनधर्म का ही प्रावल्य रहा और यहां के राजा लोग उस धर्म के प्रामाणिक पुरुष माने जाते थे। इन धर्मों के विवाद उग्ररूप में परन्तु नियमपूर्वक चलते रहते थे। हिन्दू होने के नाते राजा सभा के अध्यक्ष पद पर विराजमान होता था। हम देख चुके हैं कि सिद्धराज, जो शैव था अथवाउदार (मत का मानने वाला) था ऐसी धर्मसभा का अध्यक्ष बनकर सत्यासत्य का निर्णय करने के लिए बैठा था।

यात्रास्थानों में शिव और विष्णु के मन्दिरों में क्रमशः सोमनाथ और द्वारका के मन्दिर ही प्रसिद्ध थे।(२) आरासुर में अम्बाजी और चम्पानेर में कालिकादेवी के मन्दिर भी मौजूद थे और इसी देवी का हिंगलाज नाम से नल बावली में भी एक प्रसिद्ध देवालय था। परन्तु

---

(२) कच्छ के पश्चिमी किनारे पर शेरगढ (आधुनिक नारायण सरोवर) नामक बहुत पुराना तीर्थस्थान है। मूलराज का पिता अपनी रानी की मृत्यु के बाद द्वारका की यात्रा करके शेरगढ़ की यात्रा करने गया था। वहां से लौट कर कपिलकोट में आते समय कच्छ के जाम ने अपनी बहन रायाजी का विवाह उसके साथ किया था।

आजकल इस माता के जो देवालय देश में स्थान स्थान पर पाए जाते हैं उनके विषय में कोई लेख नहीं है। शत्रुञ्जय और गिरनार पर के जैन तीर्थों के विषय में लेख मिलते हैं। कच्छ के रण के किनारे पर स्थित शङ्खपुर भी इन्हीं के साथ का है और आचार्य मेरूतुंग ने शङ्खपुर के नाम से जो वर्णन लिखा है उससे विदित होता है कि इसका जीर्णोद्धार उसीके समय में हुआ था। माही के सामने के किनारे पर खम्भात और कावी में और ढाढर के किनारे पर गन्धार में भी जैनों के तीर्थ वर्तमान थे। भीमदेव प्रथम के समय में आबू पर एक जैन देवालय बना और कुमारपाल ने भी इसके पास ही तारिङ्गा के पर्वत पर श्री अजीतनाथ की स्थापना की।

कुमारिका सरस्वती की पतली और मन्द धारा से लेकर नर्मदा के वेगवान् प्रवाह तक बहुत सी पवित्र नदियाँ इस प्रान्त में बहती हैं। ताप्ती, माही, साबरमती और बहुत सी अप्रसिद्ध नदियों पर बहुत से प्रसिद्ध तीर्थस्थान बने हुए हैं जिनकी महिमा उनके माहात्म्यों में वर्णित है।

घरेलू रहन सहन के विषय में भी हमें थोड़ी बहुत सूचनाएं प्राप्त हुई हैं। राजा को जगाने के लिए प्रातः काल राज-नौबत बजती और शंख ध्वनि की जाती है। वह उठ कर घोड़े पर चढ़कर व्यायाम करने चला जाता है। उसके महल किले के भीतर निर्मित हैं, वहीं पर अन्य राजगृह भी बने होते हैं। कीर्तिस्तम्भ इन राजप्रासादों की शोभा बढ़ाते रहते हैं। एक दरवाजा, जो घटिकाद्वार (अथवा घण्टाघर) कह-लाता है, शहर की और खुलता है और उसके आगे ही सामने त्रिपो-लिया (तीन दरवाजों का एक घेरा) बना होता है। दिन को राजा का

दरबार लगता है, द्वार पर चोबदार (१) छड़ी लिए हुए खड़े रहते हैं और दरबार में आने वालों की रोक टोक करते हैं। युवराज राजा के पास बैठता है और मण्डलेश्वर तथा अन्य सामन्त उसके चारों ओर रहते हैं। मन्त्रीराज अथवा प्रधान भी अपने सहकारियों के साथ वहां पर उपस्थित रहता है और बहुत ही गंभीरता के साथ मितव्ययिता की मंत्रणा देता है तथा ऐसे ऐसे पुराने लिखित प्रमाण और उदाहरण प्रस्तुत करता है जिनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। जब राज का कामकाज हो चुकता है तो विद्वान् और पण्डित आते हैं और, सर्व-साधारण की समझ से ऊँची, अतः न समझने वालों के लिए शुष्क, विद्या और व्याकरण की दम्भपूर्ण बातें चालू होती हैं, अथवा कोई विदेश से आया हुआ भाट वा चित्रकार दरबार में आकर राम और विभीषण की प्राचीन कथा का बखान करता है, अथवा किसी दूर देश की ऐसी रमणी की बात चलाता है जिसके अभिनव सौन्दर्य की कल्पना प्रत्येक दरबारी के मन में उतर आती है। वाराङ्गनाओं की उपस्थिति से यह दरबार वञ्चित रहता हो, ऐसी बात नहीं है; इन वारनिताओं से संसार में प्रशंसनीय चतुराई प्राप्त होती है, इनके वचन मार्मिक होते हैं, और जिस कठिन कार्य की उलझी हुई ग्रन्थि को सुलझाने में बड़े बड़े पण्डित असफल हो जाते हैं उसी को ये अपने रसभरे अथवा तीक्ष्ण उत्तरों की छुरिका से सहज में काट डालती हैं, कहा भी है:—

'देशाटनं पण्डितमित्रता च, वाराङ्गनाराजसभाप्रवेशः
अनेक शास्त्राणि विलोकितानि, चातुर्यमूलानि भवन्ति पञ्च।'

---

(१) चोब अर्थात् लकड़ी की छड़ी धारण करने वाला।

देशाटन, पण्डितों की मित्रता, वाराङ्गना, राज–दरबार में प्रवेश, और अनेक शास्त्रों का अवलोकन, ये पांचों चतुराई प्राप्त करने के साधन हैं।

हाथी पर सवार होकर अथवा सुखासन में बैठ कर राजा बाहर निकलता है और उत्सव के दिन, उसके मार्ग में आने वाली दूकानें सजाई जाती हैं। सायं देवपूजा के उपरान्त आरती हो चुकने पर वह ऊपर के महल में, जो चन्द्रशाला कहलता है, चला जाता है। वहां उसे भोजन सामग्री तैयार मिलती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस सामग्री में मांस और मदिरा भी होते हैं क्योंकि हम सामन्त-सिंह को नशे में चूर देख चुके हैं और जैन-धर्म में परिवर्तित कुमारपाल के मदमांस त्याग का विवरण भी पढ़ चुके हैं। भोजन के अनन्तर उसके अङ्गों पर चन्दन का विलेपन होता है, पान सुपारी भेंट किये जाते हैं और फिर वह छत से सांकलों के सहारे लटकते हुए हिन्दोले पर आराम करता है। वह अपने लाल वस्त्र उतार कर पलंग पर तकिए के सहारे डाल देता है और विश्राम करने लगता है। पहरेदार पहरे पर सन्नद्ध हो जाते हैं और एक कोने में से दीपक अपना मन्द मन्द प्रकाश फैलाता रहता है।

यहां पर यह न समझ लेना चाहिये कि राजा के कर्तव्य यहीं समाप्त हो जाते हैं। अभी तो उसे वीरचर्या करने के लिए पलंग छोड़ना पड़ेगा। हाथ में तलवार लेकर वह अकेला निकल पड़ता है अथवा पानी की झारी लेकर एक सेवक उसके साथ हो जाता है और इस प्रकार रात्रि के समय अपने नगर की शून्य गलियों में वह गश्त लगाता है, अथवा दरवाजे से निकलकर किले के बाहर, जहां रात को गंदे पक्षी

फिरते रहते हैं, ऐसे डाकिनियों और योगिनियों के स्थान पर पहुँच कर उनको बहुत से प्रश्नों का उत्तर देने व भविष्य की बातें बताने के लिए बाध्य करता है। द्वयाश्रय के कर्ता ने सिद्धराज के रात्रि-भ्रमण के विषय में लिखा है कि, "जिन लोगों के विषय में उस रात राजा को कोई हाल मालूम हो जाता, उन्हें वह दिन में अपने पास बुलाता और कहता, 'तुमको अमुक बात का दुःख है अथवा तुमको अमुक बात की खुशी है', इससे उसकी प्रजा यह समझ लेती कि वह सबके मन की बातें जानता था और देव का अवतार था।' अपनी प्रजा के सुख दुख का हाल जानने के लिए वेष बदल कर निकले हुए राजा को जहां भूतों और डाकिनियों का सहवास करना पड़ता वहां कितनी ही बार उसके छोटे-मोटे दुख को दूर करने के साधन भी मिल जाते थे। कभी तो किसी धन-वान् व्यापारी के घर पर चमकते हुए दीपकों को देखकर उसका मन ललचा जाता है, तो कभी छद्मवेष में होते हुए भी किसी उत्सव में उसका आगत स्वागत होता है और कभी राग रागिनी व हास परिहास की आवाज से आकृष्ट होकर वह वहां जा पहुंचतता है जहां, किसी शिव-मन्दिर के मण्डप में कोई खिलाड़ी अपनी तात्कालिक बुद्धि से लोगों को आनन्दित कर रहा होता है। जयसिंह महान् के बारे में एक बात हमारे सुनने में आई है कि एक बार कर्णमेरुप्रासाद में नाटक हो रहा था। राजा भी वहां जा पहुंचा और एक बनिया उसके साथ वहीं पर बहुत हिलमिल गया। जब नाटक के रस में परिपाक होने लगा तो वह वणिक् आनन्दविभोर होकर राजा के कंधे पर भार डाल कर खड़ा रहा और जिस हाथ ने खंगार व यशोवर्मा का मानमर्दन किया था उसी हाथ से पान सुपारी लेकर खाता रहा। दूसरे दिन सवेरे ही जब दरबार में बुलाया गया तो गत रात्रि के साथी को सिंहासन पर विराजमान देख

कर वह हक्काबक्का रह गया, परन्तु बाद में नम्रतापूर्वक प्रार्थना करने लगा और राजा ने हंसकर उसका स्वागत करके विदा किया। ऐसा जान पड़ता है कि इन खेलों में पर्याप्त धन खर्च होता था और केवल धनवान् लोग ही इसको वहन कर सकते थे। एक दूसरे समय की बात लिखी है कि एक महाजन ने शिव-मन्दिर में नाटक करवाया था। जयसिंह भी उसे देखने जा पहुंचे। उस समय वे अपने मन में विचार करने लगे कि 'इस महाजन से मालवा पर चढ़ाई करने के लिए सेना इकट्ठी करने के निमित्त कितना धन कैसे प्राप्त करना चाहिए ?

मेरुतुंग और द्व्याश्रय के कर्ता, इन दोनों में से किसी ने भी अपने समय की किसी विशेष अथवा सामान्य इमारत का वर्णन नहीं किया है। कुमारपाल-चरित्र से प्राप्त अणहिलपुर की राजधानी का वर्णन यहां पर उद्धृत करते हैं।

"अणहिलपुर बारह कोस के घेरे में बसा हुआ था, जिसमें बहुत से देवालय और विद्यालय थे, चौरासी चौक थे और चौरासी ही बाजार थे जिनमें सोने रूपे की टकसालें थीं, जिस प्रकार भिन्न भिन्न वर्णों के घर भिन्न भिन्न चौकों (चतुष्कों) में बने हुए थे उसी प्रकार हाथीदांत रेशम, हीरा, मोती, आदि के भी अलग अलग बाजार लगते थे, सर्राफों का बाजार अलग था और सुगन्धित द्रव्यों और लेपनादि की वस्तुओं का अलग, एक बाजार वैद्यों का था, एक कारीगरों का और एक सोने चांदी के काम करने वाले सोनियों (स्वर्णकारों) का। इसी प्रकार नाविकों, भाटों और बही बांचने वाले रावों आदि के लिए अलग अलग स्थान नियुक्त थे। अठारहों वर्ण नगर में बसते थे और सभी आपस में प्रसन्न थे। राजमहल के आसपास ही आयुधागार, फीलखाना

(हस्तिशाला) घुड़साल, रथशाला और हिसाब किताब की तथा दूसरे राजकाज की कचहरियों के लिए इमारतें बनी हुई थीं । नगर में आने जाने व बिकने वाले सभी प्रकार के बहुमूल्य माल, जैसे मसाले, फल, दवाइयां, कपूर और धातुओं इत्यादि पर जकात वसूल की जाती थी, और इनके लिए अलग अलग राहदारियां नियुक्त थी । यह नगर सभी प्रकार के व्यापार का केन्द्र था, जकात के एक लाख टंक नित्य वसूल होते थे । नगर में यदि किसी से पानी मांगो तो दूध लेकर आता था । यहां पर बहुत से जैन-मन्दिर भी थे और एक झील के किनारे पर सहस्र-लिंग महादेव का विशाल देवालय बना हुआ था । चंपा, नारियल, गुलाब चन्दन और आमों आदि के पौधों और वृक्षों से भरपूर, भांति भांति की रंग विरंगी बेलों से सजी हुई और जिनमें अमृत–तुल्य जल के झरने बहते थे, ऐसी बाड़ियों में घूम फिर कर नगरनिवासी आनन्द प्राप्त करते थे । यहां पर वेद-शास्त्रों की चर्चा निरन्तर चलती रहती थी जिससे श्रोतागण को बोध प्राप्त होता था । जैन-साधुओं की और वचन के पक्के तथा व्यापार में कुशल व्यापारियों की भी यहां पर कमी न थी । व्याकरण पढ़ने के लिए बहुत सी पाठशालाएँ थीं । अणहिलवाड़ा जन-समुद्र के समान था, यदि समुद्र के पानी का माप किया जा सके तो वहां के निवासी प्राणियों की गणना की जा सकती थी । वहां की सेना असंख्य थी और बड़े बड़े घण्टधारी हाथियों की कोई कमी न थी । (१)

परन्तु यह लिखते हुए दुःख होता है कि इस पूरी शानशौकत की अब कुछ भी निशानी नहीं बची है । अणहिलवाड़ा के कुछ खण्डहर

(१) टाड कृत वैस्टर्न इन्डिया पृ १५६-१५८ के आधार पर ।

आधुनिक पाटण शहर के किले की दीवारों के भीतर की ओर और कुछ बाहर की तरफ के सपाट मैदान में पड़े हुए हैं। परन्तु, वलभीपुर के खण्डहरों की भांति खोद कर शोध करने पर इनका भी पता चल जाता है। वनराज की राजधानी के खण्डहर बेबीलोन की जैसी ईटों के न होकर कोरे आरस पाषाण से बने हुए हैं। जिस आरासर पर्वत की नीली रेखा इस ऊजड़ रेतीले मैदान में से क्षितिज की ओर दिखाई पड़ती है उसी का बहुत सा भाग इस नगर के निर्माण के लिए लाया गया होगा। भीम-देव प्रथम की रानी के बनवाए हुए कुए का कुछ भाग अब भी विद्यमान है और इससे थोड़ी ही दूर पर सिद्धराज के बंधवाए हुए शोभायमान सरोवर का स्थान जान पड़ता है जिसके बीच में एक टेकरी पर अब एक मुसलमान की कब्र बनी हुई है। बाकी बचे हुए भाग पर छः लम्बी शताब्दियों और मुसलमानों के अत्याचारों ने अपना काम किया है। जो कुछ 'कम्बाइसिस' (खम्भात) और समय ने बचा रखा है उसको लोभ स्वाहा कर रहा है, और अब, अणहिलवाड़ा की ठंडी पडी राख को उसकी महिमा और अपनी अप्रतिष्ठा को न समझने वाले, उसके स्वामी बने हुए, मराठे तुच्छ से अर्थ-लाभ के लिए बेचे जा रहे हैं।

ठेठ हिन्दू काल की रहन सहन की इमारतों के विषय में तो हम उनके बाद की बनी हुई इमारतों को देखकर केवल एक सामान्य कल्पना ही कर सकते हैं। किसानों की झोंपडियां नष्ट हो गई हैं और राजों के महल भी उन्हीं के समान विलीन हो चुके हैं परन्तु सार्वजनिक इमारतों की शोभा के विषय में अब तक के बचे खुचे खण्डहर प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। उन्हीं के आधार पर थोड़ा सा प्रयास करके हम अवश्य ही उस समय के कुओं, तालाबों, कीर्तिस्तम्भों, देवालयों और अणहिलपुर के राजदुर्गों की तस्वीर अपनी आंखों के सामने खड़ी कर सकते हैं।

इन खण्डहरों में डभोई और जिंजूवाडा के युग्म किले बहुत ही आकर्षक हैं। यद्यपि इनकी बनावट और विस्तार में बहुत समानता है, परन्तु जिञ्जूवाड़े के किले की बनावट में सुघरता अधिक पाई जाती है और इसकी एकान्त स्थिति के कारण इसको हानि भी थोड़ी ही पहुँच पाई है, इसलिए हम यहां पर वर्णन करने के लिए इसीको चुन लेते हैं—

जिञ्जूवाड़ा (१) का किला प्रायः वर्गाकार है और उसकी एक भुजा की लम्बाई लगभग आठ सौ गज है। इसके चारों ओर की दीवारें बहुत मजबूत बनी हुई हैं और ऊंचाई में लगभग ५० फीट हैं। (२) चारों ओर दीवारों के बीच में एक एक दरवाजा बना हुआ है, जिसके ऊपर की मेड़ (ताज) बाहर निकलते हुए धनुषाकार टोडों के आधार

---

(१) मि० फार्बस् का कहना है कि जिञ्जू नाम के रैवारी के नाम पर इस किले का यह नाम पड़ा था। यह किला अणहिलवाड़ा पट्टण के वाल्हार राजों के राज्य की सीमा पर बाहरवीं शताब्दी में बँधाया गया था।

(२) सिबास्तापोल (Sebastapol) के किले की रक्षा के विषय में सन् १८५५ ई० के नवम्बर मास के 'यूनाइटैड स्टेट्स् जर्नल' के अंक में सर जॉन बर्गोइन ने एक लेख लिखा है। इस लेख को हम यहाँ पर उद्धृत करते हैं जिससे पाठकों को पता चल जायगा कि उस समय जिञ्जूवाड़ा का किला कितना महत्वपूर्ण था।

"रक्षा के मुख्य साधनों में से एक प्रधान साधन तो यह है कि आक्रमणकारी के मार्ग में अटक पैदा कर देना, और सर्वोत्तम अटकाव यह है कि मजबूत भीत अथवा खड़ा मोखरा बनवाया जावे। यदि भींत ऊंचाई में ३० फीट से अधिक हो तो वास्तव में वह बहुत त्रासदायक मालूम होती है—और जब तक यह सहीसलामत (पूरी) रहती है तब तक तो इस पर चढ़ कर नीचे उतर आने के

पर स्थित है। इन टोडों के सिरे आपस में लगभग मिले हुए से हैं और कमान का काम करते हैं। किले की दीवारें इतनी मोटी हैं कि उनमें एक के बाद एक छः कौंसाकार (महराबदार) दरवाजे बने हुए हैं और उन पर पत्थर की सीधी छत पटी हुई है। मुसलमानों ने आकर, गुम्बजदार छत बनवाने में सुगमता के विचार से कमानें बनवाने का रिवाज चलाया। तदनन्तर बहुत दिनों बाद तक यह चाल प्रचलित रही थी। किले के प्रत्येक कोने पर एक बुर्ज बनी हुई है जिसका सामान्य आकार तो चौरस है परन्तु उसको बनाने वाले हिन्दू कारीगर ने अपनी पसन्द के अनुसार उसमें जगह जगह खोंचे डालकर उसको असाधारण बना दिया है। बीच के दरवाजे और कोने की बुर्ज के बीच बीच में चार चार आयताकार झरोखे बने हुए हैं। दीवारों को सुन्दर बनाने के लिए थोड़े थोड़े अन्तर पर अन्त तक आड़ी पट्टियों की कुराई करदी गई है जिनके ऊपर की ओर अर्द्धगोलाकार कँगूरे बने हुए हैं, जो ऊपर होकर जाने वाले चौकीदार के मार्ग की आड़ का काम करते हैं। दरवाजों में कुराई का इतना काम हो रहा है कि उसको केवल फोटोग्राफी की कला से ही ठीक ठीक सामने लाकर रखा जा सकता है। दक्षिणी दरवाजे के सामने ही किले के भीतर की ओर पास ही में एक वृत्ताकार अथवा बहुकोण कुण्ड बना हुआ है जिसका व्यास लगभग ३०० गज है और जिसका पैडियोंवाला घाट इतनी ही दूरी पर जगह जगह पत्थर जड़ी हुई सड़कों से भग्न है कि

सिवाय और कोई उपाय ही नहीं हो सकता। यह एक सैनिक साहसिक कर्म है और जब तक बचाव करने वाले कमजोर न पड़ जावें अथवा कोई आकस्मिक हमला न किया जावे तब तक इस में सफलता मिलना भी बहुत टेढ़ी खीर है।

जिससे जानवर (ढोर) तथा बैलगाड़ियां आदि सुगमता से पानी तक पहुंच सकें। प्रत्येक सड़क की शोभा बढ़ाने के लिए दो मंडप बने हुए हैं जिनके ऊपर शंकु के आकार की छत्रियां बनी हुई हैं। इस कुण्ड के पास ही एक बावड़ी है जिसका वर्णन अभी ठहर कर किया जावेगा। इस किले के चारों दरवाजे अपनी भिन्न भिन्न प्रकार की टूटी फूटी आकृति लिए अब भी खड़े हुए हैं और इनमें से दो को मिलाने वाली एक दीवार भी कोनेवाले झरोखे सहित लगभग ठीक ठीक दशा में विद्यमान है। अब तक हमने जिस समचौरस भाग का वर्णन किया है उससे सम्पूर्ण किले के क्षेत्रफल का लगभग चौथाई भाग व्याप्त है और इसको चारों ओर से एक हलकी सी दीवार और भी घेरे हुए है जो गोलाकार झरोखों से सुदृढ बनादी गई है और जिसके बीच बीच में महराबदार दरवाजे बने हुए हैं। इस भाग में आजकल भी शहर बसा हुआ है और यह जगह कोली ठाकुरों के अधिकार में हैं, परन्तु किले की अन्तरंग चारदीवारी में जो इमारतें बनी हुई थीं वे बिलकुल नष्ट होगई हैं और वहां पर पूर्णरूप से जंगल बन गया है। यहां पर हमें यह लिखना न भूलना चाहिए कि प्राचीन भागों में से बचे हुए किन्हीं भागों में 'महं श्री ऊदल' ऐसा लेख पाया जाता है। इससे विदित होता है कि इस किले को बंधवाने में उदयन मन्त्री का आदेश काम करता था।

ऊपर लिखा जा चुका है कि, डभोई के किले का आकार और विस्तार झिञ्झूवाड़ा के किले के आकार और विस्तार से मिलता जुलता सा है। इसका आकार अपेक्षाकृत कम नियमित है और इसकी दो भुजाएं, जो मिलकर एक संकड़ा कोण बनाती हैं, दूसरी दोनों भुजाओं से अधिक लम्बी हैं। छोटी भुजाओं की लम्बाई लगभग ८०० और बड़ी भुजाओं

की १००० गज है। इस किले की ऊंचाई जिञ्झूवाड़ा के किले की अपेक्षा कुछ कम है और इसके तीन दरवाजे भी उसके दरवाजों की समानता नहीं कर सकते। परन्तु यह कमी इसके चौथे दरवाजे से पूरी हो जाती है, जो हीरा दरवाजा कहलाता है। इस दरवाजे की योजना बहुत यत्न से की गई जान पड़ती है और यह ऊंचाई में भी बहुत बढ़कर है। इसके कोने की बुर्जों में से एक अभी तक मौजूद है। वह इतनी सुन्दर और अनुपम है कि उसका चित्र देना आवश्यक प्रतीत होता है। इससे विदित होता है कि इस किले की दीवारों का ढाल भीतर की ओर है। इस किले के विषय में दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि इसमें भीतर की ओर दीवार के सहारे सहारे एक स्तंभ-पंक्ति चली गई है जो कुछेक फीट चौड़ी छत को साधे हुए है। इससे एक लम्बा और ढका हुआ द्वार-मण्डप सा बन गया है जो कितनी ही बार हिन्दू किलेदारों के लिए अमूल्य आश्रयस्थान बना होगा। (१) इस डभोई के किले में एक विषमाकार कुण्ड अथवा तालाब भी है।

यहां पर यह बात याद रखनी चाहिए कि जिन किलों का हमने वर्णन किया है वे साधारण सीमाप्रान्तीय सैनिक संस्थान थे अन्यथा धोलका आदि दूसरे नगर शानशौकत तथा विस्तार में इनसे बहुत बढ़-कर थे और मात्र संगमर्मर के पत्थरों से निर्मित इमारतों से सुशोभित राजधानी का नगर अणहिलपुर तो इन सबसे विशिष्ट था ही।

जो मन्दिर अब तक बच रहे हैं उनमें सबसे प्रमुख सिद्धपुर की रुद्रमाला का देवालय है। यह देखने में सामान्य बनावट की लग-

---

(१) 'ओरियण्टल मैमॉइर्स' के लेखक ने इस स्तम्भपंक्ति की तुलना 'पॉम्पिआइ' की सामने वाली बारकों की द्वारपंक्ति से की है। (भा. २, पृ० ३२५; १८१३ ई० का संस्करण)

भग तीन खण्ड ऊंची विशाल इमारत है। इसका मण्डप बाहर से तो देखने में समचौरस ही दिखाई पड़ता है परन्तु इसके स्तम्भ इस प्रकार से लगे हुए हैं कि भीतर से इसकी रचना अष्टकोण-मण्डप की सी जान पड़ती है। (१) तीन बाजुओं में से प्रत्येक के मध्य में एक द्वार-मण्डप अथवा रूपचौरी है और चौथी बाजू में निज-मन्दिर अथवा मूर्ति-स्थान का मण्डप है जिसकी बनावट ऊपर से शंकु के आकार की है। यह मध्यमण्डप से बहुत ऊँचा है तथा इसके ऊपर शिखर चढ़ा हुआ है। दो रूपचौरियों के ऊपरी गुम्बज अब अदृश्य हो गये हैं अथवा दूसरे शब्दों में, वे छिन्न भिन्न स्थिति में हैं और निजमण्डप का मुखभाग मात्र अवशिष्ट है।

इस मन्दिर के प्रत्येक बाजू में एक कीर्तिस्तम्भ था। उनमें से एक तो अब भी लगभग ठीक ठीक दशा में मौजूद है। अत्यन्त शोभा-यमान दो स्तम्भों पर सुन्दर कोरणी के काम की एक महराब ठहरी हुई है। अद्भुत सामुद्रिक (दरियाई) प्राणियों के मस्तक के हाड की बनी हुई नागदन्तियां इन स्तम्भों में लगी हुई हैं जो इनकी ऊंचाई के दो तिहाई भाग से आगे की ओर निकली हुई हैं। इन नागदन्तियों के आगे से ही बारीक और सुन्दर कारीगरीयुक्त एक कमान (महराब) चालू होती है जिसको तोरण कहते हैं। इस कमान का मध्य भाग ऊपर के सीधे भाग से स्पर्श करता है। यह कीर्तिस्तम्भ लगभग ३५ फीट ऊंचा है और इसमें नीचे से लेकर ऊपर शिखर तक बहुत बढ़िया कुराई का काम हो रहा है।

---

(१) देखिए बर्जेसकृत 'The Architectural Antiquities of Northern Gujrat, (Vol.ix, Archetectural Survey in Western India, 1903) chapter vi 'Sidhapur'.

जिस मुख्य देवालय का वर्णन हमने किया है वह सरस्वती के सामने एक विशाल चौक में बीचों बीच स्थित है। तीनों द्वारमण्डपों के सामने बाहर निकलते हुए तीन बड़े बड़े दरवाजे हैं और बिल्कुल सामनेवाले द्वार के आगे ही एक बड़ी भारी छत तथा पवित्र नदी के किनारे किनारे बहुत दूर तक बनी हुई सीढियों की पंक्ति है। चौक के चारों ओर की दीवार के सहारे सहारे बहुत छोटे छोटे और भी शिखर-बन्ध मन्दिर बने हुए हैं जिनमें से निज-मन्दिर के ठीक पीछे के तीन मन्दिर तो अब भी विद्यमान हैं परन्तु उनको मुसलमानों ने अपनी मसजिदों में परिवर्तित कर लिया है।

मोढ़ेरा का देवालय कुछ भिन्न योजना के अनुसार बना हुआ है। (१) इसकी ऊंचाई केवल एक ही खण्ड की है। इसमें एक तो गर्भ-मन्दिर है जिसके पास ही रंगमण्डप आ गया और इन दोनों से अलग निकलता हुआ एक खुला द्वारमण्डप है। इसका शिखर गिर गया है और गुमटियां भी नष्ट हो चुकी हैं, परन्तु बाकी सब इमारत लगभग ठीक दशा में मौजूद है, फिर भी, जगह जगह स्तम्भों पर ऐसे बाढ़े (कटाव) पड़े हुए हैं जैसे कि किसी धारदार तेज अस्त्र से लकडी पर पड़ जाते हैं। मुसलमान लोग कहते हैं कि यह उनके दरवेशों की तलवारों के निशान हैं। इसकी अधिक से अधिक लम्बाई एक सौ पचास फीट और चौड़ाई पचास फीट है। देवालय के सामने ही और आस पास में दोनों ओर सिद्धपुर के देवालय के समान कीर्तिस्तम्भों के अवशेष हैं।

---

(१) मोढ़ेरा के पुरावशेषों का वर्णन वर्जेस ने उक्त पुस्तक के ७ वें प्रकरण में किया है। इसी में अणहिलवाड़ा, वडनगर एवं अन्य प्राचीन स्थानों का वर्णन है।

देवालय के सामने जो कीर्तिस्तम्भ है उसके पास ही से पैडियों की एक हार (सरणि) चालू होती है जो दो शोभायमान स्तम्भों के बीच में होती हुई ठेठ कुण्ड तक चली गई है। यह कुण्ड क्षेत्रफल में मन्दिर से लगभग चौगुना है।

पैडियों पर उतरते हुए यात्री का मन ऊब न जाय इसलिए तीनों बाजुओं के मध्य भाग में जहां तहां छोटी छोटी देव-गुमटियां व शिखरों-वाले बड़े मन्दिर बना दिए गये हैं। कुण्ड के चारों ओर दूसरी इमारतों के भी निशान हैं परन्तु वे किस प्रकार की थीं इसका अनुमान लगाना अब असम्भव है। प्रधान देवालय से पृथक् जो द्वारमण्डप (१) है वह अब सीता की चौरी कहलाता है और सरोवर रामकुण्ड के नाम से विख्यात है। ये दोनों ही वैष्णवों के प्रसिद्ध यात्रास्थान है।

बाघेल में भी एक देवालय उपरिवर्णित देवालयों जैसा ही है परन्तु उनकी अपेक्षा उसकी ऊंचाई कम है। इसमें एक खण्ड की ऊंचाई का एक खुला हुआ मण्डप है जिसके ऊपर गुंमट है, तीन द्वार-मण्डप और एक शिखरबन्ध निज-मन्दिर है।

मोढ़ेरा के कुण्ड जैसे और कुंड सिहोर तथा दूसरे स्थानों में भी पाए जाते हैं। रामकुंड के समान ये भी विभिन्न मन्दिरों से सम्बन्धित मालूम होते हैं, परन्तु इनमें से बहुत से देवालय नष्ट हो चुके हैं।

---

(१) बाडोली के मन्दिर के आगे भी एक ऐसा ही पृथक् द्वारमण्डप है। देखिए फर्ग्यूसन् कृत "हैण्डबुक ऑफ आर्किटैक्चर के प्रथम भाग का पृष्ठ ११२ और टॉड राजस्थान की दूसरी पुस्तक का पृ० ७१२। बाड़ोली का यह द्वारमण्डप लग्न-मण्डप भी कहलाता है और ऐसी दन्तकथा प्रचलित है कि यह हूणों की राजपूत कुँवरी (नववधू) का है।

मोढेरा से थोडी ही दूर पर लोधेश्वर (महादेव) का स्थान है, जिसके आगे ही चार कुण्डों का अद्भुत संयोग देखने में आता है। इन चारों के बीच में 'ग्रीक क्रास' के आकार का एक गोल कुआ भी है। इन कुंडों के आकार प्रायः जिञ्जूवाडा के कुंड के समान बहुकोण अथवा गोल ही होते थे। ऐसे ही कुँड मुञ्जपुर, सायला आदि अन्य स्थानों पर भी पाए जाते हैं जिनमें से बहुतों का व्यास तो लगभग सात सौ गज तक का है। अणहिलपुर का सहस्रलिङ्ग तालाब भी इसी वर्ग का था और उसके बचे खुचे निशानों से अनुमान लगाया सकता है कि वह इन सबसे अधिक लम्बा चौड़ा था। इस तालाब के किनारे पर भी बहुत से देवालय बने हुए थे और यदि यह कहा जाय कि लगभग एक हजार छोटे मोटे देवालय इसकी पाल पर वने हुए थे तो कोई अत्युक्ति न होगी।

गोगो (गोधा) के पास ही द्वीपकल्प में एक आयताकार अथवा समचौरस तालाब के अवशेष मिलते हैं। यह तालाब 'सोनेरिया तालाब' के नाम से प्रसिद्ध है और सिद्धराज का बनवाया हुआ बताया जाता है। जयसिंह की माता मयणल्ल देवी के कार्यकाल में बहुत सी सुन्दर इमारतें बनी थीं। उसी समय के बने हुए दो प्रसिद्ध तालाब, धोलका का तालाब और वीरमगांव का मानसर थे। इनमें से मानसर यहां पर वर्णनीय है। इसका आकार अनियमित (टेढ़ामेढ़ा) सा है, और यह कहा जाता है कि यह हिन्दुओं के रणवाद्य शङ्ख की आकृति का बनाया गया है। साधारणतया घाट तथा पैंड़ियों की श्रेणी चारों ओर बनी हुई है और उनपर बहुत से छोटे छोटे शिखरवाले देवमण्डप भी निर्मित हैं, (परन्तु अब तो, इनमें से बहुत से नष्ट हो चुके हैं)। कहते हैं कि, इन देवमण्डपों की संख्या वर्ष के दिनों जितनी थी अर्थात् तीन सौ से ऊपर थी। इस तालाब पर बने हुए एक बाजू के मन्दिर में देव-

प्रतिमा के लिए सिंहासन बना हुआ है और दूसरी बाजू के में जलहरी अथवा जलाधार। इससे विदित होता है कि पहला मन्दिर श्रीकृष्ण का और दूसरा शिवजी का था। आस पास के प्रदेश से बहकर आया हुआ समस्त जल पहले एक अष्टकोण कुण्ड में एकत्रित होता है जहां पर इसका कूड़ा कचरा बैठ जाता है और पानी निखर आता है। इस कुण्ड के सामने ही एक पत्थर लगा हुआ है जिस पर दोनों ओर खुदी हुई प्रतिमाएं शोभित हैं। इस पत्थर पर होकर एक चुनी हुई (चूने मिट्टी की बनी हुई) नहर के द्वारा पानी एक नाले में से तालाब में आता है। यह ढकी हुई नहर तीन पृथक् नालों में बँट गई है जिनकी छत पर एक चबूतरा और शंकु के आकार की गुमटी बनी हुई है। इस इमारत की मरम्मत मरहठों के समय में हुई थी और एक भाग तैयार होते ही वहां पर बहुचरा माताजी का स्थान बना दिया गया था। आस पास के घाट पर जगह जगह छोटी सड़कें बनी हुई हैं जो ठेठ पानी की सतह तक पहुंचती हैं। इन सड़कों में से एक के किनारे पर एक विशाल मन्दिर है जिसमें दो शिखरबन्ध गर्भमन्दिर और एक सभा-मण्डप है, और इसके सामने ही तालाब की दूसरी बाजू समतल छतवाली स्तम्भ-पंक्ति खड़ी है।

देश के विभिन्न भागों में उस समय के बने हुए कुए भी पाए जाते हैं। ये कुए दो प्रकार के हैं, एक तो साधारण गोल कुए हैं, परन्तु उन पर झरोखेदार बैठके बने होते हैं। दूसरे वे कुए हैं जिनको बाव (संस्कृत में वापिका) कहते हैं। ये चित्रोपम, भव्य और विशेष ही प्रकार के बने हुए होते हैं। जमीन की सतह पर से एक दूसरे से नियमित अन्तर पर इनके चार या पाँच द्वारबन्ध मण्डप दिखाई देते हैं। ये बहुधा बाहर से समचौरस होते हैं परन्तु इनमें से कोई कोई तो भीतर की ओर अष्ट-

कोण आकार का बन जाता है। इनके ऊपर की छत स्तम्भों के आधार पर टिकी रहती है और हिन्दू समय की बनावट के अनुसार छतरियों अथवा गुमटियों की आकृति में निर्मित होती है। सबसे अन्त के मण्डप में से बावड़ी में उतरने का मार्ग होता है और पैड़ियाँ वहीं से आरम्भ होकर दूसरी छत्री के नीचे तक पहुँच जाती हैं जो एक के ऊपर एक इस प्रकार दो दो खम्भों की पंक्ति पर खड़ी दिखाई देती हैं। इनके आगे एक बड़ा भारी प्रस्तार (चबूतरा) होता है और फिर, पैडियों की हार शुरू होती है। अब, ये पैड़ियाँ तीसरे मण्डप की छतरी के नीचे तक पहुँचती हैं, जो एक के ऊपर एक, इस प्रकार स्तम्भों की तीन पंक्तियों पर खडी दिखाई देती है। इस तरह एक प्रस्तार से दूसरे प्रस्तार पर होकर नीचे उतरा जाता है और जितनी छतरियां नीचे उतरते हैं उतने ही स्तम्भों की पंक्ति एक पर एक करके बढ़ती चली जाती हैं और अन्त में पानी तक पहुंच जाती है। वहां से ऊपर की ओर देखने पर कितने ही खण्ड दिखाई देते हैं और प्रत्येक खण्ड पर छज्जे बने होते हैं। सबसे ऊपर के खण्ड की छतरी ही पूरी बावडी का परम शोभायमान भाग होता है। किसी किसी बावड़ी की लम्बाई अस्सी फीट तक होती है और इसके पैंदे में एक गोल कुआ होता है।

इस प्रकार की 'बावों' (वापिकाओं) में सबसे अधिक वर्णनीय अणहिलपुर की 'राणी की वाव' है, परन्तु यह टूट फूट कर बिलकुल खण्डहर हो गई है। गुजरात और सोरठ के दूसरे भागों में भी कितनी ही बावडियां मौजूद हैं जिनकी दशा भिन्न भिन्न प्रकार की है। एक दूसरी बावडी, जो दर्शनीय है, अहमदाबाद शहर के पास बनी हुई है। यह कब बनी थी, यह तो कहना कठिन है, परन्तु इस की बनावट को देखकर इतना कहा जा सकता है कि यह, सिद्धराज के कुल में राज्य था,

उसी समय की बनी हुई हो सकती है। यह 'माता भवानी की बाव' कहलाती है और लोगों का कहना है कि यह पाँचों पाण्डवों की बनवाई हुई है। जिञ्जूवाड़ा के किले में जो बाव है उसके विषय में पहले लिखा जा चुका है। बढवाण के किले के बाहर और भीतर की तरफ दोनों ही जगह बावड़ियाँ बनी हुई हैं। इनके अतिरिक्त और अन्य स्थानों पर भी कितनी ही हिन्दू बावड़ियां बनी हुई हैं जिनका वर्णन, यहां पर विस्तारभय से नहीं किया जा सकता।

जिन कुओं, कुण्डों, बावडियों और तालाबों आदिका वर्णन हमने किया है उनके बनवाने का सामान्य हेतु यही है कि, 'मृत्युलोक में जो मनुष्य, पशु, पक्षी आदि चौरासी लाख (१) योनि के जीव हैं, वे इनका उपयोग करें और बनवाने वाले को चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति हो।' ऐसे जलाशय प्रायः उन्हीं स्थानों पर बनवाए गए मालूम होते हैं जहां पानी की कमी रही है, जैसे कि राणकदेवी ने पाटण को बुरा बताते हुए कहा था कि, 'बालूँ पाटण देश, बिन पाणी ढाँढा मरै'; अथवा उन स्थानों पर बनवाए गए हैं जहां व्यापार की अधिकता के कारण

---

(१) चौरासी लाख योनि इस प्रकार हैं :—

जलयोनि नवलक्षाणि	जलजन्तु	९,००,०००
स्थावर लक्ष विंशतिः	स्थावर	२०,००,०००
कृमयो रुद्र संख्याकाः	कृमि कीट	११,००,०००
पक्षीणां दशलक्षकम्	पक्षी	१०,००,०००
त्रिंशल्लक्षं पशूनां च	पशु	३०,००,०००
चतुर्लक्षं तु मानुषम्	मनुष्य जाति	४,००,०००
		८४,००,०००

मनुष्यों का आना जाना खूब होता है, या नगर के दरवाजों के पास, अथवा चौराहों पर। इसके अतिरिक्त यह कार्य धार्मिक दृष्टि से भी उत्तम गिना जाता है। कहते हैं कि, 'नगर के किले की दीवार बनवाने से जो पुण्य होता है उसकी अपेक्षा दश हजार गुणा पुण्य जलाशय बनवाने से होता है।' ऐसे स्थान बनवा कर कृष्णार्पण कर दिये जाते हैं, दुर्गा को, जो कुण्डलिनी (१) कहलाती है और जिसका आकार कुए का सा होता है, अर्पण कर दिए जाते हैं; अथवा जल के देवता वरुण को, जो 'पुण्य कर्म का साक्षीभूत' (२) है, अर्पित कर दिए जाते हैं। दूसरे प्रमाणों के आधार पर जलाशय बनवाने का हेतु यह है कि, जलाशय बनवाने से एक सौ एक पूर्वज नरक से मुक्त हो जाते हैं, वंशपरम्परा की कीर्ति की वृद्धि होती है; पुत्रपौत्रों की वृद्धि होती है; और जब तक सूर्य और चन्द्रमा विद्यमान हैं तब तक स्वर्ग भोगने को मिलता है।" (३) कुण्डों की तरह बावड़ियां भी यदि सब जगह नहीं

---

(१) मूलाधार के ऊपर और नाभि के नीचे कुण्डलिनी नाम की एक शक्ति होती है जिसकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गा है। यह आँतों का एक गुच्छा सा होता है।

(२) वरुण को यह पद इसलिए दिया गया है कि दान अथवा पुण्य-कार्य नदी या तालाब के किनारे किया जाता है और चुलुक अथवा कोल की क्रिया करते समय मनुष्य अंजलि में पानी लेकर छोड़ता है यह उस दान अथवा कृत्य को निश्चल करने की निशानी है।

(३) जलाशय बनवाने से बहुत पुण्य होता है। पूर्त्तोद्योत और पूर्त-कमलाकर आदि ग्रन्थों में इसकी बहुत महिमा लिखी है। जलोत्सर्गमयूख में कहा है कि—

विष्णुधर्मोत्तरे—उदकेन विना तृप्तिर्नास्ति लोकद्वये सदा ॥

तस्माज्जलाशयाः कार्याः पुरुषेण विपश्चिता ॥

तो प्रायः, मन्दिरों से ही सम्बधित होती हैं। यदि किसी तालाब के आसपास शिवजी की मूर्ति स्थापित होती है तो वह तालाब शिवार्पित (शिवजी को अर्पण किया हुआ) समाझा जाता है और उसका पानी भी परम पवित्र माना जाता है। मेरुतुंग ने लिखा है कि काशी के राजा ने सिद्धराज के सान्धिविग्रहिक से अणहिलपुर के लोगों के रहन सहन, मन्दिर, कुओं और तालाबों आदि के बारे में पूछकर तिरस्कार करते हुए यह ताना दिया कि, अणहिलपुर का सहस्रलिङ्ग तालाब तो शिव-निर्माल्य है अतएव उसका पानी उपयोग में लाने योग्य नहीं है।" सान्धिविग्रहिक ने उत्तर देते हुए पूछा, काशी-निवासी जल कहां से लाते हैं? उत्तर मिला कि गंगा में से। सान्धिविग्रहिक ने फिर उत्तर दिया "यदि शिवार्पण करने से ही पानी दोषयुक्त हो जाता है तो जो नदी स्वयं महादेव के मस्तक से निकलती है उसका पानी तो अवश्य ही दोषयुक्त होना चाहिए।' इन जलाशयों की बनावट से हम यह

यमः— कूपारामप्रपाकारी तथा वृक्षावरोपकः।
कन्याप्रदः सेतुकारी स्वर्गं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥
तडागे यस्य पानीयं सततं खलु तिष्ठति।
स्वर्गे लोके गतिस्तस्य नात्र कार्या विचारणा ॥

नन्दिपुराणे— यो वापीमथवा कूपं देशे तोयविवर्जिते ॥
खानयेत्स नरो याति स्वर्गं प्रेत्य शतं समाः ॥

विष्णु— कूपारामतडागेषु देवतायतनेषु च ॥
पुनः संस्कारकर्त्ता च लभते मौलिकं फलम् ॥

भविष्योत्तरे— सर्वस्वेनापि कौन्तेय भूमिष्ठमुदकं कुरु ॥
कुलानि तारयेत्कर्त्ता यत्र गौर्वितृषा भवेत् ॥
अतः शुभागतं द्रव्यं तडागादिषु योजयेत् ॥
धन्यः स पन्था विज्ञेयस्तडागं वृक्षमण्डितम् ॥

अनुमान लगा सकते हैं कि ये खेती बाड़ी के प्रयोजन से नहीं बनवाए गए थे और इनकी स्थिति से भी इनके बनवाने वाले के अभिप्राय का यही अनुमान लगाया जा सकता है।

अणहिलपुर के राजाओं की बची हुई ये कुछ निशानियां हैं, परन्तु उनका सब से बड़ा और अचल कीर्तिस्तम्भ तो इस सत्य में है कि, आगस्टस (१) के भी गर्व का दमन करते हुए, उन्होंने बिल्कुल उजाड़ की दशा में इस देश को प्राप्त किया और इसमें दूध और शहद की नदियाँ बहती हुई छोड़कर चले गये। यद्यपि यह विषमता बहुत ही आश्चर्यजनक है, परन्तु इसका सामान्य परिणाम ऐसा हुआ है कि जिसके विषय में कोई सन्देह ही नहीं किया जा सकता। हां, इन दोनों दशाओं के बीच में जो क्रम चला है उसके विषय में अन्वेषण करने का काम कितना ही कठिन हो सकता है। जब अणहिलवाड़ा में वनराज की सत्ता के नीचे चावड़ा वंश की प्रथम स्थापना हुई थी उस समय सम्पूर्ण गुजरात में वहाँ के मूलनिवासी जंगली जाति के लोगों के अतिरिक्त और कोई जाति नहीं बसती थी। शायद इससे थोडे ही समय पहले वलभीपुर का नाश हो चुका था और खम्भात, भडौंच तथा अन्य किनारे के नगरों में प्रगति थोड़ा थोड़ा सांस ले रही थी। सोरठ और गुजरात के बीच में जो खारा पानी का तालाब आ गया है उसके ठेठ उत्तरी किनारे के प्रदेश में बसे हुए शहरों में भी शायद लोगों की यह गुन-गुनाहट सुनाई देती होगी कि

'वला औ' बढवाण, ते पाछे पाटणपुर बस्यो'

---

(१) रोम का बादशाह जो बाद में ज्यूलिअस सीजर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस का जन्म २३ सितम्बर ६३ ई० पू० और निधन १६ अगस्त १४ ई० को हुआ था।

परन्तु, अम्बाभवानी से साबरमती के मुख तक तथा माळवा को सीमा बनाने वाली पहाडियों से कच्छ के रण के आस पास के सपाट मैदान तक (१) के हिंसक पशुओं के साम्राज्य में बाधा देने वाले वे ही मनुष्य थे जो उनकी (हिंसक पशुओं की) अपेक्षा कुछ ही कम दर्जे के जंगली (जंगल की सन्तान) थे। (२) इसके विपरीत, यही देश, सोलंकी वंश के अन्तिम राजों के समय में हमें एक राजसत्ता के नीचे सुसंगठित, द्रव्यवान् विशालभवनों से मण्डित, बड़ी बड़ी जनसंख्यावाले नगरों से सुशोभित, और दृढतर दुर्गों से सुरक्षित दिखाई देता है। वृक्षों की जिस गहन घटा से सर ऊँचा उठाए ताडवृक्ष पहले खणखणाहट किया करता था वहीं, अब बड़े बड़े देवालय उसी के प्रतिस्पर्द्धी शिखर को ऊँचा उठाए हुए हैं; पहले जिन स्थानों में केवल बरसात की बौछारों से ही नमी आती थी वहां अब, उत्कृष्ट कल्पना से बनाए हुए बड़े बड़े तालाब, जिनके घाटों पर देवमन्दिरों की श्रेणियां बनी हुई हैं, तथा झरोखेवाली बावडी और कुए, देखने में आते हैं; पहले जो हरिणों के टोले निर्जन और उजाड़ मैदानों में घूमते फिरते थे, वही अब, व्यापारी माल से लदे हुए ऊँटों की कतारों और बहुमूल्य वस्तुओं की भेट लेकर यात्रा के लिए निकले हुए यात्रियों के सङ्घों से चिरसहवास के कारण इतने परिचित हो गए हैं कि उन्हें देखकर चमकते व भागते नहीं हैं।

---

(१) कनकसेन के नगर के नाश में से बचे हुए शंखपुर, पंचासर और शायद आसपास के कुछ और नगर जो इस उजाड़ मैदान के किनारे पर बच रहे थे उनको छोड कर।

(२) वास्तव में यह एक अपूर्ण सी दन्त कथा प्रचलित है कि वहां खेड़ा और बड़नगर के ब्राह्मण रहते थे।

अणहिलवाड़ा की महिमा की कथा समाप्त हो चुकी; अब तो उसके नाश और ऊजड़ होने की कथा रह जाती है; परन्तु, फिर भी हमारे देखने में यह बात अवश्य आवेगी कि इसका तेजस्वी प्रभात, जिसने काली और मेघाच्छन्न रात्रि का पीछा करके निकाल बाहर किया था और प्रथम प्रकाश को फैलाया था, वह उस अचानक उत्पन्न हुए और वातुल (तूफानी) दिवस की अपेक्षा कम प्रकाशमान नहीं था, जिसने इसका स्थान ले लिया था। यद्यपि वनराज के समान ही अहमद ने नए और प्रतापी वंश की स्थापना की; यद्यपि उसके पौत्र महमूद ने 'अणहिलपुर के सिंह' जैसी प्रतापशाली पदवी अपने नामके साथ कीर्ति की बही में लिखवाई और यद्यपि इन लोगों ने तथा अन्य राज्यकर्ताओं ने गुजरात की विजयध्वजा को सगर्व दूसरे दूरदेशों में फहराई, परन्तु यह सत्य हमारे ध्यान में उतरे बिना नहीं रहता कि जिस दिन से भीमदेव द्वितीय के हाथ से राजदण्ड गिरा था उसी दिन से बहुत समय तक, जब तक कि राजपूतों, मुसलमानों और मरहठों ने अपनी तलवार को म्यान में रखना स्वीकार न कर लिया और 'समुद्रवासी परदेशियों' की सत्ता, बुद्धिमत्ता और विश्वास को झगड़ों के न्याय का आधार स्वीकार न कर लिया तब तक अणहिलवाड़ा की भूमि कभी एक घण्टे भर को भी उसके निवासियों के आपसी झगडों में चलनेवाली तलवार से घायल हुए बिना न रही।

प्रकरण १४

बाघेला(१)–वस्तुपाल और तेजपाल–आबू पर्वत, चन्द्रावती के परमार

सामन्त आनाक सोलंकी के पुत्र लवणप्रसाद के जन्म की कथा कुमारपाल के राज्यकाल के वृत्तान्त में लिखी जा चुकी है। मेरुतुंग ने

---

(१) धर्मसागर कृत प्रवचन परीक्षा के आधार पर—

नाम	प्रारम्भ संवत्	प्रारम्भ सन्	अन्त संवत्	अन्त सन्	कुल राज्य किया
लघु भीमदेव	१२३५	११७६	१२६८	१२४२	६३
तिहुणपाल (त्रिभुवनपाल)	१२६८	१२४२	१३०२	१२४६	४

इस प्रकार चालुक्य वंश के ११ राजों ने ३०० वर्ष राज्य किया

बाघेला

नाम	प्रारम्भ संवत्	प्रारम्भ सन्	अन्त संवत्	अन्त सन्	कुल राज्य किया
वीसलदेव	१३०२	१२४६	१३२०	१२६४	१८
अर्जुनदेव	१३२०	१२६४	१३३३	१२७७	१३
सारंगदेव	१३३३	१२७७	१३५३	१२९७	२०
लघुकर्ण	१३५३	१२९७	१३६०	१३०४	७
					५८

"पट्टावली" में लिखा है कि,

"वीसलदेवने १८ वर्ष, ७ महीने और ११ दिन राज्य किया।
अर्जुनदेवने १३ ,, , ७ ,, और २६ ,,
और सारङ्गदेवने २१ ,, , ८ ,, ८ ,,

लिखा है कि, 'वह श्रीभीम का प्रधान था।' उसके अधिकार में बाघेल (व्याघ्रपल्ली) और धवलगढ़ अथवा धोलका थे। सम्भवतः धवलगढ़

'ततः अलावदिसुरत्राणराज्यम्।'

जिस समय बाघेलों का कच्छ में राज्य था उस समय के अंजार तालुका के खोखरा ग्राम में एक पालिया (स्मारकलेख) था, वह अब भुज में आ गया है। यह लेख महाराज श्री सारंगदेव के राज्यकाल का संवत् १३३२ मार्गशीर्ष सुदि ११ शनौ (ता. १ ली दिसम्बर, १२७५ ई० शनिवार) का है।

इस विषय में इण्डियन एण्टीक्वेरी भाग २१ पृ. २७७ में लिखा हुआ वृत्तान्त देखने योग्य है। उससे विदित होगा कि प्रवचन-परीक्षा के अनुसार सारंगदेव का राज्य संवत् १३३३ विक्रमीय में आरम्भ नहीं हुआ था वरन् प्रत्येक बाघेला राजा के राज्य सवत् में से दो दो वर्ष घटा देने चाहिए, इसके अनुसार निम्न लिखित वंशावली ठीक आती है—

व्याघ्रपल्ली अथवा बाघेलवंश

धवल, जिसका कुमारपाल की मौसी के साथ विवाह हुआ था सन् ११६०से११७०
अर्णोराज सन् ११७० से १२००

लवणप्रसाद धोलका का महामण्डलेश्वर सन् १२०० से १२३३ तक

वीरधवल धोलका का राणक-राणा संवत् १२७६ से १२९५, सन् १२१९-२० से १२३८-३९ तक स्वतंत्र

प्रतापमल्ल जो वीरधवल का बड़ा पुत्र था, उसका नाम यहां लिख देने से १२९४ से १३०० तक ४ वर्ष की कमी पूरी हो जाती है।

वीसलदेव	संवत् १३००	सन् १२४३	से संवत्	१३१८	सन् १२६१	तक	१८ वर्ष
अर्जुनदेव	,, १३१८	,, १२६१	,, ,,	१३३१	,, १२७४	,,	१३ ,,
सारंगदेव	,, १३३१	,, १२७६	,, ,,	१३५३	,, १२९६	,,	२२ ,,
कर्णदेव दूसरा	,, १३५३	,, १२९६	,, ,,	१३६१	,, १३०४	,,	८ ,,
							६१ वर्ष

तो उसके बाद भी बहुत दिनों तक उसके वंशजों के अधिकार में रहा था। लवणप्रसाद का विवाह मदनराज्ञी के साथ हुआ था, जिससे उसके वीरधवल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। चन्द बाहरठ ने उसका नाम वीरबाघेला अथवा वीरधवलाङ्ग लिखा है। सन् १२३१ई० में तेजपाल ने आबू पर्वत पर एक मन्दिर बनवाया था, उसके लेख (१) में वीरधवल, उसके पिता और पितामह के नाम लिखे हुए हैं। उसी मन्दिर में एक दूसरा लेख भी है जिसमें वीरधवल के नाम के साथ महामण्डलेश्वर और राणा की पदवी भी लिखी हुई है।

मेरुतुंग ने लिखा है कि, मदनराज्ञी कुँवर वीरधवल को लेकर अपनी मृत बहन के पति देवराज पट्टकील के यहाँ जाकर रहने लगी थी। (२) परन्तु जब वीरधवल सयाना हुआ तो वह अपने पिता के घर वापस

[यह तालिका हमने गुजराती अनुवाद में से ज्यों की त्यों उद्धृत करदी है, परन्तु सारंगदेव के राज्यकाल का हिसाब कुछ ठीक नहीं बैठता। संवत् १३३१ से १३५३ तक तो २२ वर्ष हो जाते हैं परन्तु सन् १२७६ से १२९६ तक २२ वर्ष नहीं होते, २० ही वर्ष होते हैं, फिर यदि १२९६ के स्थान पर १२९८ मान लें तो कर्ण देव के राज्य का प्रारम्भ काल भी १२९६ ही लिखा है—यदि कर्ण के राज्य काल का प्रारम्भ भी १२९८ में मानें तो उसके ८ वर्ष १३०४ के बजाय १३०६ में पूरे होते हैं, और यदि उसका राज्यकाल १३०४ में ही समाप्त होता है तो उसने ६ ही वर्ष राज्य किया।]

(१) यह लेख संवत् १२८७ फाल्गुन बुदि ३ रविवार का है। देखो,कीर्ति-कौमुदी का परिशिष्ट (ब)

(२) प्रबन्धचिन्तामणि में इतना विशेष लिखा है कि वह लवणप्रसाद की आज्ञा लेकर गई थी। (लवणप्रसादाभिधपतिमापृच्छ्य) उसको रूपवती और स्पृहणीय गुणवती देखकर देवराज ने अपनी गृहिणी बना लिया। जब लवण-

आगया। साँगण, चामुण्ड और राज आदि उसके दूसरे भाइयों के भी नामों का उल्लेख मिलता है और यह भी लिखा है कि वे कस्त्रों और (राष्ट्रकूट) देशों के स्वामी थे। (१) वीरधवल के विषय में लिखा है कि उसको अपने पिता के पास से बहुत बड़ा देश (राज्य) प्राप्त हुआ जिसको उसने अपनी जीती हुई भूमि से और भी बढ़ा लिया था। 'द्विज चाहड़ सचिव' उसका प्रधान था और तेजपाल तथा वस्तुपाल नामक दो

प्रसादने यह बात सुनी तो वह देवराज को मारने का निश्चय करके रात को उसके घर में जा छुपा। इतने ही में भोजन का थाल आया और जब देवराज भोजन करने बैठा तो कहा, 'वीरधवल को बुलाओ, मैं उसके बिना भोजन नहीं करूँगा।" वीरधवल आया और दोनों ने एक ही थाल में भोजन किया। अपने पुत्र पर देवराज का इतना वात्सल्य देखकर लवणप्रसाद का क्रोध शान्त हो गया और वह सामने आया। उसको यम के समान सामने देखकर देवराज डर गया और उसका मुँह काला पड़ गया, परन्तु लवणप्रसाद ने कहा, 'डरो मत, मैं तुम्हें मारने के विचार से ही आया था, परन्तु मैंने वीरधवल पर तुम्हारा वात्सल्य अपनी आंखों से देख लिया है, इसलिये अब तुमको नहीं मारूँगा।' देवराज ने उसका बहुत आदर सत्कार किया और वह जैसा गया था वैसा ही लौट आया।

(१) 'वीरधवलस्यापरमातृकाः राष्ट्रकूटान्वयाः सांगणचामुण्डराजादयो वीरव्रतेन भुवनतलप्रतीताः।' यह पाठ हमारे पास की प्राचीन प्रति में है। इसका अर्थ यह है कि, 'वीरधवल के सौतेले भाई, जो राष्ट्रकूट (राठौड) वंश की उसकी दूसरी सौतेली माता के पेट से उत्पन्न हुए थे उनके नाम सांगण, चामुण्ड और राज आदि थे और वे अपने वीरव्रत के कारण भुवनतल (संसार) में प्रसिद्ध थे। अन्य प्रति में 'अपरपितृकाः' ऐसा पाठ है जिसका अर्थ अपरपिता अर्थात् देवराज से मदनराज्ञी में उत्पन्न हुए, ऐसा होगा। फिर वीरधवल क्षत्रिय को जब यह वृत्तान्त समझमें आया तो वह लज्जित होकर देवराज का घर छोडकर अपने पिता की सेवा में रहने लगा। वह सत्य, औदार्य, गाम्भीर्य, स्थिरता, नय, विनय, दया, दान और दाक्षिण्यादि गुणों से युक्त था।

भाइयों को भी उसने नियुक्त किया था।

वीरधवल बाघेला को उसके क्रमानुयायियों के समान राजपदवी प्राप्त नहीं हुई थी परन्तु,इसमें संशय नहीं कि, भीमदेव की मृत्यु के उपरान्त वह गुजरात के सामन्तों में महा सत्तावान् हो गया था। वीर-धवल के समय की कुछ एक राजनैतिक घटनाओं का वर्णन मेरुतुङ्ग ने किया है, जिनसे पता चलता है कि उस समय केन्द्रीय महासत्ता का अभाव ही था।

सैयद (सईद अथवा सदीक) नाम का एक व्यापारी था, जो शायद मुसलमान था। कहते हैं कि स्तम्भ तीर्थ अथवा खम्भात पर उसके साथ वस्तुपाल का कोई झगड़ा हो गया। इस पर सैयद ने उस प्रधान के विरुद्ध अपनी रक्षा करने के लिये भड़ौंच से शंख (१) नामक सरदार को बुलाया। वस्तुपाल ने अपनी ओर से लूणपाल नामक गोले (२) को बुलवा भेजा। लूणपाल ने शंख पर हमला करके उसको मार

(१) वह गोधा के पास वडवा बन्दर का चोंचिया सरदार था। कुछ लोगों का कहना है कि वह सिन्ध के राजा का कुंअर था।

(२) प्रबन्धचिन्तामणि में 'गुड़जातीयो लूणपालनामा सुभटो' पाठ है। एक प्रति में 'भुवणपाल' लिखा है। लूणपाल अथवा भूणपाल नें प्रतिज्ञा की थी कि "मैं शङ्ख के अतिरिक्त और किसी पर प्रहार नहीं करूँगा। यदि ऐसा करूं तो गौ पर प्रहार करना मानूंगा।" जब उसने युद्ध में पुकार कर पूछा कि शङ्ख कौन है ? तो कितने ही सैनिक एक के बाद एक करके 'मैं शङ्ख हूं' ऐसा कहते हुए उसके सामने आए। वह उनको मारता चला गया। अन्त में, उसकी वीरता से प्रसन्न होकर स्वयं शङ्ख ने उसे अपने पास बुलाया। उसने भाले के एक ही प्रहार से शङ्ख और उसके अश्व को समाप्त कर दिया।

शंख की मृत्यु के बाद सईद को कैद कर लिया गया और उस की

डाला, परन्तु इस लड़ाई में वह स्वयं भी इतना घायल हुआ कि थोड़े ही दिनों बाद मर गया। कहते हैं कि जिस स्थान पर उसकी मृत्यु हुई थी उसी स्थान पर वस्तुपाल ने उसकी स्मृति में 'लूणपालेश्वर' देवालय बनवाया था।

एक बार, किसी दूसरे अवसर पर, म्लेच्छ सुलतान का मली-मन्मख नामक गुरु यात्रा के लिए निकला। यह तो मालूम नहीं कि वह कहाँ की यात्रा के लिए निकला था, परन्तु वह गुजरात में आकर अवश्य पहुँचा था। (१) वीरधवल और उसके पिताने उसको पकड़ कर कैद कर

सम्पत्ति हस्तगत करली गई। राजा ने आज्ञा दी कि वह सम्पत्ति राजकोश में जमा की जावे और सईद के घर की धूल वस्तुपाल ले ले। यह धूल चांदी और सोने की रज थी। आग लग जाने के कारण इसका परिमाण और भी बढ़ गया था। इस प्रकार वस्तुपाल के हाथ अपार सम्पत्ति लगी जो बाद में देवालय-निर्माण में काम आई।

(१) यहां फार्बस् साहब और गुजराती अनुवादक दोनों ही ठीक ठीक अर्थ नहीं समझ पाए हैं। प्रबन्धचिन्तामणि में 'सुरत्राणस्य गुरुमालिमं मखतीर्थयात्राकृते इह समागतमवगम्य' ऐसा पाठ है जिसका अर्थ यह होता है कि सुलतान के आलिम (विद्वान्) गुरु को मख अर्थात् मक्का की यात्रा-निमित्त यहां आया हुआ जान कर' एक प्रति में मख के स्थान पर 'मक्का' पाठ होने का भी उल्लेख है। (प्र. चि. गुजराती सभा ग्रन्थावली अ. १४) यहां गुरुं आलिमं की सन्धि करके 'गुरुमालिंम' लिखा है। सिंघी जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित प्रबन्धचिन्तामणि के पं. हजारीप्रसाद द्विवेदीकृत हिन्दी भाषान्तर में पृ. १२७ पर 'मालिम (मौलवी)' लिखा है, यह भी ठीक नहीं जँचता है। वास्तव में 'आलिम' शब्द का अर्थ विद्वान् है और यह 'गुरु' का विशेषण है। 'मली मन मख' कोई नाम नहीं है। तेजपाल मंत्री, स्वयं विद्वान्, विद्याप्रेमी और विद्वानों का आदर करने वाला था इसीलिए वह सुलतान के विद्वान् गुरु के प्रति आकृष्ट हुआ प्रतीत होता है। लवणप्रसाद और वीरधवल के कुत्सित अभिप्राय को जान कर उसने कहा था—

लेने का विचार किया परन्तु वस्तुपाल और तेजपाल ने उसकी रक्षा की। इससे भविष्य के लिए उन पर सुल्तान की कृपा हो गई।

पंचग्राम संग्राम (पाँच गांवों की लड़ाई) के विषय में लिखा है कि उसमें एक ओर तो लवणप्रसाद और वीरधवल थे और दूसरी ओर वीरधवल की रानी का पिता शोभनदेव था। इस लड़ाई में बाघेलों की पूर्ण विजय हुई परन्तु इसके पहले युवक पुत्र को अपने पिता के सामने कितने ही घातक वार सहने पड़े। (१)

वीरधवल की मृत्यु पर एक सौ बियासी (२) नौकरों ने उसके साथ

"धर्मछद्मप्रयोगेण या सिद्धिर्वसुधाभुजाम्।
स्वमातृदेहपण्येन तदिदं द्रविणार्जनम्॥"

'राजा लोग धर्म-छल का प्रयोग करके जो ऋद्धि प्राप्त करते हैं, वह अपनी माता के देह का विक्रय करके धन कमाने के समान है।'

(१) प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है वह रणरसिक अपने पिता के सामने इक्कीस वार घायल होकर पड़ा था।

"इत्थमेकविंशतिकृत्वः सत्वगुणरोचिष्णू रणरसिकतया क्षेत्रे पितुरग्रे पतितः"

(२) प्रबन्धचिन्तामणि की एक प्रति में 'सेवकानां विंशत्यधिक-शतेन सह गमनं' चक्रे' लिखा है। एक प्रति में 'अशीत्यधिकेन' पाठ है।

ज्ञात होता है कि वीरधवल बहुत लोकप्रिय राजा था। उसके मरण पर कहा है:—

"आयान्ति यान्ति च परे ऋतवः क्रमेण
सञ्जातमेतदृतुयुग्ममगत्वरं तु।
वीरेण वीरधवलेन विना जनानां
वर्षा विलोचनयुगे हृदये निदाघः॥"

'अन्य ऋतुएं तो आती जाती रहती हैं, परन्तु ये दो ऋतुएं आ कर नहीं गई। वीर वीरधवल के बिना लोगों की दोनों आंखों में वर्षा और हृदयों में ग्रीष्म ऋतु (सदैव बनी रहती है)।'

चिता में जलकर प्राण दे दिए। अन्त में, तेजपाल को सेना की सहायता से इस क्रम को रोकना पड़ा। मन्त्रियों ने वीसलदेव को गद्दी पर बिठाया। इस राजा के विषय में कोई प्रचलित वृत्तान्त प्राप्त नहीं होता है परन्तु सामान्यतया यह गुजरात का प्रथम बाघेला राजा कहा जाता है।

गुजरात की भूमि पर एक के बाद एक तूफान आता रहा है; परन्तु, तूफान के बाद बादल अच्छी तरह साफ भी नहीं हो पाते और उनमें प्रचण्ड वायुवेग के कारण हुए छिद्रों (चीरों) में से पुनः प्रकाशित होता हुआ सूर्य कुछ कुछ ही दिखाई देने लगता है कि अनायास ही मानों स्वाभाविकतया हिन्दूलोग, जो कुछ हो चुका है उसके शोक को तथा जो कुछ होने की आशंका है उसकी चिन्ता को भुलाकर, नित्य की भाँति अपने सहज मार्ग पर चलने लग जाते हैं। यह एक अत्यन्त आश्चर्यजनक बात है जिससे इन लोगों की सहनशीलता का परिचय मिलता है। अणहिलवाड़ा को नष्ट भ्रष्ट करके तथा सोमनाथ के स्थान को खण्डहर की दशा में छोड़कर महमूद गजनवी अपने देश को वापस पहुँच भी न पाया था कि आरासर और आबू के पहाड़ों पर से फिर हथोड़े और टाँकी की आवाजें आने लगीं और कुम्भारिया तथा देलवाड़ा में महिमामय देवालय बनकर तैयार हो गए। सहज ही समझ में न आने योग्य उनके संस्कार और वृद्धि तथा सिल्लिनि (१) के हाथ की सी कारीगरी की सफाई को देखकर यही प्रतीत होता है कि मानो इनको बनवाने वालों ने म्लेच्छ आक्रमणकारियों और मूर्तिविध्वंसकों के

(१) इटली के फ्लोरेन्स नगर का प्रख्यात शिल्पकार तथा गवैया। इसका जन्म ई० स. १४०० में हुआ था और मरण १४७० ई० में। आरस पत्थर पर धातु का सरस शिल्पकार्य करने में वह निष्णात था। पोप क्लीमेण्ट सप्तम का वह निजी कलाकार था।

आक्रमणों को निद्रा भंग करने वाले स्वप्न में देखी हुई भूतों द्वारा घटित भयावनी घटनाओं से बढ़कर कुछ न समझा। इधर तो भीमदेव द्वितीय के संकटापन्न जीवन का अन्त होता है, उसके साथ ही अणहिलवाड़ा का सौभाग्य सूर्य निरभ्र आसमान में कभी पुनः प्रकाशमान न होने के लिए डूब जाता है, केवल उसकी अन्तिम और मन्द रक्तिम आभा राजधानी पर टिमटिमाती सी दिखाई पड़ती है, युद्ध का गर्जन भी अभी तक पूर्णतया शान्त नहीं हो पाया है, देश में भय और दुःख की गूंज अभी भी उठ रही है, परन्तु, उधर आबू और शत्रुञ्जय पर फिर से काम चालू हो जाता है और शान्त ध्यानमग्न एवं स्थिरासन तीर्थंकरों के लिए पहले से भी अधिक शोभामय देवालय बनकर तैयार हो जाते हैं।

वीरधवल बाघेला के प्रधान, वस्तुपाल और तेजपाल, जो देलवाड़ा के गौरवशाली मन्दिरों के निर्माताओं के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं, श्रावक-धर्माश्रयी प्राग्वाट अथवा पोरवाल बनिए थे। उनके पूर्वज बहुत सी पीढियों से अणहिलपुर में रहते थे। वीरधवल के पूर्व-प्रधान चाहड़ ने ही उनका परिचय राजा से कराया था। ज्ञात होता है कि राजा का उन पर असाधारण विश्वास था और जिन शब्दों में यह बात लिखी है उनसे उस समय के लोगों की स्थिति तथा राजा और उसके कार्यकर्ताओं के आपस के चमत्कारिक सम्बन्ध का भी ज्ञान प्राप्त होता है। उनके राजनैतिक उद्देश्यों के विषय में मेरुतुंग ने इस प्रकार वर्णन किया है कि, "जो किसी के शिर पर हाथ धरे बिना ही राजकोष को बढ़ा सके, किसी को मृत्युदण्ड दिए बिना ही देश का रक्षण कर सके, बिना युद्ध किए ही राज्य की वृद्धि कर सके, वही मन्त्री योग्य कहलाता

है।' (१) इसी ग्रन्थकार ने लिखा है कि जब वीरधवल ने अपने राज्य-का कार्यभार तेजपाल को सौंपा था तब उस (तेजपाल) ने राजा से यह प्रतिज्ञा लिखवाली थी कि, "कदाचित् मैं तुम पर कुपित भी हो जाऊँ तो विश्वास रखो कि जितनी सम्पत्ति तुम्हारे पास इस समय है उतनी तो तुम्हारे पास रहने ही दूँगा।' जो देवालय उन्होंने (वस्तुपाल और तेज-पाल ने) बनवाया था उसमें इस प्रकार का लेख है कि, वीरधवल चालुक्य जो कुछ ठीक है वही करता है, अपने दोनों प्रधानों की सलाह पर चलता है और यदि उसके दूत (गुप्तचर) आकर उसे कुछ कहते भी हैं तो वह उस पर ध्यान नहीं देता है। दोनों भाइयों ने अपने स्वामी के राज्य की बढोतरी की है। उन्होंने घोड़ों और हाथियों की कतारें राजा के महल के पास बाँध दी हैं और राजा भी अपनी सम्पत्ति का पूर्ण उप-भोग करता है। ये दोनों मंत्री उसके घुटनों तक लटकते हुए दोनों हाथों के समान हैं।" (१)

आबू पर्वत पर सिरोही और जालोर की ओर से चढने में सुगमता पड़ती है। गुजरात की ओर से इसका चढाव गिरवर ग्राम में

---

(१) अकरात् कुरुते कोषमवधाद्देशरक्षणम्।
देशवृद्धिमयुद्धाच्च स मंत्री बुद्धिमांश्च सः ॥

यहां 'अकरात् कुरुते कोखं' का अर्थ ग्रन्थकर्ता ने ठीक नहीं समझा है। पद्यांश का तात्पर्य है कि कर (लगान, महसूल आदि) का बोझा प्रजा पर बिना बढाए अन्यान्य सदुपायों द्वारा जो राज्यकोष की वृद्धि करे वह मन्त्री चतुर है। 'शिर पर हाथ रखने' की यहां कोई अर्थ संगति नहीं है। गुजराती अनुवादक ने भी ग्रन्थकर्ता का ही अनुसरण किया है।

(१) सामुद्रिक शास्त्र में लिखा है कि आजानुबाहु पुरुष भाग्यशाली होता है।

होकर है। यह मार्ग अत्यन्त रमणीय है और पैदल के अतिरिक्त और किसी प्रकार इधर से चढ़ना असंभव है। अम्बाभवानी के देवालय से आगे का रास्ता विचित्र पहाड़ी दृश्यों में होता हुआ बड़ी दूर तक एक पगडंडी के रूप में पहाड़ी झरने के सहारे सहारे चला गया है। "इस प्रदेश में सब कुछ शोभायमान रमणीय और स्वाभाविक है ; यहां के दृश्य की एकान्त सुन्दरता के बनाव को मानवीय मनोविकारों द्वारा कोई वाधा नहीं पहुँचती है इसीलिए ऐसा प्रतीत होता है कि मानो इस स्थान को प्रकृति देवी ने अपनी परम लाडली सन्तान के उपभोग के लिए ही सजाया है। आकाश निर्मल है, वनस्पति की घनी पत्रावली में से कूकती हुई कोयलें मानो आपस में उत्तर प्रत्युत्तर दे रही हैं, जंगली उल्लू बांसों की घटाओं में शरण लिए पड़े हैं और वहीं से किलकिला रहे हैं, और ज्योंही पर्वत शिखरों को स्वच्छ करता हुआ सूर्यदेव उनमें होकर अपनी प्रखर किरणों का प्रसार करता है त्योंही घोंसलों में बैठे हुए भूरे तीतर भी अपनी प्रसन्नता प्रकट करने के लिए वृक्षों पर पंक्तिबद्ध बैठे हुए कबूतरों के साथ साथ शब्द करने लगते हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे पक्षी भी, जो मैदान में बसने वाले नहीं हैं, यहां पर घूमते रहते हैं। कठिन काष्ठ पर अपनी चोंच का जोर आजमाते हुए लक्कडफोड़ (खाती चिड़ा) की आवाजें भी सुनाई देती हैं। नाना प्रकार के और रंग बिरंगे फूलों के तथा फलों के उपभोग के लिए तरह तरह के वनवासी पशुपक्षी यहां एकत्रित हो रहे हैं, उद्योगी भ्रमर विशाल और घने वृक्षों से लिपटी हुई सफेद अथवा पीली चमेली के फूलों का मधुर से मधुर रस चूसते हैं, गुलअब्बास के फूलों जैसे गोटा और चमरियों के सफेद अथवा जामुनी रंग वाले पुष्पगुच्छों का रस पान करते हैं अथवा जिसके तट पर एरंड या

सरकट खूब उगे हुए हैं ऐसी नदी के तीर पर छाए हुए, बादाम की सी सुगन्धि देने वाले कैरों का रसास्वादन करते हैं।" इस एकान्त के मोहक सौन्दर्य में विघ्न डालने के लिए कोई भी मानव प्राणी उधर दिखाई नहीं देता है; कभी कभी अम्बा जी की यात्रा करने के लिए आए हुये किसी राजपूत अश्वारोही की गम्भीर आकृति दिखाई पड़ जाती है। उसकी पीठ पर ढाल लटकती है और कन्धे पर भाला होता है। जहां बहुत थोड़े से ही शूरवीर शत्रु की सेना का कठिन सामना कर सकते हैं, ऐसा यह लम्बा और संकड़ा पहाड़ी मार्ग उस यात्री से भरा हुआ सा मालूम देता है—अथवा कभी, जहां पर निर्मल पानी का यह झरना किसी ऐसे छोटे से तालाब के रूप में विस्तार प्राप्त कर लेता है जिसके किनारे किनारे नन्हीं नन्हीं दूब उग आई है वहां इस घाटी के हृदय में किसी प्रकृतिरमणीय स्थान पर अनाज की भरी हुई बोरियां लेजाने वाले कुछ शान्त मनुष्य और चरते हुए ढोर भी दिखाई पड़ जाते हैं। आगे चलकर इस पहाड़ी का ढाल धीरे धीरे थोड़ी बहुत रेतीली सपाट और उपजाऊ घाटी के रूप में बदल जाता है जहां अनाज बहुतायत से उत्पन्न होता है। यहीं पर इधर उधर कुछ छोटे मोटे गांवड़े भी बस गए हैं और आगे पीछे चल कर विशालरूप धारण करने वाले कुछ पहाड़ी झरने (नाले) भी इसी ओर बहते दिखाई देते हैं। कोहरे के काले चोगे में लिपटा हुआ प्रतापशाली आबू अपने विषय में कितनी ही प्रकार की कल्पनाओं का जन्मदाता है। जब तक कि इसके पास पहुँच कर हम अपनी दृष्टि से इसके श्याम और ऊबड़खाबड़ मुखभाग को देख न लें तब तक इसके चित्रविचित्र बहिरंग पर दृष्टिपात करने पर कितनी ही आकृतियां हमारे मानस में आकर बैठ जाती हैं—इसकी काली पोशाक है, वनों और उपवनों से ढके हुए स्थान इस पोशाक

का अस्तर बने हुए हैं जिसमें रूपहरी पानी के झरने धारियों सदृश दिखाई देते हैं। जैसे जैसे हम इसके समीप आते जाते हैं वैसे ही इसके पीछे धँसके हुए स्कन्ध महत्ता से आगे बढ़ते हुए दिखाई देते हैं और ज्यों ज्यों सूर्य अपनी मध्यरेखा की ओर अग्रसर होता जाता है त्यों त्यों इसकी काली पोशाक सुनहरी छिनकों से चित्र-विचित्रित होती हुई सी दिखाई पड़ती है।

इन्हीं स्कन्धो में से एक पर गिरवर ग्राम से जाने का मार्ग है, जो पर्वत के अगल बगल में लिपटे हुए से सूत्र के समान दिखाई पड़ता है। यह मार्ग कहीं कहीं तो स्पष्ट ऊपर निकला हुआ दीख पड़ता है और कहीं कहीं फिर डूबता हुआ सा जान पड़ता है। गहन और सघन वनों में होकर एक लम्बी चढ़ाई के बाद अन्त में यह मार्ग एक सपाट और समतल स्थान पर आकर पहुँचता है जहां वृक्षों की शोभायमान और सघन कुंजों से घिरा हुआ वसिष्ठ मुनि का आश्रम विद्यमान है। सूर्य की तेज धूप से घबराया हुआ यात्री यहीं पर किसी छोटी सी बगीची में विश्राम करता है, जहां पर सुगन्धित पुष्पों से लदी हुई पहाड़ी झाडियां, जिनमें केवड़ा मुख्य होता है, खूब उगी होती हैं। इस प्रकार उसको वहां पर अपनी आंखों और नाक को आनन्द पहुंचाने के साधन एक साथ ही प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त किसी चट्टान में काट कर बनाए हुए गोमुख से नीचे की ओर खोदकर बनाए हुए पात्र में पड़ते हुए पानी की मधुर ध्वनि को सुनकर उसके कानों को प्राप्त होनेवाला सुख भी थोड़ा नहीं होता।

मुनि के देवालय की इमारत छोटी और साधारण है, जिसमें श्यामवर्ण के संगमर्मर की बनी हुई मुनि की मूर्ति विराजमान है। इन मुनिवर्य ने अचलेश्वर के अग्निकुण्ड में से क्षत्रियों को उत्पन्न किया

था इसलिए यही उनके पूर्वज कहलाते हैं। वसिष्ठ मुनि के देवालय में प्रातःकाल, दोपहर और सन्ध्या समय चौघड़िये की गम्भीर ध्वनि होती है। नगाड़े की इस महाध्वनि के कारण आसपास के सुन्दर और गम्भीर दृश्य का गौरव और भी अधिक बढ़ जाता है। यहीं पर आबू के रणधीर शूरवीर 'दनुज त्रासक' धारावर्ष परमार की भी पीतल-निर्मित मूर्ति विद्यमान है जिसका भाव यह है कि वह अपनी जाति को उत्पन्न करने वाले ऋषि की अभ्यर्थना कर रहा है।

वसिष्ठ मुनि के देवालय से आगे चट्टानों में खोदकर बनाई हुई पैड़ियों की चढाई शुरु होती है जो, अन्त में, आबू के पृष्ठभाग पर समतल मैदान तक चली गई है। यहां पर पहुँचने के बाद यात्री को सद्यः यह भान होता है कि वह किसी नए ही संसार में आ पहुँचा है अथवा हवा में अधर झूलते हुए किसी द्वीप की सैर कर रहा है। जिस अधित्यका में वह उस समय खड़ा होता है उसके चारों ओर ऊंची ऊंची और सीधी उसी प्रकार की चट्टानों का कोट खिंचा हुआ दिखाई देता है, जिनको पार करता हुआ वह यहां तक आ पहुँचा है। यह भाग कुछ मीलों की दूरी में फैला हुआ है, छोटे छोटे गांवों और कुओं से व्याप्त है, पानी की झील और अनेक छोटे छोटे झरनों से शोभायमान है और पर्वतशिखरों का सुन्दर मुकुट धारण किए हुए है। इनमें सबसे ऊँचे शिखर पर एक देवालय है जिसके कारण वह 'ऋषिशृंग' कहलाता है, परन्तु सबसे अधिक चमत्कारी शिखर तो वह है जिस पर प्रसिद्ध अचलगढ़ का दुर्ग बना हुआ है।

वसिष्ठ मुनि के आश्रम और देलवाड़ा के बीच के प्रदेश का राजस्थान के इतिहासकार ने इस प्रकार सुन्दर वर्णन किया है:—
"इस यात्रा में आबू की अधित्यका का अत्यन्त रमणीय भाग मेरे देखने

में आया। यहां पर खेतीबाड़ी खूब होती है, आबादी भी घनी है और पानी के झरनों तथा वनस्पति की बहुतायत है; कहीं कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो पृथ्वी पर नीली फर्श बिछी हुई है और पग पग पर नए नए प्राकृतिक एवं कृत्रिम चमत्कार देखने को मिलते हैं। सदा की भांति कमेड़ी (पण्डुकी) पक्षी, किसी अलक्षित स्थान से अपना स्वागत गान सुनाती है और कोयल की तेज तार एवं स्पष्ट कूक किसी ऐसे गहन वन में से आती हुई सुनाई पड़ती है जहां से निर्मल जल के किसी शान्त झरने का उद्गम होता है। धरती का प्रत्येक छोटे से छोटा भाग, जिसमें अनाज उग सकता है बड़ी मेहनत के साथ बोया जोता जाता है; इस छोटे से सफर में ही आबू के बारह ग्रामों में से चार ग्राम मेरे देखने में आए। इन गांवों की रचना भी यहां के दृश्य के अनुकूल ही है। यहां के निवासियों के घर साफ सुथरे और सुखमय हैं; इनका आकार झोंपड़ी की भांति गोल (वृत्ताकार) है, बाहर मिट्टी का पलस्तर हुआ रहता है और हल्का पीला रंग इन पर पुता रहता है। प्रत्येक बहते हुए झरने के किनारे पर जल सींचने के लिए रँहट लगा होता है और पानी जमीन की सतह के निकट होने के कारण कूए भी अधिक गहरे नहीं खोदने पड़ते हैं। इन उपजाऊ खेतों के चारों ओर कँटीली थूवरों की बाड़ होती है और उन पर खूज (अन्तरबेल) तथा भारतीय बगीचों में बहुतायत से बोयी जाने वाली सेवती (शिवपर चढाने योग्य) की घटा छाई रहती है। कठिन ग्रानिटपत्थर की चट्टानों पर, जहां दरारों के अतिरिक्त नाम मात्र को भी मिट्टी नहीं है, दाड़िम के पेड़ उगे हुए हैं। जर्द आलू, जो फलों के बीच बीच में से कभी कभी दिखाई पड़ जाते हैं, अभी तक हरे सघन होने के कारण ऐसे मालूम होते हैं मानो कभी नहीं पकेंगे। वहां के लोग मेरे पास अंगूर

की दाखें भी लाए जिनके आकार को देख कर मुझे यह विचार आया कि उन लोगों ने इनकी खेती की है। ये दाखें तथा (Citron), जो मेरे देखने में तो नहीं आए परन्तु इन लोगों ने किसी गहरी घाटी में उगे हुए बताए थे, आबू के स्वाभाविक फल समझे जाते हैं। यहां पर आमों की भी बहुतायत है जिनकी डालियों पर सुललित अम्ब्रात्रीबेल देखने में आती है। इसके सुन्दर नीले और सफेद फूल डालियों से नीचे लटकते रहते हैं। इनको यहां के पहाड़ी लोग अम्ब्रात्री कहते हैं। मेरे देखने में यह बात भी आई कि ये लोग इन फूलों को बहुत पसन्द करते हैं और जहां भी हाथ आ जाते हैं इन्हें तोड़ कर अपने केशपाशों व पगड़ियों में टांग लेते हैं। यहां के पेड़ों में अत्यधिक नमी होने के कारण उन पर लीलोतरी छा जाती है यहां तक कि अचलगढ़ के अत्युच्च खजूर वृक्ष की सबसे ऊंची टहनी भी इस से मँढी हुई पाई जाती है। अम्ब्रात्री के फूट निकलने का यही आधार है। फूलों की तो यहां पर कोई कमी है ही नहीं, इनमें चमेली और प्रतिवर्ष फूलने वाले विविध जाति के पुष्प गोखरू की भांति बिखरे पड़े हैं। पुष्पों वाले वृक्षों में सबसे बड़ा सुनहरी चम्पा का वृक्ष होता है, जो मैदानों में तो कहीं कहीं पर ही मिलता है। इसके लिए कहते हैं कि अलोय (Aloe) की भांति यह सौ वर्ष में एक बार ही फूलता है, पर यहां तो सौ सौ कदम के फासले पर यह वृक्ष मिलता है और अपने पुष्पों की महक से हवा को भर देता है। संक्षेप में यहां का वर्णन इस प्रकार है—

वन, गह्वर, निर्झर, अमल, मेवा, पल्लव श्याम।
पर्वत, शिखर, सुद्राक्ष बहु, शोभित क्षेत्र ललाम।
जीर्ण किन्तु पत्रों ढ़की, इन दुर्गों की भींत।
ताजा हीं जिस पर यहाँ, नाश बसा बहु रीति।

स्वामिहीन वे दुर्ग भी, अन्तिम करें प्रणाम।
सौ सुन्दरता का बना, आबू मिश्रण धाम॥"

नखी-तालाब बहुत सुन्दर सरोवर है। इसके बीच बीच में हरियाली से ढके हुए वृक्षों वाले बहुत से छोटे छोटे टापू हैं जिनमें से लम्बे लम्बे ताड़ के वृक्ष अपने सिर हिलाते हुए से दिखाई देते हैं। तालाब के आसपास ऐसी चट्टानें आ गई हैं जिनके ठेठ किनारे तक सघन वन छाए हुए हैं। जब कर्नल टॉड ने इसको देखा था उस समय "इसमें जलमुर्गाबियां तैरती थी; न उनकी ओर किसी मनुष्य का ध्यान जाता था न किसी मनुष्य की ओर उनका ही, क्योंकि इस पवित्र पर्वत पर बहेलिए की बन्दूक और मछुए के जाल को कोई नहीं जानता था। 'किसी भी प्राणी को मत मारो' ऐसी ईश्वरीय आज्ञा प्रचलित थी और इसका भङ्ग करने वाले को दण्ड के रूप में मृत्यु का आलिंगन करना पड़ता था।" कुछ दिनों से आबू के इस तालाब के आसपास यूरोपियन लोगों के बँगले बन गए हैं, पास ही आबहवा बदलने के लिए आए हुए सैनिकों के बैरक (सैन्यशाला) भी बन गए हैं और एक ईसाई गिरजाघर भी आदिनाथ के देवालयों के साथ साथ अचलेश्वर के पर्वत पर अपना अधिकार प्रदर्शन करता हुआ विद्यमान है।

आबूपर्वत की तलहटी में ही अणादरा नामक गांव है जिसके पास होकर डीसा की छावनी में जाने का एक चौड़ा और सुगम मार्ग बना हुआ है। यह रास्ता नखीतालाब के आगे आ कर मिलता है। नखी तालाब के पास ही देलवाड़ा अथवा देवालयों का समुदाय है। यहां पर विमलशाह और तेजपाल के बनवाए हुए दो मुख्य देवालयों के अतिरिक्त और भी बहुत से देवालय हैं परन्तु उन सबमें यही दोनों अति प्राचीन

और शोभाशाली हैं। पहले लिखा जा चुका है कि पहला देवालय विमलशाह ने १०३१ ई० में बनवाया था और इससे पूर्व यहां पर कोई जैन देवालय बना हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता। यहां पर इन देवालयों के साधारण वर्णन के अतिरिक्त अधिक लिखना आवश्यक नहीं है। (१) इन मन्दिरों के आकार व बाहरी दृश्य में तो कोई ऐसी विशेषता नहीं है परन्तु सुथार लोगों की अच्छी से अच्छी सुसंस्कृत कारीगरी इनके अन्तरङ्ग भाग में देखने को मिलती है। प्रत्येक देवालय में निज-मन्दिर के आगे एक सभामण्डप है जिसके ऊपर अष्टकोण गुम्बज बनी हुई है और आसपास में भी स्तम्भपंक्ति पर बहुत से गुम्बज खड़े हुए हैं।

---

(१) इसके वर्णन के लिए फर्ग्युसन की लिखी हुई "हैण्डबुक आफ आर्किटैक्चर" के प्रथम भाग का पृष्ठ ६६ देखना चाहिए जहाँ वर्णन के अतिरिक्त इसका चित्र भी दिया हुआ है। इसके अतिरिक्त इसी ग्रन्थकर्ता की लिखी हुई "पिक्चरस्क इल्लस्ट्रेशन्स् आफ ऐन्शियन्ट आर्किटैक्चर इन हिन्दुस्तान' नामक पुस्तक भी देखनी चाहिए।

तेजपाल और वस्तुपाल के देवालयों के विषय में लिखते हुए मिस्टर फर्ग्युसन ने लिखा है "इस सफेद संगमर्मर के पत्थर में फीते जितनी बारीक जगह में हिन्दू कलाकारों ने अपने अथक परिश्रम से जो कारीगरी दिखलाई है उसको कितना ही परिश्रम और समय व्यतीत करके मैं कागज पर नहीं उतार सका।" 'पिक्चरस्क इल्लस्ट्रेशन्स् आफ ऐन्शियन्ट आर्किटैक्चर इन हिन्दुस्थान।

अपनी दूसरी पुस्तक में इसी ग्रन्थकार ने हिन्दुओं के गुम्बजों की अन्दर की तरफ के कमल जैसे लटकन (लोलक) के विषय में लिखा है कि "इनके आकार में ही सामान्यतया ऐसी कोमलता और सौन्दर्य होता है कि गाँथिक कारीगरी के कारीगर तो उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। घुँमट के मध्य में से लटकते हुए संगमर्मर के ढेले के बजाय यह ऐसा मालूम होता है कि मानों स्फटिक मणियों (के रवों अथवा दानों) का एक गुच्छा लटक रहा है।

सम्पूर्ण देवालय सफेद संगमर्मर का बना हुआ है और इसका प्रत्येक भाग कुराई के बारीक काम से सुसज्जित है। यह कुराई का काम इतनी बारीकी का है कि देखते ही एक बार तो ऐसा भ्रम होता है मानों यह सब कुछ मोम का ढला हुआ तो नहीं है—अर्द्ध पारदर्शक पतली कोरें (किनारें) इतनी सूक्ष्म हैं कि बहुत ध्यान से देखने पर ही यह मालूम होता है कि इनमें कुछ मोटाई भी है अथवा इनको देखने से गणितज्ञ (यूक्लिड) की बनाई हुई 'रेखा' की परिभाषा पूर्णतया सार्थक हो जाती है। तेजपाल के मन्दिर की गुम्बज के बीच से लटकते हुए लटकन (लोलक) की कारीगरी तो देखते ही बनती है। प्रत्येक दर्शक का ध्यान इधर आकृष्ट हुए विना नहीं रहता। कर्नल टॉड ने इसका उचित ही वर्णन किया है कि, "इसका वर्णनात्मक चित्र खींचते लेखनी थक जाती है, और अत्यन्त परिश्रमशील विशिष्ट कलाकार की कलम भी चीं खा जाती है।" और कर्नल टॉड की लिखी हुई यह बात भी बिलकुल सच है कि अत्यन्त सुसंस्कृत गॉथिक गृहनिर्माण कला का शृङ्गार भी इसकी शोभा के आगे नहीं ठहर सकता। "यह अर्द्ध-विकसित कमलों के गुच्छे के समान दिखाई देता है—ऐसे कमल कि जिनके पतले और पारदर्शक कटोरे इतनी बारीकी से कतरे गए हैं कि देखते ही आँखे विस्मय से स्तब्ध हो जाती हैं।" इन मन्दिरों में जो कुराई का काम हो रहा है वह भी निर्जीव और स्वाभाविक वस्तुओं के चित्र तक ही सीमित नहीं है वरन् उसमें नित्यप्रति के सांसारिक व्यवहारों, व्यापार और नौकाशास्त्र के प्रशंसनीय प्रयत्नों और रणक्षेत्र के युद्धों का भी आलेखन स्पष्ट देखने में आता है, और यहाँ पर यह बात निधड़क कही जा सकती है कि यदि कोई पुरातत्त्वान्वेपक (पुरानी बातों की खोज करने वाला) इस कुराई के काम का अध्ययन करने में अपना

समय व्यय करे तो बदले में उसको मध्यकालीन भारतवर्ष के बहुत से रीति रिवाजों का मनोरञ्जक ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

आबू के सब से ऊँचे शिखर ऋष्यशृङ्ग पर चढ़ने वाला पहला यूरोपियन कर्नल टॉड था। वह लिखता है " यद्यपि साधारणतया देखने पर ऐसा मलूम होता है कि यह पर्वत-शिखर बहुत ऊँचा नहीं है परन्तु जैसे ही हम मारवाड़ के मैदानों में होकर ऊपर पहुँचे वैसे ही हमें ज्ञात हुआ कि यह अपने पठार की सतह से सात सौ फीट ऊँचा है। उस समय, बहुत ठंडी और ठिठुरा देने वाली दक्षिणी हवा चल रही थी जिसके आघात से बचने के लिए सावधान पहाड़ी लोग अपने अपने काले कम्बलों में लिपट कर एक आगे निकले हुए चट्टान की आड़ में लम्बे लेट गए। वहाँ का दृश्य अत्यन्त गम्भीरता, भव्यता और नवीनता लिए हुए था। बादलों के समूह हमारे पैरों तले होकर तैरते हुए निकल जाते थे। कभी कभी सूर्यदेव उनमें होकर अपनी एक आध किरण हमारी ओर फेंक देते थे, मानों इसलिए कि दृश्य की अत्यधिक रमणीयता के कारण हम मोह में न पड़ जावें। इस चक्करदार चढाई के बाद हम एक ऊँचे चबूतरे पर आकर पहुँचते हैं जिसके चारों ओर छोटी छोटी चारदीवारी खिंचीं हुई है। यह कोट इस ऊँचाई का मुकुट सा दिखाई देता है। यहीं पर एक ओर लगभग २० फीट समचौरस एक गुफा है जिसमें एक ग्रयानिट पत्थर की चौकी पर विष्णु के अवतार श्री दत्तात्रय के चरणचिह्न वर्तमान हैं। यहां पर आने वाले यात्री के लिए इनके दर्शन ही एक मात्र मुख्य ध्येय है। दूसरी ओर के कोने में श्रीरामानन्द स्वामी की चरणपादुका विद्यमान है। ये रामानन्द सीतासम्प्रदाय के प्रवर्तक हो चुके हैं। यहां पर इसी सम्प्रदाय

का एक गुसांई रहता है जो यात्रियों के आते ही घण्टा बजाना शुरू कर देता है और जब वे लोग कुछ भेंट चढा देते हैं तो बन्द कर देता है। अपनी श्रद्धा का प्रदर्शन करने के लिए यात्री लोग अपने अपने दण्ड आचार्य की पादुका के आगे लिटा देते हैं। दण्डों का वहाँ पर एक बड़ा भारी ढेर लगा हुआ था। इस पर्वत पर बहुत से स्थानों पर अनेक गुफाएं हमारे देखने आईं जिनसे यह पता चलता है कि पहले यहां पर गुफाओं में रहने वाले लोगों की बस्ती थी और इनके अतिरिक्त बहुत से गोलाकार छिद्र भी दिखाई दिए जिनकी तोप के गोलों के छिद्रों से समानता की जा सकती है। एक एकान्तवासी तपस्वी के साथ बातें करता हुआ मैं संध्या समय तक वहीं पर ठहरा रहा। उसने मुझे बताया कि वर्षा ऋतु में जब आकाश स्वच्छ हो जाता है तो जोधपुर का किला और लूनी के किनारे पर स्थित बालोतरा तक का मैदान यहां से स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यद्यपि इस बात की पूरी जांच करने के लिए पर्य्याप्त समय नहीं था परन्तु फिर भी रह रह कर प्रकट होने वाले सूर्य के प्रकाश में मैंने सिरोही तक फैली हुई भीत्रील की उपजाऊ घाटी और पूर्व में लगभग बीस मील की दूरी पर अरावली की बादलों से ढकी हुई चोटी पर स्थित अम्बा भवानी के मन्दिर को तो खोज ही निकाला था। अन्त में, सूर्यदेव अपने पूर्ण प्रकाश के साथ उदित हुए और हमारी दृष्टि वहां तक पहुँचने लगी जहां पर स्वच्छ नील गगन और सूखी सुनहली बालू एक दूसरे से मिलते हुए दिखाई दे रहे थे। दृश्य की उत्कृष्टता को बढ़ाने के लिए सभी साधन उपस्थित थे और शान्त वातावरण के कारण इसकी रमणीयता द्विगुणित हो रही थी। पहाड़ी के अधोभाग के श्यामल दृश्य से हटाकर थोडी सी दाहिनी ओर फेरने पर दृष्टि परमारों के उस किले के खण्डहरों पर जाकर

ठहरती है जो कभी सूर्य के प्रकाश को आगे बढने से रोक दिया करता था और एक लम्बा ताड़ का वृत्त उन्हीं खण्डहरों में खड़ा खड़ा अपने पताका-सदृश पत्तों को खड़खड़ा रहा था – मानों वह उस नष्ट हुई जाति के खण्डहरों को देख कर उपहास कर रहा था, जो कभी अपने साम्राज्य को अटल और विनाशहीन समझती थी। दाहिनी ओर ही थोड़े से आगे बढ़ कर देलवाड़ा के शिखरबन्ध मन्दिरों के शिखरों का समूह दिखाई देता है। इसके पीछे ही सुन्दर सघन वन छाया हुआ है जिसके (बीच बीच में) चारों ओर पठार के ऊपर से चट्टानों की चोटियाँ निकली हुई दिखाई पडती हैं। पहाड़ की ऊँची नीची धरातल से आकर बहुत सी नदियाँ भी इस पठार पर अपना टेढ़ा मेढ़ा मार्ग निकालने का प्रयत्न करती हुई दृष्टिगत होती हैं। नीला आकाश और रेतीला मैदान, संगमर्मर के बने हुए देवालय और साधारण झोंपड़ियां, गम्भीर और घने जंगल और टेढीमेढी चट्टानें ये सभी एक दूसरे से विपरीत दृश्य यहाँ पर नजर आते थे।"

"ऋष्यशृंग से उतरते ही अग्नि कुण्ड और अचलेश्वर का देवालय आता है जो हिन्दुओं के पौराणिक इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है।

"अग्निकुण्ड लगभग नौ सौ फीट लम्बा और दो सौ चालीस फीट चौड़ा है। यह ठोस पत्थर की चट्टान में से कुरेद कर बनाया गया है और इसके किनारों पर बहुत बड़ी बड़ी पत्थर की ईंटें जड़ी हुई हैं। कुण्ड के बीच में एक विना कटी हुई चट्टान छोड़ दी गई है जिस पर जगदम्बा के मन्दिर के खण्डहर विद्यमान हैं। उत्तर के किनारे पर पाण्डवों के छोटे छोटे से देवालयों का समूह है परन्तु ये भी दूसरे मन्दिरों की तरह टूटे फूटे हुए हैं। पश्चिम दिशा में आबू के संरक्षक

देवता अचलेश्वर का देवालय है, जो न तो बहुत विशाल ही है और न उसमें कोई विशेष कारीगरी ही पाई जाती है परन्तु उसमें एक प्रकार की गम्भीर सादगी है और देखते ही यह जान पड़ता है कि यह कोई प्राचीन इमारत है। यह देवालय चौक के मध्य भाग में स्थित है और इसके आसपास छोटे और समान आकार की काले पत्थर की बनी हुई गुमटियां (Fanes) हैं। "देवालय की इसी बाजू में सिरोही के राव मान की छत्री बनी हुई है। इस राव को एक जैन मन्दिर में जहर देकर मारा गया था और उसके कुल देवता के मन्दिर के पास ही उसका शव जलाया गया था। यहीं उसके साथ उसकी पाँच रानियां भी सती हुई थीं।

"अग्निकुण्ड के पूर्व की ओर परमार वंश के संस्थापक और मूलपुरुष के देवालय के खण्डहर पड़े हुए हैं जिनमें पादस्थल सहित आदिपाल की मूर्ति अब तक यथावस्थित विद्यमान है। यह मूर्ति प्राचीन काल के रीति रिवाज और वेषभूषा का मूल उदाहरण है। यह सफेद संगमर्मर की बनी हुई पाँच फीट ऊँची मूर्ति है। इसको इस ढंग से बनाया गया है कि मानों आदिपाल महिषासुर पर बाण चलाने ही वाला है क्योंकि वह अग्निकुण्ड का पूरा पानी रात के समय आ कर पी जाता था और इसीलिए (उस कुण्ड की रक्षा करने के लिए) परमार राजपूतों की सृष्टि की गई थी।

"अचलगढ़ जाने के लिए मैं अग्निकुण्ड से आगे चला। अचलगढ के खण्डहर की बुर्जें मेरे चारों ओर फैले हुए बादलों की गहरी घटा से ढकी हुई थीं। चढ़ाई खतम होने पर हनूमान दरवाजे में होकर हम उस स्थान पर आ पहुँचे जहाँ का राजकीय वैभव कभी खूब फैला हुआ था। इस हनूमान दरवाजे के दोनों तरफ काले पत्थर की बनी हुई दो बड़ी बड़ी बुर्जें हैं जो हजारों जाड़ों की ठंडी हवा

के झोंके खा खाकर और भी अधिक काली पड़ गई हैं। इन दोनों बुर्जों के बीच में एक प्रकोष्ठ बना हुआ है जो इन दोनों को संयुक्त करता है और जो चौकीदारों के बैठने का स्थान मालूम होता है। इस दरवाजे में होकर नीचे के किले में जाने का मार्ग है। इस किले की टूटी फूटी भींतें ऊपर की टेढीमेढी चढ़ाई पर से दिखाई पड़ती हैं। यहीं पर एक दूसरा दरवाज़ा है, जिसमें होकर भीतर के किले में जाते हैं। इस दरवाजे के मुँह के आगे ही पारसनाथ का मन्दिर है जिसको माँडू के एक साहूकार ने बनवाया था। यह मन्दिर अब इस दशा को पहुँच गया है कि इसका जीर्णोद्धार होना आवश्यक है। ऊपर का कोट राणा कुम्भा का कोट कहलाता है। जब राणा कुम्भा को मेवाड़ छोड कर भागना पड़ा तो उसने यहां आकर बहुत समय से उपेक्षित पड़े हुए परमारों के किले पर अपना सूर्य-ध्वज फहराया था। उसने इस अचलगढ के किले की केवल टूट फूट की ही मरम्मत करवाई थी बाकी सब काम बहुत प्राचीन काल का है। इस किले में सावण-भादों नामक एक टांका है, जो अपने नाम को पूर्णतया सार्थक कर देता है क्योंकि आधा जून बीतते बीतते तो यह पानी से लबालब भर जाता है। पूर्वोक्त सबसे ऊँचे शिखर पर परमारों की गढ़ी के खण्डहर हैं। यहाँ से यदि द्रुतगामी बादलों के उस पार दृष्टि फैलाई जावे तो उन टूटे फूटे महलों और वेदियों की झांकी प्राप्त होती है कि जिनकी रक्षा करने के लिए परमारों की वीर जाति ने लड़कर अपना रक्त बहाया था।"

अचलगढ़ की बुर्जों और रमणीय आबू से अन्तिम विदा लेने के पहले जिस वंश के राजों ने यहां पर कितने ही वर्षों तक राज्य किया था उसी परमार वंश के विषय में कुछ शब्द कह देना उपयुक्त होगा। प्राकारों से घिरी हुई चन्द्रावती नगरी इनकी राजधानी थी। आबू पर्वत की तल-

हटी से लगभग बारह मील की दूरी पर और अम्बाभवानी तथा तारिङ्गा के देवालयों से कुछ अधिक दूरी पर, जंगलों से घटाटोप प्रदेश में बनासके किनारे अब भी इस नगरी के खण्डहर पाए जाते हैं। जिस स्थान पर पहले यह नगर बसा हुआ था वहाँ अब घनी वनस्पति उग आई है; इसके कूए और तालाब मिट्टी से भर आए हैं, देवालयों का नाश हो चुका है और इसके खण्डहरों में से संगमर्मर के पत्थर लुटे जा रहे हैं। ये खण्डहर एक बहुत विशाल मैदान में फैले हुए हैं इससे पता चलता है कि इस नगर का विस्तार बहुत बड़ा रहा होगा। जब पहले पहल यूरोपियन लोग इन खण्डहरों को देखने गए तो जिस स्थान पर वे सर्वप्रथम जाकर पहुँचे वहीं संगमर्मर की बनी हुई बीस सुन्दर इमारतों के खण्डहर खोद कर निकाले गए; इससे इस नगर की सुन्दरता और समृद्धि का पता चलता है। धारावर्ष के भाई रणधीर प्रह्लादन देव ने प्रह्लादनपट्टण अथवा पाल्हनपुर बसाया था, वह भी चन्द्रावती के राजवंश के अधिकार में ही था।

परमारों में पहला राजा श्री धूमराज हुआ। (१)धंधूक और ध्रुव-

---

(१) आबू पर्वत पर देलवाड़ा में श्री आदिनाथ का देवालय है। इस मन्दिर की दाहिनी तरफ धर्मशाला की भींत पर एक लेख है जो फाल्गुन कृष्णा १० सोमवार सं. १२६७ को लिखा गया था। यह लेख वीरधवल के समय के श्री सोमेश्वरदेव कवि का रचा हुआ है। इससे चन्द्रावती के परमार राजाओं की वंशावली का निम्नलिखित परिचय प्राप्त होता है—

श्रीधूमराजः प्रथमं बभूव भूवासवस्तत्र नरेन्द्रवंशे
भूमीभृतो यः कृतवानभिज्ञान्पक्षद्वयोच्छेदनवेदनासु ॥२३॥
धन्धुकध्रुवभटादयस्ततस्ते रिपुद्वयघटाजितोऽभवन्
यत्कुलेऽजनि पुमान्मनोरमो रामदेव इति कामदेवजित् ॥२४॥ इत्यादि।

भट्ट उसके क्रमानुयायी थे। इनके विषय में लिखा है कि, "हाथियों के टोले (झुण्ड) के समान शत्रुओं के झुण्ड के लिए वे अजित शूर-वीर पुरुष थे।' इनके पीछे रामदेव हुआ। जिस समय कुमारपाल सर्वो-

---

वशिष्ठ मुनि के अग्निकुण्ड में से परमार नामका पुरुष उत्पन्न हुआ जिसके वंश में श्री धूमराज　　उसके बाद

|

धन्धुक

|

ध्रुवभट आदि हुए, और उनके पीछे

|

रामदेव

|

यशोधवल(कुमारपाल के शत्रु मालवा के राजा बल्लाल को इसी ने मारा था)

|

धारावर्ष (सं. १२२०, १२३७, १२४५, १२६५ के लेख हैं । प्रल्हादनदेव
(कोंकण का राज्य किया)　　पालणपुर बसाया, सामंतसिंह से लड़ा

सोमसिंहदेव (सं. १२८७,१२८६,१२६२)

कृष्णराजदेव (सं. १३००)

उदयपुर के श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा द्वारा प्राप्त विमलशाह के देवालय के लेख का कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

"समजनि वीराग्रणी धंधुः ॥५॥
स भीमदेवस्य नृपस्य सेवाममन्यमानः किल धुंधुराजः।
नरेशरोषाच्च ततो मनस्वी धाराधिपं भोजनरं प्रपेदे ॥६॥
प्राग्वाटवंशाभरणं बभूव, रत्नप्रधानो विमलाभिधानः।
यस्तेजसा दुःसमयान्धकारे, मग्नोऽपि धर्म्मः सहसाविरासीत् ॥७॥
ततश्च भीमेन नराधिपेन, प्रतापभूमिर्विमलो महामतिः।
कृतोऽर्बुदे दण्डपतिः सतां प्रियः प्रियंवदो वन्दतु जैनशासने ॥८॥
श्री विक्रमादित्यनृपाद्व्यतीतेऽष्टाशीतियाते शरदां सहस्रे ॥१०॥"

त्कृष्ट सत्तावान् राजा था उस समय इस रामदेव का पुत्र यशोधवल ही आबू पर राज्य करता था। यशोधवल के पुत्र श्री सोमसिंह देव अपने पिता के बाद गद्दी पर बैठा। सन् १२३१ ई० के एक लेख में उसको 'महामण्डलेश्वर' लिखा है। उस समय अणहिलवाड़ा में श्री भीमदेव (द्वितीय) महाराजधिराज था। फिर, सोमसिंह के भी एक पुत्र हुआ जिसका नाम कृष्णराजदेव था।

धारावर्ष के पुत्र के समय में भी परमारों ने नाँदोल के चौहानों को मार्ग देदिया था। विमलशाह (१) के देवालय में एक लेख है जिसमें लिखा है कि इन चौहानों में लुण्ड अथवा लुणिग नाम का एक पुरुप था (१२२२ ई०) जिसने माण्डलिक का वध करके आबू का राज्य अपने अधिकार में ले लिया था। वशिष्ठ के देवालय में (ई०स० १३३८ का) एक लेख है जिसके अनुसार लुणिग का पुत्र तेजसिंह था; उसके पुत्र का नाम कान्हड़देव और पौत्र का नाम सामन्तसिंह था। कान्हड़देव के

इससे विदित होता है कि संवत् १०८८ में विमलशाह ने जो देवालय बनवाया था उसी का यह लेख है। यह विमलशाह प्रथम भीमदेव के समय में आबू का दण्डपति था। इसके बाद का जो लेख मिलता है वह इस देवालय के जीर्णोद्धार के समय का है।

(१) इस लेख को पढने में फार्बस साहब से भूल हो गई है। उनके पास जो नकल थी उसके लिखे 'वसु मुनि कर शशि वर्ष' पाठ के अनुसार संवत् १२७८ और ई० सं० १२२२ निकलता है, परन्तु उदयपुर के श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझाने स्वयं आबू पर जाकर इस लेख को पढ़ा है और उसको अच्छी तरह देख कर नकल की है उसमें—वसु मुनि गुण शशि वर्ष – पाठ है इसके अनुसार १३७८ वि० सं० और १३२२ ई० सन् निकला है इस प्रकार एक सौ वर्ष की भूल हो गई।

लिए लिखा है कि वह चन्द्रावती का राजा था। नांदोल के चौहानों की शाखा में देवड़ा राजपूत हैं; उनके इतिहास में लिखा है कि राव लुम्भो ने आबू और चन्द्रावती को जीता था और बाड़ौली ग्राम के आगे जो लड़ाई हुई उसमें परमारों के राज्य को जीत कर अपने आधीन कर लिया, "इस लड़ाई में अगनसेन का कुँअर मेरुतुङ्ग भी अपने सातसौ साथियों के साथ मारा गया।" इस आधार के प्रमाण से इस झगड़े की अन्तिम लड़ाई १३०३ ई० में हुई जिसमें चन्द्रावती देवड़ा चौहानों के अधिकार में आ गई और आबू को तो उन्होंने इससे सात वर्ष पहले ही हस्तगत कर लिया था। "इस बीच में चौहान धीरे धीरे परमारों की छोटी छोटी जमींदारियों को नष्ट करते रहे और प्रत्येक जीत पर एक नई शाखा का जन्म होता रहा। इनमें से कितने ही तो, जैसे मदार और गिरवर के

अचलेश्वर के लेख और विमलशाह के लेख के अनुसार निम्नलिखित प्रकार से वंशावली तैयार होती है—

अचलेश्वर के लेख के आधार पर	विमलशाह के देवालय के लेखानुसार
१ अल्हण	१ आसराज
२ कीर्तिपाल	
३ समरसिंह	समरसिंह
४ उदयसिंह	
५ मानसिंह	
६ प्रतापसिंह	प्रतापमल्ल
७ बीजड	बिजड
लुणिग-लुंढिग	लुणिग-लुंढ
८ लुणवर्मा-लुढागर	लुंभो
लुंढाप	तेजसिंह

ठाकुर के वंशज, अपने मुख्य स्वामियों से मुक्त होकर उनके प्रतिनिधियों को धीरे धीरे कम मानने लग गये।"

आबू के एक दूसरे लेख में लिखा है कि सन् १२६४ ई० में सारङ्गदेव अणहिलवाड़ा का राजा था और वीसलदेव उसका एक सूबेदार था जिसके अधिकार में अठारहसौ मण्डल थे और चन्द्रावती उसके रहने का स्थान था। यह वीसलदेव राजा का एक अधिकारी मात्र था और कुछ समय के लिए यह प्रान्त उसके अधिकार में रहा होगा। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जब चौहानों ने हमला किया तो सारंगदेव ने अपनी फौज भेजकर अपने पटावतों का प्रदेश, जो झगड़े की जड़ बना हुआ था, अपने अधिकार में कर लिया होगा। उक्त लेख के अतिरिक्त एक और भी लेख है जो इससे सर्वथा भिन्न है। अचलेश्वर के मन्दिर में एक पत्थर पर खुदा हुआ लेख मिलता है जिसमें एक दूसरे ही लुण्ढदेव का वर्णन है (१३२१ ई०) जो साँभर के चौहानों का वंशज बतलाया गया है। इसके पूर्वजों की नामावली पहले वाले लुण्ढ अथवा लुणिग के पूर्वजों की नामावली से भिन्न है। इसने चन्द्रावती प्रान्त और रमणीय आबू को अपने अधिकार में ले लिया और अचलेश्वर के सामने अपनी तथा अपनी स्त्री की मूर्तियां स्थापित कीं।

अब इस वृत्तान्त को यहीं छोड़कर हम फिर थोडी देर के लिए वाघेलों की कथा आरम्भ करते हैं। पहले लिखा जा चुका है कि वीरधवल के कुमार वीसलदेव के विषय में अधिक वृत्तान्त प्राप्त नहीं होता। भाट लोगों की कथाओं से केवल इतना ही पता चलता है कि इसके

राज्यकाल में दुष्काल (१) पडे जिनको मिटाने का इसने भरसक प्रयत्न किया और वीसलनगर बसाया तथा दर्भावती अथवा डभोई के किले का जीर्णोद्धार कराया।

देवपट्टण के सोमनाथ के देवालय में सन् १२६४ ई० का एक लेख है जिसमें अर्जुनदेव नामक राजा के साथ महाराजाधिराज पद के सभी विशेषण लिखे हुए हैं "परमेश्वर भट्टारक श्री चालुक्य चक्रवर्ती महाराजाधिराज श्रीमदर्जुनदेव"। बाघेलावंश के भाटों का अपनी बहियों के आधार पर कहना है कि अर्जुनदेव वीसलदेव के बाद गद्दी पर बैठा था, परन्तु उसके राज्यकाल की घटनाओं का कोई वर्णन नहीं मिलता है। ऐसा ज्ञात होता है कि वह अणहिलवाड़ा का राजा था और शैव मत का अनुयायी था। अनेक राजा उसकी आज्ञा मानते थे, जिनमें से चन्द्रावती का परमार राजा राणक, श्री सोमेश्वरदेव, चावडा ठाकुर पालुकदेव, रामदेव, भीमसिंह इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। श्रीमल्ल देव उसका प्रधानमन्त्री था और हरभुज बेलाकुली व नाखुदा नूर-उद्दीन फीरोज का पुत्र खोजा इब्राहिम आदि अन्य मुसलमान भी उसके कर्मचारी थे, परन्तु 'नाखुदा' पद से यह ठीक ठीक पता नहीं चलता कि ये लोग किस अधिकार पर नियुक्त थे और न यही बात मालूम होती है कि एक हिन्दू राजा के अधिकार में ये मुसलमान लोग नौकरी करने

---

(१) सं० १३१५ का अकाल पँदरया अकाल के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय कच्छ में भद्रेश्वर नाम का एक तालुका था जिसको भगडूशाह नामक बनिए के गिरवी रखकर इसने अपने प्रान्त के लोगों के अन्न वस्त्र का प्रबन्ध किया था, जो धन बचा उससे जिन-प्रासाद का जीर्णोद्धार कराया गया।

के लिए क्योंकर यहाँ पर आये थे। (१)

अर्जुनदेव के बाद बाघेलों के भाट ने लवणराज (२) का नाम लिखा है, परन्तु, इस राजा का नाम और कहीं नहीं प्राप्त होता है और न इन भाटों के पास ही इसका कोई विशेष वर्णन मिलता है। इसके बाद सारङ्गदेव (३) आता है जिसको १२६४ ई० के आबू के

---

(१) इस लेख से विदित होता है कि इस समय में यहाँ मुसलमानों का आना जाना शुरू हो गया था ये लोग यहाँ पर व्यापार करने के लिए आते थे। इसी सिलसिले में ईरानी अखात के ओर्मज बंदर (बेलाकुल) का रहने वाला खोजा नाखुदा अबु इब्राहीम का लड़का नाखुदा नूरूद्दीन फीरोज भी आया था। उसने सोमनाथ पाटण में मस्जिद बनवाने के लिए एक बिकती हुई जमीन मोल ली थी। उस समय वहाँ के महाजनों में अग्रणी बृहत्पुरुष (सबसे अधिक सम्मान्य पुरुष) ठक्कर श्री रामदेव, पलुंगिदेव, राणा श्रीसोमेश्वरदेव, ठक्कर श्रीभीमसिंह और राना ० श्रीछाडा ये सब उपस्थित थे। इन सभी के समक्ष यह भूमि मोल ली गई थी इसलिए ये इस कार्य के साक्षी गिने गए हैं ॥

(२) गुजराती भाषान्तरकार ने लिखा है कि, "राज्यवंशावली नामक पुस्तक की एक हस्तलिखित प्रति की नकल हमारे पास है जिसमें लिखा है कि, "वीरधवल ने १२ वर्ष राज्य किया सं० १३११ में तेजपाल व वस्तुपाल हुए। वीरधवल के बाद राजा वीसलदेव हुआ जिसने वीसलनगर बसाया और डभोई का किला बंधवाया जिसमें नौकरोड़, निन्यानवे लाख, नौहजार नौसौ निन्यानवे टके खर्च हुए। सं० १३२७ से ३ वर्ष तक अर्जुनदेव ने और ४ वर्ष तक राजा लवण ने राज्य किया। तीन वर्ष तक सारङ्गदेव ने राज्य किया और १३७७ से ६० वर्ष तक लघुकर्ण गहिलडी ने राज्य किया।' वीरधवल के बाद प्रतापमल्ल राजा हुआ उसका वर्णन इसमें नहीं मिलताहै।

(३) उक्त लेख के अनुसार सारङ्गदेव का राज्य सं० १३३४ से १३३७ तक का ठहरता है परन्तु वह सं० १३५३ तक था। उसके समय का कच्छ के रापर चट्टान

लेख में आबू का राजा लिखा है और उसी के अधिकार में वीसलदेव को चंद्रावती का मण्डलेश्वर लिखा है। सारंगदेव के बाद कर्ण बाघेला राजा हुआ, जो 'गैला' अथवा पागल के उपनाम से प्रसिद्ध था। यही अणहिलपुर का अन्तिम हिन्दू राजा था।

का संवत् १३३२ ई० का लेख मिलता है; परन्तु संवत् १३५० (ई०सं० १२६५) के आबू के लेख और संवत् १३४३ (ई० सं० १२८७) के लेख के अनुसार यह अप्रमाणित ठहर जाता है। इस समय उसका महामात्य मधुसूदन था। लघुकर्ण के ६० वर्ष के विषय में 'आट' वर्ष के स्थान में 'साठ' वर्ष लिखा है, ऐसी शंका होती है।

वस्तुपाल तेजपाल विषयक विशेष ज्ञातव्य(*)

वस्तुपाल और तेजपाल का जन्म अणहिलवाड़ा पट्टण के प्राचीन पोरवाड़ वणिक् वंश में हुआ था। वस्तुपाल स्वयं विद्वान्, विद्या-प्रेमी और विद्वानों का आदर करने वाला था। उसका लिखा हुआ षोडश-सर्गात्मक 'नरनारायणानन्द' नामक महाकाव्य है जो भारवि और माघ की शैली में महाभारत के वनपर्वान्तर्गत अर्जुन और कृष्ण (नर और नारायण) के मैत्री-सम्बन्ध में सुभद्रापरिणय के सन्दर्भ को लेकर रचा गया है। इसके अन्तिम अथवा षोडश सर्ग में वस्तुपाल ने अपने वंश के मूल पुरुष का नाम चण्डप लिखा है। उसके मित्र और कीर्ति-कौमुदी के कर्त्ता सोमेश्वर ने भी लिखा है कि 'प्रांशु प्राग्वाटवंश का प्रथम पुमान् मन्त्रिमण्डलमार्तण्ड चण्डप हुआ'। संभवतः यह गुजरात के राजाओं का ही मुख्य-मन्त्री था। इसका पुत्र चण्डप्रसाद हुआ 'जिसका हाथ राजा की व्यापारमुद्रा से कभी वियुक्त नहीं हुआ'। चण्डप्रसाद के सोम और सूर नामक दो पुत्र हुए। सोम सिद्धराज जयसिंह के दरबार में जवाह-रात आदि का अधिकारी था। उसकी स्त्री का नाम सीता और पुत्र का नाम अश्वराज अथवा आशाराज था। अश्वराज का विवाह दण्डाधिप आभु नामक प्राग्वाट् वणिक् की पुत्री कुमारदेवी से हुआ था। यह अश्व-राज और कुमारदेवी ही वस्तुपाल के मातापिता थे। (१)

(*) यह टिप्पणी मूल पुस्तक एवं गुजराती अनुवाद में नहीं है।

(१) कीर्ति-कौमुदी सर्ग ३,(४-२२)

प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि कुमारदेवी विधवा थी और अश्वराज के साथ उसका पुनर्विवाह हुआ था। लक्ष्मीसागर, पार्श्वचन्द्र और मेरुविजय ने भी अपनी गुजराती कृतियों (वस्तुपालरासा) में इस तथ्य की पुष्टि की है। चालुक्यों के कुलपुरोहित सोमेश्वर ने उनका परिचय वीरधवल से कराया था और तदनन्तर उनकी नियुक्ति राजकार्य में हुई। सुकृतसंकीर्तन (सर्ग ४), जयसिंह सूरिकृत वस्तुपाल-तेजपाल-प्रशस्ति (पद्य ५१) और उदयप्रभकृत सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी (पद्य ११८-१९) में लिखा है कि वे पहले से ही भीमदेव द्वितीय की सेवा में थे और वीरधवल की प्रार्थना पर राजा ने उनको उसे दे दिया था।

राजशेखर सूरि ने इन बन्धुओं द्वारा किए गए व्यय का ब्यौरा इस प्रकार दिया है—

शत्रुञ्जय पर	१८,९६,००,००० द्रव्य
गिरिनार पर	१२,८०,००,००० "
आबूशिखर पर	१२,५३,००,३०० "
(अणहिलवाड़ा, स्तम्भतीर्थ और भृगुकच्छ के तीन सरस्वतीभण्डारों पर)	१८,००,००० "
खम्भात के ज्ञानभण्डार पर	३,००,००० "

वस्तुपाल की दोनों पत्नियों के नाम ललितादेवी और सौख्यलता थे और तेजपाल की पत्नी का नाम अनुपमा था। अनुपमा वास्तव में अनुपमा थी। इन दोनों भाइयों ने जितने बड़े बड़े धर्मकार्य किए वे सब अनुपमा देवी के परामर्श से ही किए थे।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है वस्तुपाल स्वयं साहित्य-सेवी एवं विद्वानों का आश्रयदाता था। उसको 'कूर्चाल सरस्वती' (१) कवि-

---

(१) दाढ़ीदार सरस्वती

कुञ्जर, 'कविचक्रवर्ती' और 'सरस्वतीसुत' की उपाधियाँ प्राप्त थीं। वह जैसा स्वयं प्रतिभाशाली सरस्वती का वरदपुत्र कवि था वैसा ही साहित्य का सूक्ष्म आलोचक भी। सोमेश्वर ने उल्लाघराघव नाटक के द्वितीय सर्ग में कहा है—

'सत्कविकाव्यशरीरे दुष्यद्गददोषमोषणैकभिषक्
श्रीवस्तुपालसचिवः सहृदयचूड़ामणिर्जयति ।!

सत्कवि के काव्यशरीरगत दोषरूपी दुष्टरोग को मेटने वाला एकमात्र सहृदयचूड़ामणि वस्तुपाल सचिव विजयी है।'

वस्तुपाल-रचित एवं उसके आश्रय में तथा उसकी प्रेरणा से निर्मित ज्ञात साहित्य का विवरण इस प्रकार है —

वस्तुपाल-रचित — (१) अम्बिकास्तोत्र (२) आदिनाथस्तोत्र (३) आराधना (४) नेमिनाथस्तोत्र और (५) नरनारायणानन्द महाकाव्य।

सोमेश्वर— (१) सुरथोत्सव नाटक (२) कीर्तिकौमुदी महाकाव्य, (३) उल्लाघराघव नाटक, (कवि ने यह नाटक अपने पुत्र भल्ल-शर्म्मा की प्रार्थना पर रचा था) (४) कर्णामृतप्रपा* (५) रामशतक (६) आबूप्रशस्ति (१२८७ वि०) (७) वैद्यनाथ-प्रशस्ति (१३११ वि०) (८) वीरनारायण-प्रशस्ति (अप्राप्त)। इनके अतिरिक्त सोमेश्वर निर्मित अन्य स्फुट पद्यादि भी मिलते हैं।

हरिहर— यह नैषध-काव्य के रचयिता श्रीहर्ष का वंशज था। इसके पूर्व गुजरात में नैषध-काव्य का प्रचलन नहीं था। कहते हैं कि वस्तुपाल ने नैषधीयचरित की पुस्तक इससे लेकर एक ही रात में प्रतिलिपि करवाली थी। इसके गुजरात में आने पर पहले

---

* सोमेश्वर की इस कृति का प्रकाशन राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर से 'राजस्थानपुरातन ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत हो रहा है।

तो सोमेश्वर में और इसमें अनबन रही, बाद में मित्रता हो गई। हरिहर प्रणीत कोई ग्रन्थ अभी तक नहीं मिला था परन्तु हाल ही में मुनि श्री पुण्यविजयजी को अहमदाबाद में देवशापाड़ा ज्ञान भण्डार में हरिहर कविकृत 'शङ्खपराभव व्यायोग' की एक प्राचीन प्रति प्राप्त हुई है जिसमें सिन्धुराज पुत्र शङ्ख पर वस्तुपाल की विजय का वर्णन है। यह ऐतिहासिक घटना अन्य प्रामाणिक सन्दर्भों से भी सम्पुष्ट है। प्रति १६ वीं शताब्दी से अर्वाचीन नहीं है *।

नानाकभूति अथवा नानाक— यह वीसलदेव का दरबारी कवि एवं कृपापात्र था। इसने प्रभासपट्टण में सरस्वतीसदन नामक विद्यालय की स्थापना की थी। इस विद्यालय के स्थान पर ब्रह्मेश्वर के मन्दिर के पास अब भी आश्विन में सरस्वती-पूजा होती है। इस विद्यालय से सम्बद्ध दो प्रशस्तियाँ मिलती हैं जिनमें से एक १३२८ वि० सं० की है। इसका भी कोई ग्रन्थ नहीं मिलता परन्तु प्रशस्तियों से इसकी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय मिलता है। वस्तुपाल से इसकी मैत्री थी।

यशोवीर— वणिक् था और जाबालिपुर के चौहान राजा उदयसिंह का मंत्री था। हम्मीरमदमर्दन नाटक में वस्तुपाल द्वारा यशोवीर का बड़े भाई के समान आदर करना लिखा है। यह शिल्पशास्त्र का विशेषज्ञ था और आबू के मन्दिर में इसने कितनी ही त्रुटियां बताई थीं।

---

* जर्नल ऑफ दी ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, पृ. २७०–२७५, जून १९५८ में श्री भोगीलाल जे. सांडेसरा का लेख

सुभट— सोमेश्वर और हरिहर ने इसकी बहुत प्रशंसा की है। इसका लिखा हुआ 'दूताङ्गद' नामक छायानाटक मिलता है।

अरिसिंह— यह प्रसिद्ध कवि एवं साहित्यिक अमरचन्द्र का कला-गुरु था। अमरचन्द्र ही इसको वीसलदेव के दरबार में लाया था। (प्रबन्धकोश पृ० ६३) इसके द्वारा रचित सुकृतसंकीर्तन काव्य का बहुत महत्त्व है। बहुत से स्फुट पद्य भी कितने ही ग्रन्थों में उल्लिखित मिलते हैं।

अमरचन्द्रसूरि— मध्यकालीन संस्कृत साहित्य के इतिहास में इनका नाम सुप्रसिद्ध है। 'बालभारत' और 'काव्यकल्पलता' इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं। काव्यकल्पलता पर इन्हीं की लिखी 'कविशिक्षा' नामक वृत्ति भी मिलती है। इसी ग्रन्थ पर 'परिमल' व 'मञ्जरी' नामक दो और टीकाएं भी इन्हीं की लिखी मिलती हैं। इनके अतिरिक्त अलङ्कारप्रबोध, छन्दोरत्नावली और स्यादिशब्दसमुच्चय नामक दो और भी ग्रन्थ इन्हीं के द्वारा रचित हैं। प्रबन्ध-कोश में सूक्तावली और कलाकलाप नामक दो और ग्रन्थों के नाम दिए हैं जो उपलब्ध नहीं हैं। ये 'वेणीकृपाण' विरुद (१)से विभूषित थे। इनकी एक प्रतिमा अणहिलवाड़ा में पण्डित महेन्द्र के शिष्य मदनचन्द्र ने विक्रम संवत् १३६४ में स्थापित की थी। (२)

विजयसेनसूरि— वस्तुपाल के कुलगुरु थे। यद्यपि इनकी एक मात्र अपभ्रंश रचना 'रेवन्तगिरि रास' ही उपलब्ध है परन्तु समसामयिक अन्य संस्कृत विद्वानों के लेखों से विदित होता है कि

---

(१) वेणी अर्थात् नायिका के जूड़े की उपमा कृपाण से देने के कारण।

(२) देखिए 'प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग २' मुनि जिनविजय जी सम्पादित 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' बम्बई में प्रकाशित।

ये बहुत अच्छे कवि और विद्वान् थे।

उदयप्रभसूरि— ये विजयसेन के पट्टशिष्य थे और अवस्था में वस्तुपाल से छोटे थे। इनकी मुख्य कृति 'धर्माभ्युदय' महाकाव्य अपरनाम 'संघपति-चरित्र' है जिसमें वस्तुपाल की यात्रा का वर्णन है। इस कृति की एक प्रति खम्भात के जैन-भण्डार में सुरक्षित है जो स्वयं वस्तुपाल की हस्तलिपि में लिखित है।

जिनभद्र— इनके द्वारा रचित प्रबन्धावली (अपूर्ण) उपलब्ध होती है। ऐतिहासिक कथाओं का यह संग्रह इन्होंने वस्तुपाल के पुत्र जयतसिंह को पढ़ाने के लिए तैयार किया था। (१)

नारचन्द्र सूरि— ये वस्तुपाल के मातृकुल के गुरु थे और 'पाण्डवचरित्र' के कर्ता तथा अनर्घराघव नाटक के व्याख्याकार देवप्रभसूरि के शिष्य थे। वस्तुपाल इनका बहुत आदर करता था और उसने इनसे जैनग्रन्थों के अतिरिक्त न्याय, व्याकरण एवं साहित्य विषयों का अध्ययन किया था। इन्होंने वस्तुपाल के साथ बहुत सी धर्म-यात्राएँ भी की थीं।

इनकी कृतियों का विवरण इस प्रकार है—

१. श्रीधरकृत न्यायकन्दली पर टिप्पण,
२. प्राकृत-प्रबोध,
३. मुरारिकृत अनर्घराघव पर टिप्पण,
४. नारचन्द्र ज्योतिष अथवा ज्योतिषसार, जिसके केवल दो ही प्रकरण उपलब्ध हैं।

इनके अतिरिक्त कथारत्नाकर तथा कथारत्नसंग्रह और चतुर्विंशति-जिन-स्तोत्रादि अन्य रचनाओं के भी उल्लेख मिलते

---

(१) मुनि जिनविजय जी सम्पादित—पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह पृ० १३६

हैं। गिरनार पर वस्तुपाल प्रशस्ति-परक दो शिलालेखों का पद्य-भाग भी इन्हीं की रचना है। (पिटर्सन)

नरेन्द्रप्रभसूरि— इन्होंने वस्तुपाल की प्रार्थना पर विक्रम संवत् १२८२ में 'अलङ्कारमहोदधि' नामक ग्रन्थ रचा और उसकी वृत्ति लिखी। इसके अतिरिक्त 'काकुत्स्थकेलि' नामक नाटक (१) भी इनका रचा हुआ बताया जाता है परन्तु वह उपलब्ध नहीं है (न्याय-कन्दली-पञ्जिका)। कितनी ही प्रशस्तियाँ और गिरनारलेखों का बहुत सा अंश नरेन्द्रप्रभसूरि की ही रचनाएं हैं। 'विवेकपादप' और 'विवेककलिका' नामक दो धार्मिक निबन्धों से ज्ञात होता है कि इनका साहित्यिक उपनाम विबुधचन्द्र कवि था।

बालचन्द्र— ये वस्तुपाल के परम मित्र थे। इनकी कृतियां ये हैं—

(१) वसन्तविलास महाकाव्य (इसमें वस्तुपाल का ही वसन्तपाल नाम रख कर उसके गुणों एवं चरित्रों का वर्णन किया गया है।),

(२) करुणावज्रायुध (एकाङ्की),

(३) आसड़ श्रीमालीकृत विवेकमञ्जरी की व्याख्या,

(४) आसड़-श्रीमालीकृत उपदेश-कन्दली की व्याख्या,

(५) गणधरावली (जैन गुरुओं की परम्परा)।

जयसिंहसूरि—इनकी हम्मीरमदमर्दन (नाटक) और वस्तुपाल-तेजपाल-प्रशस्ति नामक दो रचनाएं प्रसिद्ध हैं। ये जयसिंहसूरि कुमारपाल-चरित और धर्मोपदेशमाला के कर्त्ता जयसिंहसूरि से भिन्न हैं।

माणिक्यचन्द्र— ये मम्मटकृत 'काव्य-प्रकाश' के प्राचीनतम 'संकेत' के कर्त्ता थे। शान्तिनाथ-चरित्र और पार्श्वनाथ-चरित्र नामक दो महाकाव्य भी इन्हीं के रचे हुए हैं। आरम्भ में माणिक्य-

चन्द्र और वस्तुपाल के सम्बन्ध यद्यपि बहुत अच्छे नहीं रहे परन्तु बाद में इनके सुदृढ़ साहित्यिक सम्बन्ध स्थापित हो गए थे। (प्रबन्धकोश, वस्तुपाल चरित)।

पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह, प्रबन्धकोश और कृष्णकवि संकलित सुभाषित रत्नकोश से विदित होता है कि मदन (मदनकीर्ति), हरिहर, पाल्हनपुत्र (आबूरासा का कर्त्ता) चाचर्याक, पिप्पलाचार्य,(सती चन्दनबाला का गायक), यशोधर, कमलादित्य, शङ्करस्वामिन् , दामोदर, विकल, वैरिसिंह और जयन्तदेव आदि कवि भी वस्तुपाल के समसामयिक थे।

इनके अतिरिक्त वस्तुपाल के कुटुम्बीजन भी सत्साहित्यिक प्रतिभा से समन्वित थे। तेजपाल प्रणीत कितने ही स्फुट पद्य प्राप्त होते हैं। उसकी पत्नी अनुपमा की षड्दर्शनवेत्ताओं ने 'षड्दर्शनमाता' कह कर स्तुति की है। 'कङ्कणकाव्य' नामक उसकी एक कृति भी प्रसिद्ध है (पुरातनप्रबन्धसंग्रह पृ० ६३–७०)। वस्तुपाल के पुत्र जयन्तसिंह अथवा जैत्रसिंह ने अपने पिता की मृत्यु पर निम्न पद्य पढ़ा जो कितने ही प्रबन्धों में उद्धृत हुआ है:—

'खद्योतमात्रतरला गगनान्तरालमुच्चावचाः कति न दन्तुरयन्ति ताराः।
एकेन तेन रजनीपतिना विनाऽद्य सर्वा दिशो मलिनमाननमुद्वहन्ति ॥१०६॥

(प्रबन्धकोश पृ० १२८)

इसी प्रकार अन्य शताधिक कवियों, भाटों और चारणों आदि ने मंत्रीवर वस्तुपाल की प्रशस्ति में अपभ्रंश एवं प्राचीन गुर्जर राजस्थानी भाषा में बहुत से पद्य एवं दोहे आदि लिखे हैं जो इन भाषाओं के उज्ज्वल साहित्यिक रत्न समझे जाते हैं।

वस्तुपाल का देहान्त विक्रम संवत् १२९६ (१२४० ई०) में और तेजपाल की मृत्यु संवत् १३०४ (१२४८ ई०) में हुई थी।

प्रकरण १५

राजा कर्ण बाघेला

अब अणहिलवाड़ा के नाटक का अन्तिम दृश्य देखना बाकी है। सन् १२९६ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा और उपकारी बादशाह का बध कर दिया और उस वृद्ध मनुष्य की लाश को पैरों से रौंदता हुआ स्वयं दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया। जन-साधारण से वह अपने नाम की प्रार्थना करवाने लगा और इस प्रकार उसने निर्दयतापूर्ण और रक्तपात से भरे हुए राज्य का आरम्भ किया। इसमें उसको इतना द्रव्य प्राप्त हुआ कि उससे पहले दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाले किसी भी सम्राट् को इतना माल नहीं मिला था। महमूद गजनवी को उसके दश (१) हमलों में प्राप्त हुए जिस धन की कल्पना की जाती है वह भी इस धन राशि से बहुत कम था। मीरात-ए अहमदी में लिखा है—"खुदा की ऐसी इच्छा हुई कि पैगम्बर की शरीयत और दीन (मजहब) का प्रचार हो। जिस जाति के लोगों का वर्णन पहले किया जा चुका है उनकी सत्ता और राज्य का अन्त आ गया था और अब वे हमारे पवित्र और प्रकाशमय धर्म एवं नियमों को चलाने वाले लोगों के वश में आ गये थे कि जिससे इस महान्

(१) सत्रह।

धर्म का प्रकाश सूर्य के तेज के समान अन्धकारपूर्ण क्षेत्रों में भी फैलता चला जावे और बुराइयों से बचाने वाले उस धर्म के सच्चे फरमानों का प्रचार करते हुए हम लोग औरों को भी भारी भूल के भयंकर दलदल से निकालकर मुक्ति के सच्चे और सीधे मार्ग पर ले जावें।"

सन् १२९७ ई० के आरम्भ में ही अलाउद्दीन ने अपने भाई अलफखाँ (१) और अपने वजीर नुसरतखाँ जालेसरी को गुजरात-पुनर्विजय के लिए फौज देकर भेजा। वनराज के नगर को उजाड़ करके उन्होंने अपने कब्जे में कर लिया और जगह जगह मुसलमान पहरायती नियुक्त कर दिए। वहाँ के राजा कर्ण बाघेला को भी, जो भाग कर दक्षिण में देवगढ के राजा रामदेव के आश्रय में चला गया था, पकड़ लिया। प्रायः मुसलमानी हमलों का अन्तरंग कारण राज्य का लोभ ही होता था, परन्तु इस प्रत्यक्ष कारण के साथ साथ किसी घरेलू घटना को भी जोड़ देने में हिन्दू चारणों को विशेष आनन्द प्राप्त होता है और वे इस घरेलू बात ही को किसी भी बड़ी से बड़ी राजनैतिक घटना का मूल बता देते हैं। प्रस्तुत घटना के विषय में भी लिखा है कि–"कर्ण बाघेला के माधव और केशव नामक दो मन्त्री थे। ये दोनों ही जाति से ब्राह्मण थे। बढ़वाण के पास ही इनका बनवाया हुआ एक कुआ अब भी मौजूद है जो 'माधव का कुआ' कहलाता है। माधव की स्त्री पद्मिनी जाति की थी इसलिए राजाने उसके पति से उसको छीन लिया और केशव को मरवा डाला। अपने भाई की मृत्यु के

(१) मीरात ए अहमदी में उलुगखाँ नाम लिखा है और बताया है कि वह गुजरात में अलपखाँ के नाम से प्रसिद्ध था।

बाद माधव अलाउद्दीन के पास दिल्ली गया और मुसलमानों को गुजरात पर चढ़ा लाया। उन दिनों गुजरात में शहर के दरवाजे दिन में भी बन्द रहते थे, जानवर भी शहर की चारदीवारी के अन्दर ही चरते थे और वहाँ के निवासी अपनी पगड़ी का एक पेंच ठोडी के नीचे से लगा कर हर समय लड़ने के लिए तैयार रहते थे। सन् १३०० ई० (१) में तुर्कों ने गुजरात में प्रवेश किया। माधव ने तीन सौ साठ कच्छी घोड़े (२) अलाउद्दीन को भेंट किए और उस देश के लिए मन्त्रीपद का भार अपने ऊपर ले लिया। (उस समय) अलफखाँ सेना का अफसर था, उसके अधिकार में एक लाख घुड़सवार, पन्द्रह सौ हाथी, बीस हजार पैदल और पैंतालीस ऐसे अफसर थे जिनको (लड़ाई का) डंका बजाने का अधिकार प्राप्त था। उसीने वाघेलों से गुजरात छीन लिया था।"

कर्णराजा अचानक भाग जाने को विवश हुआ और इस भगदड़ में उसे अपनी रानियों, बच्चों, हाथी, सामान और खजाने को भी छोड़ना पड़ा। ये सब चीजे विजेताओं के हाथ में आ गईं। हिन्दुओं

---

(१) प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार यह समय १३०४ ई० है।

(२) जिस प्रकार कच्छ के घोड़े प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार काठियावाड़ की घोड़ियां भी नामी हैं। काठियावाड़ के निम्नलिखित स्थानों में विभिन्न जाति की घोड़ियां होती हैं :—

स्थान	घोड़ी की जाति
ढसा	माणकी और बागली
गढड़ा	अमरढाल
भाड़ला	मल और पती

की जाति और धर्म के शत्रु मुसलमानों ने जिन रानियों (१) को कैद किया था उनमें कौलादेवी भी थी जो 'अपनी सूझबूझ, सुन्दरता और सुलक्षणों के लिए हिन्दुस्तान की शोभा गिनी जाती थी'। सुल्तान ने उसको पकड़ कर अपने जनाने में दाखिल कर दी, और आगे चल

चोटीला	चागी
पालियाद	हरिण
भड़ली	ताजण
जसदण	रेडी और भूतड़ी
जेतपुर	जलाद
भीमोरा	केसर, मोराण और आखड़ियाल
मूलीमेवासा	बेरी
चूड़ा	बोदली
गोसल	फूलमाल
सोनीसर (मूली परगना)	रेशम
बागड़ (धंधूका)	बांदरी
खेरवा (पाटड़ी)	लाखी
दरवा (गोंडल)	लाश
बाबरा	ढेल
मोणिया (जूनागढ़)	हीराल
हलवद	रामपासा
लींबडी	लाल
गुंदरण (भावनगर)	मनी
लखतर	सींगात्नी
धांधलपुर	लखमी

(१) उस समय वहां पर मौजूद न होने के कारण कर्ण की दो रानियाँ बच गई थी। एक का नाम अमरकुँवरबा था। यह कच्छ के शेरकोट के जाड़ेजा

कर वही अपने कुटुम्ब और देश के लिए दुःख का कारण बन गई। अलफ खाँ और वजीर खम्भात को लूटने के लिए गए। खम्भात द्रव्यवान् व्यापारियों से भरा हुआ शहर था इसलिए अत्यधिक सम्पत्ति उनके हाथ लगी। यहीं पर नुसरत खाँ ने खम्भात के एक व्यापारी के पास से उसके एक सुन्दर गुलाम (दास) को भी बलात् छीन लिया था। यही गुलाम आगे चल कर सुल्तान का बहुत प्रीतिपात्र बन गया और मलिक काफूर की उपाधि प्राप्त करके बड़े भारी पद को पहुँच गया था। महमूद गजनवी के बाद में सोमनाथ के लिंग की पुनः स्थापना करदी गई थी उसका नाश करने में इस बार भी मुसलमानों ने भूल नहीं की।' (१) (सन् १३०० ई०) इसके बाद सन् १३०४ ई०

देसलजी की पुत्री थी। इस को रानीपद की खानगी में सरधार और ६५० गांव मिले थे। यह अपने पुत्र वीरसिंह को लेकर पीहर में ही रहती थी। दूसरी रानी ताजकुअँर थी। यह जैसलमेर के गजसिंहजी भाटी की पुत्री थी। यह भी अपने पुत्र सांरगदेव को लेकर भीलडी ग्राम में रहती थी। इसको भी रानीपद की खानगी में मारवाड़ के पास भीलड़ी नामक गाँव और ६५० दूसरे गाँव मिले हुए थे।

(१) दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी की फौज ने जब अणहिलपुर पट्टण को जीत कर अपने कब्जे में कर लिया तब वह कई छोटी छोटी टुकड़ियों में विभक्त करदी गई और सभी टुकड़ियाँ गुजरात काठियावाड़ के भिन्न भिन्न भागों को जीतने के लिए अलग अलग निकल पड़ी। इन्ही में से एक ने मोढ़ेरा के चारों ओर घेरा डालकर उसको अधिकृत कर लिया था। उसी का वर्णन व्रजलाल कालिदास शास्त्री ने इस प्रकार किया है:—

"अलफ खाँ की सेना ने मोढ़ेरा पर चढ़ाई की और शहर को घेर लिया। 'यवन लोग हमारे तीर्थ स्थान को भ्रष्ट कर देंगे', इस विचार से मोढ ब्राह्मण

तक गुजरात सम्बन्धी और कोई हाल नहीं मिलता है, केवल इतना ही लिखा है कि अलफ खाँ को एक बड़ी भारी फौज के साथ उस सूबे

बहुत क्रोधित हुए और शास्त्रास्त्र लेकर उनका सामना करने के लिए तैयार हुए। ये ब्राह्मण धनुर्वेद, छत्तीस प्रकार के दण्डादण्डी युद्धशास्त्र और चौसठ कलाओं में पारंगत थे। इनके साथ युद्ध करने की किसी में सामर्थ्य न थी। चावड़ा वंश के संस्थापक राजा वनराज ने गुर्जरदेश की सीमा पर इन्हीं लोगों को (इनके पूर्वजों को) स्थापित किया था। मोढ़ेरा ब्राह्मणों की छः जातियाँ हैं जिनमें से एक जेठीमल नाम से विदित है। इस जाति के लोग पाण्डवों के समान महा बलवान्, महारथी और अतिरथी थे। मोढ़ेरा पर यवनों की चढाई के समाचार सुनते ही सौ ब्राह्मणों ने अपने कुटुम्ब, पशु, धन धान्यादिक को विकट वन में पहुँचा दिया और फिर एकमत होकर लड़ने को तैयार हुए। मोढेरापुर और दूसरे ५६ ग्राम इन लोगों के अधिकार में थे। माण्डव्य गोत्रीय विठ्ठलेश्वर विप्र इनका मुखिया था और सौ के सौ ब्राह्मण उसकी आज्ञा का पालन करते थे। वह बाणविद्या में बहुत कुशल था। अस्तु, उसी की सरदारी में सब के सब ब्राह्मण ढाल, तलवार, तीर, कमान आदि शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर नगर की रक्षा करने लगे। दिवाली के दिन से होली तक यवनों ने नगर को घेरे रखा परन्तु ब्राह्मण भी बहादुरी से डटे रहे और नगर का रक्षण करते रहे। बादशाही सेना के बहुत से आदमी ब्राह्मणों के हाथों से मारे गए इसलिए नुसरत खाँ को और आदमी भेजने के लिए लिखा गया। उस समय माधव मन्त्री ने अलफ खाँ को कहा. "ब्राह्मणों के साथ युद्ध करना राजधर्म के विरुद्ध है। इनको यदि तुमने जीत भी लिया तो कोई विशेष कीर्ति प्राप्त न होगी। लम्बी लड़ाई तो राजाओं के साथ ही लड़नी चाहिए, इसी में शोभा है।" यह सुनकर अलफ खाँ ने माधव को आज्ञा दी कि वह जाकर ब्रह्मणों को समझा दे, इस पर उसने ब्राह्मणों को समझाया और बादशाह की सेना के खर्च के नुकसान के लिए पाँच हजार मोहरें देने को राजी कर लिया। प्रतिज्ञानुसार ब्राह्मणों ने यह रकम उसको दे दी। इस प्रकार जब सब तरह से समाधान हो चुका तो माधव प्रधान पाटण लौट गया। उसके लौट जाने के बाद ही फागुण

का शासक बना कर भेजा गया था। मीरात ए अहमदी के लेखक ने लिखा है कि. 'उसने अणहिलवाडा में सफेद संगमर्मर (१) की जुमा-मसजिद बनवाई थी जो आज तक मौजूद है। इस मसजिद में इतने खम्भे हैं कि उनको गिनने वाले से प्रायः भूल हो ही जाती है। ऐसा भी कहते हैं कि यह पहले किसी देवता का मन्दिर था और इसमें मूर्तियाँ विद्यमान थीं; उसी मन्दिर में हेरफेर करके इसने मसजिद बनाली थी। कुछ भी हो, यह एक विचित्र और शानदार इमारत है जो अब शहर की आबादी से बहुत दूर है परन्तु उस समय नगर के बीचों बीच स्थित थी।''

सुदी १५ के दिन सूर्यास्त के समय कोई बहाना निकाल कर मुसलमान लोग नगर में घुसने लगे। ब्राह्मणों ने उनको रोका तो उन्होंने हथियार उठा लिए। लड़ाई ठन गई और बहुत से यवनों तथा ब्राह्मणों के शिर कट गए। अन्त में विठ्ठलेश्वर सहित ब्राह्मणों को पीछे हटना पड़ा। मध्यरात्रि के समय मोढेरापुर को छोड़कर सब के सब ब्राह्मण साबरमती के किनारे जा भरे। मुसलमानी फौजों ने घरों में से ढूंढ ढूंढकर धन लूट लिया। मोढेरा के कोट और देवालयों को नष्ट कर दिया और नगर को जला दिया, मोढेरा और उसके आसपास के गाँवों पर कब्जा कर लिया और लोगों को पकड़ पकड़ कर जबरदस्ती मुसलमान बना लिया। जो ब्राह्मण मोढेरा से भाग कर निकल गए थे वे अलग अलग स्थानों पर जाकर बस गए। शान्ति होने पर बिट्ठलेश्वर को गुजारे के लिए कुछ गाँव मिल गये और लूट का धन लेकर मुसलमान सिपाही अणहिलवाड़ा चले गये।'' यह वृत्तान्त मोढ ब्राह्मणों के ग्रन्थ में लिखा है।

(१) यह आरस पत्थर पहले अजमेर से मँगवाया गया था और इससे बहुत से देवालय आदि बनवाये गये थे। जब अहमदाबाद राजधानी बना तब इसी में से बहुत सा पत्थर बड़े परिश्रम के बाद खोदखाद कर पाटण से वहाँ ले जाया गया था (मीराते अहमदी)।

काफूर नामक गुलाम, जो कभी खम्भात में एक हजार दीनारों में खरीदा गया था, अब बादशाह का बड़ा भारी प्रीतिपात्र और बड़े बड़े सरदारों के लिए ईर्ष्या का विषय बन गया था। सन् १३०६ ई० में काफूर को मलिक नायब का पद मिल गया और वह एक सेना का नायक बना दिया गया जिससें अच्छे अच्छे मशहूर अफसर उसके अधिकार में काम करने लगे। इसी सेना के भाग्य में दक्षिण हिन्दुस्तान के देशों को जीतना लिखा हुआ था। दक्षिण-विजय के महान् कार्य में दूसरे सूबों के अफसरों की तरह अलफ खाँ को भी सहायता देने की आज्ञा मिली। इसी अवसर पर कौलादेवी, जो अब बादशाह की बहुत लाडली बेगम हो गई थी, इस चढ़ाई का हाल सुन कर, बादशाह के पास पहुँची और उसने अपने शाही गुलाम के द्वारा एक काम निकाल लेने का वरदान प्राप्त किया। उसने कहा 'जब मैं कैद करके यहां लाई गई थी उससे पहले मेरे राजपूत पति से दो पुत्रियां हुई थीं। मैंने सुना है कि उनमें से बड़ी की तो मृत्यु हो गई है और छोटी, जिसका नाम देवल देवी है, अभी तक जीवित है। जब वह मेरी गोद से बिछुड़ी थी तब उसकी अवस्था केवल चार वर्ष की थी, इसलिए अब आप कृपा करके अपने सरदारों को यह आज्ञा दे दीजिए कि वे किसी तरह से उसको तलाश करके यहां दिल्ली भेज दें।" सुल्ताना की प्रार्थना के अनुसार ही बादशाह ने मलिक नायब काफूर को हुक्म दे दिया। उसने सुल्तानपुर आकर अपना मुकाम कायम किया और अभागे राजा कर्ण को, जो अब भाग कर बागलाना चला गया था, कहला भेजा 'या तो देवल कुमारी को मेरे सुपुर्द करो वरना शाही फौज का मुकाबला करने के लिए तैयार हो जाओ।' एक सच्चे राजपूत के लिए अपनी पुत्री को हल्के ठिकाने देना मृत्यु से भी अधिक दुखदायक बात है और 'अब

आकाश से अंगारे बरसें तो पिता अपनी संतान की आड़ लेकर भी अपना रक्षण करे' इस ओछी कहावत के अनुसार स्वार्थ साधने का समय भी अभी.तक पूर्ण रूप से. नहीं आया था। भीमदेव के वंशज और शेरदिल सिद्धराज के क्रमानुयायी कर्ण राजा ने सभी मुसीबतों को सहते हुए भी अपने वंश की प्रतिष्ठा के ध्यान को नहीं भुलाया था। वह इस मांग को स्वीकार करने के लिए किसी तरह भी राजी न हुआ। काफूर ने सोचा कि घायल हुए सिंह के समान शत्रु का सामना करने वाले अणहिलवाड़ा के भाग्यहीन राजा पर उसकी घुड़कियों का कोई असर नहीं पडने का इसलिए उसने अपना सफर (कूच) जारी रखा और राजप्रतिनिधि की हैसियत से अलफखां को आज्ञा दी कि वह गुजरात की फौज लेकर बागलाना की पहाड़ियों की ओर रवाना हो जाए और शाही फरमान को बजा लाने का पूर्ण प्रयत्न करे।

राजा कर्ण ने अलफखां का सामना किया। दो मास तक वह अपने प्राणों को हथेली पर रखकर वीरता से टक्कर लेता रहा। इस अवधि में कितनी ही लडाइयां हुई परन्तु अलफखां के आगे बढ़ने के सभी प्रयत्न निष्फल गए। जब अणहिलवाड़ा का अतिन्म राजा इस प्रकार अपनी निराशापूर्ण दशा में भी वीरतापूर्वक कठिनाइयों का सामना कर रहा था और शत्रु से बराबर की टक्कर ले रहा था, उसी समय अवसर देखकर मराठा जाति के एक दूसरे राजा ने उससे देवलकुमारी का विवाह अपने साथ कर देने की मांग प्रस्तुत की। कर्ण बाघेला के अच्छे दिनों में वह राजा किसी भी तरह उस चालुक्य-वंश की राजकुमारी के योग्य नहीं था, परन्तु, इस समय उसने इस आशा से यह प्रस्ताव (राजा कर्ण के) सामने रखा कि आफत का मारा हुआ वह उसे स्वीकार कर ही लेगा।

देवगढ़ का राजा शंकरदेव (१) बहुत दिनों से देवलदेवी के साथ विवाह करने की आशा लगाए बैठा था। इस अवसर पर उसने अपने भाई भीमदेव को कर्ण राजा के पास भेंट लेकर भेजा। भीमदेव ने उससे कहा 'देवगढ़ आपकी सहायता के लिए तैयार है। इस लड़ाई का एक मात्र कारण आपकी पुत्री है, इसलिए यदि आप जल्दी से जल्दी उसका विवाह कर देंगे तो उसे ब्याही हुई और उसके पति के अधिकार में समझ कर मुसलमान सरदार निराश होकर लड़ाई बंद कर देगा और हिन्दुस्थान लौट जावेगा।" कर्ण को इस राजा की सहायता के वचन से बहुत आश्वासन मिला। यह डूबते हुए को तिनके के सहारे के समान था, इसलिए उसने सोचा कि वंश में नीचा हुआ तो क्या, एक म्लेच्छ के हाथों में मेरी पुत्री चली जाए इससे तो अच्छा यही होगा कि उसका विवाह किसी हिन्दू राजा से हो जावे। अस्तु, यह सब सोच विचार कर उसने देवलदेवी का विवाह शंकरदेव के साथ कर देने की बात स्वीकार कर ली।

परन्तु, अब बहुत देर हो चुकी थी इसलिए यह तरकीब पूरी न पड़ सकी और कर्ण के भाग्य में जो कलंक सहित मानभङ्ग का प्याला पीना लिखा था वह उसको पीना ही पड़ा। जब अलफ खाँ ने देवलदेवी के विवाह की बात सुनी तो वह बहुत चिन्तित हुआ और सोचने लगा कि यदि यह विवाह हो गया तो सुल्तान यह समझे विना न रहेगा कि यह सब कुछ मेरी असावधानी के ही कारण हुआ है। इसलिए उसने यह निश्चय कर लिया कि किसी भी तरह रवाना होने से पहले देवल देवी को अपने अधिकार में कर ले। कौलादेवी का बादशाह के

(१) यह 'देवगिरियादव' वंश का था। देखिए-रायल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल, पुस्तक ४ पृ० २६

ऊपर कितना प्रभाव था, इस बात को भी वह अच्छी तरह जानता था, और इसीलिए वह समझता था कि उसकी जीत पर ही उसका जीवन निर्भर था। उसने अपने दूसरे सहायक सरदारों को इकट्ठा करके सब बातें समझा दीं और यह भी बतला दिया कि जितना दायित्व उसके शिर पर था उतना ही उन सब के ऊपर भी था। इस प्रकार समझा बुझा कर उसने सब को एकमत कर लिया और वे उसकी सहायता के लिए तैयार हो गए। जब सब बन्दोबस्त हो चुका तो सबने एक साथ ही पहाड़ी दर्रों में प्रवेश किया। जिस रास्ते से राजा कर्ण भागा था वह उन्हें मिल गया। उन्होंने आगे बढ़ कर उसकी गति को रोक दिया, उसके साथी तितर बितर हो गए और मजबूर होकर अपने हाथी, घोड़े तम्बू डेरे आदि सब कुछ वहीं छोड कर उसे देवगढ़ भाग जाना पड़ा। पर्वत के सँकड़े मार्गों में अलफ खाँ ने उसका पीछा किया और अन्त में वह देवगढ़ के किले से एक मंजिल की दूरी पर रह गया। वहाँ जाते जाते वह उस रास्ते को बिलकुल भूल गया जिससे कर्ण भाग कर गया था और उसको ऐसा मालूम हुआ कि उसका पासा पलट गया और बना बनाया खेल ही बिगड़ गया। परन्तु, उसी समय एक ऐसी घटना घटी कि उसे अचानक सफलता प्राप्त हो गई। यदि वह लाख लाख प्रयत्न करता और अच्छी से अच्छी चालें भी चलता तो उसे ऐसी सफलता नहीं मिल सकती थी।

जब वह मुसलमान सरदार अपनी फौज को आराम देने के लिए वहीं पर्वतों में दो दिन के लिए ठहर गया तो उसके लगभग तीन सौ सिपाहियों की एक टुकड़ी इलोरा की गुफाओं के चमत्कार को देखने के लिए निकल पड़ी। वे इन प्रसिद्ध गुफाओं को जाने वाले पहाड़ी सँकड़े मार्ग से जा ही रहे थे कि एकाएक देवगढ़ का झण्डा लिए जाते

हुए कुछ घुड़सवारों से उनकी भेंट हुई। वह भीमदेव की टोली थी जो अपने भाई की चिरमनोनीत वधू को लेकर घर जा रहा था। मुसलमान सिपाहियों की संख्या बहुत थोड़ी थी, परन्तु वे इतने आगे बढ़ चुके थे कि अब लौटना कठिन हो गया था इसलिए शत्रु पर आक्रमण न करके वे अपना बचाव करने के लिए तैयार खड़े रहे। भीमदेव के साथ देवलदेवी थी इसलिए उसको बहुत चिन्ता हुई। वह राजी खुशी इस झगड़े को टाल जाता परन्तु शत्रु सामने ही मौजूद था और देवगढ़ का रास्ता रोके हुए था इसलिए लडाई के सिवाय उसको और कोई चारा न सूझा। तत्काल ही दोनों दलों में युद्ध शुरू हो गया। पहले ही हमले में कितने ही हिन्दू सिपाही भाग खड़े हुए और जिस घोड़े पर देवलदेवी सवार थी उसके एक तीर लगने के कारण वह जमीन पर गिर पड़ी। लडाई ने फिर जोर पकड़ा और सिरोही और अर्बिस्तान की सेनाएँ लोहूलुहान होकर तलवारें चलाने लगीं। राजा कर्ण की पुत्री पृथ्वी पर चित पड़ी हुई थी और यदि भूल से भी उस पर एक वार हो जाता तो प्राणों के मूल्य पर उसके कुल की प्रतिष्ठा बच गई होती; परन्तु, उसी समय उसकी दासियों ने मुसलमानों को उसके नाम और कुल का पता बता दिया। जिसको खोजने की वे लोग पूरी पूरी कोशिश करके हार बैठे थे उसी का पता उन्हें इस विचित्र रीति से प्राप्त हो गया।

अब, अणहिलवाड़ा की राजकुमारी सम्मान के साथ अलफ़खां के डेरे में पहुँचाई गई। जिस बादशाह पर इस कन्या की माता का अत्यधिक प्रभाव था वह लूट में प्राप्त हुए इस रत्न को पाकर कितना खुश होगा, इस बात को यह सरदार अच्छी तरह जानता था। उसने अपने लश्कर को आगे बढ़ने से रोक दिया और वापस गुजरात लौट

कर वहां से उस सुन्दर राजकुमारी को साथ लिए दिल्ली पहुँच कर सुल्तान को भेंट कर दी। राजधानी में पहुंचने से पहले ही उस राजकुमारी ने अपने अनुपम सौंदर्य से अलाउद्दीन के शाहजादे का हृदय वश में कर लिया था। उसी के साथ उसका विवाह हो गया और इस प्रकार उसने वह पद प्राप्त कर लिया जिसके लिए कितनी ही मुसलमान युवतियाँ व्यर्थ की आशा लगाए बैठी होंगी। फिर भी, यह कौन कह सकता है कि, जिस समय राजसभा में उसके मोहक रूप का बखान होता होगा और अमीर खुसरो की सितार के तारों से खिजिर खाँ और देवलदेवी की प्रेमगाथा को अमर बनाने वाली झंकारें गूँजती होंगी, उस समय निराश शंकरदेव के प्रेम की याद करके अथवा अपने प्रतिष्ठाहीन और शोक में डूबे हुए पिता का ध्यान करके, उसके हृदय पर उदासी न छा जाती होगी।

अणहिलवाड़ा के अन्तिम और अभागे राजा के विषय में इतिहास इससे अधिक और कुछ नहीं कहता है। जिसे अपने देश और गद्दी को छोड़ कर भागना पड़ा, देश और सत्ता से भी प्यारी जिसकी राजपूती शान मिट्टी में मिल गई, बुरे दिनों में स्त्री ने भी जिसका साथ छोड़ दिया, और जिसके दुर्भाग्य में अन्तिम और सब से कटु डंक उसी की संतान ने मारा, ऐसा राजा कर्ण कहीं इस तरह घुल घुल कर मर गया होगा कि उसका नाम लेने वाला भी कोई न रहा। परन्तु, क्या राजा कर्ण के हृदय का शोक उसकी मृत्यु के साथ ही शान्त हो गया था? अणहिलवाड़ा के बन्दरगाह को रेतखेत करके विजेता लोग जो माल ले गये थे उसी (माल) में एक ऐसा सर्प छुपा हुआ था जिसके भाग्य में उनके मर्मस्थान पर डंक मारना लिखा था।

वर्ष पर वर्ष बीतते चले गए और विजय अलाउद्दीन के रक्तरंजित झण्डे से बँधी हुई सी दिखाई देने लगी थी परन्तु फिर भी आकाश में अपने खड्ग को घुमाती हुई दुर्भाग्य की अधिष्ठात्रीदेवी धीरे धीरे नीचे उतरती चली आ रही थी। 'अपने शस्त्रों की सर्वत्र विजय देखकर बादशाह के मस्तिष्क में एक हवा सवार हो गई थी और वह घमण्ड में बहुत फूल गया था। अपने राज्य के आरम्भकाल में वह मन्त्रियों की सलाह को जिस प्रकार ध्यान से सुनता था उस प्रकार अब उन पर ध्यान नहीं देता था। प्रत्येक कार्य उसकी अटल आज्ञा के अनुसार होता था। यह सब कुछ होते हुए भी, उसके राज्यकाल के विषय में लिखा है कि "राज्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई, राज्य के दूर दूर के प्रान्तों में न्याय और सुव्यवस्था फैली हुई थी, देश की शोभा दिनों दिन बढ़ती जा रही थी। बडे बडे महल, मसजिदें, विद्यालय, हमामखाने (स्नानागार) मीनारे और किले तथा सभी प्रकार की सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत इमारतें इतनी जल्दी जल्दी तैयार हो रही थीं कि मानों जादू से ही खड़ी की जाती हों। इसके राज्यकाल में राज्य के सभी भागों में विद्वानों की भी इतनी बढ़ोतरी हुई कि जितनी पहले कभी नहीं हुई थी।"

"अब, बादशाह की महिमा और सत्ता अपने शिखर पहुँच चुकी थी। परन्तु इस संसार में सभी वस्तुएं नाशवान् हैं। केवल परमात्मा ही अनश्वर है। इसलिए इस बादशाह के राज्य की कला भी अपनी पूर्णता को पहुंच कर अब धीरे धीरे ढलने लग गई थी।' उसने अपने राज्य की बागडोर, खम्भात में एक हजार दीनारों में खरीदे हुए गुलाम, मलिक काफूर के हाथ में छोड़ दी थी। उसका उस गुलाम में पूर्ण विश्वास था और उसके किए हुए प्रत्येक अराजनैतिक एवं अत्याचारपूर्ण कार्य का वह

पूर्ण समर्थन करता था। इसका फल यह हुआ कि राज्य के सभी सरदार उससे अप्रसन्न हो गए और उसके प्रति समस्त प्रजा में असंतोष फैल गया। मलिक काफूर के हृदय में बहुत दिनों पहले से ही राजगद्दी की लालसा उत्पन्न हो चुकी थी और अब वह ऐसे जाल रचने में व्यस्त था कि शाही वंश का समूल नाश हो जावे। देवलदेवी का पति खिजिरखाँ और उसके पिता के राज्य को नष्ट करने वाला अलफखाँ उसके पहले शिकार हुए। उसने उनके शिर पर यह दोष मँढा कि वे बादशाह के विरुद्ध षडयन्त्र करके उसको मार डालना चाहते थे, और इसी अभियोग में अपनी नीचता और दुष्टबुद्धि से उसने ऐसे ऐसे जाल फैलाए कि जो केवल इयागो (१) जैसे दुष्ट प्रकृति वाले मनुष्य के द्वारा ही संभव हो सकते हैं। इसी समय चारों ओर विद्रोह की वह आग भड़कने लगी, जो बहुत दिनों से अन्दर ही अन्दर धधक रही थी, और इस विद्रोहाग्नि की सबसे पहली चिनगारी गुजरात की उस भूमि में फूटकर निकली जहाँ पर अब तक वनराज के क्रमानुयायी राज्य करते रहे थे। यह चिनगारी मानों इसलिए फूट निकली थी कि अब वहां के राजों को नष्ट करने वालों से बदला लेने और उनकी चिता सुलगाने का समय आ चुका था। इस प्रकार इस भूमि ने अपनी अन्तिम राज-भक्ति का परिचय दिया। बादशाहने कमालखाँ नामक अपने प्रसिद्ध सरदार को उपद्रव का दमन करने के लिए भेजा परन्तु अलफखां के आदमियों ने, जो मार दिया गया था, बहुत सी मार काट के बाद उसको हरा दिया इस समय चितौड़ के राजपूतों को भी पुनः अपनी कीर्ति का ध्यान हो

---

(१) शेक्सपियर के 'ओथेलो' नामक नाटक का एक पात्र जो अपनी चालाकियों और दुष्ट प्राकृति के लिए प्रसिद्ध है।

आया और उनका स्वाभिमान जाग उठा, इसलिए उन्होंने अपने किले पर से मुसलमान अधिकारियों को निकाल बाहर किया और अपने को फिर से स्वतंत्र घोषित कर दिया। उधर शंकरदेव के बहनोई हरपाल ने दक्षिण में विरोध खड़ा कर दिया और मुसलमान किलेदारों को भगा दिया।

इन सब समाचारों को सुनकर अलाउद्दीन खूनी ने अपने निष्फल क्रोध के मारे अपने ही शरीर को नोंच लिया और अब उसके शोक और क्रोध का परिणाम इसके अतिरिक्त और कुछ न निकला कि उसके शरीर और राज्य की अव्यवस्था बढ़ती चली गई। कोई भी दवा उसके रोग को ठीक न कर सकी। अन्त में, सन् १३१६ ई० के दिसम्बर मास की उन्नीसवीं तारीख की शाम को उसने प्राण त्याग दिये और जिस दुष्ट को उसने अपने रक्त, मांस और बड़ी कठिनता से प्राप्त की हुई राज्यसत्ता को छीन लेने के लिए धूल में से निकाल कर ऊँचा उठाया था उसी काफूर ने उसको जहर दे दिया, यह सन्देह भी वह अपने साथ ही ले गया।

परिशिष्ट

।। अथ जगदेव परमार रा कवित्त कंकाली भाटण रा कह्या ।।

कंकाली कनडी (१) देस दीषण (२) सूं चली ।
गुजराति जैसंघ आइ ततषिण (३) सामुं ली (४) ।।
ऊ लग कुल छत्तीस पारसाहण (५) वहु पायो ।
दे आसका (६) अनंत राज-फल तास वंदायो (७) ।।
सिद्ध-प्रसतोते (८) दिवस मांग जय मांगै चित्तधर ।
जैसिंघ कहे कंकालि नुं त्तुज्झ समपूं (९) विवह (१०) पर ।।१।।
पांच दिवस दरबार रही भाटण गुणवंती ।
सीस उघाडै (११) फिरी नगर नर सह सोभंती (१२) ।।
एक अचंभ मयि षीयो (१३) किस कारण कंकाली ।
आजस सिर ढंकीयो गहे कर अंचल वाली ।।
जगदेव सिर ढंकीयो सिर ढंकै लज्जा कीयो ।
दाहिणो हाथ आसीस दे तव राव विसमें (१४) भयो ।। २ ।।

---

(१) कन्नड़ (२) दक्षिण (३) तत्क्षण (४) सामने लिया, स्वागत किया (५) प्रसाधन, इनाम इकराम (६) आशीर्वाद (७) वंदित किया (८) प्रस्तुति विनय (९) समर्पित करूं (१०) विभव (११) अनावृत शिर (१२) शोधती (खोजती) हुई (१३) मैंने कहा (१४) विस्मय ।

सिध कहै कंकाल कांई बोलै अफारो (१)।
जो कछु दै जगदेव ताहि चोगुणो हमारो ॥
करे राव सू विसर (२) गइय मारह द्वारैं।
पुत्त लुछि मिलतांम मंत्री मंत्री पर वारैं ॥
सुर नरगण गन्ध्रप (३) मणि अभरन (४) को संसार थिर।
जुग जुग नाम कीरत रहै जो कंकाली दीयै सिर ॥ ३ ॥
दोजै मदगुरु गयंद वलै तोषार (५) विवह पर।
दीजै गांम केर रयण (६) दीजै अंचह (७) भर ॥
दीजै भैंस्या बहोत वलै मोताहल (८) भांई।
तोही लछ ताम वलै सोवृन (९) बहु चाई ॥
दीजीयै अनडंबर सहित भटां थट समपणो।
इम कहै जगदैवरी सीस न दीजै आपणो ॥ ४ ॥
आपां गैवर (१०) एक राव पंचसाति समपै।
आपां अश्व दां पांच राव पंचास समपै ॥
आपा चंचल चीर हीर मोताहल दीजां।
आपां द्यां धनमाल राव सु देत न पूजां ॥
दीजीयै सीस कंकाल नों मुंझ तुझ छै मांगणा।
इण दान राव पूजै नहीं सीस न हुंवै चोगुणा ॥ ५ ॥
जिण जीवन कै काज अन धन लिछमी संचै।
जिण जीवन कै काज काल दुकालह वंचै (११) ॥
जिण जीवन कै काज होम कर नवग्रह टालै।

---

(१) अत्युक्तिपूर्ण, उभारकर (२) विसर्जन (३) गन्धर्व (४) आभरण (५) तोषा=कपडे लत्ते गहना आदि (६) धन (७) अञ्जुलि अथवा आंचल भर कर (८) मुक्ताफल (९) सुवर्ण (१०) गजवर, श्रेष्ठ हाथी (११) बचै

जिण जीवन कै काज जोइ जोतिक (१) विचारै ।
जिण जीव सटै (२) जस विसतरै घन जोवन कुंदन मीटैं ।
जगदेव जीव जगवल होम म आपिं सहेलां सटैं ॥ ६ ॥
जिण जीवन कै काज भोम भोगवें भूयंगम ।
जिण जीवन कै काज (ल) गाम भोगवै तरंगम ।
जिण जीवन कै काज मिलै गुणवंती सुन्दर ।
जिण जीवन कै काज माहा सुख माणो मिंदर ।
जीवीयै जैत स्वामी अपण ओ संसार असार है ।
सुंकंत सरोवर हंस गै कुल बूडै अंधियार है ॥ ७ ॥
मेर चलै ध्रू टलै पाण (३) गंग गहन मुंकै ।
रवि ससि नह उगमै सपत साइर (४) जल सुंकै (५) ॥
सेस न सिर धर सहै भीम भारथ नह मंडै ।
हणवंत दूरवल (६) हुवै पाण (७) पुरुषोतम छंडै ॥
अणभंग (८) चित दाता इधक अंतकाल जोवंत षिन ।
हारंत राम रावण आगै रहै पवन वरसै न घन ॥ ८ ॥
तूं नर वैं जगदेव भट कंकाल हंकारथो ।
मांगण जै मांगीयो चित आपरै संभारथो ॥
गयो महिल अपणै वलै कामणकुं बूझै ।
अवस मरण नह टलै अमर कल मैं नह सूझै ।
जो सिर देउ तो आपणो रहै कीरत संसार इण ।
बलि, वैण, समर, दधीच वै दूयां (९) चिहु मैं पंच मोहि गिणै । ६॥

---

(१) ज्योतिष (२) के लिये (३) पानी (४) सागर ५) सूखे (६) दुर्बल (७) प्रतिज्ञा (८) अञ्चल (९) दुनियां

तत्र नर वै जगदेव लोह कटारो मेल्यो।
कमल सीस उतरयो त्रीया अंचह (१) कर मेल्यो।
दिसटासण (२) नह टलै सीस बोलै अफारै।
देह देह मांगणां कीरत पसरे जग सारे॥
भर नैण नीर सुकलीणीया (३) कर जोडे वीनती करै।
कुछ कुछ दान कंकाल नो रावत देत लज्या मरै॥ १०॥
साम सीस उर लाइ थाल सोव्रन (४) जूगतां (५)।
पांटबर सो हेक भांत भांत दीसतां॥
हीरा मणी माणक कनक कांकण अपूरव।
चोवा चंदन वास धूत मलियागर धूपतां (६)॥
सुरगां विमाण जब ऊतरया सुर कांमण (७) इण परि कहे।
जगदेव जीव परमल (८) लग्यो पोहवी (९) बोल अविचल रहे॥११॥

कंकाल कहे फुलमालनुं (१०) रावत के मन आवीया

नही तुम सरिषो दान काहा ले रावत आवै।
सिधराजा जयसिंघ ताहि मील काहा दीषावै॥
नयणे नीर भरंत इंद जिम ऊलर (११) आया।
बिषम कठिण की वाति तास किण किण की माया॥
जोधार (१२) जामनी नो भाण (१३) थो सो सुरलोक सिधावियो।
फुलमालु कहे कंकाल नुं रावत ए मन आवियो॥ १२॥

---

(१) अञ्चल (२) दिष्टासन, विधिविधान (३) सुकुलीना (४) सुवर्ण (५) देखते (६) धूपित करते (७) सुर कामनी (८) परिमल, सुवास (९) पृथ्वी (१०) फूलमदे, जगदेव की पत्नि (११) उमड़ आए (१२) योद्धारः (१३) भानु

आणद सु सिघराव हुंस बूझै कंकाली ।
जगदेवै किसूं दीयो चित अयरो संभाली ।
देव अमी ऊचरै मुखसूं अलीन भाषै ।
ऊ रावत तूं राव हुणै कर समहर देषै ॥
कंकाल कहै सिघ राबनुं जो सौवैला (१) पाइ पर ।
पूजै न घडी जगदेवरी मंग पर सिंदूर भर ॥ १३ ॥
हाक मार (२) मुष हंस्यो सीस ग्रह ग्रह उचरंतो ।
देष भाजगो राव जाइ मिंदर पोहुतो (३) ॥
जब छेका (४) कंकाल बोल बोल्या जइ एसुं ।
अब दे दान चवगुणो जतै कहीयो हूँ देस्युं ॥
सिधराव कहे कंकालनुं छोड मुलक ले लाष सो ।
ऊधरयो सीस जगदेवरो हार सिघ जैसिंग गो ॥ १४ ॥
कंकाली कथ राष आवि पाछी ग्रह अंतर ।
धड संबाहि (५) कर साहि आण दीधो सिर ऊपर ॥
वले भाटण वरणवै साष तैतीस उजालो ।
कोप मार आवार वसु व्यापी की वालो ॥
जगदेव बोल इण जीवीयो सुरधीर सत्त झड़ो ।
लीजती धार पमार सुण षग सहि हूओ षडो ॥ १५ ॥

॥ इति कंकाली भाटण जगदे परमार नै कह्या संपुरण ॥

॥ राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर, ग्रंथ संख्या ४४५२ पत्र ११६ वां ॥

---

(१) वेला, समय (२) ठहाका मारकर=अट्टहास करके (३) पहुंचा (४) चतुर, विदग्ध (५) सवाहन करके, पकड़ करके उठा करके

अथ सिद्धराय जैसंघ ना कवित्त लि० । छप्पै ।

तीन नेत्र त्रसूल डम डम डमरू वज्जै ।
चौरासी आसन्न जोग सब जो जो सज्जै ।।
झर्‌यो अमृत नैंन चंद जब सिर पै आयौ ।
मृग सम मिलै न कोय भूष्यौं ति ह्रांथी षायौ ।।
आक धतूरा कर धरै रुण्डमाल कंठैं सह्यौ ।
बाघ बैल कुं मारण धर्‌यौ तब शंकर ह्रां ह्रां कह्यो ।।१।।
ऊंदर बिल षिण षिण मरे पेस भोगवै भुयंगम ।
बलद हल वाहि वहि मरे ह्‌री जव चरै तुरंगम ।।
कृपण धन संची मरे वीर विद्रवे त्रिविध पर ।
पंडित पढ़ि पढ़ि मरे मूरख विलसे राय घर ।।
सुण सिद्धराय गुज्जरंधरा करूं वीनती श्रवण सुभ्र ।
हम पढ़े गुणे चातुर अवर कवंण पारषौ जैसंघ तुभ्र ।। २ ।।
चिड़ी चुगण कुं गई पूंछ षुसाइ घर आई ।
बहु आग्गे कुं गई चीर दझाइ घर आई ।।
कूकर कढ़ावन गई ऊँट मर पड्यौ दुबारहिं ।
पुत्र वधावन गई सोग पड्यौ भरतारहिं ।।
सुण सिद्धराय गुज्जरधणी करूं वीनती श्रवण सुभ्र ।
हम पढ़े गुणे चातुर अवर कवंण पारषौ संघ तुभ्र ।। ३ ।।
थिर सें सत रचो मालथंभ सें सोल निरंतर ।
पूतली सहस्र अढ़ार रची रूप रंग मनोहर ।।
बीस लाष धजदंड कलस लष दो इहि माला ।
छप्पन कोटि गज तुरी रच्यौ रूप रंग निहाला ।।

असपति गजपती नरपति मांनव भव मांने सबै ।
परमाद कीध जैसिंह तुअ टुक रुद्रमालो चक्कवै ॥ ४ ॥

॥ अथ सिद्धराय जैसंघ नो कवित्त ॥

पाँच लाष पाषर्‌यां असी लष पाय तुरंगम ।
जोधा महा जुझार ऊभा असवार अरुंगम ॥
बाणापति बेलाष सबद बेधीस परांणा ।
सोल सहस सामंत सहस बत्तीसे रांणा ॥
धूंधलो द्रौण धूजी धरा वीस सहस वाजित्र बली ।
सोलंकी सिद्ध जैसिंघ सूं मंडे नहीं को मंडली ॥ १ ॥

अथ सिद्धराय जैसंघ नो दान लि० छप्पै ।

वीस त्रीस पचास साठि संतेर सत्योत्तर ।
भट्टां आप्पां आंण तुरी तुषार विविध पर ॥
दस ढ़ोल दस ढ़ाल सात नेजा इक डंडह ।
हस्ति पंच महमंत दीया जैसिंघ नरिंदह ॥
वाट के षरच दस लाष वलि पुनि अकाबराकब कीये ।
देषंत भाट हरषत हुए सिद्धराय इतने दिये ॥
चलत अचल चल चलत सरत तरवर जड़ त्रुट्टिय ।
गंग उलट बह अंग संग संकर लट छुट्टिय ॥
असुर परत मुख भरत उगत सब लौं महि मंडल ।
फटव अंड ब्रह्मंड हटत जल ब्रह्म कमंडल ॥
वह डरत इंद्र डगमगत चंद्र झलहल दिवाकर देव हुअ ।
घर धसत मेर सलसलत सेस मम मह मम मह मुल्ल जे संग तुअ

अनुक्रमणिका (पूर्वार्द्ध)

१ (ग्रन्थ और ग्रन्थकार)

२ ऐतिहासिक व्यक्ति

——००——

—•—

३. ऐतिहासिक स्थान (नगर ग्राम इत्यादि)

—००—

च

ज

ट

ठ

ढ

त

द

ध

भ

म

अनुक्रमणिका (उत्तरार्द्ध)

१, ग्रन्थ और ग्रन्थकार

श्र

त्र

---

२. ऐतिहासिक व्यक्ति

ख

ग

श

ह

---

३. ऐतिहासिक स्थान (नगर आदि)